बंकिम ग्रन्थावली

शरद कोठारी

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय
(जीवन और साहित्य)

जन्म : २६ जून, १८३८
निधन : ८ अप्रैल, १८९४

अमर राष्ट्रगीत 'वन्दे मातरम्', के मंत्रदाता ऋषि, महामानव, उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के सुनाम से देश का प्रत्येक राष्ट्र-प्रेमी परिचित है। बंग-भाषा और साहित्य को श्रेष्ठता की उच्चतम शिखर पर पहुँचाने और बंगाली-जातीय-चरित्र को नियंत्रित करने में बंकिमचन्द्र का दान महान है, अपूर्व है। बंकिमचन्द्र ने अपना सारा जीवन साहित्य-सृजन, उपन्यास-रचना, जातीय-मर्यादा नियंत्रण में ही लगाया। लेकिन उनकी जीवन साधना का महत्व बंगीय समाज तथा भारत देश ने बंकिमचन्द्र के जीवन के अन्तिम काल-खण्ड में ही पहचाना। बंकिमचन्द्र थे सरकारी कर्मचारी—डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलक्टर। अपने सरकारी नौकरी के काल में उन्हें ऊँच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित, नाना प्रकार के लोगों के घनिष्टतम परिचय में आने का सुयोग मिला। उन्हे अंग्रेज अफसरों और अंग्रेज व्यापारियों की घनिष्टता मिली और अंग्रेजी आचार-आचरण और विचारपद्धति से भी पूरी तरह परिचित होने का अवसर मिला। उन्हें भारत के अंग्रेजी शासन के प्रारं-

भिक दिनो म राजतंत्र-से जुडने का जो अवसर मिला उससे उन्होने भारत की दुर्दशा के कारणो को बहुत निकट मे देखा और समझा, तब जातीय-चरित्र-निर्माण के उद्देश्य से उन्होने लेखनी उठाई। सशक्त लेखनी ओर गहरी भावना के फलस्वरूप जातीय-जीवन पर उनकी भावधारा का खूब प्रभाव पडा।

बंकिमचन्द्र के पूर्वपुरुष थे हुगली जिले के अन्तर्गत देशमुख ग्राम के निवासी। उनके प्रपितामह रामहरि चट्टोपाध्याय ने ननिहाल की अतुल सम्पत्ति पायी ओर चोवीस परगना के काटोलपाडा ग्राम मे आ बसे। रामहरि के पौत्र यादवचन्द्र चट्टोपाध्याय। यादवचन्द्र के तृतीय पुत्र बंकिमचन्द्र। बंकिमचन्द्र के नाना थे प्रसिद्ध पण्डित भवानीचरण विद्या-भूषण। बंकिमचन्द्र चार भाई थे। अन्य तीन भाइयो के नाम थे—सबसे बडे भाई श्यामाचरण, मंझले संजीवचन्द्र और छोटे भाई पूर्णचन्द्र।

काँटोलपाडा ग्राम मे २६ जून, सन् १८३८ को बंकिमचन्द्र का जन्म हुआ। तब बंकिमचन्द्र के पिता मेदिनीपुर मे डिप्टी कलक्टर के पद पर थे।

पिता यादवचन्द्र का जीवन व वेश बडा विचित्र। वे फारसी और अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे। किशोरावस्था मे ही उच्च-सरकारी पद प्राप्त कर चुके थे। योग्य राजकीय कर्मचारी के रूप मे यथेष्ट नाम अर्जित किया था। बीच मे एक बार वे आर्थिक दृष्टि से बडे विपन्न हो गए थे तब एक संन्यासी की कृपा से वे संभल पाये। उस संन्यासी से उन्होंने दीक्षा ग्रहण की। पिता की इसी विपन्मुक्ति की कथा को सुन कर बंकिमचन्द्र संन्यासी सम्प्रदाय के प्रति आकर्षित हुए थे, यह कहना संभवत गलत होगा, वास्तव मे बंकिमचन्द्र पिता के संन्यासी-प्रेम और जीवन- यात्रा प्रणाली के प्रति आकर्षित और प्रभावित हुए थे। संन्यासी धर्म की अलौकिकता का उन पर गंभीर प्रभाव पडा था। बंकिमचन्द्र के उपन्यासो मे संन्यासी-सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रभावशाली उल्लेख उन पर पडे प्रभाव का ही प्रमाण है।

बंकिमचन्द्र अपने शैशव के छ वर्षों तक काँटोलपाडा ग्राम म ही रहे। लेकिन शिशुकाल मे ही उनकी असामान्य प्रतिभा का लोगो को आभास मिलने लगा था। एक दिन बंकिमचन्द्र बंगला-वर्णमाला रट रहे थे। उनकी एकाग्रता और तीक्ष्ण बुद्धि देख कर उनके पिता उनकी शिक्षा के संबंध मे विशेष यत्नशील और सतर्क हुए। तब उन्होने बंकिमचन्द्र को

पाँच वर्ष की आयु मे ही कुल-पुरोहित विश्वम्भर भट्टाचार्य के हाथो सौप दिया। लेकिन उन्हे ग्राम-पाठशाला मे जाने का अवसर नही मिला। ग्राम-पाठशाला के गुरु महाशय रामप्राण सरकार घर पर आकर ही उन्हे पढ़ाते थे। लेकिन गुरु रामप्राण सरकार की शिक्षा से बंकिमचन्द्र अधिक लाभ न उठा सके। आठ-दस महीने उनसे पढने के बाद ही बालक बंकिमचन्द्र को पिता के पास मेदिनीपुर चला जाना पडा और सरकार महाशय से उन्हे मुक्ति मिल गई।

मेदिनीपुर मे बंकिमचन्द्र मे शिक्षा के प्रति अपने आप रुचि बढी। पिता यादवचन्द्र चट्टोपाध्याय वहाँ डिप्टी कलक्टर के पद पर थे। वहाँ के अंग्रेज पदाधिकारियो से उनकी स्वाभाविक रूप से घनिष्टता थी और स्वाभाविक रूप से ही बालक बंकिमचन्द्र उनके बीच आत्मीय बन गये। सन् १८४४ साल मे बंकिमचन्द्र मेदिनीपुर आये और अपने विनम्र आचरण तथा निरीह प्रकृति के कारण अंग्रेज पदाधिकारियो के बीच बड़े प्रिय बन गये। तब मेदिनीपुर के अंग्रेजी स्कूल के प्रधान शिक्षक थे, एफ० टीड नामक एक अंग्रेज। उन्ही के परामर्श से यादवचन्द्र चट्टोपाध्याय ने बंकिमचन्द्र को उन्ही के स्कूल मे भरती कराया। अल्पकाल मे ही बंकिमचन्द्र की प्रतिभा स्कूल मे अपनी चमक दिखाने लगी। साल के अन्त मे परीक्षाफल निकलने पर प्रसन्न हो कर टीड साहब ने बंकिमचन्द्र को डबल-प्रोमोशन देना चाहा। लेकिन पिता यादवचन्द्र के प्रबल विरोध करने के कारण उन्हें डबल प्रोमोशन नही मिल सका। सन् १८४७ साल के मध्य मे टीड साहब की बदली हो गई और उनके स्थान पर आये सिनक्लेयर साहब। उनसे बंकिमचन्द्र को लगभग डेढ़ वर्ष अंग्रेजी पढ़ने पर अवसर मिला।

सन् १८४९ साल के शुरू मे ही बंकिमचन्द्र को मेदिनीपुर से कांटोलपाड़ा वापस आना पडा। इसी वर्ष फरवरी मे नारायनपुर ग्राम की एक पाँच वर्ष की बालिका से उनका विवाह हो गया।

कांटोलपाडा आ कर बंकिमचन्द्र ने संस्कृत-श्लोक और बंगला कविता सीखना शुरू किया। श्रीराम न्यायवागीश नामक एक प्रसिद्ध पंडित से इन दोनों ही विषयो का बंकिमचन्द्र ने अध्ययन शुरू किया। बंकिमचन्द्र ने इस क्षेत्र मे काफी प्रगति दिखाई। 'संवाद-प्रभाकर' और 'संवाद-साधुरंजन' की बहुत सी कविताएँ उन्होने कण्ठस्थ कर ली। पंडित हलधर तर्कचूडामणि से 'महाभारत' पढ़ी। भारतचन्द्र की 'विद्या

का रूपवर्णन' और 'गीतगोविन्द' की 'धीर समीरे यमुनातीरे' उन्हें याद हो गई। 'श्रीकृष्ण आदर्श पुरुष और आदर्श चरित्र'—हरधर की कथा का यह अन्तिम वाक्य उनके हृदय मे बस गया।*

मेदिनीपुर से काँटोलपाडा आने के बाद कुछ दिनों तक बंकिमचन्द्र की शिक्षा गाँव के घर पर ही होती रही। फिर १८४९ की २३ अक्टूबर को वे हुगली कालेज मे भरती हुए। तब उनकी उम्र थी साढ़े ग्यारह वर्ष। इस कालेज में शिक्षा-काल के समय दो-चार उल्लेखनीय घटनाएँ हुईं। कालेज मे तब दो विभाग थे—कालेज और स्कूल। स्कूल विभाग के भी दो खण्ड थे—सीनियर और जूनियर। दोनों पार करने के बाद कालेज मे प्रवेश होता था। हिन्दू कालेज, ढाका कालेज मे भी हुगली कालेज की भाँति ही सीनियर और जूनियर दो खण्ड थे। सीनियर खण्ड मे तीन श्रेणियाँ थी—प्रत्येक श्रेणी मे दो सेक्शन और जूनियर खण्ड मे चार श्रेणियाँ। इसकी प्रथम तीन श्रेणियों मे दो-दो सेक्शन। बंकिमचन्द्र जूनियर खण्ड की प्रथम श्रेणी मे 'ए' सेक्शन मे भरती हुए।

बंकिमचन्द्र हुगली कालेज मे १२ जुलाई सन १८५६ तक, प्राय सात वर्ष तक अध्ययन करते रहे। काँटोलपाडा से नाव द्वारा गंगा पार कर के कालेज जाना पडता था। कालेज मे अध्ययन काल मे उनके प्रमुख संगी थे छोटे भाई पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय। पूर्णचन्द्र को इस काल-खण्ड की बंकिमचन्द्र से संबंधित बहुत सी कहानियाँ याद थी। बंकिमचन्द्र अपने क्लास मे खूब तेज और प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी थे। इसी समय वे पाठ्यातिरिक्त अनेक पुस्तके पढ़ कर अपनी ज्ञान-पिपासा मिटाते। जल्दी ही वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी बन गये।

बंकिमचन्द्र जब हुगली कालेज मे भरती हुए तब प्रतिवर्ष १ ली अक्टूबर को सेशन प्रारंभ होता था और ३० सितम्बर को समाप्त होता था। पहले वर्ष ही बंकिमचन्द्र को 'जेनरल एफीशिएन्सी' का पुरस्कार मिला। १८५२ की परीक्षा में बंकिमचन्द्र कोई पुरस्कार नही पा सके। अगले वर्ष १८५३ सन् मे सेशन-काल मे परिवर्तन हो गया। अब १ ली मई से ३० अप्रैल तक सेशन-काल हो गया। कालेज मे इस वर्ष की परीक्षा अट्ठारह महीने बाद १८५४ सन् मे अप्रील मास मे हुई। यह परीक्षा थी १८५३ सन् की जूनियर स्कालरशिप परीक्षा। इसमें हुगली

---

* बंकिम-प्रसग : बंकिमचन्द्र की बाल्यशिक्षा-पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय, पृष्ठ ३३-४१

कालेज के अन्तर्गत कई स्कूलो के तिहत्तर लडके परीक्षार्थी बने। इस परीक्षा मे बंकिमचन्द्र प्रथम आए और उन्हे आठ रुपये मासिक की वृत्ति मिली।

बंकिमचन्द्र के जीवन में सन् १८५३ का साल एक और कारण से स्मरणीय है। अंग्रेजी के अध्ययन के अलावा बंगला के अध्ययन में भी वे खूब मन लगाते थे। इसी साल (१८५३) 'संवाद प्रभाकर' कविता-प्रतियोगिता मे भाग ले कर बंकिमचन्द्र ने पुरस्कार प्राप्त किया। उन्होंने प्रतियोगिता मे स्वलिखित जो कविता दी थी उसका नाम था—'कामिनी की उक्ति।' यह कविता 'संवाद-प्रभाकर' के १८ मार्च १८५३ के अंक में प्रकाशित हुई। पारितोषिक के मिले—बीस रुपये। रंगपुर के जमीदार रमणीमोहन और कालीचरण राय चौधरी ने 'प्रभाकर' के सम्पादक ईश्वरचन्द्र गुप्त के मार्फत इनाम के रुपये भेजे। और हुगली कालेज के अध्यक्ष जेम्स कार के नाम २० फरवरी १८५४ को पत्र लिख कर बंकिमचन्द्र के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित की। हुगली कालेज मे अध्ययन-काल मे ईश्वरचन्द्र गुप्त बराबर 'संवाद-प्रभाकर' और 'संवाद' 'साधुरंजन' मे बंकिमचन्द्र की गद्य-व-पद्य रचना प्रकाशित करते रहे। दो ही वर्षों की अवधि में इन दो पत्रो मे बंकिमचन्द्र की कई गद्य-पद्य रचनाएँ छप गईं। 'कालेज के छात्रों मे कविता-युद्ध' इस समय की एक उल्लेखनीय घटना है। हुगली कालेज के बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, कृष्णनगर कालेज के द्वारिकानाथ अधिकारी एवं हिन्दू कालेज के दीनबन्धु मित्र 'संवाद-प्रभाकर' में कविता लिख कर वाद-विवाद मे भाग लेते। इस 'कविता-युद्ध' का संचालन करते—'संवाद-प्रभाकर' के सम्पादक कविवर ईश्वरचन्द्र गुप्त। इसी 'कविता-युद्ध' मे प्रतिद्वन्द्वी बनने वाले बंकिमचन्द्र और दीनबन्धु मित्र आगे चल कर परम-मित्र बने, जिनकी मित्रता आजीवन चली।

आठ रुपये मासिक वृत्ति पाते हुए बंकिमचन्द्र सन् १८५४ मे कालेज विभाग मे चतुर्थ श्रेणी मे पहुँचे। १८५५ की परीक्षा मे बंकिमचन्द्र सर्वप्रथम हुए और फिर आठ रुपये मासिक की वृत्ति के विजेता बने। अब वे तीसरी श्रेणी मे आ गये। अगले वर्ष १८५६ माल मे अप्रैल महीने मे सीनियर वृत्ति परीक्षा दी। इस परीक्षा मे सभी विषयो मे उच्चतम स्थान पाकर बंकिमचन्द्र ने बीस रुपये मासिक की वृत्ति जीती। इस बार वे द्वितीय श्रेणी मे आये। फिर गर्मी की छुट्टियो के बाद वे थोड़े ही दिनो कालेज मे अध्ययन कर पाये। १८५६ माल की १२ जुलाई

द्वितीय थे। उस युग की बी० ए० परीक्षा अति कठिन होती थी।

विश्वविद्यालय के सिन्डीकेट ने अपने 'मिनट' मे यो लिखा

'3. Read a letter from the University Board of Examiners in Arts, stating that of the 13 candidates for the degree of B. A., three had been absent during the whole, or a portion of the Examination and that of the others, all had failed.

Read also a letter from the like Board, recommending that, two candidates, viz, Bankim Chunder Chatterjee and Judoonath Bose who had passed creditably in five of the six subjects, and have failed by not more than seven marks in the sixth, might as a special act of grace, be allowed to have their degrees, being placed in the second division, it being clearly understood, that such favour should, in no case, be regarded as a precedent in future years

RESOLVED- That the two candidates mentioned be admitted to the degree of B A [1]'

कलकत्ता विश्वविद्यालय से सर्वप्रथम बी० ए० की डिगरी प्राप्त करने वाले बंकिमचन्द्र और यदुनाथ का नाम चारो ओर फैल गया। ११ दिसम्बर १८५८ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम समावर्त्तन उत्सव मे बंकिमचन्द्र और यदुनाथ को बी० ए० की उपाधि प्रदान की गई। सरकार ने बंकिमचन्द्र को प्रथम ग्रेजुएट होने के कारण तत्काल डिपटी मजिस्ट्रेट व डिपटी कलेक्टर के पद पर बैठा दिया। उस समय बंकिमचन्द्र बी० एल० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, जब उन्हे कालेज छोड देना पडा।

सन् १८५८ मे ही बंकिमचन्द्र डिपटी मजिस्ट्रेट और डिपटी कलक्टर के पद पर नियुक्त हुए। फिर दीर्घकाल तक, तेतिस वर्ष तक सरकारी सेवा मे रह कर १४ सितम्बर १८९१ सन् मे रिटायर हुए.

छात्रावस्था से ही बंकिम की साहित्य के प्रति रुचि पैदा हुई थी। फिर सरकारी नौकरी मे रहते हुए भी वे विभिन्न विषयो मे आने वाली

---

1 University of Calcutta, minutes for the year 1858, pp. 18-19

नई-नई पुस्तके सदा पढ़ते रहे और समसामयिक उन्नतिशील भावधारा से परिचित होते रहे। देश-विदेश मे सम्पर्क रखकर नाना ज्ञान विज्ञान से जुडे रहे।

तत्कालीन योरोपीय कर्मचारी मि० ई० बाकलैण्ड ने लिखा:

'In 1858 he was the first Indian to take the degree of B A and the Government of Sir F Halliday at once appointed him to be a Deputy Magistrate in recognition of his talents By 1858 he had risen to the first grade in the Subordinate Executive (now the Provincial) Service, and for some time acted as an Assistant Secretary to the Government of Bengal He rendered good service in a number of districts and also acted as Personal Assistant to the Commissioners of the Rajshahi and Burdwan Divisions In June 1867, he was secretary to a Commission appointed by Government for the revision of the salaries of ministerial officers, while in charge of the Khulna subdivision (now a district) he helped very largely in suppressing river dacoities and establishing peace and order in the eastern canals'

—Bengal under Lieutenant Governors, vol II, P. 1077

बंकिमचन्द्र के चाकरी-जीवन की एक गाथा स्मरणीय है--डिप्टी कलक्टर व डिपटी मजिस्ट्रेट होकर बंकिमचन्द्र सब से पहले यशोहर गये, वहाँ दीनबन्धु मित्र से उनकी भेट हुई। दोनो बहुत कम समय मे परस्पर बडे घनिष्ट बन्धु हो गये। उन दोनो की प्रीति कितनी प्रगाढ़ थी यह इसी से पता लगेगा कि दीनबन्धु की मृत्यु के बाद उनके नाबालिक पुत्र व कन्या की बडी सहृदयता से उन्होंने सदा सहायता की।

यशोहर मे रहते हुए ही सन् १८५८ मे बंकिमचन्द्र को पत्नि-वियोग सहना पडा। १८६० मे जनवरी मे उनकी बदली मेदिनीपुर के नेगुँया महकमा मे हो गई। एक महीने वहाँ रह कर बंकिमचन्द्र ने फरवरी मे छुट्टी ले ली और मित्र दीनबन्धु को साथ लेकर पत्नी की खोज शुरू की। १८६० के जून मे हालीशहर के विख्यात चौधुरी वंश की कन्या राजलक्ष्मी देवी से बंकिमचन्द्र की दूसरी शादी हुई। फिर व

पत्नी को साथ ले कर नेगूँया आये। जीवन-संगिनी के रूप मे राजलक्ष्मीदेवी हर समय सुख-दुख, असद-विपद मे पति की सहायक रही। बंकिमचन्द्र जहाँ भी रहते वही साहित्यिक समागम होने लगता। राजलक्ष्मी देवी उनकी अत्यधिक चिन्ता, सेवा-यत्न मे ही व्यस्त रहती।

बंकिमचन्द्र की साहित्य-सेवा तो उनके विद्यार्थी-जीवनकाल से ही शुरू हो गई थी। सन् १८५३ से ५७ तक, चार वर्षा मे उनकी कई गद्य-पद्य रचनाएँ प्रकाशित हो गई थी। ईश्वरचन्द्र गुप्त की पत्रिका 'संवाद-प्रभाकर' व 'संवाद-साधुरंजन' मे वे बराबर लिखते रहे। बंकिमचन्द्र बराबर लिखते रह कर अपना बंग-भाषा का ज्ञान व अभ्यास बढ़ाते रहे। उन्होने 'एजूकेशन गजट' म भी लिखा। बंकिमचन्द्र को अंग्रेजी साहित्य के लिए भी विशेष रुचि थी। सरकारी-नौकरी के काल मे उन्हें अधिकाश अंग्रेजी मे ही लिखना पडता था। खुलना मे जब वे सरकारी कार्य मे नियुक्त थे तब उन्होने अंग्रेजी मे ही सन् १८६४ मे किशोरीचन्द्र मित्र के पत्र 'इंडियन फील्ड' मे 'राजमोहन की स्त्री' नामक उपन्यास को धारावाहिक रूप मे लिखना शुरू किया। अपनी इस प्रथम कथा-कृति को उन्होने पहले अंग्रेजी मे ही लिखा फिर बाद मे स्वयं ही उसका बंगला अनुवाद भी किया।

अंग्रेजी मे उपन्यास लिख कर बंकिमचन्द्र का साहित्यिक-मानस तृप्त नही हो सका। खुलना मे ही सन १८६५ मे आपने बंगला मे 'दुर्गेशनन्दिनी' की रचना की। फिर एक साल बाद १८६६ मे 'कपालकुण्डला' लिखा। फिर १८६९ मे 'मृणालिनी' का जन्म हुआ।

'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रकाशन से ही बंगला विद्वतमण्डली ने बंगला भाषा के माधुर्य और ऐश्वर्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया। फिर दो और उपन्यासो के छपते-छपते बंकिमचन्द्र को ख्याति चतुर्दिक फैल गई।

बहरमपुर (मुर्शिदाबाद) मे बंकिमचन्द्र १८६९ से ७४ तक रहे। यहा उनकी साहित्यिक प्रतिभा खूब ही चमकी। उपन्यासो के अलावा यहा उन्होने 'On the Origin of Hindu Festival' एवं 'A popular Literature for Bengal' नामक दो सुचिन्तित और सारगर्भित प्रबंधो की रचना की और बाद मे बंगला के प्रतिनिधि विद्वान्-समाज के सम्मुख कलकत्ता के 'बंगाल सोशल साइन्स एसोसियेशन' मे इनका पाठ भी किया। फिर सन १८७१ म 'कलकत्ता रिव्यू' नामक उस युग

की विख्यात अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका में 'Bengali Literature' और 'Buddhism and Sankhya Philosophy' नामक प्रबंध लिखे। फिर १८७२ में शम्भुचन्द्र मुखोपाध्याय की प्रसिद्ध जातीय पत्रिका 'मुखर्जीर मैगजीन' में 'The Confessions of a young Bengal' और 'The study of Hindu philosophy' लिख कर समस्त बंगीय विद्वत्-समाज को चकित कर दिया। लेकिन अंग्रेजी भाषा के माध्यम से लिख कर स्वयं बंकिमचन्द्र कभी संतुष्ट न होते थे। तब उन्होंने अंग्रेजी में लिखना बन्द कर बंगला-भाषा में ही लिखने का प्रण किया।

बरहमपुर में बंकिमचन्द्र ने एक साहित्यिक समाज जुटा लिया। भूदेव मुखोपाध्याय, रामदास सेन, लाल बिहारी दे, रामगति न्यायरत्न, राजकृष्ण मुखोपाध्याय, दीनबन्धु मित्र, लोहाराम शिरोरत्न, गंगाचरण सरकार, अक्षयचन्द्र सरकार, वैकुण्ठनाथ सेन, ताराप्रसाद चट्टोपाध्याय दीननाथ गंगोपाध्याय, गुरुदास बंद्योपाध्याय (बाद में हाईकोर्ट के न्यायधीश), आदि प्रमुख सुधी और मनीषी व्यक्तियों की साहित्य गोष्ठी बना कर साहित्य चर्चा में ही बंकिमचन्द्र हर समय व्यस्त रहने लगे। स्वदेश भाषा और साहित्य के उत्थान के प्रति वे बहुत सक्रिय हो गये।

स्वदेश-साहित्य के उत्थान की भावना से ही प्रेरित होकर बंकिम-चन्द्र ने 'वंग दर्शन' नामक एक बंगला मासिक पत्र के प्रकाशन का उद्योग व आयोजन किया। लेखक-गोष्ठी जुटने में देर नहीं लगी। बड़े भाई संजीवचन्द्र, जगदीशनाथ राय, अक्षयचन्द्र सरकार प्रभृति ने साथ दिया और बंगला साहित्य की योजनाबद्ध सेवा शुरू हुई। तब तक रमेशचन्द्र दत्त भी बंगला में रचनाएँ करने लगे थे। हरप्रसाद शास्त्री की बंगला रचनाएँ भी सामने आने लगीं। बंकिमचन्द्र के नेतृत्व में 'वंग दर्शन' के माध्यम से खूब नए-नए विषयों पर नये-नये लेख सामने आने लगे।

'वंग दर्शन' में बंकिमचन्द्र ने एक टिप्पणी लिखी जो उल्लेखनीय है—

'हमारा अंग्रेजी व अंग्रेज से कोई द्वेष नहीं। अंग्रेज जाति से इस देश का काफी उपकार हो रहा है। अंग्रेजी शिक्षा आज प्रधान हो चुकी है। बहु-रत्न-प्रसूति अंग्रेजी भाषा का जितना ही अनुशीलन हो, उतना ही भला होगा।...बहुत सी बातें है, आज बंगाली-वर्ग ही नहीं, समस्त भारतवर्ष अंग्रेजी का प्रेमी हो उठा है। लेकिन अंग्रेजी को समस्त देश के लोग समझ नहीं पाते, इससे भारतवर्ष की उन्नति न हो सके गी।

संस्कृत भाषा भी लुप्त हो गई है। बंगाली, महाराष्ट्री, पंजाबी भी उन्नतिशील नहीं हैं . अतः जितनी दूर अंग्रेजी चलना आवश्यक है, वह चले, लेकिन एकबारगी अंग्रेज हो जाने से काम न चलेगा। बंगाली अंग्रेज कभी नहीं हो सकते। बंगाली के मुकाबले अंग्रेज में बहुत से महान गुण है, लेकिन यह कल्पना नहीं की जा सकती कि तीन करोड़ अंग्रेज हो जाएँगे। मैने अंग्रेजी पढ़ी है, लेकिन मैं अंग्रेजी में क्यों नहीं लिखता ? मेरे लिए अंग्रेजी मृत-सिंह की खाल जैसा है। मात्र पाँच सात हजार अंग्रेजो की भाषा तीन करोड़ की भाषा नहीं हो सकती। पत्थरमयी सुन्दरी मूर्ति की अपेक्षा, कुत्सिता वन्यनारी ही जीवनयात्रा मे सहायक हो सकती है।. इतने दिनो सुशिक्षित बंगाली समाज की उन्नति भी अवरुद्ध रही है।.

'यदि अपनी भाषा की मर्यादा बढ़ा कर समग्र बंगाली समाज उन्नति नहीं करता तो किसी तरह भी देश का मंगल न हो सकेगा। देश के समस्त निवासी जन अंग्रेजी नहीं समझते, कभी समझ भी सकेंगे, ऐसी भी आशा नहीं। और अगर स्वदेश भाषा का सहारा नहीं लिया गया तो यह निश्चित है, कि अंग्रेजी का मुँह ताकते हुए तीन करोड़ जन गूंगे और बहरे हो जायँगे। ' (वंगदर्शन)

इसके बाद भी बंकिमचन्द्र ने लिखा, 'बंगला भाषा के प्रति बंगाली जन का अनादर, बंगाली जाति का अनादर होगा।'

तब बंकिमचन्द्र के जीवन का एकमात्र उद्देश्य हो गया कि बंगाली भाषा के प्रति बंगाल के एक-एक जन मे सम्मान जागृत हो। तब बंकिमचन्द्र ने अनेक लेख लिख कर बंगाली भाषा की विद्या, कल्पना लिपिकौशल का पूर्ण परिचय दिया।

बंकिमचन्द्र के प्रयास से, बहरमपुर से अप्रैल १८७२ मे 'वंग दर्शन' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। चार वर्षो तक बंकिमचन्द्र 'वंग दर्शन' का सम्पादन करते रहे। फिर दो वर्षो तक पत्रिका का प्रकाशन स्थगित रहा। बाद मे बंकिमचन्द्र के बडे भाई संजीवचद्र के सम्पादकत्व मे अनियमित रूप से कुछ अंक प्रकाशित हुए।

'बंगदर्शन' पहले कलकत्ता के भवानीपुर के एक प्रेस मे छपता था। फिर सन १८७३ मे कॉटोलपाडा के बंकिमचन्द्र के घर मे ही एक छापाखाना खुला और वहीं 'वंग दर्शन' की छपाई होती रही। लेकिन नवम खण्ड के छपने के बाद संजीवचन्द्र ने इसका प्रकाशन बन्द कर दिया।

फिर बंकिमचन्द्र के अन्यतम मित्र चन्द्रनाथ बसु के प्रयास से श्रीशचन्द्र मजूमदार ने इसका सम्पादन भार ग्रहण किया और 'वंग दर्शन' फिर निकलने लगा।

'वंग दर्शन' का प्रकाशन बंगला साहित्य के इतिहास मे एक स्मरणीय घटना है। बंकिमचन्द्र की अपनी तथा उनके साहित्यिक मित्रो की रचनाओ के कारण 'वंगदर्शन' उस युग के बंगाली-संस्कृति-युग का दर्पण बन गया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दो मे—'बंकिमचन्द्र का 'वंग-दर्शन' प्रकट होकर बंगाली-समाज का हृदय बन गया![1]

'वंगदर्शन' मे नियमित रूप से लिखने वालो मे राजकृष्ण मुखोपाध्याय, अक्षयचन्द्र सरकार, ताराप्रसाद चट्टोपाध्याय, रामदास सेन, चन्द्रनाथ बसु जैसे मनीषियो के नाम उल्लेखनीय है। विज्ञान, दर्शन, साहित्य, संस्कृति, काव्य, समाजतत्व, धर्मतत्व, इतिहास, अर्थनीति, संगीत, भाषातत्व, पुस्तक समालोचना आदि सभी विषयो पर लेख होते।

'बंगदर्शन' से प्रेरणा ले कर अनेक नये लेखको ने भी जन्म पाया। नये लेखको को अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन का अवसर मिला। बंगाल मे अपनी भाषा का प्यार जगाने मे 'वंग दर्शन' का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा। बंगाल के शिक्षित समाज को एक नूतन पथ दिखाई पडा। इस संबंध मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है

'· बंग-साहित्य के लिए यह वय संधिकाल था। नवजागरण का प्रभात जागा रहा था और निराशा की रात्रि का अवसान हो रहा था। तभी बंकिमचन्द्र का साहित्य प्रभात के सूर्य की भाति उदित हुआ।··· अतीत और वर्तमान के संधिस्थल को एक शुभ-मूहूर्त का अनुभव हुआ। कहॉ गया वह अन्धकार, वह निद्रा, वह विषयवस्तु, वह बच्चो को भुलावा देने-बहकाने वाली बाते, और कहाँ से आ गया इतना आलोक, इतनी आशा, इतना संगीत, इतना वैचित्र्य! आषाढ की प्रथम वर्षा की भॉति 'वंग दर्शन' ने आकर सूखे हृदय को ठण्डा कर दिया। इस के मूसलाधार भाववर्षन से बंग-साहित्य की पूर्ववाहिनी-पश्चिमवाहिनी-सभी नदियॉ पूरी तरह भर उठी और यौवन-वेग से बह चली। कितनी काव्य, नाटक, उपन्यासिक रचनाएँ, कितनी समालोचानाएँ, कितने प्रबंध, कितने मासिक पत्र, कितने संवादपत्र वंग-भूमि के नये प्रभात को

१. जीवनस्मृति

मुखरित करने को जन्म पाने लगे। बंग-साहित्य सहसा बाल्यकाल से यौवनकाल मे आ गया।...'[1]

बंकिमचन्द्र ने विभिन्न विषयों पर लिख कर, और नए-नए लेखको को प्रोत्साहन देकर बंगला-भाषा व साहित्य मे नए प्राणो का संचार किया। इससे यही नही हुआ कि रचनाएँ अधिक होने लगी बल्कि बंग-भाषा मे नया निखार भी आया। 'बंग दर्शन' के माध्यम से बंकिमचन्द्र ने स्वय ज्ञान-विज्ञान, इतिहास, संस्कृति आदि नाना विषयो मे लिख-लिख कर एक आदर्श उपस्थित किया। उनकी लेखनी का स्पर्श पा कर हर विषय रसमय हो उठी। यही नही, बंकिमचन्द्र के एक हाथ से साहित्य सुन्दर रूप ग्रहण कर रहा था और दूसरे हाथ से समालोचना द्वारा साहित्य का कूड़ा भी साफ हो रहा था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बंगला साहित्य की तत्कालीन स्थिति और बंकिमचन्द्र के योगदान के सम्बन्ध मे लिखा है

' 'बंकिमचन्द्र एक ओर अग्नि प्रज्वलित कर रहे थे और एक ओर वे कुहरा, धुआँ और राख भी साफ कर रहे थे।...स्वतन्त्र रचना और समालोचना, दोनो का कार्य-भार अपने ऊपर ले कर एकाकी बंकिम-चन्द्र बङ्गला साहित्य को नया रूप प्रदान करने मे सक्षम हो रहे थे।... बंकिम साहित्य-कर्मयोगी थे। उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। साहित्य-क्षेत्र के तमाम अभावो को अकेले मिटाने की उनमे अभूतपूर्व क्षमता थी। क्या काव्य, क्या विज्ञान, क्या इतिहास, क्या धर्मग्रंथ, जिस विषय मे भी जब जैसी आवश्यकता पडी, उनकी लेखनी सम्पूर्ण शक्ति से चलने लगती थी। नवीन बंग-साहित्य क्षेत्र मे सभी विषयों मे आदर्श उपस्थित करना ही उनका एकमात्र उद्देश्य था। विपन्न वंगभाषा तब आर्त-स्वर से उन्हें पुकार रही थी और वे चतुर्भुज की भाँति हर पुकार पर दौड़ पडने को प्रस्तुत रहते थे।

बंकिमचन्द्र के समय बंगाली समाज की दो भयानक समस्याये थी—विधवा-विवाह और बहु-विवाह। इन दोनो विषयो को लेकर बंकिमचन्द्र ने उपन्यासों की रचना की। बंगाली-जन के दैनन्दिन जीवन और समस्या को लेकर उन्होने जिन उपन्यासो की रचना की उनसे समाज को नया-पथ दिखा। 'विषवृक्ष', 'इन्दिरा', 'युगलागुरीय',

---

१. बकिम-प्रसग।

'चन्द्रशेखर', 'राधारानी', 'रजनी', 'कृष्णकान्त का विल', 'राजसिंह', और 'आनन्दमठ' इसके प्रमाण है। यही नही, बंकिम की अन्य रचनाएँ—'लोक-रहस्य', 'कमलाकान्तेर दफ्तर', 'विज्ञान-रहस्य' आदि भी कम क्रान्तिकारी तथा युगप्रवर्तक नही थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दो मे

'...उन्होने केवल अभय, सान्त्वना ही नही दिया, मात्र अभाव पूर्ति ही नही की, बल्कि उन्होने बंग-साहित्य को इतना सामर्थ्यवान बनाया कि बंग-देश की रात्रि-कालिमा भी दिन के प्रकाश से जगमगा उठी। बंकिम की वाणी मात्र स्तुतिवाहिनी नही खड्गधारिणी भी है।'

एक प्रकार से बंकिमचन्द्र की लेखनी सभी विषयो मे समुज्वल हो उठी।

बंकिमचन्द्र का स्वदेश-प्रेम व देशभक्ति 'कमलाकान्तेर दफ्तर'[*] मे कमलाकान्त के मुख से स्पष्ट-रूप से प्रकाशित हुई है। सुविख्यात जातीय-संगीत 'वन्दे मातरम्' की रचना बंकिमचन्द्र ने 'बंग दर्शन' के सम्पादन-काल मे की थी। बाद मे, बहुत बरसो बाद उसे उन्होने 'आनन्दमठ' मे शामिल कर लिया। फिर तो आगे चल कर 'वन्दे-मातरम्' समस्त भारतवर्ष मे जन-जन के राष्ट्रप्रेम का प्रतीक ही नही बना, बल्कि भारत के स्वातंत्र्य-संग्राम मे वह राष्ट्रगीत के रूप मे प्रेरणा-स्रोत भी बना।

उस युग मे एक सरकारी कर्मचारी की सीमा को देखते हुए बंकिम-चन्द्र मे जितनी देशभक्ति और स्वदेश प्रेम था, देख कर आश्चर्य होता है। इससे उनके नैतिक मनोबल का पता लगता है। उनके मन मे देश-भक्ति कूट-कूट कर भरी थी।

सन् १८८२ साल मे एक घटना हुई। शोभाबाजार-राजबाड़ी मे हुए एक धार्मिक-अनुष्ठान मे जेनरल एसेम्बली (वर्तमान स्काटिश चर्च कालेज) के अध्यक्ष पादरी हेस्टी ने हिन्दू धर्म पर आक्रमण किया। तब 'रामचन्द्र' उपनाम से बंकिमचन्द्र ने एक लेख लिख कर उसका उत्तर दिया। Letters on Hinduism लिख कर बंकिमचन्द्र ने हिन्दू धर्म के मूलतत्व की व्याख्या की। 'कृष्णलीला' को लेकर यह विवाद उठा था। आरोप था कि कृष्णलीला से संबंधित काव्य अपवित्र, अरुचिकर और अश्लील है। इसके उत्तर में बंकिमचन्द्र ने लिखा था—'·यदि

---

[*] कमलाकान्त के पत्र।

कृष्णलीला की यही स्थिति है तो भारतवर्ष मे कृष्णभक्ति और कृष्णगीति इतने युगों से स्थायी कैसे रहा ?'

बंकिमचन्द्र ने हिन्दू धर्म पर हो रहे प्रहारो के उत्तर मे ही 'आनन्द-मठ', 'देवी चौधरानी,' 'सीताराम' की रचना कर के समाज को खडे होने को एक दृढ भित्ति दी और हिन्दू-समाज के संगठित होने की आवश्यकता की ओर संकेत किया। सन् १८८४ मे 'नवजीवन' और 'प्रचार' मे बंकिमचन्द्र ने हिन्दू धर्म-तत्व की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। 'प्रचार' मे बंकिमचन्द्र ने धारावाहिक रूप से 'कृष्णचरित्र' नामक प्रबंध लिखा जो सन् १८८२मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। 'कृष्णचरित्र-प्रसंग पर रवीन्द्रनाथ ने लिखा है '

'' बंगदेश यदि इतना प्राणहीन न होता तो वर्तमान पतित हिन्दू समाज और विकृत हिन्दू धर्म के ऊपर इतना अस्राघात जो हो रहा है कदापि न होता। 'कृष्णचरित्र' द्वारा हमे आघातबोध और चेतनालाभ हुआ। बंकिम जैसा तेजस्वी, प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही इतनी निर्भीकता और स्पष्टता से अपने मत का प्रकाशन करने का साहस कर सकता है।'❀

'नवजीवन' के अंको मे ही बंकिमचन्द्र ने 'धर्मजिज्ञासा' और 'अनुशीलन' नामक लेखों को लिख कर धर्म के विभिन्न पहलुओ की व्याख्या की।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों मे बंकिमचन्द्र ने सारा समय युवक, उदीयमान साहित्यिकों को प्रोत्साहित करने मे लगाया। रवीन्द्रनाथ, हरप्रसाद शास्त्री, श्रीरामचन्द्र मजूमदार, सुरेचशन्द्र समाजपति, हीरेन्द्रनाथ दत्त आदि अनक युवक बंकिमचन्द्र से अत्यधिक प्रभावित थे।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे बंकिमचन्द्र सरकारी नौकरी त्याग कर नाना रूपो मे राष्ट्रीय आन्दोलनो को सहायता देने मे और राष्ट्रीय प्रतिष्ठानो के संचालन मे ही लगे रहे। सिपाही विद्रोह के बाद सरकार ने राजकीय पदाधिकारी होने पर भी बंकिमचन्द्र के अधिकारों का क्रमश हनन करना प्रारम्भ किया। उस समय कलकत्ता मे 'ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन' और 'भारतीय सभा' भारतवासियो के लिए राष्ट्रीय-कार्यों की ऐसी संस्थाएँ थी, जिनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलनो का सूत्रपात एवं संचालन होता था। तब विलायत की पार्लमिट ने इन

❀ बंकिम-प्रसंग

संस्थाओ को सरकार विरोधी कह कर इन्हे विरोधोदलो का अड्डा कहा और इन्हे गैर-कानूनी घोषित किया। इस समय बंकिमचन्द्र खुलना मे डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलेक्टर थे। इस पद पर रहते हुए भी बंकिमचन्द्र ने सरकार को बडे कडे शब्दो मे अनेक पत्र लिख कर उसके कारनामो की भर्त्सना की।

इन्ही दिनो बंकिमचन्द्र मे 'वन्दे मातरम्' लिख कर निरीह भारत-वासियो को मातृभूमि की पूजा करने को प्रोत्साहित होने के लिए यह मंत्र दिया था।

सरकारी नौकरी से मुक्ति ले कर बंकिमचन्द्र स्थायी रूप से कल-कत्ता रहने के लिए आये। सन् १८८७ के जनवरी मे कलकत्ता आकर बंकिमचन्द्र ने कलकत्ता मेडिकल कालेज के सामने प्रताप चाटुर्या लेन मे एक मकान खरीदा। ओर यही स्थायी रूप से रहने का निश्चय किया। इसी वर्ष मार्च महीने मे अपने ज्येष्ठ भ्राताओ श्यामाचरण और संजीव-चन्द्र के साथ बंकिमचन्द्र उत्तर भारत भ्रमण को निकले। मिर्जापुर, बिन्ध्याचल, प्रयाग, काशी और आगरा होकर वे मथुरा, वृन्दावन गये। यहाँ से श्यामाचरण जयपुर चले गये और बंकिमचन्द्र तथा संजीवचन्द्र इलाहाबाद वापस आ गये। फिर थोडे दिनो बाद कलकत्ता वापस आये।

सरकारी नौकरी मे रहते हुए बहरमपुर, कॉटोलपाडा, हुगली आदि स्थानो मे जब तक बंकिमचन्द्र रहे, उनका घर साहित्यिको का अड्डा बना रहता था। अब कलकत्ता मे भी बंकिमचन्द्र का घर साहित्यिक तीर्थ बन गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सुरेशचन्द्र समाजपति जैसे अनेक उदीयमान युवक साहित्यसेवी आकर बंकिमचन्द्र से साहित्यचर्चा करने मे लिप्त रहते।

कलकत्ता रहते समय, कलकत्ता विश्वविद्यालय सिण्डिकेट के आग्रह पर बंकिमचन्द्र ने १८९२ मे Bengali Selections तैयार किया। बाद मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के बगला-विषय के बंकिमचन्द्र परीक्षक भी नियुक्त हुए। फिर वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट के सदस्य भी चुने गये।

इस प्रकार जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे विभिन्न प्रकार से विभिन्न जिम्मेदारियो को निभाते हुए भी बंकिमचन्द्र का जीवन एक प्रकार से बंगला साहित्य-सेवा के लिए ही समर्पित रहा।

सन् १८९४ के मार्च महीने मे बंकिमचन्द्र का स्वास्थ्य एकाएक खराब हुआ। वे बहुमूत्र रोग से पीडित हुए। तमाम इलाज के बावजूद भी रोग भयानक रूप से बढा। आठ अप्रैल १८९४ को अपराह्न मे आप ने शरीर त्याग किया।

बंकिमचन्द्र की धर्मपत्नी राजलक्ष्मीदेवी बाद मे कई वर्षों तक जीवित रही।

बंकिमचन्द्र को कोई पुत्र न था। तीन कन्याएँ थी—शरत्कुमारी, नीलाकुमारी और उत्पलकुमारी।

बंकिमचन्द्र की मृत्यु से बंग-देश शोक-सागर मे डूब गया। विभिन्न शोक-सभाओं मे उनकी कीर्तिकथा का उल्लेख हुआ। कविवर हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय की लम्बी कविता मे बंकिमचन्द्र के प्रति मर्मवेदना का गहरा प्रकाश हुआ है। कवि गोविन्दचन्द्र दास ने बंकिमचन्द्र के नायक-नायिकाओ, और उनके साहित्य के अन्य प्रतीको का समावेश कर के जिस शोक-गाथा की रचना की उसका कुछ अंश इस प्रकार है

'तुमि साजाइले भाषा नाना आभरने,
कतो रंग कतो रस कमलाकान्तेर वश,
लिखिते रहस्य कतो विज्ञाने दर्शने।
बुझाइले योगभक्ति कृष्णेर असीम शक्ति,
देखाइले आदर्श नव देवनारायने।
झेडे पूँछे धूलामाटि हिन्दुर आसन खाँटि
बुझाइले प्रेमधर्म देशवाशीगने।
तोमार स्वाधीन मने शरतेर रौद्रवत्
ध्वनितेछे भारतेर गगने गगने।
प्रतिभार दीप्त रवि बागालीर महाकवि
केन अस्त याओ आज अगस्त्य गयने।
ढालिया आँधार घन भाषा-फूलवने?'

बंकिमचन्द्र की मृत्यु के बारह वर्षों बाद, स्वदेशी आन्दोलन के रूप मे, बंग-देश मे एक अभूतपूर्व जातीय अभ्युत्थान हुआ। मनीषियो ने एक मत हो कर बंकिमचन्द्र की भावधारा और अनुप्रेरणा को स्वीकार किया। अरविन्द घोष (श्री अरविंद) ने १६ अप्रैल, सन् १९०७ को बंकिमचन्द्र के मानस की व्याख्या करते हुए अंग्रेजी मे एक लेख लिखा।

उनके शब्द थे—'The earlier Bankim was only a poet and stylist-the latter Bankim was a seer and nation-builder' अर्थात् पहले के बंकिम मात्र एक कवि व शिल्पी थे—बाद के बंकिम ऋषि और जाति-संगठनकारी थे।

बहुत दिनो बाद फिर श्री अरविन्द ने लिखा—

'The new intellectual idea of the motherland is not in itself a great driving force, the mere recognition of the desirability of freedom is not an inspiring force. . It is not till the motherland reveals herself to the eye of the mind as something more than a stretch of earth or a mass of individuals, it is not till she takes shape as a great divine and maternal power in a form of beauty that can dominate the mind and seize the heart that these petty fears and hope vanish in the all-absorbing passions for mother and her service, and patriotism that works miracles and saves doomed nations is born To some men it is given to have that vision and reveal it to others It was thirty two years ago that Bankim wrote his great song "the Mantra had been given and in a single day a whole people had been converted to the religion of patriotism The Mother had revealed herself A great nation which has had that vision can never again be placed under the feet of the conqueror '

बंकिमचन्द्र का 'वन्दे मातरम्' मंत्र सार्थक हो गया।

स्वदेश पराधीनता की शृङ्खला से मुक्त हो कर स्वतंत्रता प्राप्त करने मे समर्थ हुआ। हम अपने को स्वाधीन कहने योग्य हुए।

अब नवीन परिवेश मे, नवीन दृष्टिभंगिमा से 'बंकिम-साहित्य' के पठन-पाठन का युग आया है।

—ओंकार शरद

उपन्याम-प्रमग
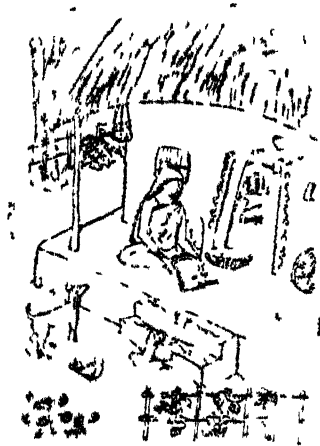
साहित्य-मनीषी बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचनाओ, विशेपकार उपन्यासो मे आज भारत की किमी भी भाषा का शिक्षित समाज अपरिचित नही है। बंकिमचन्द्र के लगभग सभी उपन्यास भारत की लगभग सभी भाषाओ मे अनूदित हो कर पाठकों द्वारा अभिनन्दित हुए है।

बंकिमचन्द्र के समकालीन लेखक-बन्धुओ द्वारा लिखित अनेक कथाओ, ग्रंथो द्वारा बंकिमचन्द्र के युग की परिस्थितियों का आभास मिलता है। बंकिम के युग मे राष्ट्रीय-चेतना-युक्त साहित्य की रचना करना कितना कठिन था, इसका आभास मिलता है। ललितकुमार बन्धोपाध्याय, गिरिजाप्रसन्न राय चौधरी, अक्षयकुमार दत्तगुप्त, पूर्णचन्द्र बसु, पंचकौडी बन्धोपाध्याय, विपिनचन्द्रपाल, श्री कुमार बन्धोपाध्याय, एवं बंकिमचन्द्र के विभिन्न जीवनीकार, तथा अन्य लेखकों ने बंकिम से उपन्यासो पर समुचित प्रकाश डाला है। इतिहास के आचार्य श्री यदुनाथ सरकार ने भी बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यासो की समुचित समालोचनाएँ की है।

बंकिमचन्द्र के उपन्यासो के संबंध मे अनेक अधिकारी विद्वानो ने इतना कुछ लिख दिया है कि वास्तव मे अब उनके संबंध कुछ कहने को नही रह जाता। फिर भी मोटे तौर पर बंकिमचन्द्र के उपन्यासो को तीन श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है—ऐतिहासिक, सामाजिक और जातीयतामूलक। आचार्य यदुनाथ सरकार प्रदत्त ऐतिहासिक उपन्यासो की व्याख्या, अत्यन्त हृदयग्राही और समयानुकूल है। श्री यदुनाथ सरकार ने लंदन की विख्यात पत्रिका 'टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट' के ३० जून सन् १९४६ के अंक में ऐतिहासिक उपन्यासो पर एक सारगर्भित लेख लिखा था, जिसका एक अंश है

'इतिहास और उपन्यास एक वस्तु नही है। ऐतिहासिक उपन्यास का स्थान साहित्य-श्रेणी मे है। इतिहास-श्रेणी मे नही। आज कल जैसे ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना हो रही है, उनका प्रधान-दोष यह है कि उनके माध्यम से अतीत काल के सत्य व्यक्ति और घटनाएँ अधिकाश मे काल्पनिक अधिक होते है। लेखक को अपनी कल्पना के अनुसार व्यक्ति और घटनाएँ तथा कथावस्तु का निर्माण करते है पर वे तथ्य के अधिक निकट नही होते।'

लेकिन बंकिमचन्द्र के उपन्यासो के संबंध मे अपना मत प्रकाशित करते समय आचार्य यदुनाथ सरकार ने बंकिम के उपन्यासो को इन दोषो से मुक्त माना है। उन्हे बंकिमचन्द्र के उपन्यासो मे आए व्यक्तिओ और घटनाओ की ऐतिहासिकता पर तनिक भी सदेह नही है।

बंकिमचन्द्र के उपन्यासो को जिन तीन श्रेणियो मे विषयानुसार बाँटा जा सकता है, उन विभिन्न श्रेणियो मे उनके ये उपन्यास आते हैं—

ऐतिहासिक . दुर्गेशनन्दिनी, मृणालिनी, चन्द्रशेखर और देवी चौधरानी।

जातीयतामूलक . राजसिंह, सीताराम, कपालकुण्डला आनन्दमठ।

सामाजिक : विषवृक्ष, इन्दिरा, युगलागुरीय, राधारानी, रजनी, कृष्णकान्त का विल, राजमोहन की स्त्री और कमलाकान्त के पत्र।

अपने पात्रो, परिवेश, परिस्थितियो के चित्रण तथा वातावरण के कारण बंकिमचन्द्र के उपन्यासो को चाहे जिस भी श्रेणी मे रखा जाय, पर उनकी सभी कथाओ मे एक राष्ट्रीय मूल भावधारा प्रवाहित होती है।

बंकिमचन्द्र के उपन्यासो ने पीढ़ियो-दर-पीढियो को प्रभावित किया

है, क्योकि उनके उपन्यासो मे जीवन और मानव समाज का जो संवेदन-शील चित्रण है, वह शाश्वत है, चिरनवीन है। बंकिमचन्द्र ने जिस युग मे अपनी कथाओ को गढा है वह भारतवर्ष के इतिहास म मानसिक-संघर्ष का युग था। इसीलिए बंकिमचन्द्र ने नवजागरण का जो सपना देखा, उसे ही कथा-रूप मे प्रस्तुत किया। जब अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी प्रभाव ही भारत के लिए संजीवनी बन रहा था, तब बंकिमचन्द्र ने स्वदेश भाषा और जातीय-सम्मान की रक्षा की ओर स्वदेश का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया एक बडे दिवास्वप्न से देश को वे बचाना चाहते थे।

उपन्यास रचना मे बंकिमचंद्र एक प्रभावशाली शिल्पी दिखाई पडते है।

'विषवृक्ष' और 'कृष्णकात का विल' मे उन्होने तत्कालीन बंगाल की दो प्रमुख समस्याओ, बहु-विवाह और विधवा-विवाह पर गहरी चोट की है। चद्रशेखर' और दुर्गेशनन्दिनी' उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर गढ़ी गई मार्मिक कथाएँ है। 'राजसिंह' मे औरंगजेब के विरुद्ध राजपूत राजाओ का संगठन है। 'आनन्दमठ' मे संन्यासी सम्प्रदाय की राष्ट्रीय भावना का चित्रण है।

बंकिमचंद्र ने इतिहास का अपनी कथाओ की पृष्ठभूमि के रूप मे ही उपयोग किया है। पात्रो का निर्माण स्वयं किया है। 'कपालकुण्डला' और 'देवी चौधरानी' निकट अतीत की कथाएँ है।

बंकिमचंद्र की कृतियाँ आज स्वयं अपना ऐतिहासिक स्थान बना चुकी है। एक शताब्दी पूर्व की उनकी रचनाएँ आज भी ताजी है, चिर-नूतन है, आधुनिक है और इतने वर्षो पुरानी होने पर भी उनके इस-प्रभाव मे कही कोई कमी नही आई है।

कहना गलत न होगा कि बंकिमचंद्र अमर है, बंकिमचंद्र की रचनाएँ अमर हैं।

—ओंकार शरद

वंदे मातरम्

सुजला सुफला मलयज शीतला
शस्य-श्यामला मातरम् ।
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम् ।
सुहासिनी सुमधुर-भाषिणीम्
सुखदा वरदा मातरम् ॥
कोटि-कोटि कण्ठ कलकल निनाद कराले
कोटि-कोटि भुजैधृत खरकरवाले
के बोले मा तुमि अबले
बहुबलधारिणी नमामि तारिणी
रिपुदल वारिणी मातरम् ॥
तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे ।

बाहुते तुमि मा शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारइ प्रतिमा गडि
मन्दिरे-मन्दिरे
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी
कमला कमलदल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी
नमामि त्वा ।
नमामि कमला अमला अतुला
सुजला सुफला मातरम् ॥
वंदे मातरम् ॥
श्यामला सरला सुस्मिता भूषिता
धरणी भरणी मातरम् ॥
वंदे मातरम्' ''
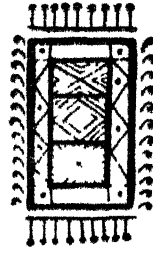
●

| १ |

मधुमती नदी के किनारे बसा राधागज एक छोटा-सा गाँव है। जमीदारो की हो रही उन्नति के कारण गाँव की रौनक बनी हुई है। इसी गाँव मे एक दिन, चैत्र मास मे शाम होने से पहले एक घर मे दोपहर की नीद पूरी करके उठने के बाद एक तीस वर्षीय स्त्री कघी-चोटी करने मे व्यस्त हो गई। प्राय स्त्रियाँ इस काम मे बहुत अधिक समय नष्ट किया करती है, लेकिन इस स्त्री ने अधिक समय नही लगाया। चार अगुल के एक छोटे से टीन के शीशे, एक बड़ी सी कघी और पानी की सहायता से बाल सवारने का काम पूरा करके उसने माथे पर सिंदूर का टीका लगाया। फिर मुँह मे भरे पान के रस से दोनो होठो को रगती हुई, बगल मे कलसी दबाकर, मस्त चाल से गाँव के रास्ते पर निकल पड़ी।

लेकिन सीधे गाँव के पनघट पर न जाकर वह स्त्री अपने पडोसी के दरवाजे पर लगे बाँस के छोटे से टट्टर को हटाकर भीतर चली गई। उस घर मे छप्पर वाले चार कोठे थे। आँगन काफी साफ-सुथरा था। कोठे इस बात के साक्षी थे कि घर के मालिक को किसी बात की कमी नही है। तीन कोठो के दरवाजे भीतर की ओर थे और चौथे के बाहर की ओर। तीन कोठे रहने के लिए थे और चौथा बैठक खाना था। दालान के सामने की जगह में साग-सब्जी उगी थी। चारो ओर नरकुल का बेड़ा और टट्टर की झाँप थी। पड़ोसिन को घर मे घुसने मे कोई असुविधा न हुई।

भीतर जाते ही वह समझ गई कि उस घर की मालकिन भी नीद पूरी करके उठ चुकी है। उस घर मे दो प्राणी—एक अट्ठारह वर्ष की युवती और दूसरा चार वर्ष का एक बच्चा। युवती कपड़े पर फूल काढ रही थी और बच्चा रोशनाई की दाबात लेकर मौज से खेल रहा था। उसके पूरे चेहरे पर स्याही पुत गई थी।

आगन्तुका आ कर उसी युवती के पास ही जमीन पर बैठ गई और बोली, 'क्या कर रही है री ?'

प्रसन्नता से युवती का चेहरा खिल उठा। हँसती हुई बोली, 'बड़े भाग्य है जो आज दीदी ने दर्शन दिए। जाने किसका मुँह देख कर उठी थी आज !'

आगन्तुका ने भी हँसते हुए जवाब दिया, 'रोज सबेरे जिसका मुँह देख कर उठती है, उसी का आज भी देखा होगा।'

इतना सुनते ही अचानक युवती के चेहरे का रग बदल गया और आनेवाली भी सहम गई। उसके चेहरे की हँसी भी जाने कहाँ खो गई।

आगन्तुका साँवले रग की है, ज्यादा सुन्दर भी नही, लेकिन उसके शरीर का कोई अग खटकने वाला न था। चेहरे पर चचलता थी और आँखो मे हँसी, जिसने उसकी माधुरी को मधुर बना रखा था। वह जो आभूषण पहने थी वे गिनती मे कम होने पर भी वजनदार थे। इस समय वह एक मोटी साडी पहने थी।

युवती के कोमल शरीर पर कोई उल्लेखनीय आभूषण न थे। उसकी बातचीत मे पूर्वी बगाल की भाषा का शुद्ध उच्चारण था। इससे स्पष्ट था कि वह मधुमती के किनारे पैदा नही हुई है। उसका जन्म तथा पालन-पोषण भगीरथी नदी के किनारे के किसी गाँव मे हुआ होगा। युवती के गोरे चेहरे की लालिमा उसके मन की अन्तर्व्यथा के कारण कुछ फीकी पड गई थी, जैसे दोपहर की धूप मे गुलाब की पखुडियाँ आधी ताजी और आधी मुरझाई सी रहती है। उसके मुरझाए से छोट-छोटे ओठ इसके साक्षी थे कि उसके मन मे कोई व्यथा छिपी है। इस समय वह साफ धुली हुई साड़ी पहने थी। आभूषण के नाम पर केवल कलाइयो मे चूडियाँ और बाहो मे ताबीज था।

आगन्तुका के आने पर युवती कढाई बन्द कर बातचीत मे लग गई थी। आने वाली भी अपनी गृहस्थी की दु खगाथा सुना रही थी। यद्यपि ऐसी बातो के कहने-सुनने का कोई लाभ नही होता, लेकिन इस समय दोनो की ही आँखो मे आँसू उमड़ रहे थे। सभवत वे दोनो कुछ वेग से रोने की कोशिश कर ही रही थी कि अचानक उनकी आँखें बच्चे के स्याही से पुते चेहरे पर पड़ी और दोनो ही बरबस हँस पडी।

सध्या होती देख आगन्तुका ने युवती से घाट पर चल कर पानी भर लाने को कहा लेकिन युवती तैयार न हुई। लेकिन उसकी सखी उसका पीछा छोड़ने वाली न थी। अत मे युवती ने कहा, 'कनक दीदी, तुझे तो मालूम है कि मै कभी पानी भरने नही गई।'

कनक बोली, 'इसीलिए तो आज चलने को कह रही हूँ। तू क्यो इस तरह दिन रात पिजडे मे बद रहती है ? और सब घरो की बहू-बेटियाँ तो पानी भरने जाती ही है।'

युवती इस पर भी न मानी। बोली, 'इसमे झगडा करने की क्या जरूरत है ? तुम्हे मालूम है कि मेरे पति को मेरा घाट पर जाना पसन्द नही।'

कनक ने इसका कोई जवाब न देकर एक बार जल्दी से चारो ओर देखा। फिर यो सिर झुका कर बैठ गई जैसे कोई बात कहना चाहती हो।

युवती ने पूछा, 'क्या सोच रही हो, कनक दीदी ?'

कनक ने कहा, 'तेरे आँख होती तो •'

युवती ने झटपट इशारा कर के उसे आगे बोलने से रोक दिया और कहा, 'चुप, समझ गयी।'

कुछ देर वह चुपचाप गहरी चिन्ता मे डूबी बैठी रही। फिर बोली, 'चलो, लेकिन पाप तो न होगा ?'

कनक ने हँसते हुए कहा, 'मै कोई पडित नही, न ही मुझे पाप-पुण्य की खबर है। लेकिन अगर मेरे सौ पचास मर्द होते तब भी मै न डरती।'

'तू तो बडी हिम्मतवाली है।' कह कर हँसती हुई युवती उठी और कलसी लेने बढी। फिर बोली, 'सौ पचास ? क्यो री, क्या इतने मर्दों की तुझे साध है ?'

कनक ने हँस कर जवाब दिया, 'मुँह से कहने मे भला क्या बुराई है ? भगवान ने एक तो दिया है, अगर वैसे सौ-पचास ही होते तो फिर करोड़ होने मे भी क्या फर्क पड़ता है ? किसी से यदि मुलाकात ही न हुई हो तो करोड मर्दों की स्त्री होने पर भी मै सती-साध्वी, पतिव्रता ही हूँ।'

'सती का भाग्य।' कह कह युवती जल्दी से बढ कर रसोई घर से एक छोटी सी कलसी उठा लाई। जैसी पनिहारिन, ठीक वैसी ही कलसी। फिर दोनो सखियाँ नदी की ओर चल पडी। कनक ने हँसते हुए धीरे से कहा, 'अब चल न गाँव की गोरी ! मुँह बाए लोग खड़े होंगे, उन्हे जरा रूप की छटा तो दिखा दूँ।'

'मरे कलमुहे बन्दर !' कह कर कनक के साथ चलती हुई युवती ने लज्जा से घूँघट खीच कर अच्छी तरह मुँह ढंक लिया।

|२|

सूरज की किरणें पेड़-पौधो के ऊपर से तो गायब हो चुकी थी, लेकिन अभी तक धरती पर पूरी तरह अधेरा नही छाया था। इस समय कनक और उसकी युवती सखी पानी की कलसी लिए हुए घर लौट रही थी। रास्ते मे एक छोटा सा बाग पडता था—पूर्वी बङ्गाल मे वैसे बाग बहुत कम देखने को मिलते है। लोहे के सजे हुए कटघरे के बीच गुलाब और मल्लिका की बहुत सी कलियाँ और फूल आँखो को भले लग रहे थे। बाग के बीचोबीच एक पुष्करिणी थी। उसके चारो ओर हरी-हरी घास की मखमली

चादर बिछी थी। एक ओर पक्की सीढियाँ थी। घाट के सामने ही बैठकखाना था जिसके बरामदे मे दो आदमी खडे बाते कर रहे थे।

उन दोनो मे एक की अवस्था तीस के ऊपर थी। उसका डील-डौल लम्बा और शरीर भी मोटा था। मुटाये के कारण ही उसके शरीर की गठन सुडौल नही कही जा सकती। रग भी रूखा और काला था। चेहरे से वह किसी प्रकार भी भलामानुस नही कहा जा सकता। उसके चेहरे पर क्रोध और कठोरता की स्पष्ट झलक दिखती थी। उसके व्यक्तित्व मे कोई विशेषता थी, इसका कुछ भी अनुमान नही लगाया जा सकता। हाँ, वह ढाका की महीन, बढिया धोती पहने था और सिर पर ढाके की लम्बी चादर को इस प्रकार बल दे कर बाँधे था कि मानो उसने कोई पगडी पहन रखी हो। पगडी बँधी होने के कारण सिर के एक भी बाल दिखाई नही पडते थे। ढाके की महीन मलमल के कुरते के नीचे उसका स्थूलकाय, अधकारमय शरीर स्पष्ट दिखाई पड रहा था और बीच मे लटकता सोने का ताबीज भी चमक रहा था। गले मे झूलता मोटा सोने का हार ऐसा लग रहा था जेसे मदराचल पर्वत पर बासुकि नाग लिपटा हो। कुरते मे सोने के बटन और जजीर लगी थी। दसो उँगलियो मे अँगूठियाँ चमक रही थी और पावो मे अग्रेजी बूट-जूता था।

उसके साथ का दूसरा व्यक्ति अत्यन्त सुन्दर था। उम्र भी बीस-बाइस की होगी। उसका रग खूब गोरा और वर्ण स्निग्ध था, जो सभवत शारीरिक व्यायाम की कमी के कारण तनिक विवर्ण हो रहा था। वह भी धोती पहने था, पर वह अधिक कीमती न थी। कैम्ब्रिज की कमीज पहने था और गले मे चादर सुव्यवस्थित ढग से लिपटी थी। पैरो मे अग्रेजी जूते और एक उँगली मे अँगूठी थी। हार या तावीज जैसी और कोई चीज वह नही पहने था।

अधिक उम्र और फैशन वाले व्यक्ति ने कहा, 'माधव, तुम फिर कलकत्ता जाने की रट क्यो लगाए हो ? जानते हो, यह भी एक रोग ही है।'

माधव बोला, 'रोग कैसा ? मथुरा दादा, यदि कलकत्ता मेरे लिए रोग हे तो क्या इस राधागज के लिए तुम्हारा मोह भी रोग नही है ?'

मथुरा ने कहा, 'ऐसा क्यो ?'

माधव बोला, 'क्यो की बात नही। राधागज के आम के बागो की छाया मे तुमने जीवन बिताया हे, इसलिए तुम्हे उसके लिए मोह है। मैं कलकत्ता के दुर्गन्ध मे इतने दिनो रहा हूँ इसलिए मेरा उसी तरफ लगाव है। इसके सिवा कलकत्ते से मेरा क्या सरोकार ?'

मथुरा ने जवाब दिया, 'सरोकार तो मै खूब समझता हूँ। वहाँ है नया घोडा, नई गाडी, ठगो की दूकानो मे मारे-मारे फिरना, रुपये उडाना, बिलायती दोस्तो को शराब पिलाना और रस की लहरो मे बहना। अरे, इस तरह मुँह बाए उधर क्यो ताक

रहे हो ? क्या तुमने कनक को पहले कभी नही देखा ? लेकिन उसके साथ वह दूसरी कौन है ?'

माधव जैसे पकडा जा कर लजा गया, लेकिन अपनी लज्जा छिपाता हुआ बोला, 'कनक के भाग्य मे भी दुख ही दुख है, फिर भी बेचारी सदा हँसती ही रहती है।'

मथुरा ने जैसे उसकी बात सुनी ही न हो। वह तो कनक की साथिन के बारे मे ही जानने को उत्सुक था। माधव खुद भी उसे पहचान न पाया था क्योकि उसका पूरा चेहरा ही घूँघट से ढँका था। इसके अलावा वह खुद भी उसकी आकर्षक चाल और देह के लावण्य से मिल रहे मनोहर आभास पर मोहित हो रहा था। इसी समय हवा के एक तेज झोके के कारण युवती के चेहरे पर से घूँघट हट गया। उसका चेहरा देखते ही माधव सहसा चौक उठा। मथुरा भाँप गया, इशारा कर के बोला, 'लगता है तुम उसे जानते हो ? बताओ न, कौन है वह ?'

माधव ने कहा, 'मेरी साली।'

'क्या राजमोहन की स्त्री ?'

'हाँ, वही है।'

मथुरा को जैसे सदेह हो रहा था, बोला, 'राजमोहन की स्त्री ? इसे तो मैने कभी नही देखा।'

'कैसे देखते ? वह घर से भला कब निकलती है ?'

'फिर आज कैसे निकली?'

'पता नही।'

मथुरा ने घुमा-फिरा कर यह जानना चाहा कि उस स्त्री का चरित्र कैसा है। कुछ भद्दा इशारा भी किया।

इस पर माधव बिगड़ गया और बोला, 'भले आदमी की स्त्री रास्ते मे जा रही हो तो उसके बारे मे इतनी पूछ-ताछ करने का क्या मतलब है ?'

मथुरा ने व्यग्य से कहा, 'ठीक ही तो कहते हो ! अग्रेजी के दो अक्षर पढ कर सभी साहबजादे धर्मात्मा बन जाते है। अरे, साली की बात न करूँगा तो क्या दादी की जवानी का वर्णन करूँगा ? भाड मे जाय ! तुम भाई, अपना मुँह सीधा करो, नही तो अभी कौओ का झुण्ड पीछे लगा देता हूँ। राजमोहना ऐसे ही फूल का शहद खाता है !'

माधव ने कटुता से कहा, 'ब्याह को लाटरी कहा जाता है।'

फिर दोनो दो ओर चले गए।

| ३ |

सखी को साथ लिए कनक घर की ओर बढी। कनक की सखी स्वभाव से ही लजालु थी। मथुरा और माधव ने उसे रास्ते मे देख लिया है, यह सोच-सोचकर वह बहुत लज्जित हुई। थोडी दूर चुपचाप चलने के बाद वह बोली, 'कमबख्त इस हवा ने तो तग कर डाला।'

कनक ने हँस कर पूछा, 'क्यो, क्या तेरे बहनोई ने इसके पहले कभी तेरा मुँह नही देखा था ?'

'उनकी बात नहीं, उनके साथ वह जो दूसरा आदमी था।'

'अरी, वह तो मथुरा बाबू थे।'

'मेरे बहनोई के चचेरे भाई ?'

'हाँ, वही।'

'कितनी शर्म की बात है! दीदी, यह बात तुम किसी से मत कहना।'

कनक हँसने लगी। युवती को यह देख कर बहुत खीझ हुई। बोली, 'अगर मालूम होता तो तुम्हारे साथ कभी न आती।'

सुनकर कनक की हँसी और बढ गई।

अब तक युवती अपने घर के पास पहुँच गई थी। दरवाजे पर नजर पडते ही वह भय से काँप उठी। कनक ने सिर घुमा कर देखा कि युवती का पति राजमोहन दरवाजे पर ही खडा है। उसकी दोनो आखे क्रोध से अगार हो रही थी। कनक ने सखी के कान मे कहा, 'लगता है आज कुछ अनर्थ होगा। मै तेरे साथ घर चलूँ ?'

युवती ने रोकते हुए कहा, 'नही, नही, तुम रहोगी तो अनहित ही होगा। तुम अपने घर जाओ।'

कनक अपनी राह बढ गई। युवती जब तक घर के भीतर न घुस गई तब तक राजमोहन चुप रहा। भीतर जाकर युवती ने रसोई घर के सामने बने चबूतरे पर कलसी रखी। राजमोहन उसके पीछे-पीछे रसोई घर तक आया। बोला, 'जरा ठहरो।'

राजमोहन ने झपट कर कलसी का सारा पानी आँगन मे उडेल दिया। यह देख राजमोहन की बूढी बुआ 'हाँ-हाँ' करती हुई आकर उसे झिड़कने लगी।

'चुप रह हरामजादी!' कहते हुए राजमोहन ने कलसी उठा कर दूर फँक दी। फिर अपनी पत्नी की ओर घूम कर धीमे लेकिन कटु स्वर मे बोला, 'हाँ तो राजरानी कहाँ गई थी ?'

युवती ने बहुत मद पर दृढ शब्दो मे जवाब दिया, 'पानी लाने गई थी।'

पति ने उसे जहाँ पर ठहरने को कहा था वह वही पर मूर्ति-सी बनी खड़ी थी।

राजमोहन ने व्यग्य से कहा, 'पानी लाने गई थी महारानी जी ! पर किससे पूछ कर गई थी ?'

'किसी से भी नही ।'

राजमोहन का क्रोध बेकाबू हो रहा था उसने चीख कर कहा, 'किसी से पूछ कर नही गई ? क्या मै हजार बार तुझे मना नही कर चुका ?'

युवती ने पूर्ववत ही मद स्वर मे कहा, 'मना तो कर चुके हो ।'

राजमोहन चिल्लाया, 'फिर क्यो गई हरामजादी ?'

तिलमिला उठी वह ओर मर्माहत स्वर मे बोली, 'मै तुम्हारी पत्नी हूँ ।

कहते हुए युवती का चेहरा लाल हो गया और उसने भरे हुए गले से कहा, 'जाने मे कोई दोष न था, इसीलिए गई थी ।'

पत्नी द्वारा ऐसा उत्तर देने का साहस दिखाने पर राजमोहन आग बबूला हो गया और बिजली की तरह कडक कर बोला, 'मै तुम्हे हजार बार मना कर चुका हूँ या नही ?'

इतना कहते हुए बाघ की तरह उछलकर राजमोहन ने उस सती-साध्वी सी खडी हुई मूर्ति का एक हाथ पकड़ कर उसे मारने को अपना दूसरा हाथ उठाया ।

वह बेचारी युवती, भोली-भाली, कुछ समझ ही न सकी कि क्या हो गया । उसे मारने के लिए उठे हाथ की पहुँच से बाहर न जा कर वह वही मूर्ति की तरह स्थिर खड़ी रही । बस वह कातर दृष्टि से मारने के लिए उठे हाथ को ओर निहारती रही । और वह उठा हाथ भी मत्र-मुग्ध साँप की तरह उठा का उठा ही रह गया । पल भर मौन रह कर अचानक ही राजमोहन ने अपनी पत्नी का हाथ छोड दिया लेकिन साथ ही पहले की तरह गरज कर बोला, 'लातो से मार-मारकर तेरी जान ले लूँगा । तेरा खून कर दूँगा ।'

युवती ने कोई उत्तर न दिया । सिर्फ उसकी आँखो से आँसू की धाराएँ बह निकली । यह देख कर राजमोहन अपने आप ही नम्र हो गया । उसका हाथ तो रुक गया लेकिन जबान कटु बचन बोलने से न रुकी । फिर पत्नी की खामोशी देख कर राजमोहन अपने आप शात हो गया ।

राजमोहन को शात हुआ देख कर बुआ का साहस बढा । आगे बढ कर वह भतीज-बहू को पकड कर भीतर लिवा ले गई । साथ ही जाते-जाते दो एक कटु वचन बोलना न भूली । बुआ ने जब देखा कि राजमोहन का क्रोध पूरी तरह ठण्डा हो गया है तब उसने राजमोहन द्वारा कहे गए एक-एक कटु बचन का उत्तर देना शुरू किया । राज-मोहन स्वय अपने आप भुनभुना रहा था । उसने बुआ की बातो पर ध्यान न दिया । अत मे बुआ और भतीजा दोनो ही दो ओर चले गए । बुआ बहू को धीरज बँधाने लगी

और राजमोहन मन ही मन योजना बनाने लगा कि किस तरह नुकसान पहुँचाया जाय।

|४|

बगाल के अनेक सुप्रसिद्ध जमीदार वशो की उत्पत्ति किसी न किसी नीच कुल से हुई है। यह बात निन्दाजनक होने के साथ ही सत्य भी है।

पूर्वी बगाल के एक वृद्ध जमीदार का खानसामा था बशीवदन घोष। इस जमीदार का नाम और वश, दोनो ही अब तक मिट चुके है। पहला ब्याह असफल होने पर जमीदार ने वृद्धावस्था मे दूसरा ब्याह किया। लेकिन सतान का मुँह देखना उनके भाग्य मे न था। सतान-सुख के बाद दूसरी चीज जिसकी वे इच्छा रखते थे और जो भाग्य ने उन्हे दी, वह थी उनकी नौजवान सुन्दर पत्नी। इसमे शक नही कि दो दो पत्नियो के पारस्परिक कलह से उनकी पारिवारिक शाति मे बाधा अवश्य आती थी। कारण भी स्पष्ट थे। बडी उम्र वाली पहली स्त्री हमेशा यही दावा करती थी कि जो इस घर मे पहले आयी है उसी का अधिकार प्रथम है। वृद्ध जमीदार कुछ भी निर्णय न कर पाये जिससे हालत और बिगड गई। परन्तु इस बीच एक मध्यस्थ ने आकर जो फैसला करा दिया, उसके बाद किसी के लिए भी कुछ कहने को न बचा। पहली पत्नी के दावे को ज्यो का त्यो स्वीकार करके उसे इस लोक से ही हटा दिया। इससे वृद्ध पति तथा तरुणी पत्नी निश्चिन्त तो हुए परन्तु इस घटना ने उन्हे सावधान कर दिया। वृद्ध को मन ही मन यह अनुभव हो गया कि अब उसकी भी पुकार होने मे अधिक देरी नही है। सतान का मुँह देखने की आशा सदा के लिए जाती रही। यह सोच कर वृद्ध का मन निराश हो गया कि अब उसके धन का भोग वे लोग करेगे जिन्हे वह जानता भी नही। पत्नी जब तक जीवित रहेगी तब तब सम्पति तो उसके हाथ रहेगी लेकिन सरकार उसे भत्ते के रूप मे खाने पहनने के लिए जो देगी, इससे अधिक उसे कुछ न मिलेगा। इस प्रकार वृद्ध पति केवल इसी चिन्ता मे व्यस्त रहता कि उसकी युवती पत्नी किसी प्रकार उसकी सम्पति की पूर्णरूप से स्वामिनी हो जाय। इसीलिए अब उसने अपनी पत्नी के कहे अनुसार ही चलना शुरू किया। पत्नी की भी इस विषय मे बहुत स्पष्ट और दृढ धारणा होने के कारण वह भी अपने स्वामी के द्वारा अपने भविष्य को निष्कटक बनाने लगी। मकान, जमीन, बाग आदि अचल सम्पति को नगदी मे बदलने की ओर वृद्ध ने ध्यान दिया। जमीदारी को भी जहाँ तक सम्भव हो सका, नगद रुपयो और जेवरो मे बदला जाने लगा। नगदी के सम्बन्ध मे तो वृद्ध की लालच यहाँ तक बढ गई थी कि जिस दिन

उसने इस दुनिया से कूच किया उसकी विशाल धन-राशि मे उसकी जमीन एक बहुत साधारण सा हिस्सा मात्र रह गई थी।

वृद्ध पति के देहान्त के बाद उसकी युवती पत्नी करुणामयी ने जिसे अपने बुद्धिमती होने के सम्बन्ध मे तनिक भी सन्देह न था, निश्चय किया कि दुनिया की दो दुर्लभ वस्तुएँ—रूप और रुपया—जिनकी वह अधिकारिणी है, उनकी सदगति करनी चाहिए। उसने अपने मन को समझाया कि भगवान रामचन्द्र जी ने भी तो सीता के विरह मे कातर होकर उनकी सोने की मूर्ति बनवा कर अपने मन को सात्वना दी थी, इसलिए उसका प्रिय गृहस्वामी जो अब इस ससार मे नही है और जिसके विरह मे वह व्याकुल है, उसकी स्वर्णमूर्ति को उसका प्रतिनिधि न बनाकर यदि किसी जीते-जागते मनुष्य को उसके स्थान पर विराजित किया जाय तो इस पद्धति की उन्नति ही होगी।

इस प्रकार के तर्कों से अपने मन को दृढ करके मृत पति के प्रति अपार श्रद्धा और देवताओ के आदश से प्रेरित हो कर उसने अपने स्वामी का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सजीव प्रतिनिधि चुन लिया। बाबू का खानसामा बशीवदन घोष ही भाग्यवान था। उसके ही मस्तक पर यह मोरमुकुट सुशोभित हुआ। होशियार बशीवदन यह अवसर भला कैसे चूकता ? प्रभु-पत्नी के देह साम्राज्य का स्वामी बनने के साथ-साथ उसकी समस्त सम्पति का भी स्वामित्व न प्राप्त हो, यह बात वह सोच ही नही सकता था। और हुआ भी यही, सम्पति का मालिक होने के साथ ही नगदी जमा पर अधिकार करने मे उसे कुछ भी परिश्रम नही करना पडा। वह अपने आप ही खानसामा से सदर नायब के पद पर पहुँच गया।

इस बीच किसी अज्ञात अथवा अस्पष्ट कारण से करुणामयी को भीतरी बुखार हमेशा रहने लगा। यही बुखार शीघ्र ही बढ़कर इतना भयानक रूप धारण कर बैठा कि उस चचल विधवा के मन की आग शात होने के बहुत पहले ही उसे इस लोक से उठ जाना पड़ा। इस घटना के बाद विधवा के मृत स्वामी के दूर दूर के नाते के रिश्तेदार एक-एक करके धन पाने की लालच मे वहाँ आ जुटे, लेकिन दो एक मामूली व दरिद्र गाँवो की सम्पति देख कर उन्हे निराश ही होना पडा। नगदी व सामान भी बहुत कम ही था जो उनके आने के पहले ही स्वामी के नौकरो मे बाँटा जा चुका था।

अपने अधिकार की अतुल सम्पति लेकर बशीवदन अपने गरीब पुरखो के गाँव राधागंज मे आ बसा। अपनी बुद्धिमत्ता के कारण उसने आराम से गुजर-बसर करने भर ही खर्च किया ताकि किसी और को उस पर शक न हो। उसके मरने के बाद उसके तीन पुत्रो ने पूरी सम्पत्ति को आपस मे बराबर-बराबर बाँट लिया। अब तक सम्पति को उनके पास आए बहुत समय बीत चुका था इसलिए किसी को भी शक करने की गुआइश न थी, इसलिए पुत्रो के लिए बाप की तरह साधारण जीवन बिताना कठिन हो गया। उन्होने ठाट-बाट से रहना शुरू किया। जमीदारी खरीदी, हवेलियाँ बनवाईं और सम्पत्ति के हिसाब से अमीरी के सभी आडम्बर बढ़ा लिए।

बड़े बेटे रमाकान्त ने सादे ढग से जीवन बिताते हुए अपनी सम्पत्ति को और भी बढाया। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र मथुरा उसकी अतुल सम्पत्ति का अधिकारी बना। रमाकान्त के विचार जमाने की बदलती हुई रीति-नीति से मेल न खाते थे, वह अपने पुत्र को अग्रेजी स्कूल मे शिक्षा दिलाने के पक्ष मे न था। बचपन से ही मथुरा जमीदारी के काम मे अपने पिता का हाथ बॅटाता था। इसलिए जाल, फरेब, धोखेबाजी और जुआखोरी मे वह निपुण हो चुका था।

बशीवदन का दूसरा पुत्र रामकन्हाई स्वभाव से ही आलसी और फिजूलखर्ची करने वाला था। इसलिए बहुत जल्दी ही सम्पत्ति सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो गई। उसका घर और बाग सबसे अधिक शानदार थे, लेकिन अचल-सम्पत्ति की आय नही के बराबर थी। सम्पत्ति की ऐसी बुरी दशा किसी दूसरे भाई के यहाँ न थी। इस बीच कुछ धूर्त मुसाहिब भी आ जुटे थे। बुरी स्थिति मे भी उन चालबाज मुसाहिबो ने एक फर्जी रोजगार मे उनका काफी पैसा लगवा दिया। आलसी रामकन्हाई भी उन्ही विश्वासपात्र मुसाहिबो के हाथो रोजगार सौप कर स्वय कलकत्ता चला गया और वही रहने लगा। व्यवस्था ठीक न रहने तथा लापरवाही के कारण धीरे-धीरे समस्त अचल सम्पत्ति नीलाम हो गई।

रामकन्हाई के शहर मे रहने का केवल एक लाभ हुआ कि दूसरो की देखा-देखी उसने भी अपने बेटे को उच्च-शिक्षा दिलवाई। इसके बाद एक हिन्दू पिता की सबसे बड़ी कामना भी पूर्ण हो गई। उसने एक सुन्दर कन्या के साथ पुत्र का विवाह कर दिया।

कलकत्ता के निकट के एक गाँव का एक कायस्थ सदा यह गर्वोक्ति किया करता था कि ईश्वर ने उसे जिस अतुल सम्पत्ति का स्वामी बनाया है उसकी कोई तुलना नही है—रूप, गुण, कर्तव्य तथा स्वभाव मे उसकी दोनो कन्याये बेजोड है। लेकिन जो भाग्य-देवता कोमल हृदय वाली, हिन्दू घर की परम-सुन्दरी और अतिकोमल हृदय वाली बालिकाओ का अयोग्य लडको के साथ गठबन्धन कर दिया करते है, उन्होंने ही उस कायस्थ की बडी बेटी मातंगिनी का विवाह जबरदस्ती राजमोहन से करा दिया। ब्याह के बाद भी मातंगिनी के माँ-बाप को विश्वास था कि उनकी लडकी के योग्य वर नही मिला। तब लडकी एक अबोध बालिका थी और वर पूरा जवान था लेकिन यह आयु-विषमता भी विवाह मे रुकावट न बन सकी। मातगिनी के पिता ने भी इस पर ध्यान नही दिया। राजमोहन अधिक सुन्दर भी न था। उस जमाने मे कम आयु वाले वर की सुन्दरता को तो परखा जाता था लेकिन जवान वर के चेहरे की ओर अधिक ध्यान नही दिया जाता था। वर पास के ही गाँव मे रहता था। उस विवाह को करने का एक यह भी कारण था कि लडकी माँ-बाप से बहुत दूर नही चली जाएगी। राजमोहन को जानने वाले लोग उसके बलवान शरीर तथा उसकी शारीरिक शक्ति से ईर्ष्या करते या प्रशसा की दृष्टि से देखते। वह स्वभाव से ही मेहनती और किसी भी काम को करने मे पीछे हटने वाला न था। यही कारण था कि बाप द्वारा सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी न छोड़े जाने पर भी

उसे कभी किसी चीज की कमी अनुभव न हुई। राजमोहन के इसी गुण के कारण मातगिनी के पिता को यह भरोसा था कि उसकी बेटी को कभी किसी प्रकार का कष्ट न होगा। इसीलिए उसने दामाद के रूप मे राजमोहन को चुना था। उसकी दूसरी भाग्यवती कन्या हेमागिनी का विवाह माधव के साथ हुआ था।

माधव का पिता कालेज की पढाई शुरू होने के पहले ही इस ससार से चल बसा था। पिता के देहान्त के बाद उसके पास फूटी कौडी भी न थी। लेकिन इस बीच एक ऐसी घटना घटी जिसने उसे दुर्दशा से बचा लिया।

बशीवदन का तीसरा पुत्र रामगोपाल न तो अपने बडे भाई की तरह भाग्यवान था, न ही मंझले भाई की तरह अभागा। वह नि सन्तान ही इस ससार से चला गया और जाते समय अपने भतीजे माधव को अपनी समस्त सम्पत्ति इस शर्त पर दे गया कि जितने दिन उसकी विधवा पत्नी जिन्दा रहे, माधव उसका भरण-पोषण करे।

इधर माधव शिक्षा पूरी होने तक पढने-लिखने मे ही व्यस्त रहा और सम्पत्ति की देखभाल उसके बालिग होने तक उसके कर्मचारी करते रहे। बर्ष पूरा होने से पहले ही वह अपनी सुन्दरी पत्नी को साथ लेकर, शहर छोड गाँव जाने की तैयारी करने लगा और अपनी पत्नी हेमागिनी को उसके मायके भेंट कराने को लिवा ले गया। हेमागिनी को उसकी बडी वहन मातगिनी बहुत प्यार करती थी। सौभाग्य से इस समय मातगिनी भी मायके मे ही थी।

माधव अधिक दिनो ससुराल मे रहना न चाहता था। उधर बहुत लम्बे अरसे के लिए अपने माता-पिता से दूर जाने के कारण हेमागिनी अक्सर खूब रोया करती थी। उसे डर था कि एक बार दूर जाने के बाद शायद वह लौट कर न आ सके। मायके से उससे भेंट करने क्या कभी कोई इतनी दूर जाएगा ? पिता तो कहते है कि मिलने आ जाएँगे लेकिन माँ तथा बड़ी बहन तो न आ सकेंगी। वे दोनो भी चुपचाप रोती और आर्शीवाद देती।

एक दिन बहन का हाथ पकड कर उसे एक ओर ले जाकर मातंगिनी ने कहा, 'हेम, तुमसे एक बात कहूँ तो क्या करोगी ?'

कुछ उत्तर न देकर हेमागिनी ने अपनी बडी-बडी काली पुतलियो वाली आँखो से दीदी की ओर ताका। मातगिनी ने फिर कहा, 'हेम, कल हमलोग एक-दूसरे से अलग हो जाएँगी, है न ?'

हेमागिनी अब अपनी रुलाई न रोक सकी और उसकी आँखो से बरबस ही झर-झर आँसू बहने लगे। मातंगिनी ने अपने को सम्हाल कर कहा, 'रो मत बहन, भगवान तुझे सुखी रखें। तुझे भगवान ने माधव जैसा सुशील और सुशिक्षित पति दिया है। तुझे कभी कोई अभाव न खटकेगा।'

इतना कहते-कहते मातंगिनी भी अपने पर काबू न रख पायी और उसकी आँखो के आँसू हेमागिनी के हाथ पर टपक पड़े।

आँसू पोछ कर हेमागिनी ने पूछा, 'दीदी तुम मुझसे क्या कहना चाहती थी ?'

मातगिनी ने कहा, 'हेम, तुझे तो मालूम ही है कि मै कितनी गरीब हूँ। इतनी गरीबी म भी यदि अपने लिए होता तो तुझसे कभी कुछ न कहती। और मेरे स्वामी चाहे जैसे भी हो, बहन, भगवान ने उन्हे ऐसा ही बनाया है, ऐसा ही स्वभाव दिया है, तो भी मेरे सब कुछ वही है। उन्ही के लिए मुझे सोचना पडता हे। वे इस समय घर मे बेकार बैठे है। माधव से अपनी ओर से क्या तुम कह सकोगी ?'

हेमागिनी ने कहा, 'कह क्यो न सकूँगी, दीदी। बताओ तो, क्या कहना हे ?'

'कहना कि अगर वह तेरे बहनोई को एक नौकरी दिलवा सके तो घर-गृहस्थी का काम चल जायेगा।'

'जरूर कहूँगी दीदी।'

हेमागिनी ने बचन दिए। फिर दोनो बहने इधर-उधर की बातें करने लगी। लेकिन हेम लगातार यही सोचती रही कि वह अपनी बहन को दिए गए वचन को किस प्रकार निभा सकेगी। उसकी उम्र अभी इतनी कम थी कि इस उम्र म लडकियाँ अपने पति से खुलकर बाते भी नही कर सकती थी। फिर ऐसे विषय पर तो बिल्कुल भी नही। तो भी मन को पक्का करके उसने बहन को दिए बचन की बात अपने पति से कह ही दी। माधव ने भी नौकरी दिलाने का पूरा प्रयत्न करने का निश्चय किया।

राजमोहन ने अपने गवारू स्वाभाविक सकोच के कारण माधव से स्वय बात न करके दूसरो का सहारा लिया। लेकिन माधव ने उससे खुद ही बाते करने का निश्चय किया। एक दिन माधव ने बडे ही विनीत भाव से राजमोहन से उसकी वर्तमान स्थिति तथा काम-काज के सम्बन्ध मे पूछा। पर राजमोहन ने अधे गर्व और झूठे सकोच के कारण अपनी नाजुक आर्थिक स्थिति को अस्वीकारते हुए केवल इतना ही कहा कि उसे काम की जरूरत है। तब माधव ने उससे कहा कि जमीदारी की देखभाल के लिए उसे एक आत्मीय की सहायता की आवश्यकता है। यदि राधागज जाने मे उसे कोई आपत्ति न हो तो उस काम के लिए वह प्रार्थना करे।

राजमोहन ने कहा, 'ऐसा होना मुश्किल है। घर की स्त्रियो को ऐसे मै कहाँ रखूँगा ?'

माधव ने कहा, 'क्या इस बात को सोचे बिना ही मै तुम्हे यह काम सौप रहा हूँ ? राधागंज मे तुम्हे रहने के लिए अलग एक मकान भी दूँगा।'

राजमोहन ने अपने से छोटे साढू की ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देखा और कहा, 'राधागंज मे जाकर रहने से तो जेल मे सडकर मर जाना ज्यादा अच्छा हे।'

इतना कहकर वह क्रोध मे बडबडाता हुआ चला गया। राजमोहन को इस प्रकार बिना कारण क्रोधित होते देख माधव को हैरानी तो हुई पर वह कुछ बोला नही।

इधर राजमोहन के पास भी दूसरा रास्ता न था। उसकी स्त्री भी एक अन्य अज्ञात कारण से जगह बदलना चाहती थी। लेकिन राधागज जाकर रहने की बात

राजमोहन ने कभी सोची न थी। उसने बेकारी व गरीबी की आड ले कर नौकरी की बात अवश्य करवाई थी लेकिन मात्र गरीबी ही इसके पीछे मूल-कारण न थी। राजमोहन ने ऐसा भाव प्रकट किया जैसे वह माधव के प्रस्ताव से नाराज हुआ है। चादर लेकर वह घर से निकल पडा और घटो गुजर जाने पर भी घर वापस न लौटा। लेकिन बहुत देर बाद जब लौट कर आया तो भी उसके चेहरे पर क्रोध के चिन्ह मौजूद थे। उसने सपरिवार राधागज जाने का ही निश्चय किया लेकिन अपना विचार वह स्पष्ट शब्दो मे माधव से न कह सका। फिर भी उसे जाने की तैयारी मे सुविधा देने के इरादे से माधव कुछ दिन और ठहर गया। तैयारी हो जाने पर सब लोग एक साथ राधागज गए।

राजमोहन का व्यवहार चाहे जितना भी कठोर और अभद्र क्यो न रहा हो लेकिन माधव उसके साथ बहुत ही शिष्ट व्यवहार करता था। साढू का अभद्र और उजड्ड व्यवहार देख कर भी मातगिनी के कारण और उसके दुर्भाग्य के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए माधव ने राजमोहन को देखभाल के लिए केवल एक ही गाँव का जिम्मा दिया लेकिन वेतन के रूप मे एक अच्छी रकम का प्रबन्ध कर दिया। राजमोहन के लिए वहाँ एक मकान भी बन गया। माधव ने जन-मजूरो की सहायता से खेती करने के लिए कुछ जमीन भी राजमोहन को दे दी। राजमोहन भी इन्ही कामो मे उलझा रह कर अपना समय बिताने लगा। जमीदारी का काम वह समझ नही पाता था।

इतना कुछ करने के बाद भी माधव राजमोहन का मन न जीत सका। जब से वह राधागज आया है तभी से राजमोहन अपने व्यवहारो से उसे तग किए रहता था। इसीलिए उन दोनो के बीच सम्पर्क भी साधारण ही था। यद्यपि सब कुछ जानने समझने के बाद भी माधव ऊपर से कुछ प्रकट न करता था पर दोनो ओर के पारस्परिक मनोभाव का यह फल हुआ कि आपस मे अत्यधिक स्नेह रखने वाली दोनो बहनो का मिलना-जुलना कम हो गया।

|५|

अपने बडे चाचा के पुत्र से बिदा लेकर माधव जब बाग से लौटा तो उसने एक आदमी को प्रतीक्षा करते हुए देखा। उसने माधव को एक पत्र दिया जिस पर ऊपर ही लिखा था—जरूरी। माधव जल्दी से पत्र खोल कर पढने लगा। जिले के सदर से उसी के वकील ने पत्र भेजा था। पत्र मे लिखा था—

'महाशय,

यह आधीन सदर मे विशेष यत्नपूर्वक आपके मुकदमे की पैरवी मे लगा है। सभी मुकदमो मे आप की ही जीत होने की आशा है ''१'

बीच मे ही रुक कर माधव सोचने लगा—सभी में—यह तो वकील ही कह सकता है। लेकिन मेरा कोई भी मुकदमा झूठा नही है। क्या अदालत मे सदा न्याय ही होता है? अत वकील के इस कथन मे थोडा सा बाद देकर ही मानना पडेगा। कुछ भी हो, यह तो मानना ही पडेगा कि वकील काम का आदमी जरूर है। मुकदमा ढग से लडता है। काश कि मुकदमे का यह झझट-हगामा समाप्त हो जाता, लेकिन अडोस-पडोस के लोग भी क्या लडना छोड देगे?

माधव ने आगे पत्र पढना शुरू किया—

'बहुत दु ख के साथ आप को यह सूचित करना पड रहा है कि आपकी चाची ने मुख्तार के मारफत सदर-अमीन की अदालत मे इस आशय का एक मुकदमा दायर किया है कि उनके स्वामी का वसीयतनामा जाली है और वह वासिलात के साथ अपनी जायदाद वापस पाने का दावा करती है। ...'

माधव पढना बद करके फिर सोचने लगा—चाची जी! हाय भगवान! दुखी हो रहे माधव के हाथ मे चिट्ठी गिर पडी। झुक कर उठाया और सोचने लगा—मेरी सब सम्पति लौटा लेना चाहती हे? मैने जाल किया है? उस बेईमान को लात मारकर मै घर से निकाल दूँगा।

माधव चिन्ता मे डूबा कुछ क्षण खडा सोचता रहा फिर पत्र आगे पढ़ने लगा—

'उन्हे ऐसा करने की राय किसने दी यह तो स्पष्ट रूप से मुझे मालूम नही हो सका। यद्यपि इसका पता लगाने मे मैने कोई कोर कसर नही छोडी। यह निश्चित है कि इस योजना के पीछे निश्चय ही कोई है, जिसने यह करने की उन्हे सलाह दी है। यो मुझे एक आदमी का नाम भी सुनने मे आया है। यो इसके पीछे सभी बड़े-बडे आदमियो का हाथ है।'

माधव फिर सोचने लगा—ऐसी सलाह देने वाले कौन हो सकते है? सर्वप्रथम पडोस के एक जमीदार की ओर ध्यान गया। फिर एक और आदमी के बारे मे ख्याल आया। लेकिन उनमे से किसी के द्वारा यह काम होना सम्भव न जान पडा। माधव फिर पढने लगा—

'लेकिन आपको चिन्ता करने की जरूरत नही है। मै जानता हूँ कि वसीयत नामा जाली नही है और यह भी सच है कि धर्म के पक्ष की ही सदा विजय होती है। लेकिन फिर भी सावधान तो रहना ही है। जज-कोर्ट के बाबू और वकील को वकालत नामा देना होगा। जरूरत होने से अदालत से भी एक आदमी को खडा करना पडेगा। दोनो पक्षो के जवाब-सवाल के दिन और बहस के दिन सुप्रीम-कोर्ट के एक बैरिस्टर को रख लिया जाय तो अच्छा होगा। यो सेवक मे जितनी क्षमता है, इसका प्रयोग जरूर

होगा। मै तो जी जान से मुकदमें की पैरवी करूँगा हो। लेकिन हुजूर की अनुमति की प्रतीक्षा मे हूँ।

सेवकाधम
श्री गोकुलचन्द्रदास

पुनश्च—जरूरी खर्चों के लिए एक हजार रुपया चाहिए।'

पत्र पढते हुए पहले तो माधव ने सोचा कि एक बार वह चाची के पास जाकर उनके इस अद्भुत व्यवहार के लिए उनसे जवाब तलब करे। यही सोच कर वह घर के भीतर गया लेकिन वहाँ स्त्रियो और बच्चो का शोरगुल देखकर उसका हौसला ठण्डा पड गया। एक काली-कलूटी, गोल-मटोल दासी गृहस्ती की किसी छोटी सी चीज की कमी के कारण गला फाड कर चिल्ला रही थी। एक दूसरी दासी भी जो मोटापे मे पहली से कम न थी अपने भारी-भरकम शरीर को ठीक प्रकार से प्रदर्शित करने मे विशेष गर्व का अनुभव कर रही थी। झाड़ू हाथ मे लेकर वह फर्श पर इधर-उधर बिखरे सब्जी के छिलको को इकट्ठा कर रही थी। जिसने सब्जी छीली थी उसे ही इगित करके वह अनाप-शनाप बक रही थी। तीसरी दासी आँगन के एक कोने मे बैठी पीतल के बर्तन साफ कर रही थी। उसकी जीभ से खाना पकाने वाली के लिए तीखे बाण छूट रहे थे। क्योकि खाना पकाने मे उसने बर्तनो पर ज्यादा कालिख जमा दी थी।

रसोई बनाने वाली दासी इस समय घर की मालकिन के साथ रात की रसोई मे कितना घी लगेगा, इसी बात को लेकर बहस कर रही थी। यही देख कर बर्तन साफ करने वाली उसको लोक परलोक की गालियाँ दे रही थी और रसोई बनाने वाली दासी जरूरत से ज्यादा घी लेने की कोशिश कर रही थी, क्योकि चुपके से थोडा घी बचाए बिना उसका काम कैसे चलेगा और उसका शरीर कैसे ठीक रहेगा ?

एक अन्य कोने मे रात के खाने की व्यवस्था बहुत ही आकर्षक बन रही थी। एक दासी बरामदे मे इधर-उधर मिट्टी के दिए जलाने मे भाग दौड कर रही थी। दो नग-धड़ग बच्चे आपस मे लड़ते हुए एक-दूसरे के बाल नोचने का प्रयत्न करते हुए अपनी अपनी वीरता दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे। छत पर बैठी कुछ लडकियाँ खेल मे व्यस्त थी।

माधव क्षण भर खडा सोचता रहा कि उस भयानक शोर के बीच उसकी बात कौन सुनेगा ? फिर थोडा रुक कर यथासम्भव ऊँचे गले से वह बोला, 'अब अगर तुम लोग चुप हो जाओ तो एक बात कहूँ।'

उसकी ऊँची आवाज सुनकर सभी, जो जहाँ था चुप हो गया। सभी दासियो ने अपना राग अलापना तत्काल स्थगित कर दिया। रसोई वाली बिना अधिक घी लिए

ही घी का बर्तन लेकर चली गई। केवल घर की मालकिन ही शान्त भाव से आकर माधव के सामने खडी हो गई।

माधव ने पूछा, 'मौसी, क्या मामला है ? घर मे यह कैसा बाजार लगा है ?'

मौसी ने सहज ढग से कहा, 'चार औरतो के एक जगह जुटने से जो होता है वही तो हो रहा है। चिल्लाना ही तो उनका स्वभाव है, बेटा।'

माधव ने पूछा, 'चाची जी कहाँ है, मौसी ?'

'मैने भी उन्हे सबेरे से नही देखा।'

'सबेरे से नही देखा ?' माधव को आश्चर्य हुआ, बोला, 'तब तो लगता है कि बात सच है।'

'क्या सच है भैया ?' मौसी ने जानना चाहा।

'कोई खास बात नही, फिर बताऊँगा। जरा पूछ कर देखिए, किसी ने उन्हे देखा तो नही ?'

मछली और बर्तनो मे उलझ रही दो दासियो को पुकार कर मौसी ने कहा, 'अंबिका, श्रीमति, तुमने क्या उन्हे देखा है ?'

दोनो ने एक साथ ही कहा, 'नही।'

'आश्चर्य है ! कहाँ गई ?' मौसी ने भी चिन्ता प्रकट की, फिर एक साथ सबो को संबोधित कर के पूछा, 'किसी ने उन्हे देखा है ?'

दीवाल के पास से किसी ने बताया, 'नहाने के समय उन्हे 'बडी तरफ' देखा है।'

मौसी ने आश्चर्य से पूछा, 'बडी तरफ ?'

माधव भी शंकित हो पूछ बैठा, 'बडी तरफ, मथुरा दादा के घर ?'

अब माधव जैसे एकाएक सारा मामला समझ गया। बडबडाते हुए उसने कहा, 'तो क्या मथुरा दादा ही यह सब करवा रहे है ? नही, नही ! यह नही हो सकता। उन पर सन्देह करना गलत है।'

क्षण भर चुप रह कर वहाँ उपस्थित स्त्रियो मे से एक को संबोधित करते हुए ऊँची आवाज मे माधव ने कहा, 'जा कर देखो, अगर वहाँ चाची जी हो तो उन्हे अभी यहाँ आने के लिए कहना और अगर न आना चाहे तो उसका कारण पूछ कर आओ।'

| ६ |

उस दिन पति द्वारा कठोरतापूर्वक लाछित होने के बाद मातगिनी बाहर नही निकली। दरवाजे बन्द किए अपनी ही यत्रणा मे बेसुध पडी रही। वृद्धा ने ठीक समय पर रात का भोजन तैयार किया लेकिन उसका और ननद का सब समझाना-बुझाना बेकार गया। मातगिनी न तो बाहर निकली न खाना खाया। इसी दुख के कारण मातगिनी की फुफुआ-सास और ननद ने भी भोजन न किया।

खाट पर अकेली पडी मातगिनी सोच रही थी—क्या उसे जीवन भर इसी तरह दुख उठाना पडेगा ? वह जानती थी कि उसका स्वामी आज रात उसके पास नही आएगा। उससे नाराज होने पर ऐसा करना ही उसका स्वभाव था। मातगिनी को इससे थोडी प्रसन्नता भी थी कि अकेली रहेगी तो वह शाँतिपूर्वक अपनी स्थिति की चिन्ता कर सकेगी और अपनी दशा पर बिना किसी उपद्रव के विचार कर सकेगी।

अधेरा होने के बाद धीरे-धीरे सभी सो गए और बाहर गहरी नीरवता छा गई। मातगिनी के कमरे मे दिया न जलने से पूरा अधेरा था। एक छोटी सी खिडकी से चंद्रमा का मात्र थोडा सा प्रकाश भीतर आ रहा था। तकिए पर सिर रखे मातगिनी लेटी थी। गर्मी के कारण उसने छाती पर से आँचल हटा दिया था। चाँद की किरणो को देखती हुई वह बचपन की यादो मे खो गई थी। उसकी स्मृति मे बचपन के दृश्य चलचित्र की भाँति घूम रहे थे। स्वच्छ निर्मल आकाश के नीचे अपनी छोटी बहन के साथ वह शैशव-काल मे खेला करती थी। दादी से मन को भाने वाली कहानियाँ सुना करती। लेकिन विवाह के बाद इन आठ वर्षों मे कितना परिवर्तन आ गया ! उन दिनो जिन चेहरों को वह प्यार करती थी और जिनकी स्मृति को वह मन मे सजो कर रखती थी, वह सब जाने कहाँ खो गए। उन सबो की हँसी और स्नेह वचन सुनने को अब कहाँ मिलेगे ? उन बीती बातो को वह जितना ही भूलना चाहती थी, वे उतना ही याद आती थीं। सोचते-सोचते उसे याद आया कि यहाँ भी तो उसके पास एक वैसा ही स्नेहमय प्राणी है। कनक छल-चतुराई-हीन एक सरल स्त्री है। केवल उससे ही अपने मन की गोपनीय बातें कह कर मातंगिनी अपने मन को हल्का कर लेती है। यही सब सोचती हुई वह रो रही थी और सोच रही थी कि इस दारुण यत्रणा से उसे कैसे छुट्टी मिलेगी ?

गरमी की वह प्रचण्ड रात उससे सही नही जा रही थी। अत: वह खिडकी खोलने को उठी। लेकिन खिडकी खोलते-खोलते वह रुक गई। उसे महसूस हुआ कि बाहर कोई दबे पाँवो चल रहा है। जिस खिडकी के पास वह खडी थी ठीक उसके पास ही यह आवाज हो रही थी। कच्चे घरो मे जैसी खिड़कियाँ होती है वैसी ही यह भी

थी। तीन फुट लम्बी, दो फिट चौडी और जमीन से भी दो ही फिट ऊँची।

मातगिनी ठमक कर खडी रह गई और खिडकी की संध से बाहर देखने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन चन्द्रमा की रोशनी मे दूर तक स्वच्छ आकाश और पेडो के सिवा कुछ न दिखा।

पैरो की आवाज जहाँ से आ रही थी, वहाँ पगडण्डी न थी, न ही वह किसी राहगीर के चलने की आवाज थी। मातगिनी डर गई। पत्थर की मूर्ति की तरह खडी वह कान उठा कर उसी आवाज को सुनने की कोशिश करने लगी। मातगिनी ने सुना, दो आदमी आपस मे फुस-फुस बातें कर रहे थे। उन दो व्यक्तियो मे एक आवाज उसके पति की लगी। पति की आवाज पहचान कर उसका कौतूहल बढ गया। उसी की आवाज ज्यादा ऊँची थी। उन दोनो और मातंगिनी के बीच केवल एक मिट्टी की दीवाल थी। इसीलिए चाहे सब बाते उसे स्पष्ट न भी सुनाई दे रही थी फिर भी उनकी बातो का मतलब तो समझ मे आ ही रहा था।

उन लोगो मे से एक ने कहा, 'इतनी जोर से क्यो बोलते हो ? तुम्हारे घर के लोग सुन लेंगे।'

मातगिनी ने राजमोहन की आवाज पहचान ली, वह कह रहा था, 'इतनी रात हुई, सब सो रहे है, जागता कोई भी नहीं।'

दूसरी आवाज—'ठीक हे, पर दीवाल से थोडा हट कर बातें करने मे क्या हर्ज है, अगर कोई जागता भी होगा तो सुन न सकेगा।'

राजमोहन—'नही, यही ठीक है। अगर कोई जागता भी हो, तब भी यही जगह सुरक्षित है। दीवाल व छप्पर की आड होने के कारण कोई देख नही सकता। खिडकी के छेद से भी यहाँ नही देखा जा सकता। अगर कोई घर से निकल भी आवे तो भी यहाँ हमे देख न सकेगा।'

दूसरी आवाज—'अच्छा, इस कोठे मे कौन रहता है ?'

राजमोहन—'इससे तुम्हे क्या मतलब !' लेकिन तत्काल सम्हल कर बोला, 'तुमसे कहने मे कुछ हर्ज नही। यह मेरे सोने की कोठरी है। मेरी पत्नी के सिवा इसमे और कोई नही।'

दूसरी आवाज—'तुम्हारी पत्नी तो जाग सकती है ?'

'नही वह, जरूर ही सो गई होगी। फिर भी तुम ठहरो, मै देख आता हूँ।'

मातगिनी ने पति की बात सुनी। पैरो की आहट भी हुई। वह हल्के पाँव आकर अपनी चारपाई पर बिना आवाज किए चुपचाप बैठ गई। फिर धीरे से, बहुत सतर्कता से, एक सोए हुए आदमी की तरह उस पर लेट गई और आँखें बंद कर के पडी रही।

राजमोहन ने आकर धीरे से कमरे के दरवाजे पर थपकी दी, लेकिन मातगिनी न बोली न हिली। फिर राजमोहन ने पत्नी का नाम ले कर धीरे-धीरे पुकारा। इस-

बार भी कोई उत्तर न मिला। राजमोहन का विश्वास हो गया कि मातगिनी गहरी नीद मे सो रही है। फिर भी उसे शक था कि शायद नाराज होने के कारण चुप हो, इस लिए भीतर जाकर देखना चाहिए। पत्नी की नाराजी का कारण भी उसे उचित ही लगा। उसके साथ आज उसने अवश्य ही बहुत बुरा वर्ताव किया था। रसोई घर मे जाकर राजमोहन जलता दिया उठा लाया और ला कर उसे दरवाजे के पास नीचे रख दिया। फिर उसने एक पाँव से दरवाजे के एक पल्ले को ढकेला और दूसरे पल्ले को हाथो से अपनी ओर खीचा। इससे दो पल्लो के बीच सधि बन गई। उसी सधि मे हाथ डाल कर उसने भीतर से बद हुडका खोल दिया, फिर दरवाजा धीरे से खोल कर वह दिया लेकर भीतर गया।

उसने भीतर जा कर देखा कि उसकी पत्नी चारपाई पर गहरी नीद मे अस्त-व्यस्त पडी सो रही थी। उसने दबे स्वर मे मातगिनी का नाम लेकर पुकारा ताकि वह सो रही हो तो जाग न जाय। फिर उसने बहुत मीठे स्वर मे पुकारा ताकि नाराजी से चुप हो तो मीठे स्वर सुन कर बोल दे। लेकिन मातगिनी फिर भी न बोली। उसकी साँस सोए हुए व्यक्ति की तरह ही चल रही थी। राजमोहन को उसका सोना स्वाभाविक ही लगा और उसे बहाना बना कर सोने का कोई कारण भी नजर न आया। फिर उसे सचमुच सोई समझ कर वह निश्चित मन कोठरी से बाहर आया। जिस चतुराई से उसने दरवाजे का हुडका खोला था उसी चतुराई से बन्द भी कर दिया। फिर दिया बुझा कर, सभी सोने वालो के दरवाजो पर हल्की-हल्की थपकी देकर धीरे-धीरे पुकारा। फिर किसी को जगा न पाकर, वह अपने साथी के पास वापस आया।

पति के पैरो की आहट से उसे वापस गया जान कर मातगिनी फिर धीरे से उठी और जाकर खिडकी के पास खड़ी हो गई। वहाँ से उसने सुना—

'किसी तरह भी अब डरने की कोई बात नही है।' राजमोहन ने कहा।

उसके साथी ने कहा, 'तो तुम इस मामले मे मेरी सहायता करने को तैयार हो?'

'विशेष तैयार तो नही हूँ। हाँ, इतना आगे बढ आने के बाद अब साधु बनने का ढोग भी मै नही कर सकता। लेकिन बात यह है कि इस आदमी को मै गोकि पसन्द नही करता लेकिन उसने मेरे साथ बहुतेरे उपकार किए है।'

तब उस धूर्त व्यक्ति ने कहा, 'तुम उसे पसद क्यो नही करते?'

'क्यो की बात मत पूछो। इसमे शक नही कि उसने हमारी भलाई की है, लेकिन बुराई भी कुछ कम नही की है। शायद भलाई से ज्यादा बुराई की है।'

'तो फिर हम लोगो की सहायता क्यो नही करते?'

'सहायता करूँगा, लेकिन मै जो माँगूँगा वह तुम्हे देना होगा। मैं इस जगह से चला जाना चाहता हूँ, लेकिन दूसरी जगह जाकर मेरे लिए दो शाम की रोटी जुटा पाना भी मुश्किल होगा। इसलिए मुझे इतना रुपया चाहिए कि दूसरी जगह जाकर मुझे

भूखो मरना न पडे । तुम्हारी सहायता करूँगा यदि तुम मुझे उतना रुपया दे सको ।'

'कितना रुपया चाहिए ?'

'मुझे क्या करना होगा, पहले यह जान लूँ तब बता सकता हूँ कि कितने रुपये चाहिए ।'

'एक बार जो कर चुके हो, बस वही करना होगा । उसकी जो कुछ भी चल सम्पति है वह सब खिसकानी होगी । इस बार नगदी के अलावा जो कुछ भी मिलेगा वह सब तुम्हे दे देगे । लेकिन यह काम आज रात को ही होना चाहिए ।'

'सो मै समझ रहा हूँ । लेकिन तुम्हे इस काम मे मेरी कितनी सहायता चाहिए ? यह बात छिपाने से तुम्हे कोई विशेष सुविधा न होगी । इतने बडे घर मे ऐसी हरकत करने का क्या नतीजा होगा, यह तुम समझ ही रहे हो । सम्पत्ति का पता लगाने मे कितना कठिन परिश्रम करना पडेगा फिर खानातलाशी भी होगी । यह सब तो तुम समझते ही होगे । इतने के बाद भी तुम्हे एक ऐसे आदमी की जरूरत होगी जो तुम्हारी इस अपहृत सम्पत्ति की रखवाली भी करे, जब तक तुम बिल्कुल निश्चित होकर उसका उपभोग कर सको । वह ऐसा आदमी होना चाहिए जो विश्वासघात न करे । इस दिशा मे तुम जानते ही हो कि मुझसे ज्यादा अच्छी तरह यह काम कोई और न कर सकेगा । मेरे अलावा कोई और यह सम्पत्ति छिपा कर रख भी नही सकता । क्योकि मुझ पर कोई सन्देह भी न करेगा । लेकिन मुझे डर है कि इतने काम के लिए मै जो रुपये माँगूँगा वह तुम्हे अधिक ही जँचेगा ।'

'जब तुम इतना सब कुछ समझते हो तब तुम्हे मुनासिब रकम ही माँगनी चाहिए ।'

'ऐसे मामले मे मोल-भाव करना मैने नही सीखा । सारी सम्पति बेच कर जो भी नगदी रुपया मिले उसका चौथाई मुझे देना होगा ।'

वह डाकू राजमोहन के चरित्र से अच्छी तरह परिचित था । यह वह [illegible] गया था कि राजमोहन गरज देख कर दाँव लगा रहा है । थोडी देर चुप रह कर उसने कहा, 'जहाँ तक मेरी बात है, मै तो राजी हूँ । लेकिन इस संबंध में मुझे अपने दूसरे साथियो से भी राय लेना जरूरी है । यो तुम तो जानते ही हो कि मेरी बात वे टाल नही सकते ।'

'यह तो मै जानता हूँ । लेकिन मेरी भी एक शर्त है कि माल-मत्ता खिसकाने के पहले उसकी अंदाजी कीमत लगा कर मुझे उसकी चौथाई तो अवश्य ही मिल जानी चाहिए । सो भी नगदी रुपयो के रूप मे । बेचने के बाद अगर उस अदाजी कीमत से कम रुपये वसूल हुए तो उसी हिसाब से मै रुपये लौटा दूँगा और अगर ज्यादा दाम मिलेगा तो हिसाब से और रुपये तुम्हे देने होंगे ।'

'ठीक है, तुम्हारी शर्त/मुझे मजूर है । लेकिन हमारे लिए तुम्हे एक काम और

करना होगा ।'

'तो ओर काम का मेरा इनाम भी अलग होगा ।'

'जरूर, इनाम क्यो न मिलेगा ? माधव घोष की सम्पत्ति तो हम अपने लिए चाहते है । लेकिन इसमे से एक आदमी की दूसरी ही फरमाइश है ।'

'वह क्या है ?'

'माधव घोष की सम्पति का वसीयतनामा ।'

राजमोहन पहले तो सुन कर थोडा हैरान हुआ, फिर 'हूँ' कर के चुप रह गया । फिर थोडी देर बाद बोला, 'उसके बारे मे तो मै ही नही जानता । हाँ, कभी-कभी उसे मैने एक छोटी सन्दूकची मे कागज-पत्तर रखते-निकालते जरूर देखा है । लेकिन वसीयतनामा वह कहाँ रखता है, सो मुझे नही मालूम । पता नही, बड़े बक्स मे या आलमारी मे ? ठीक से मै नही जानता । लेकिन यह तो बताओ कि आखिर यह फरमाइश किसकी है ?'

'यह नही बता सकते ।'

'मुझसे भी नही ?'

'हाँ, किसी से भी नही ।'

'मथुरा घोष तो नही ?'

'हो सकते है और नही भी । अच्छा, यह तो बताओ कि वह सन्दूकची है कैसी ?'

'इसके लिए मुझे क्या दो गे ?'

'तुम्हे क्या चाहिए ?'

'नगद दो सौ रुपये ।'

'इस छोटे से काम के लिए दो सौ रुपये ? यह तो बहुत ज्यादा है ।'

'लेकिन मेरा काम भी तो कम खतरनाक नही है । रात भर उस कागज का खोजना । सन्दूकची वह अपने सोने के कमरे मे ही रखता है । आलमारी मे ।'

'सन्दूकची के रग के बारे मे पता चल जाए तो ठीक रहे गा । और तुमसे कुछ भी कहना बेकार है । बस तुम्हारी शर्तं मजूर है ।'

'सन्दूकचो तो हाथी दाँत की है । उसके ऊपर माधव का नाम लिखा है ।'

'तो सब बात तय हो गई । अब तुम मेरे साथ चलो ताकि 'दल के और लोगो से भी बात हो जाय । हम एक जगह तै कर लेंगे जहाँ आकर तुम हमसे मिल जाना । अब चले, और देरी करना ठीक नही है । चाँद के डूबने के साथ ही अपना काम शुरू कर देना होगा । यों गर्मी की रात जल्दी ही बीत जाती है ।'

इतनी बात कर के दोनो वहाँ से चल दिए । झाड-झखाड की राह पकड कर आगे बढते हुए दोनो अँधेरे मे छिप गए । इधर सारी बाते सुन कर मातगिनी हैरानी और डर के मारे जड़ सी बनी आ कर खाट पर लेट गई ।

| ७ |

मातगिनी ने छिप कर जितनी बाते सुनी थी, उन्हे सुन कर डर के मारे उसका शरीर सुन्न हो गया। वह छिप कर, साँस रोके जब तक बाते चलती रही, अपनी कापती देह पर किसी तरह नियंत्रण रख कर खडी रही। भयानक कौतूहल मे डूबी वह शुरू से अन्त तक सारी बातें सुनती रही। और बातें समाप्त होते ही उसे लगा जैसे उसका शरीर सुन्न हो गया है। उसी दशा मे आ कर वह खाट पर गिर पडी। भय और आतक मे डूबी वह काफी देर तक बेहोश सी पडी रही। जब उसकी चेतना लौटी तो उसने सुनी हुई बातो पर सोचना शुरू किया। अपने स्वामी के जीवन व चरित्र का यह नया और भयानक पहलू आज अचानक जैसे रोशनी पडने से उसके सामने स्पष्ट हो उठा। आज उसे अपने पति की पशु-प्रवृत्ति और कठोर स्वभाव का परिचय मिला। अपने पति का यह डाकू-दल के सहयोगी का रूप देख कर उसका मन ग्लानि से भर उठा। यह सोच कर उसे और भी दुख हुआ कि यह दुष्ट और नीच आदमी आज तक उसके निष्कलक हृदय से खेल करता रहा है। यह सोच कर कि भविष्य मे भी उसे इस पतित आदमी के वीभत्स आलिगन मे बँधना पड़ेगा, वह और भी दुखी हुई। वह जानती थी कि अपने को उससे दूर रखने का उसके पास कोई उपाय नही है। इस मामले मे वह बिल्कुल ही बेवस है। कोई उपाय सूझ न पडना था। फिर अभी तो चिरकाल तक उसी के साथ अभिशप्त जीवन बिताना पड़ेगा।

यही सब सोचते हुए उसका कलेजा मुँह को आने लगा। फिर उसे उस बात का ध्यान आया, जिस काम मे उसका पति सहायक होने जा रहा है। सोच-सोच कर मातगिनी का मन और शरीर काँपने लगा। उसके पति के इस भीषण नीच-कार्य से उसकी बहन हेमागिनी और बहनोई माधव की कितनी हानि होगी, यह सोच कर उसके शरीर का खौलता खून जमने सा लगा। चिन्ता व घबराहट से उसके सिर मे पीडा होने लगी। बेफिक्र सोते हुए अपने अत्यन्त स्नेही प्रियजनो के भविष्य मे होने वाले सर्वनाश के बारे मे उसने सोचा। उनकी मंगल-कामना और बचाव के प्रयत्न की चिन्ता मे वह इतना डूब गई कि अपने अभिशप्त भविष्य और लाछित नारी-जीवन तक की उसे सुधि न रही। उसने क्षण भर मे मन ही मन निश्चय किया—अपना जीवन देकर भी यदि उन्हे बचाया जा सके तो भी वह उन्हे बचाने का प्रयत्न करेगी।

पहले तो उसे ध्यान आया कि वह घर के लोगो को जगाए लेकिन फिर वह सहसा रुक गई। उसे लगा कि यह समझदारी का काम न होगा। उसके कहने पर कि उसका पति ही यह पतित काम करने जा रहा है, कोई विश्वास न करेगा। उसके पति की बुआ और बहन क्या उसकी बात पर विश्वास करेगी? या उनसे कहने से

क्या माधव का सर्वनाश वह रोक सकेगी ? फिर क्या उसमे इतनी शक्ति है कि अपने पति राजमोहन के सामने वह यह सब कह सके ? हो सकता है कि उसकी बाते सुन कर अपने आत्मीय से वे दोनो सब कह दे और उसी का जीवन नष्ट करादें।

अचानक उसे कनक का ध्यान आया।

उसने सोचा—क्या कनक को माधव के यहाँ भेज कर खबर नही दी जा सकती ? कनक का घर भी दूर न था। बल्कि अपने घर से मिला ही था। मातगिनी ने सोचा कि राजमोहन को संकट मे न डाल कर चुपचाप कनक के पास जा कर उसे ही माधव के यहाँ भेजना चाहिए। लेकिन फिर कुछ सोचने पर लगा के शायद सभव होने पर भी कनक के लिए काम कठिन हो। कनक की माँ को जगाए बिना कनक से इस समय भेट नही हो सकती। क्योकि दोनो एक ही कोठरी मे सोती थी। फिर एक शंका और भी थी कि कनक तो बिना किसी हिचक उसकी बात पर विश्वाश कर लेगी लेकिन उसकी माँ इतनी आसानी से शायद उसकी बात को सत्य न माने। फिर उससे तो सब कुछ खोल कर ही बताना पडेगा। पूरी बात बताने मे उसका पति भी लपेट मे आ जायगा। क्योकि भगवान को साक्षी मान कर उसने जिसे एक दिन अपनाया था उसके विरुद्ध वह कैसे जा सकती थी ? कनक को अकेले मे बुलाकर इस आधी रात मे उससे सब कुछ बताना भी सम्भव नही था। फिर कनक की माँ भी क्या इतनी रात मे इसे बाहर जाने देगी ? शायद उसके सोचे का उल्टा ही हो और कनक की माँ उसके ही घर वालो को जगा कर शोर कर दे। यह भी हो सकता है कि कनक की माँ शायद समझे कि मातगिनी का दिमाग खराब हो गया है या उसका चरित्र खराब हो गया है और कनक की माँ मान भी जाए तो क्या इतनी रात गए कनक अकेली रास्ते पर निकल सकेगी ? विशेष कर ऐसी स्थिति मे जब कि डाकू लोग अपनी योजना मे लगे है तब राह के किनारे उनका छिपा रहना भी असम्भव नही था।

खूब सोच विचार के बाद हर ओर से निराश होकर मातगिनी ने यही सोचा कि ऐसी परिस्थिति मे जो कुछ भी करना होगा उसे अकेले ही करना होगा। सोच कर उसका शरीर डर से कॉपने लगा। आधी रात के इस भयानक सन्नाटे और झाड-झखाड से भरे जगल मे अकेली जवान औरत क्या करेगी ? फिर वह स्वभाव से सरल व डरपोक भी है और उसे भूत-प्रेतो पर भी विश्वास है। जगलो मे जो सब भूत-प्रेत व अलौकिक जीव विहार करते रहते है उनके बारे मे वह बचपन से ही बहुत सी कहानियाँ सुनती आई है। उसके अलावा भयानक क्रूर डाकुओ का दल भी वहाँ मौजूद ही है। यदि कही वह उनके हाथ पड गई तब क्या होगा ? उन डाकुओ के दल मे यदि कही उसका स्वामी भी हुआ तब क्या होगा ? यही सब सोच कर मातगिनी फिर एक बार कॉप उठी।

लेकिन मातगिनी के लिए साहस जुटाने के अलावा कोई अन्य रास्ता बचा भी न था। उसने निश्चय किया कि वह प्राणो की बाजी लगाकर भी अपनी बहन व बहनोई की रक्षा अवश्य करेगी। उन्हे नष्ट होने से बचावेगी।

उसे आने वाले भयानक संकट का जितना भी ध्यान आता, उतना ही उसके हृदय मे बहन व बहनोई के लिए प्रेम उमडने लगा। फलस्वरूप वह उनकी रक्षा के लिए अपने प्राणो की बाजी लगाने को तैयार हो गई। लेकिन नारी–हृदय की स्वाभाविक कमजोरी उसके राह मे रोडा बनी थी। आधी रात के इस समय क्या कोई उसकी बात पर विश्वास करेगा ? खुद माधव भी क्या सोचेगा ? कुछ देर इसी चिन्ता मे वह अपने माथे पर बल डाले खडी सोचती रही।

फिर साहस बटोर कर मातगिनी हिली और आगे बढ कर उसने गरमी से भरे कमरे की खिडकी खोल दी। अब उसे वृक्षो की लम्बी छाया और उन पर लटक रहे चन्द्रमा का प्रकाश दिखाई पडने लगा। उसे ध्यान आया कि थोडी ही देर बाद अब डाकुओ का शोर सुनाई पडने लगे गा। और तब तक उसके बहन व बहनोई की सहायता का समय निकल चुका होगा, देरी हो जाएगी। सिर पर आए संकट ने उसकी तर्क-शक्ति को हर लिया, अधिक आगा-पीछा सोचने की उसमे अधिक शक्ति ही नही रह गई थी। अपने आत्मियो के लिए उसके मन मे कई गुना प्रेम बढ गया। उसके सामने की सभी बाधाएँ अब दूर हो गईं।

सिर से पैर तक अपने को एक मोटी चादर से लपेट कर वह सतर्कतापूर्वक द्वार बंद करके निकल पडी जैसे राजमोहन ने बाहर से हाथ डाल कर हुडका बद किया था, उसने भी उसी तरह बन्द किया। लेकिन जब वह स्वच्छ नीले आकाश के नीचे आकर खडी हुई तब उसे लगा कि उसके पैरो ने आगे बढ़ने से जबाब दे दिया। दोनो हाथ जोड कर बहुत ही धीमी आवाज मे वह कह उठी—भगवान मुझे साहस दो। फिर दूसरे ही क्षण बिना आहट किए वह बड़ी तेजी से चल पडी। जगली झाडियो के बीच चलते हुए उसका दिल काँपने लगा। आधी रात का जंगल का सन्नाटा और अंधकार उसके मन के भय को बढाने लगा। पेड-पोधो के गाँठ-गठीले तने भूत-प्रेत बन कर उसका जाना देख रहे थे। अंधेरे मे छिपी एक डाल दैत्य-रूप धारण करके उसके सिर के ऊपर आ गई। अंधकार मे ढके जगल मे मानो डाकू दल उसकी ताक मे छिपा बैठा था। पेडो के पत्ते गिरने तथा चिडियो के पख फडफडाने की आवाज उसे बार-बार चौका देती थी। फिर भी अपने मन को मजबूत किए वह आगे बढती रही। वह मन ही मन बराबर अपने इष्टदेव का नाम जपती रही। धीरे-धीरे वह ऐसी जगह पहुँच गई जहाँ की भूमि समतल थी और दोनो ओर ऊँची जमीन थी। एक ओर बडा सा आम का बाग था जिसके चारो ओर कँटीले झाडो का घेरा था। दूसरी ओर पोखर का ऊँचा किनारा था जो भी छोटी-छोटी काँटेदार झाडियो से ढका था। इन झाडियो के ऊपर तीन बरगद के पेड़ अपनी डाले फैलाए अंधेरे को और भी डरावना बना रहे थे। डर कर मातगिनी ने चारो ओर नजर दौडाई। आम के बाग से रोशनी आ रही थी और दबे स्वरो मे बातचीत का उसे आभास मिला। लगा जैसे वहाँ कोई वाद-विवाद चल रहा है। उसे जिस बात का

भय था वही हुआ। शायद यह उन्ही डाकुओ का दल था। मातगिनी पत्थर की मूर्ति सी ठिठक कर खडी हो गई। एक पग भी वह आगे न बढ सकी। मुसीबत भी आकर ही रही। अचानक उसके पैरो की आहट पाकर कुत्ता भूँक उठा और साथ- ही साथ आम के बाग से आ रही आवाज भी थम गई। उसे यह समझते देर न लगी कि कुत्ते की आवाज सुन कर डाकू दल सतर्क हो गया है। अब उसका पकडा जाना कठिन नही है। लेकिन इस नए सकट से उसमे एक नई शक्ति पैदा हो गई। हिरनी की तरह दबे पैरो वह क्षण भर मे ही पोखर के किनारे पहुँच गई। वहाँ गहरा अधेरा था। अब डाकू यदि उसे खोजेंगे भी तो इस अधेरे मे कुछ देख न सकेंगे। लेकिन यदि डाकू उसे बरगद के पेडो की राह आकर खोजेंगे तो अवश्य देख लेंगे। वहाँ आसपास झाड-झंखाड भी नही जहाँ छिपा जा सके। लेकिन कुत्ता अभी तक भूँक रहा था इसलिए पल भर की भी देरी किए बिना उसने मिट्टी का एक भारी लोदा चादर मे बाँध लिया। इस तरह उसने सिर पर आई मुसीबत से छुटकारा पाना चाहा। उसने सोचा कि वह जो महीन कपडे पहने है उन्हे सम्हालने मे ज्यादा परेशानी न उठानी पडे। अब तक उसे पोखर के दूसरी ओर लोगो के पेरो की आहट साफ सुनाई देने लगी। उसने धीरे-धीरे चादर मे बँधे मिटी के लोदे को पानी मे डुबो दिया। कोई शब्द न हुआ। फिर वह खुद भी पानी मे उतर कर बैठ गई। नाक तक सारा शरीर उसने पानी मे डुबा लिया। काले रंग के जल मे उसके सिर के सिवा कुछ और न दिखे और उसका गोरा चेहरा उसे मुसीबत मे न डाले, इसलिए उसने झट से अपना जूडा खोलकर बाल बिखेर लिए। इससे उसका चेहरा छिप गया। अब उसे विश्वास हो गया कि तेज से तेज नजर भी अब उसका पता न पा सकेगी।

धीरे-धीरे पैरो की आहट और गले की आवाज उसके पास ही आकर रुक गई। यह जान कर भी मातंगिनी नही हिली।

तभी एक आदमी ने कहा, 'बड़े ताज्जुब की बात है। मैने झाडी की झिरी से साफ देखा था कि सिर से पाँव तक सफेद चादर से ढंकी एक मानव-मूर्ति थी।

दूसरा बोला, 'नही तुमने किसी पेड की ठूँठ को ही आदमी समझ लिया होगा। अगर मान भी लें कि आदमी था तो क्या वह पल भर मे ही हवा हो गया? फिर इस गरमी मे भला कौन सिर से पाँव तक चादर ओढ कर आएगा? ऐसा तो वही करेगा जिसका दिमाग खराब हो।'

पहले व्यक्ति ने कहा, 'शायद ठीक ही कहते हो दादा! शायद मैने कोई भूत-प्रेत देखा होगा।'

जब मातंगिनी ने सिर घुमा कर देखा तो पाया कि डाकू किसी को न पा कर वापस चले जा चुके थे।

फिर भी मातगिनी कुछ देर तक पानी मे ही बैठी रही। जब लोगो के पैरो की आहट दूर जाकर बिल्कुल ही मिट गई तो वह समझ गई कि वे मोग अब आम के बाग

में पहुँच गए है। तब वह पानी से निकल कर बाहर आई। धीरे-धीरे साडी का पानी निचोडा। चादर तालाब के भीतर ही रही। फिर वह उस खतरनाक रास्ते पर न चल कर पानी के किनारे-किनारे ही आगे बढी। डर से सहमी वह बार-बार पीछे देख लेती थी। राह उसकी जानी-पहचानी थी। क्योकि मधुमती नदी मे नहाने के लिए आने को उसे मनाही न थी। अब वह किनारा छोड संकरी राह से आगे बढी। यह राह घने झाड-झंखाड वाली थी। अंत मे वह सीधी राह पर आ गई। लेकिन यहाँ एक और समस्या उसके सामने आ खडी हुई। जब से वह राधागज आई थी तब से अब तक वह केवल दो बार अपनी बहन के घर गई थी, वह भी पालकी मे बैठ कर। उसने केवल लोगो के मुँह से रास्ते के बारे में सुन रखा था। अत चौराहे पर आकर उसे रुकना पडा। वहाँ परेशान होकर खडी, वह चारो ओर देखने लगी। अचानक उसकी दृष्टि देवदारू के एक पेड पर पडी जो उसकी बहन के मकान के ठीक सामने था। वह फौरन उसी ओर बढ चली। थोडी दूर चलने के बाद ही माधव की हवेली के पास पहुँच गई और खिडकी के द्वार की ओर बढी।

अब आखरी सकट से निबटना बाकी रह गया था। उस समय घर के सभी लोग गहरी नीद मे सो रहे थे। अब भीतर जाने की समस्या थी। मातगिनी को इतना मालूम था कि खिडकी के पास वाली कोठरी मे ही करुणा नाम की दासी सोती है।

वहाँ थपकी देने से दासी की नीद खुल गई। वह क्रोध से बोली, 'इतनी रात गए कौन दरवाजा पीट रहा है ?'

मार्तगिनी ने घबराहट भरे स्वर मे कहा, 'करूणा, जल्दी दरवाजा खोल !'

इस बेवक्त नीद मे बाधा डालने वाले पर क्रुध करुणा ने कडी आवाज मे पूछा, 'तुम कौन हो ? इतनी रात गए दरवाजा क्यो खोलूँ ?'

मातगिनी अपना नाम बताना न चाहती थी। बोली, 'अरी, जल्दी खोल न ! देखते ही पहचान जाएगी कि मै कौन हूँ।

करुणा का धैर्य जाता रहा। वह जोरो से चिल्ला उठी, 'तुम कौन हो ? बताते क्यो नही ?'

अब मार्तगिनी ने कहा, 'मै एक स्त्री हूँ। चोर नही। जरा उठ कर देख न !'

अब तक करुणा की नीद खुल चुकी थी। उसे लगा कि अवश्य यह किसी चोर की आवाज नही हो सकती। उसने उठ कर दरवाजा खोल दिया।

मातगिनी को पहचान कर करुणा हैरान रह गई। वह एक प्रकार से चिल्ला उठी, 'मालकिन, तुम ?'

मातगिनी ने घबराहट मे ही कहा, 'मुझे फौरन हेम से मिलना है। मुझे उसके पास ले चल।'

करुणा का दिमाग चक्कर खा गया। उसकी हैरानी और बढ गई। पूछा, 'इतनी रात गए तुम यहाँ आई हो ? मालकिन, तुम इस तरह घबराई क्यो हो ? तुम्हारे

सब कपडे भी गीले है। आखिर बात क्या है?

मातगिनी उसके सवाल-जवाब मे समय गँवाना न चाहती थी। इसलिए आज्ञा-पूर्ण स्वर मे बोली, 'मुझे फौरन हेम के पास ले चल, बस।'

करुणा बोली, 'वह तो अभी सो रही है। जाकर जगाती हूँ। तब तक तुम यह भीगे कपड़े तो बदल लो।'

करुणा को सामने जो धोती दिखी वही लाकर उसने मातगिनी को दी। मातगिनी ने भी झट से धोती बदल ली और दासी के पीछे-पीछे कोठी की दूसरी मजिल पर हेम से मिलने चल पड़ी।

| ८ |

खुले आँगन मे खड़ी होकर मातगिनी ने दासी से हेम को जगा लाने को कहा। हेमागिनी जग ही रही थी। आवाज सुनते ही क्षण भर मे बाहर आ गई। उसके चेहरे और आँखो व स्वर से हैरानी के चिन्ह प्रकट हो रहे थे। विस्मित एव मीठे स्वर मे अपने बहन से इस समय कुबेला मे आने का कारण पूछा।

मातगिनी ने कहा, 'तुम्हारे घर मे आज डाका पडेगा, इसीलिए तुम्हे चेतावनी देने आई हूँ।'

विमूढ हो रही मातंगिनी अस्पष्ट स्वर मे चीख उठी, 'डाका?'

करुणा भी 'बापरे' कह कर चीत्कार कर उठी। मातगिनी ने डाँटा, 'चुप रह करुणा, हेम तुम भी शोर मत करो। अब यहाँ खड़े रहने से कुछ न होगा। जाकर अपने पति को सचेत कर दो और कहो कि सामना करने की तैयारी करें।'

लेकिन हेमागिनी के बस की यह बात न थी। वह बुरी तरह डर गयी थी। उसका समस्त शरीर थर-थर काँप रहा था। चेहरा भी सफेद पड गया था और पाँवो मे हिलने-डुलने की शक्ति न थी। एक प्रकार से उसकी बोलती ही बन्द हो गई थी।

मातंगिनी ने देखा कि उसकी बहन डर के मारे सुध-बुध खो बैठी है, अत वह भी चुप रहे, यह उचित न होगा। करुणा भी जैसे अधीर हो उठी थी। ऐसे अवसर पर दौड कर सूचना दे कर वह मालिक के सामने आपनी स्वामी-भक्ति दिखाने का अवसर नही छोडना चाहती थी। फिर इस अप्रत्याशित समाचार से उसके मन मे भयानक आतंक पैदा हो गया था। वह दोड कर कुसमाचार देने माधव के कमरे की ओर चली गई।

जल्दी ही लौट कर उसने मातगिनी से बताया कि मालिक उसकी बात पर विश्वास नही कर रहे है। विशेषकर यह जान कर कि मातगिनी खुद इतनी रात गए यह ससाचार लेकर उसके पास आई है, उन्हें और भी विश्वास नही होता। माधव का

कहना था कि यदि मातगिनी इस समय यह खबर देने आई है तो वह उसी के मुँह से सब सुनने के बाद ही विश्वास करेंगे। माधव ने कहा था, 'उन्ही के मुँह से सुन कर मै विश्वास कर पाऊँगा कि यह विपत्ति कैसी है। जा और उन्हे ही यहाँ मेरे पास भेज दे।'

मातगिनी ने हेम से कहा, 'बहन हेम ! तू जाकर माधव से कह दे कि मै आई हूँ। तेरे कहने से उन्हे विश्वास हो जाएगा।'

हेमागिनी ने तत्काल कहा, 'यह मुझमे न होगा, दीदी ! तुम स्वयं ही जाकर सब बता दो। बेकार समय गँवाने से क्या लाभ ? जो बात सच है, वह तुम्ही जा कर कह दो।'

मातगिनी बोली, 'यह बात कहने के लिए मेरा जाना उचित नही है। तू जाकर बस इतना कह दे कि यह खबर मै लाई हूँ। और जो कुछ मै कह रही हूँ वह बिल्कुल सच है।'

हेमागिनी किसी प्रकार भी जाने को तैयार न हुई, अत छोटी बालिका की भाँति हठ करके बोली, 'नही, नही, दीदी, तुम्ही जा कर कहो।'

मातंगिनी अत्यन्त गम्भीर स्वर मे बोली, 'मै नही जा सकती हेम ! तू समझती क्यों नही ?'

इसी बीच हँसने का प्रयास करती हुई करुणा ने कहा, 'माँ जी, यह बात सच नही है। दीदी तुम्हे डरवा रही है।'

हेमागिनी के चेहरे पर चमक आ गई, जैसे भय भाग गया। प्रसन्न हो वह बोली, 'क्या करुणा सच कहती है दीदी ? मै तो सचमुच बहुत डर गई थी। तो फिर बताओ न दीदी कि तुम्हें इस समय किस काम से आना पड़ा ?'

कुछ देर चुप रह कर मातगिनी सोचती रही। फिर मन ही मन अपने कर्तव्य को याद कर के बोली, 'अच्छा तो मै ही माधव के पास जाती हूँ। पर हेम, तू भी मेरे साथ चल।'

शर्मीली बहन हेम अपनी बडी बहन के सामने पति के सामने जाने के लिए तैयार न हुई। तब मातगिनी ने कहा, 'तू फिर यही ठहर। लेकिन जब तक मै लौट न आऊँ, मेरी कही बात किसी और के कान तक न पहुँचे।'

कह कर मातंगिनी जल्दी से बरामदा पार कर गई। इस बीच उसने गौर किया कि चन्द्रमा पेडो की चोटी की आड मे अस्त होने जा रहा है। वह और उत्तेजित हो उठी लेकिन माधव के कमरे के पास आ कर उसके पाँव काँपने लगे। इसी प्रकार तो उसके पाँव डाकुओ से घिरने पर भी नही काँपे थे। माथे का आँचल और आगे तक खीच कर वह अनिच्छापूर्वक दरवाजे की ओर बढी। एक बार फिर ठिठकी, एक पग पीछे आई, फिर हिम्मत बटोर कर आगे बढी और दरवाजे को ठेल कर खोला। फिर थोडा ठिठकी और फिर भीतर चली गई। सजा हुआ कमरा था। वहाँ मात्र एक दीपक

जल रहा था । एक कीमती सोफे पर पीठ टिकाए माधव बैठा था । दीवार से टिक कर मातगिनी लज्जा से सिर टिका कर खडी हो गई । बहनोई की ओर एक बार आँख उठा कर देखा । उसे देखते ही माधव चौक गया । अब वह सीधा हो कर बैठ गया ।

पहले तो दोनो मे से किसी ने कुछ न कहा । एक तो भयानक खबर को देने उत्सुक थी और दूसरा उसे सुनने को उत्सुक था, पर दोनो मे पहले कौन बोले, यही संकोच दोनो को हो रहा था । यह खामोशी दोनो को ही परेशान कर रही थी । अन्त मे माधव ने ही अपने रिश्ते का सहारा लेकर मजाक करने के लिए मौन को तोडते हुए कहा—'दीदी, अगर तुम बिलायती मेम होती तो कुर्सी आगे बढा कर तुमसे बैठने का अनुरोध अवश्य करता ।'

दिल्लगी करके माधव स्वय हल्की हँसी हँसा । फिर बोला, 'दीदी, तुम खडी क्यो हो ? बैठती क्यो नही ? देखो, वह जगह है बैठने के लिए ।'

माधव को असमजस से उबारते हुए मातगिनी ने धीमे स्वर में कहा, 'मैने अभी जो कहलवाया है, वह बात सच है ।'

माधव ने गम्भीर स्वर मे पूछा, 'क्या सच है ?'

'हाँ, सच है ।'

'आज रात को ही ?'

'हाँ, आज ही रात को । चन्द्रमा के अस्त होते ही वे लोग धावा करेंगे । और चन्द्रमा अस्त होने मे अब थोडी ही देर बाकी है ।'

'ऐसी बात है ! तब तो गजब हो जायगा । लेकिन दीदी, तुम्हें यह खबर कहाँ से मिली ?'

अब मातगिनी ने चेहरे पर से घूँघट हटा कर स्पष्ट आवाज मे कहा, 'यह अभी मत पूछो । मै क्या तुमसे झूठ कहूँगी ? क्या झूठ कहने ही मै इतनी रात बीते बेवक्त तुम्हारे घर अकेली भागी आई हूँ ?'

'ठीक है । अब मुझे विश्वास हो गया । लेकिन तुम यही रहना, मै अपने आदमियो को बुलाने जा रहा हूँ ।' कह कर माधव जाने के लिए उठा, लेकिन आगे बढ कर मातंगिनी ने उसे रोकते हुए कहा, 'पहले मुझे एक जवाब देते जाओ ।'

'कहो !' माधव ने ठिठक कर कहा ।

तुम्हारे चाचा का वसीयतनामा कहाँ है ? वे लोग उसे ले जाना चाहते है ।'

'हूँ ।' कह कर माधव सोचने लगा कि चाची ने उस पर जो मुकदमा चलाया है उसका एक सूत्र और हाथ लगा । उसने दृढता से कहा, 'वह वसीयततामा उनके हाथ नही लग सकता ।'

'अच्छा, इस कमरे मे हाथी दाँत के बने एक बक्से के भीतर उसे तुम रखते थे न !'

'हाँ, लेकिन यह बात तुमने कैसे जानी ?' माधव ने हैरान होते हुए पूछा ।

'मै ही नही, यह बात वे डाकू भी जानते है ।'

'समझ गया । लगता है तुम बहुत कुछ जान चुकी हो ।'

माधव उठ खडा हुआ । मातगिनी ने फिर टोका, 'मेरी एक शर्त और है । क्या उसे मानोगे ?'

'हाँ, कहो । जरूर मानूँगा ।'

'कोई यह न जानने पावे कि यह खबर तुम तक मैने पहुँचाई है या आज रात मैं यहाँ आई थी । यदि यह किसी को पता चल गया तो फिर मेरी खैर नही है ।'

माधव को एकाएक क्रोध हो आया । गरज कर वह बोला, 'जरा मै भी तो सुनूँ कि कौन भला तुम्हारे प्राण ले सकता है ?'

मातगिनी घबरा गई । धीरे से बोली, 'चुप-चुप !'

माधव तत्काल सयत हो गया । बोला, 'ओह, मुझे ध्यान ही नही रह गया था । गलती हो गई ।'

'हेम और करुणा को भी समझा देना । कही शोर न करें ।'

'करुणा को ही सम्हालना कठिन है । मै उसे डाँट दूँगा कि वह चुप रहे । तुम हेम के पास रहना । भीतर से साँकल चढा लेना ताकि कोई तुम्हे यहाँ देख न सके । लौट कर मै तुम्हे ऐसी जगह पहुँचा दूँगा जहाँ तुम्हे कोई देख न सके ।'

इतना कह कर माधव हेम और करुणा के पास गया । उन दोनो से इस विषय मे चुप रहने को कह कर वह तेजी से बाहरी बैठक की ओर दौडा और जल्दी ही दरबानो, पहरेदारो और सिपाहियो के रहने के स्थान मे जा पहुँचा ।

मन ही मन माधव मातंगिनी की बुद्धि और हिम्मत को सराहता हुआ उसके प्रति श्रद्धा से भर उठा । मातंगिनी उसे कदापि धोखा नही दे सकती । वह जानता था कि धोखा देने के लिए मातंगिनी कभी भी इतनी रात को अकेले परेशानी उठा कर न आती । उसकी खबर पर विश्वास कर के वह भी जी जान से डाकुओ का सामना करने की कोशिश मे जुट गया ।

धरती पर पूरी तरह अधेरा छाने से पहले ही देखा गया कि घर की छत पर कई परछाइयाँ नजर आने लगी । ये लोग जमीदार माधव के गिने-चुने आसामी या प्रजा है जो उसके घर के पास ही रहते थे और किसी भी समय अच्छे खासे लठैतो की टोली तैयार कर सकते थे । इस समय भी ये बल्लम, लाठी और ईंट-पत्थर आदि शस्त्रो से सुसज्जित और तैयार थे । ताकि जब डाकू आवे तो उनका सामना किया जा सके । यह तो नही कहा जा सकता कि इतनी रात बीते जल्दी मे आए सभी लठैत बलवान थे । इनमे से कई तो बेवक्त जगाए जाने के कारण खीझे हुए थे । जमीदार के क्रोध के डर से ही वे डटे हुए थे अन्यथा कभी के भाग गए होते । अधिकाश लोग उत्साह

से भरे थे। डर भी न था, क्योंकि वे जानते थे कि डाकुओ को आकर्षित करने वाली कोई भी चीज ऊपर छत पर न थी। सयुक्त प्रान्त के पाँच छ सिपाही ढाल, तलवार, भाला और पुरानी नाल की बन्दूक जिसमे बारूद ठूँस कर भरी जाती थी, हाथ मे लिए मुख्य-द्वार पर पहरा दे रहे थे।। चार पॉच आदमी सतर्कता से टोह लेने को टहलते रहे। उनका काम यही था कि आहट होते ही अपने साथियो को सतर्क कर दें। घर के भीतर जिन सदूको मे गहने, नगदी, छोटे आकार की कीमती चीजे और कीमती धातु के बर्तन थे, वे सभी उस हाथी दात के बक्से के साथ जिसमे वसीयतनामा रखा था, न जाने कहाँ गायब हो गए थे। यह हवेली बहुत बडी महल थी जिसमे कतार से अनगिनत कोठरियाँ बनी थी। माधव के घर का समस्त कीमती सामान इन्ही कोठरियो मे पहुँच कर गायब हो गया था। जिन्हे इन स्थानो का पता न हो उनके लिए इन्हे ढूँढना बहुत मुश्किल था। घर मे रहने वाले अधिकाश लोगो को भी इनका पता न था।

माधव वैसे तो कोमल स्वभाव का था पर उसे झुकाया नही जा सकता था। एक बार जब उसे क्रोध चढ जाता, तब उस समय उसकी शक्ति और कार्यतत्परता मे इतनी तेजी आ जाती थी कि उसका रूप देख कर डरपोक और अस्थिर चित्त वाले लोग भी सचेत हो उठते थे। इस समय वहाँ ऐसी भी स्त्रियो का अभाव न था जो एक हाथ से बच्चो को घसीटती हुई तथा दूसरे हाथ मे बडी-बडी गठरियॉ सभाले झोपडियो मे आश्रम लेने जा रही थी। उनका ख्याल था कि डाकू इन झोपडियो की ओर न देखेंगे। पिछली रात जो दासी मालकिन के साथ घी के लिए झगडा कर रही थी वह सबसे पहले भाग खड़ी हुई और गत रात्रि की लडाई मे जीत की जयमाला-स्वरूप वह घी की हाडी साथ ले जाना नही भूली।

आने वाले सकट का सामना करने को खड़े हुए सभी लोग घबराए हुए थे और डाकुओ के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। चन्द्रमा अस्त हो चुका था। अब माधव को मातंगिनी की खबर पर थोडी शका होने लगी। यह शका स्थायी हो इसके पहले ही एक आदमी ने आकर खबर दी कि उसने पुरानी बाग की ओर रोशनी देखी है। मातगिनी जिस आम के बाग मे डाकुओ से घिर गई थी उसे ही पुरानी बाग कहते है। उसी आदमी ने यह भी बताया कि उसने बाग के पास तक जा कर खुद देखा है कि वहाँ कई लोग सशस्त्र खड़े है। उसने स्वामि-भक्ति दिखाते हुए कहा, 'मालिक, आप यदि आज्ञा दें तो हम उन पर वही जाकर पहले से ही लाठियो से हमला कर दे ?'

माधव ने कहा, 'नही, भूपसिह, इसकी जरूरत नही है। वहॉ तुम लोग उनसे मात खा जाओगे। और यदि लोग उधर चले गए तो घर पर कौन रहेगा ? शायद उनकी ओर टोलियाँ भी इधर-उधर छिपी हो ?'

'जैसी आप की आज्ञा, मालिक !'

'हॉ, एक काम और करो। तुम सब मिल कर एक साथ आवाज दो। जोर से

चिल्लाओ, ताकि उन्हे पता चल जाए कि तुम सब भी तैयार हो।'

माधव के मुँह से यह बात निकलते ही वहाँ उपस्थित लोगो की प्रचंड हुँकार और तेज गर्जन से वायुमंडल गूँज उठा। घर के भीतर जो औरते थी वे यह शोर सुन कर काँपने लगी। उन्होने समझा कि अब संकट आने मे अधिक देरी नही है। फिर उस गर्जन के बाद मौन छा गया।

माधव ने ललकारा, 'एक बार और।'

फिर वैसी ही भयानक गर्जन से रात काँप उठी। इस बार गर्जन की गूँज के समाप्त होने पर ही उस बाग से बहुत से लोगो की हृदय को दहलाने वाली आवाज आई जैसे रात के अंधेरे मे भूत-प्रेत खुशी मना रहे हो।

माधव ने चीख कर कहा, 'और तेजी से आवाज लगाओ।'

माधव को डर था कि डाकुओ की चीख-पुकार सुन कर उसके आदमी कही डर न जाएँ या साहस न खो बैठे। माधव के आदमी मालिक की आज्ञा पा कर पूरी शक्ति से चिल्लाने लगे। इस बार भी उन्हे पुरानी बाग से उत्तर मिला। लेकिन इस बार तीव्र अर्त्तनाद न होकर, भाग रहे डाकुओ की हल्की आवाज थी।

अब माधव के आदमी कहने लगे, 'मालिक, वे सब भाग रहे है। यह उनके भागने की आवाज है।'

माधव बोला, 'भले ही यह भागने का शब्द हो, पर तुम लोग पूरी मुस्तैदी और होशियारी के खडे रहो, डटे रहो।'

माधव अपने आदमियो के साथ बहुत देर तक खडा रहा, लेकिन फिर कोई न आया। माधव ने रात भर सतर्कतापूर्वक पहरा देने और जगे रहने की आज्ञा अपने आदमियो को दी। फिर माधव घर के भीतर चला गया, उस साहसी महिला को धन्यवाद देने जिसने आकर उसे इस विपत्ति से बचाया था।

। ९ ।

अपनी पत्नी और साली को देखकर माधव ने मातगिनी को सबोधित कर के कहा, 'तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसे मै कभी नही भूल सकता।'

सकट टल जाने से हेमागिनी के दिल पर से बडा बोझ उतर गया था। वह इस समय मातगिनी और माधव को अकेला छोडकर किसी काम के बहाने बाहर चली गई। माधव ने फिर कहा, 'तुमने जो किया है उसे मै कभी भूल नही सकता।'

माधव कृतज्ञता का जो भाव शब्दो से व्यक्त नही कर पा रहा था, वह उसकी आँखे प्रकट कर रही थी। मातगिनी बोली, 'न भूल सको तो उसे हेम के लिए मन मे रख लो। ईश्वर न करे, पर यदि तुम कभी उस पर नाराज हो जाओ तो उसकी बहन की आज की यह मत्रणा याद कर के उसे क्षमा कर देना। जहाँ तक मेरी बात है, मुझे तो यह कर्तव्य निभाना ही था। खैर, छोडो इस बात को, अब मै जाऊँगी।'

माधव ने तत्काल ही उत्तर दिया, 'यह नही हो सकता, दीदी। कितने ही दिनो बाद हेम से तुम्हारी भेट हुई है। और कुछ समय तुम्हारे साथ रहने को मिलेगा तो वह प्रसन्न होगी। यदि तुम एक दो दिन न भी ठहर सको तो कम से कम सबेरे तक तो ठहरो ही। सबेरा होने पर मै तुम्हे पालकी से भिजवा दूँगा। इतनी रात मे घर जाने की क्या जरूरत है ?'

मातगिनी ने दुखी स्वर मे कहा, 'किस्मत की बात है। इतना सुख मेरे भाग्य मे नही है। मुझे जाना ही होगा।'

माधव ने पूछा, 'क्या बात है दीदी ? क्या मुझसे बताने मे कुछ आपत्ति है ?'

लज्जा और दुख भरे शब्दो मे मातगिनी केवल इतना कह सकी, 'तुम्हे तो मालूम ही हे कि मेरे यहाँ रहने से वे चिढते है, नाराज होते है।'

माधव बोला, 'बहन के घर रहने से चिढेंगे, नाराज होगे ? क्या तुम बता कर आई हो, या वह जानते है कि तुम कहाँ हो ?'

'वे नही जानते। मै बता कर भी नही आई। न ही उन्हे मालूम है कि मै कहा हूँ।'

'बडी हैरानी की बात है ! मेरी समझ मे तो कुछ भी नही आता। तब फिर तुम आईं किस तरह ? जब तुम घर से चली, तब वे कहाँ थे ?'

'यह सब बातें मुझसे मत पूछो।'

मातगिनी का यह उत्तर सुन कर माधव के मन मे शका पैदा हो गई। लेकिन शका को मन से टाल कर वह कुछ और सोचता रहा। मातंगिनी की काली पुतलियो वाली बडी-बडी विषादपूर्ण आँखे माधव के मुख पर एकटक टिकी रही। अन्त मे वह कह उठी, 'अब रुकने मे कोई लाभ नही है। अब मै जाती हूँ। करुणा को मेरे सग भेज दो।'

फिर क्षण भर बाद मातगिनी एकाएक घबराकर चचल हो उठी। भारी आवाज से बोली, 'अब जाती हूँ। माधव, जाती हूँ, तुम सुखी रहो।'

माधव चौक उठा, 'तुम रो रही हो दीदी ?'

मातगिनी कोई उत्तर न देकर सचमुच रो पडी। फिर एकाएक जैसे अपने हृदय की पीड़ा से तडप कर उसने माधव का हाथ अपने हाथ मे ले कर दबाया और अपना कमल जैसा चेहरा हाथो के पास झुका दिया। मातगिनी के पवित्र ललाट के कोमल कुचित केशो के स्पर्श से माधव पर नशा सा छा गया और साथ ही वह घबरा

उठा। मातंगिनी के आँसुओ की धारा से माधव के दोनो हाथ भीग गए।

मातगिनी जैसे आवेश मे आ गई और बोली, 'मुझसे घृणा मत करना माधव।' कहते हुए आवेग की तीव्रता से उसकी कोमल देहलता कापने सी लगी। वह फिर बोली, 'मेरी इस चरम दुर्बलता के लिए घृणा से मुँह मत फेर लेना माधव, शायद यथा, निश्चय ही यह हमारी अन्तिम भेंट है। इसीलिए अंतिम भेंट की इस आखिरी घड़ी मे कहती हूँ कि मैने तुम्हे दिल से चाहा है। इसलिए तुमसे चिरकाल के लिए विदाई लेने मे मुझे सचमुच दुख का अनुभव हो रहा है।'

मातगिनी की इस भावुकता व कमजोरी को देख कर भी माधव उसका तिरस्कार न कर सका। वह दोनो हाथो से मुँह ढाँपे बैठा रहा। आसुओ से उसके हाथ भीग गए। थोडी देर के लिए दोनो चुप रहे। दोनो के दिलो की धडकनो की आवाज साफ सुनाई दे रही थी। मातगिनी को जैसे ही थोडी होश आई तो उसे अपने को सम्हालने म ज्यादा देरी न लगी।

मातगिनी ने सोचा—वह दूर-दूर रहना, वह लाज, वह हृदय का दुख, वह हृदय की चीख-पुकार, जो सब पहले उस पर छाया हुआ था, न जाने कहा गायब हो गया। उसके गहरे और असीम प्रेम की अधीरता भी प्रकट हो गई। वह शान्त और हैरान सी खडी रही। उसका केवल स्वाभाविक रूप से उदास रहने वाला चेहरा एक अव्यक्त भाव के आवेग से उज्ज्वल दिखाई देने लगा।

उसके कोमल अगो मे समाई हुई एक मीठी मौन गम्भीरता ने उसे उलझा रखा था। लेकिन यह गम्भीरता खुशी की सूचक न थी। कारण कि हृदय के आवेग से तेज बाढ उसे एक ऐसी जगह बहा कर ले कर गई थी, जहा वर्तमान के क्षणिक सुख के पागलपन मे न्याय-अन्याय का बोध नही रह जाता। निकटतम वर्तमान के अलावा और कुछ नही सूझता। मातगिनी सिर्फ माधव की निकटता का उपभोग कर रही थी। माधव के हाथ पर उसने जो इतने दिनो के रुके आसू उँडेल दिए थे, यही, उसके लिए बहुत काफी था। माधव ने भी तो उसके साथ आँसू बहाए थे। इसी विचार ने इस समय उसके मन को भर रखा था। क्षण भर के लिए कल्पित खुशी मे उसका मन तैरने लगा। उसकी उज्ज्वलता पर कर्तव्य, धर्म तथा नीति अपनी काली छाया नही डाल सके, यानी क्षणभर के लिए माधव से मिलने पर, यद्यपि यह उसके लिए उचित न था, वह कर्तव्य, नीति, धर्म आदि सब कुछ भूल गई थी। मातंगिनी की प्यासी आँखो मे एक ज्वाला थी, उसके चाँद जैसे चेहरे पर एक प्रकाश था। जब वह अपनी सुडौल बाहो को सोफे पर झुकाकर खडी थी, तो उसका सुगठित माथा उसके करतल के ऊपर रखा था। उसके हाथो तथा उभडते हुए वक्षस्थल के ऊपर उसके काले-काले चमकीले बाल बिखरे पडे थे। उस समय माधव को यही लगा था कि इस नारी से बढकर आँखो को चकाचौध कर देने वाली सौंदर्य की मूर्ति संसार मे देखने को और कहाँ मिलेगी ?

माधव ने जोश मे काँपते हुए दुखी स्वर मे कहा, 'मैने कभी सोचा भी न था कि मेरी यह पुकार कभी मनुष्य के कान मे भी पड सकेगी। पर मै इसे दबा कर या छिपा कर रख न सका। मे खुद भी नही जानता कि मेरे मन मे क्या है ?'

मातगिनी के प्रेम-निवेदन करने के बाद माधव पहली बार बोला था। उसने आगे कहा, 'मातगिनी, मैने सोचा था कि तुम साधारण रूप मे सहज ही बिदा हो जाओगी। पर, तुमने यह क्या किया ?'

कहते-कहते माधव की आँखो मे आँसू बह निकले। उसी स्थिति मे वह कहता गया, 'मे सब जानता हूँ, तुमने बहुत कुछ सहा हे, बहुत त्याग किया है। एक बार और अन्तिम प्रयत्न करके देखो। अपने पवित्र हृदय से यह विचार निकाल दो और सब भूल जाओ।'

मातगिनी बोली, 'नही, नही, तुम कुछ मत कहो।'

यह कहते हुए मातगिनी ने जैसे अपने आप ही अपनी बात का प्रतिवाद करने की कोशिश की। उमडते हुए आँसुओ को सिर झुका कर छिपाने की कोशिश करती हुई बोली, 'माधव, तुम मुझे गालियाँ दो, धिक्कारो, दुत्कारो, ताकि मुझे समझ आए। मै पापिन हूँ। मैने पाप किया है। इस पाप से लिए मे अपने भगवान के सामने अपराधिनी हूँ। और इस धरती पर जो मेरा ईश्वर हे, उसके और तुम्हारे सामने भी मे अपराधिनी बन चुकी हूँ। मे अपने आपसे जितनी घृणा करती हूँ, उतनी तुम मुझसे कभी न कर सकोगे। ईश्वर साक्षी है, इतने दिनो तक मेने कितना कुछ सहा है। अगर मे छाती चीर कर दिखा सकती तो तुम देखते कि मेरे भीतर क्या हो रहा है ?'

माधव फिर रो पडा। रोते-रोते बोला, 'मातगिनी प्रिये ' इसके आगे वह बोल न पाया। ऊसका गला भर आया।

मातगिनी आवेश मे बोली, 'कहो, कहो माधव ! फिर कहो ! जिस बात को सुनने के लिए मैं इतने दिनो से आतुर प्रतीक्षा कर रही थी, उसे एक बार फिर कहो। क्या तुम मुझे अभी भी वैसा ही प्यार करते हो ? सिर्फ एक बार फिर यही कहो, सुन कर मै परम प्रसन्नता से आज रात ही मृत्यु को अगीकार कर लूँगी।'

अपने को सम्हालने की व्यर्थ कोशिश करते हुए माधव ने कहा, 'सुनो, मातगिनी ! मुझे क्षमा कर दो। यह भयानक कष्ट अब मुझसे और नही सहा जाता। मेरे हृदय मे यह आग तुम्हारे घर मे ही लगी थी। लगता है कि हम दोनो को ही इसमे जल कर मरना होगा। जब यह आग लगी थी, तब हम छोटे थे, लेकिन अब प्रयत्न करके भी इसे नही बुझाया जा सकता। उस समय ही हम जब अपने कर्तव्य-मार्ग से नही डग-मगाए, तब अब तो बहुत दिनो तक यत्रणा सहने के बाद हमारा हृदय ही पत्थर बन चुका है। अब भला हम क्या गलती करेंगे ? मन से अब इस पाप को निकाल फेको, मातगिनी। आओ, हम लोग एक दूसरे को भूल जाएँ। एक दूसरे से दूर-दूर रहे।'

माधव ने इतना कहने के बाद एक लम्बी साँस छोडी।

मातंगिनी सीधी खडी हो गई। उसके शरीर में एक नए रूप की आभा दिखाई पडी। अपने मन के साथ कठिन सघर्ष करती हुई वह बोली, 'यदि ऐसा ही होना चाहिए तो ऐसा ही होगा। मनुष्य का मन यदि कोशिश करने से भूल सकता है तो ऐसा ही होगा। मै तुम्हे भूल जाऊँगी। आओ, हम एक दूसरे से सदा के लिए बिदा हो जाएँ।''

माधव ने लक्ष्य किया कि मातगिनी के स्वर मे एक भयानक शाति का भाव प्रकट हो रहा था। लेकिन काफी प्रयत्न करके भी मातगिनी अपने आसूओ को रोक न सकी। माथे के आँचल को उसने और थोडा सा आगे खीचकर उन आँसुओ को माधव की नजरो से छिपाना चाहा और दूसरे ही क्षण वह तेजी से कमरे बाहर चली गई।

|१०|

सबेरा होने मे अभी भी एक घण्टा बाकी था। अपने मन मे दुख का बोझ लादे मातगिनी धीमी चाल से उसी जगल की राह वापस लौट पडी। करुणा चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल रही थी। उस समय आधा आकाश बादलो से ढँका था। गहरे काले-काले बादल आकाश मे तैर रहे थे। उनकी छाया मे पेडो की टहनियाँ भी गहरी काली दिखाई पड रही थी। घोर अधकार के कारण काले दिखाई पडने वाले जगल के ऊपर भटकी हुई सी चचल हवा बीच-बीच मे एक अशुभ आर्त्तविलाप का-सा शब्द उत्पन्न कर रही थी। मातगिनी अपनी ही चिन्ता मे इस तरह डूबी थी कि उसे बाहरी प्रकृति का भयानक रूप देखने का अवकाश ही न था। वह सिर्फ यही अनुभव कर रही थी कि बाहरी प्रकृति भी उसी की तरह दुख के भार से दबी हुई है। अत्यन्त दुखी होने पर भी मिलन की सुखद याद से उसका मन भर गया था। घर पहुचने पर घर के लोग उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे, शायद डाँटेंगे, धमकाएँगे। उसके पति को यदि इस घटना का पता लग गया तब उस पर कितना कष्ट ढाया जाय गा। इन चिन्ताओ की काली छाया भी मिलन के उस दृश्य को मिटा नही सकी। मिलन और उसकी स्मृति ही उसकी आँखो के सामने चमक-चमक कर खिल उठती थी। वह माधव को वचन दे आई है कि वह माधव को भूल जाएगी। लेकिन माधव की दृष्टि से ओझल होते ही सब से पहले वह उसी की स्मृति मे खो सी गई। माधव के मुँह से निकला एक-एक शब्द याद करके वह एक अनोखा सपना सजाने लगी। माधव के आँसुओ की याद उसे पागल बनाने लगी। साथ ही हर क्षण मन के इस पागलपन को हटाने का प्रयत्न करती और अपने मानसिक पाप की याद करके वह बारम्बार व्याकुल हो उठती। वास्तविकता यह थी

कि वह मनुष्य और देवता दोनो के सम्मुख घृणा की पात्र बन गई है—यही सोच कर वह दुखी हो जाती।

बाह्य और अन्तर के सगर्ष के बीच जूझती हुई जब वह आगे बढ रही थी तभी अचानक सारा आकाश काले बादलो से घिर गया। यह देख कर दोनो ही स्त्रियो ने यह जान लिया कि भयानक आँधी आने मे अब अधिक देर नही है। रास्ते के एकान्त मौन का तोड कर करुणा दासी ने कहा, 'मालकिन, जल्दी चलिए, आँधी आने वाली है। उसके पहले ही हमे घर पहुँच जाना चाहिए।'

मातगिनी ने कसा, 'हाँ चलो।'

करुणा ने भी चाल तेज कर दी। उसकी देखा देखी मातगिनी भी तेज कदम चलने लगी। कुछ आगे जाने पर करुणा ने कहा, 'यह देखो, पेडो की पत्तियो पर बूँदें गिरनी शुरू हो गई।'

सुन कर मातगिनी ने जैसे किसी स्वप्नलोक से जाग कर मात्र इतना ही पूछा, 'क्या कहा ? बूँदे गिरने लगी ?' फिर थोडा सा ठिठक कर खडी होनी हुई उसने बूँदो के गिरने के शब्द को सुनना चाहा। तभी [illegible] कर मातगिनी ने कहा, 'नही, यह तो किसी के पैरो की आवाज है।'

करुणा बोली, 'हो सकता है।'

मातगिनी ने फिर कहा, 'ऐसा लगता है कि कुछ लोग एक साथ सूखे हुए पत्तों को कुचलते हुए इधर ही आ रहे है।'

करुणा सुनते ही चीख पडी। अपनी चाल की गति और तेज करती हुई उसने कहा, 'हाँ मालकिन!'

करुणा डर गई कि देर होने से इधर उधर घूम रहे डाकुओ के हाथ मे कही वह पड न जाए।

लेकिन दोनो ही औरतो को ज्यादा भयभीन नही होना पडा। बिजली की कडक के साथ ही वर्षा की बडी-बडी बूँदे गिरनी शुरू हो गई। करुणा बोली, 'लगता है कि आज बरसात से भीग कर ही जाना होगा। पेड के नीचे खडे होकर बचने का प्रयत्न करना ठीक नही होगा।'

मातगिनी बोली, 'अच्छा चल!'

राह मे एक बहुत घना इमली का पेड था। उसी के नीचे आश्रम लेने के लिए मातंगिनी उसी ओर बढी। तभी अचानक बिजली कडकी। बिजली के क्षणिक प्रकाश मे उसने एक आदमी को पेड के नीचे खडा देखा। डर के मारे करुणा चीख उठी, 'भागो, भागो!' और मातंगिनी से उत्तर पाने की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने मातंगिनी का हाथ पकड कर उसे घसीटनी हुई उसके घर की ओर भागी। उस आँधी-पानी मे भागते हुए भी वह' भागो 'भागो' कहती रही। जब तक मातगिनी अपने घर के दरवाजे तक पहुँच न गई करुणा उसे घसीटते हुए भागती रही। घर ज्यादा दूर न रह गया था।

दोनो ही थोडी देर मे घर पहुँच गईं।

घर आने पर मातगिनी ने कहा, 'अब तू लौट जा करुणा! इतनी रात को तुझे अकेले लौट जाने को कहना उचित नही है, लेकिन यदि तू यहा रहेगी तो मुसीबत मे फॅसने का डर है। बल्कि तू एक काम कर। पडोस मे कनक के पास चली जा। उसी के बरामदे मे सो रहना। उजाला होने तथा पानी आँधी रुकने पर, किसी आदमी के जागने से पहले ही तू चली जाना।'

इतना कह कर मातगिनी सोने के कमरे की ओर दरवाजा खोलने को बढी। करुणा चली गई। मातगिनी ने देखा कि दरवाजे का हुडका अभी वैसे ही बद है जेसा वह बन्द कर के गई थी। जाने के पूर्व मातगिनी ने जिस ढग से दरवाजे का हुडका खोला था, उसी यत्न से द्वार खोल कर वह भीतर गई। फिर दरवाजा बद करने के लिए ज्यो ही उसने पलट कर देखा तो पाया कि उसके पीछे-पीछे आकर एक आदमी ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। पेरो की आहट और चलने के ढ़ग से मातगिनी को पहचानते देर न लगी कि वह और कोई नही, उसी का राक्षस प्रवृत्ति वाला पति है।'

राजमोहन कुछ बोला नही। उसने चुपचाप चकमक पत्थर की रगड से आग निकाल कर दिए को जलाया और उसे ठीक स्थान पर रख दिया। इसके बाद भी वह चुप ही रहा। बस वह बिछे हुए तख्त के एक सिरे पर बैठ कर मातगिनी को एकटक ताकने लगा। उसकी इस दृष्टि को देख कर मातगिनी तत्काल समझ गई कि उसके भाग्य मे आज क्या लिखा है। लेकिन डर से भयातुर न होकर वह बड़े गर्व से सीधी खडी रही। इस समय भी उसके शरीर मे वही साहस आ गया था जिसे देख कर इसके पहले उसका पति खुद डर गया था। बाहर तेज आँधो-पानी घर के भीतर की शान्ति को भग कर रही थी। थोडी देर चुप रहने के बाद जब चुप्पी असह्य हो उठी तब राजमोहन ही खामोशी तोड कर बोला, 'अभागी!'

मातगिनी ने सुना, लेकिन उसके तेज स्वर मे सदा स्पष्ट रहने वाली कठोरता और रूखापन का आज सर्वथा अभाव था। राजमोहन ने फिर कहा, 'अभागी, अपने यार के पास गई थी?'

मातगिनी ने जवाब न दिया। तब क्रोध से धरती पर पाँव पटक कर राजमोहन ने कहा, 'बोल, जवाब तो दे!'

तब मातंगिनी ने अभिमान से कहा, 'इन सब बातो का मै कोई उत्तर न दूँगी।'

सुन कर राजमोहन जैसे पागल हो उठा, दाँत पीस कर बोला, 'जवाब नही देगी, हरामजादी?'

फिर क्षण भर मे अपने को सम्हालकर उसने पूछा, 'आज रात को माधव के घर गई थी या नही?'

माधव का नाम सुनते ही मातगिनी का भाव बदल गया। एकाएक उत्तेजित होकर दृढ शब्दो मे वह बोली, 'हाँ गई थी। तुमलोग उसके घर डाका डालने गए थे,

इसी से म उसे बचाने गई थी ।'

राजमोहन दोनो हाथो को मुट्ठी बाँधकर उछल पडा । बोला, 'देख री, तू मुझे धोखा नहीं दे सकती ! समझी, तुझे कहा मालूम कि मै किस तरह तुझ पर नजर रखता आ रहा हूँ । यह तेरा रूप तेरे लिए अभिशाप बन गया है । मैने एक मिनट के लिए भी तुझे अपनी नजरो से दूर नही रहने दिया है । तू यह मत समझना कि मुझे तेरी हरकतो का पता नही है ।'

फिर कुछ शात होकर कहने लगा, 'मै जानवर भले ही होऊँ, मुझमे इन्सानियत नाम की चीज भले ही न हो, फिर भी मुझे यह गर्व था कि मे एक परम रूपवती स्त्री का पति हूँ । बाघिन जिस तरह अपने बच्चे की ताक लगाए रहती है और उसे आँखो से ओझल नही होने देती, उसी तरह मैने भी हर पल, हमेशा, तुम्हारा ध्यान रखा है । मे क्या यह नही जानता कि जवान होने से पहले ही तू इस अभागे के प्रेम मे फँस गई थी ? मुझे सब पता है । तेरे सभी पापो का मुझे पता है । अभी शाम को ही तो उस वेश्या—राँड (कनक) —अपनी सखी की मीठी-मीठी बातो मे आकर किसी से पूछे बिना जब तू घर मे बाहर गई थी तब भी मै तेरा पीछा कर रहा था । तेरी हर हरकत पर मेरी नजर थी । बोल न, तू उसके साथ गई थी या नही ? और बाग के पास पहुँच कर, जानबूझ कर मन मे पाप रख कर तूने अपना घूँघट खोल दिया था या नही ? कि आज रात को यार स आँखे चार होगी—तेरी आँखे शीतल होगी, यही चाहती थी न तू ! लेकिन मे बराबर तेरा पीछा करता रहा । अफसोस कि कुछ देरी के लिए तू मेरी आँखो से छिप गई । हाय, यह मैने क्या किया ? थोडा और सावधानी रखता तो ऐसा न होता । लौट कर घर मे देखा, तू यहाँ न थी । तब क्या मुझे समझने मे देर लगी कि किस साँप के बिल मे पाप का कीडा जा घुसा है ? उन लोगो (माधव) के खिडकी के द्वार से ही मे पीछे-पीछे पास-पास हो चलता रहा और फिर आँधी-पानी मे तेरा पीछा करता आ रहा हूँ । तू पागल हो गई है और अब मै तुझे जीने न दूगा । मैने छुरा तेज कर लिया है और आज ही रात तेरे प्राण ले लूँगा ।'

फिर राजमोहन चुप हो गया पर उसकी आँखो से बराबर खून टपकता रहा ।

स्थिर निश्चल खडी मातगिनी के शरीर की ओर आँख उठा कर मानो राजमोहन अतिम बार देख रहा था ! इस क्षणिक सन्नाटे मे बाहर आँधी का भयानक हाहाकार सुनाइ देता रहा । मातगिनी ने मन ही मन कुछ निश्चय किया । मानो अपनी जान पर खेल जाने का वह निश्चय कर चुकी थी । अन्त मे वह बोली, 'तुम ठीक ही कहते हो । मै उसे प्यार करती हूँ । उससे मुझे असीम प्यार है । अब यह भी तुम्हे बता देती हूँ कि मै पागल हो गयी थी, मे अपने को सम्हाल नही सकी । उसी प्रेम के आनन्द मे · तुम मेरी हालत नही समझ सकते · मेरे मुँह से कुछ बाते निकल गई, बस इतना ही । मेरी बातों परक्या तुम्हे विश्वास होता है ?'

राजमोहन उठ कर खडा हो गया और बोला, 'नही ! मै तुझे मार डालूँगा ।'

इतना कहते-कहते उसने कपडे मे लिपटी हुई कटारी कमर से निकाल ली ।

'माँ माँ बापू · कहाँ हो ?' मात्र इतने ही शब्द हतभागी मातगिनी के मुँह से निकले और वह बेहोश हो गई । पाषाण-हृदय राजमोहन के हाथ की कटारी उसके सिर पर चमकने लगी । लगता था कि वह काँप रही कटारी मातगिनी की छाती मे अब घुसी, अब घुसी · ।

कि अचानक एक घटना के कारण इस दुर्घटना या हत्याकाण्ड मे रुकावट आ गई ।

कमरे की खिडकी पर अचानक एक भयानक शब्द सुनाई पडा । कारण जानने को राजमोहन ने मुड कर उस ओर देखा । तभी खिडकी खुल गई और उसी रास्ते से दो काले-काले पहलवान से दिखने वाले आदमी एक के बाद एक कोठरी मे कूद आए । वर्षा के कारण उनका शरीर गीला था और कीचड से सना था । उनकी लाल-लाल आँखो से जैसे आग के शोले फूट रहे थे ।

| ११ |

आने वालो मे से एक ने कहा, 'अरे चमार ! क्या औरत का खून करेगा ?'

वह आदमी खुद भी किसी अच्छे इरादे से न आया था, यह तो उसकी शक्ल देख कर ही जाना जा सकता था । उसके हाथ का बडा छुरा भी एक बार बिजली कौंधने से चमक उठा ।

गरज कर राजमोहन उन आगन्तुको की ओर लपका और बोला, 'कौन हो तुम लोग ? मेरे ही घर मे डाका !'

राजमोहन के हाथ की कटारी तेजी से घूमने लगी ।

व्यग्यपूर्वक हँस कर आगन्तुको मे से एक ने कहा, "धीरे-धीरे बोलो । गोलमाल मत करो । तुम्हारे घर के लोग जाग उठेगे । हम डाकू नही है, दोस्त ! जरा गौर से पहचानो तक पता लग जाएगा ।'

फिर उसने मातगिनी को लक्ष्य करके कहा, 'अरे बच्ची, जरा दिया इधर तो ले आ । देखे तुम्हारे पति देवता अपने साथियो को रोशनी मे देख कर भी पहचानते है या नही ?'

उस समय मातगिनी पूरी तरह बेहोश तो न थी, फिर भी उसमे उठ कर कुछ करने की शक्ति न थी । वह अधमरी-सी पडी रही । उसके जीवन पर हमला और यह अप्रत्याशित बाधा, दोनो को आकस्मितता ने उसे जड बना दिया था । राजमोहन ने

फड़क कर कहा, 'साथी हो या शत्रु, मेरे घर से निकल जाओ ।'

इतना सुनते ही दु साहसी आगन्तुक के मुख पर पेशाचिक हँसी छा गई । उसने कहा, 'और तुम निश्चित होकर अपनी पत्नी की हत्या कर डालो !'

राजमोहन पागलो की तरह गरज उठा, 'मेरा जो मन होगा करूंगा । तुम मुझे रोकने वाले कौन हो ?'

इतना कह कर राजमोहन ने उछल कर आने वाले की छाती मे कटारी घुसेडना चाहा । लेकिन आगन्तुक फुर्ती से हट गया और बच गया । फिर उसने राजमोहन के हाथ की कटार को उल्टी ओर इतनी जोर से चोट की कि राजमोहन के हाथ से छिटक कर वह दूर जा गिरी । और देखते ही देखते आगन्तुक ने पलक मारते ही लपक कर मुट्ठी मे राजमोहन का हाथ पकड लियो । उसका साथी अभी तक चुपचाप खड़ा था । उसने अपने साथी से कहा, 'भीखू, दिया इधर उठा और इसे चेहरा दिखा दे । भैया राजू, यह मुखचन्द्र है बाबा ! तुम्हारी पत्नी यह मुख देख कर प्रसन्न होगी ।'

भीखू ने आदेशानुसार दिया लाकर सामने कर दिया । राजमोहन चिल्ला उठा, 'सरदार !'

आगन्तुक ने कहा, 'हाँ सरदार ! चलो तुमने पहचाना तो ! दोस्त क्या इतनी जल्दी दोस्ती भूल जाते है ?'

लेकिन इतने से राजमोहन का क्रोध शात न हुआ । उसने कहा, 'तुम यहाँ क्यो आए हो ? मेरे घर मे इस तरह हमला करने का भला क्या अर्थ हे ?'

सरदार ने पूछा, 'पहले तुम यह बताओ कि तुम अपनी पत्नी की हत्या क्यो कर रहे थे ?'

'इससे तुम्हे क्या मतलब ? तुम यह पूछने वाले कौन होने हो ? देखो, भलाई इसी मे है कि चुपचाप यहाँ से चले जाओ । सरदार-वरदार को मै कुछ नही जानता । सीधे से नही जाओगे तो लात मार कर निकाल दूँगा ।'

सरदार ने हँस कर कहा, 'तुम तो मेरी मुट्ठी मे हो, फिर लात कौन मारेगा ?'

'मेरे पैर अभी भी बँधे नही है ।' राजमोहन ने क्रोध से तमतमा कर चीखते हुए अपने प्रतिद्वन्द्वी को इतनी जोर से लात मारा कि लोहे जैसा मजबूत शरीर होने पर भी डाकू-सरदार कई पग पीछे हट गया और साथ ही साथ राजमोहन का हाथ भी उसकी पकड से छूट गया ।

हाथ छूटते ही राजमोहन अपनी कटारी उठाने को उस ओर लपका । यह देख सरदार ने कहा, 'भीखू इसे बाँध ले ।'

आज्ञा पाते ही भीखू के मजबूत हाथो ने राजमोहन को पकड कर धरती पर पटक दिया और सरदार भी बाघ की तरह झपट कर राजमोहन की छाती पट चढ़ बैठा । उधर भीखू ने मातगिनी के कपडे टाँगने की अलगनी खोल कर उसी से राजमोहन के हाथ बाँध दिए । तब सरदार ने कहा, 'दगाबाज, अब तो तेरे प्राण मेरे हाथ मे है ।'

राजमोहन बोला, 'सो तो देख ही रहा हूँ। तुम दो जने हो और मै अकेला। लेकिन यह तो बताओ कि मैने क्या किया है जो तुम आग मुझसे ऐसा व्यवहार कर रहे हो ?'

सरदार ने कहा, 'पूछते हो कि क्या किया है ? दगा किया है, विश्वासघात किया है। अपने साढू को बचाने के लिए क्यो पहले ही उसे खबर नही पहुचा दी ? चुगलखोर, दगाबाज कही का !'

क्षण भर चुप रह कर आँखो मे आग उगलते हुए सरदार ने कहा, 'तुमने ही खबर दी है। तुम्ही को मरना होगा।'

'मैने ? मैने खबर दी है ?'

'लगता है जेसे कुछ जानते हो नही हो ! तुमने नही तो और किसने खबर दी ? यह मेरी भूल थी कि मैने यह विश्वास किया कि तुम अपने साढू के खिलाफ हमारी सहायता करोगे। तुम भी कम चालाक नही हो। हम लोगो के सामने माधव के खिलाफ तुम्हारी बातें सुन कर हमने सच मान लिया था।'

'सच कहता हूँ, मेने खबर नही दी।' राजमोहन ने कहा। वह डाकू-सरदार की निष्ठुर प्रकृति से अच्छी तरह परिचित था, इसीलिए उसे अपने प्राण जाने का डर लगने लगा। राजमोहन ने फिर जोर देकर कहा, 'विश्वास करो सरदार ! मैनें यह काम नही किया। तुम खुद सोच कर देखो, मै तो तुम लोगो के साथ ही घर रा गया था और लौटने तक बारबार तुम लोगो के साथ ही था। एक मिनट के लिए भी तुमसे अलग नही हुआ।'

'बस, बस, रहने दो। अब तुम्हारी चालाकी न चलेगी। तुमने क्या मुझे बिल्कुल बच्चा ही समझ लिया है ? इसी दीवार के पास मुझसे बातें करते समय क्या यह कह कर तुम अन्दर नही गए कि देख आऊँ कि पत्नी ठीक से सो रही है या नही ? क्या मै इतना भी नही समझता कि तुमने अपनी औरत को सिखाकर उसी के हाथ खबर भेजी है ! कह दो कि यह भी झूठ है। उसमे खबर नही भेजी तो भला खबर देने कौन गया ?'

'यह मै मानता हूँ मुझसे छिपा कर उसी ने अपने बहनोई को खबर पहुँचाई है। मै जब उसे देखने कोठरी मे गया तो विश्वास करो कि वह सो रही थी। इसके लिए जो भी कसम खाने को कहो मे तैयार हूँ।'

सरदार ने बडी रुखाई से कहा, अब तक बहुत झूठ बोल चुके। बस अब रहने दो। अच्छा, अगर तुम्हारी नियत खराब नही थी तो माधव घोष के घर से हल्ला सुन कर सबसे पहले तुम्ही क्यो भाग गए थे ? दरअसल बात यह थी कि तुम्हारा मतलब हल हो चुका था, फिर तुम्हे वहाँ रुकने की क्या पडी थी ? देखो दोस्त, मेरे बाल सफेद हो चुके है, इतनी जल्दी तुम मुझे नही बना सकते ! समझे ! बस, अब, मरने के लिए तैयार हो जाओ।'

राजमोहन का दम जैसे घुटने लगा था । साँस लेना भी उसे कठिन लग रहा था । सरदार अपने पहाड जैसे भारी शरीर से उस पर सवार था । यद्यपि राजमोहन भी सशक्त और मजबूत था फिर भी उस भारी बोझ को सम्हालना मुश्किल हो रहा था । घबरा कर वह चीख उठा, 'दोहाई है, मुझे छोड दो सरदार । मै अपने देवता की कसम खा कर कहता हूँ कि मेरी जानकारी में माधव को खबर नही दी गई । मै अपनी माँ की कसम खा कर कहता हूँ कि मुझे कुछ नहीं मालूम ।'

सरदार ने कहा, 'तुम्हारी पत्नी ने फिर यह काम कैसे किया जब वह सो रही थी ।' इतना कहते हुए सरदार उसकी छाती पर से उतर गया लेकिन अपने दोनो हाथ उसके गले से न हटाए ताकि जरूरत पडने पर आसानी से गला वह दबा सके ।

राजमोहन ने विवशता से कहा, 'शायद वह सोने का बहाना कर के लेटी रही हो ।'

'हाँ, हाँ, तुमने मुझे बेवकूफ ही समझ लिया है । मैने जब तुमसे कहा था कि घर की दीवार से दूर हट कर सलाह की जाय, तब तुमने दीवार से सट कर खडे होने को क्यो कहा था ? आज तुमने माधव घोष को खबर दी है, कौन जाने कल तुम पुलिस को भी हमारी खबर बता दो । माधव तो जरूर ही तुम्हे बचाने की कोशिश करेगा और जब तक तुम जिन्दा रहोगे हमारी खैर नही । भला इसी मे है कि तुम्हारा कल्याण कर दिया जाय । और होता तो यह काम उसी समय हो जाता, लेकिन अफसोस, कि तुम हाथ से निकल चुके थे ।'

'अच्छा, सरदार बताओ, अभी मेरे घर मे घुस कर तुमने क्या देखा जिसे तुम कहते हो कि मैने खबर देने को भेजा था, उसी का तो मै खून करने को तैयार था तुम लोग न आ जाते तो अब तक यहाँ उसकी लाश ही पडी मिलती ।'

'हूँ ।' कहकर सरदार कुछ सोचने लगा जैसे वह कुछ कठिनाई मे पड गया हो । वह अपने साथी का मुँह देखने लगा जैसे इशारे से उसकी राय जानना चाहता हो । भीखू ने कहा, 'हाँ सरदार, बात तो यह ठीक कहता है ।'

राजमोहन का कलेजा भय से काँप रहा था । उसने कहा, 'जिसलिए तुम मुझे दोषी कहते हो, उसी के लिए तो मै उसकी हत्या करने जा रहा था ।'

एकाएक सरदार उछल कर खडा हो गया । फिर चिल्लाया, 'वह बदमाश कहाँ गई ? उसी का खून करूँगा ।' राजमोहन की स्त्री को पकडने के लिए सरदार उसी ओर झपटा जहाँ उसे गिरा कर राजमोहन उसका खून करने वाला था । एक ओर काफी कपडो का बडा सा ढेर लगा था । वहाँ भी उसने हाथो से अच्छी तरह टटोल कर देखा । बुझ रहे दीपक की रोशनी मे उसे कुछ भी दिखाई न पडा । सरदार चीखा, 'हरामजादी कहाँ गई ? सोचती है कि भाग जाएगी पर ऐसा नही हो सकता । वह चाहे जहाँ भी होगी, मै खोज निकालूँगा ।'

राजमोहन की आवाज अब कुछ स्वाभाविक हो रही थी। उसने कहा, 'ठहरो! मेरे अलावा ओर कोई मेरी स्त्री को हाथ नही लगा सकता। मुझे मुक्त कर दो।'

सरदार चिल्लाता हुआ कोटरी मे घूम रहा था। शोर कर के उसने सिर पर आकाश उठा रखा था। उसने भीखू से कहा, 'इसे छोड दो, उस चुड़ैल को मै अभी खोज निकालता हुँ। बच कर कहाँ जाएगी?'

भीखू ने तलवार से राजमोहने को बाँधने वाली रस्सी खोल दी। सरदार ने एक ओर पडे कपडो के ढेर को टटोल कर कहा, 'यहाँ तो नही हे। ठहर छोकरी, जाएगी कहाँ?' पसीने से नहाया हुआ सरदार बिछौने के पास जाकर तलवार से उसी पर मनचाहे बार करने लगा। लेकिन मार्तंगिनी वहाँ कहाँ थी?

सरदार ने कहा, 'भीखू, इधर ले आ दिया। कही तख्त के नीचे तो छिपी नही पडी है।'

राजमोहन भी भीखू के पीछे-पीछे आया। तीनो ने घुटने के बल बैठ कर तख्त के नीचे झाँका पर वहाँ भी मातगिनी न थी।

दिया उठा करके लोग घर के कोने-कोने मे झाँकते रहे, पर वह नही मिली। तभी राजमोहन की नजर दरवाजे की ओर गई। वह चिल्ला उठा, 'अरे दरवाजे की ओर तो देखो, खुला है न? मै जब भीतर आया था, तब भीतर से हुडका लगा कर आया था। दुबारा भाग गई।'

मातगिनी सचमुच भाग गई थी। राजमोहन और सरदार जब एक दूसरे की जान लेने मे व्यस्त थे और किसी का भी ध्यान उसकी ओर न था तभी छिपती हुई, धीरे-धीरे चल कर वह किसी तरह दरवाजे तक पहुँच गई थी। फिर धीरे से दरवाजा खोल कर बाहर निकल गई थी। इन दोनो जानवरो को छोड कर और कोई एक बार भी मातगिनी को देख पाता तो कभी न भूलता लेकिन इन दोनो ने ठीक से देखा भी नही था। दरवाजा खोलते या हुडका हटाते समय यदि थोडी सी आवाज भी हुई होगी तो उस समय पशुवत जोश मे लड रहे तीनो लोगो मे से किसी ने भी सुना न था।

सरदार ने कहा, "उसे पकडना चाहिये। नही तो वह हमारा सर्वनाश कर देगी।"

राजमोहन बोला, "हाँ, हाँ, चलो। लेकिन होशियार, मेरी स्त्री के शरीर को कोई हाथ मत लगाना। चलो, चलो, आगे-आगे मै ही चलता हूँ।"

तीनो आदमी तेजी से बाहर की ओर लपके। उस समय भी आकाश मे बादल छाए थे। बूँदा-बूँदी भी हो रही थी। मातगिनी को उन लोगो ने चारो ओर खोजा। सबेरा होने मे भी अधिक देर न थी, समय कम रह गया था।

पहले तो राजमोहन ने कनक के घर जाकर बाहर से ही झाँकने का विचार किया। राजमोहन और सरदार चुपके से कनक के घर तक गए। फिर चबूतरे पर चढ-कर झाँकी उठाकर नजर फेकी। अधिक उजाला न होने पर भी यही लग रहा था कि

सिर्फ माँ बेटी ही वहाँ सो रही है।

फिर आस पास के झाड-झखाड मे खोजा गया पर मातगिनी का कही पता न चला। पौ फटने का समय होते ही डाकू—सरदार ने और ज्यादा देर बाहर रहना ठीक नही समझा। अत. दोनो एक दूसरे से विदा हो गए। जाते समय सरदार ने कहा, "अगर कल राजमोहन न आया तो ... "

और वाक्य समाप्त करने के स्थान पर उसने एक फूहड और गन्दी सी कसम खा ली।

|१२|

बरसात से नहाया हुआ गीला सबेरा, हृदय को चचल कर देने वाली नवीनता से जगमगाता हुआ जल्दी ही निखर आया। आकाश मे तैरते हुए बादल-समूह को पीछे हटा कर सूरज भी जगमागने लगा। घरो की छत और वृक्षो की टहनिया परम सुन्दर हल्के प्रकाश की किरणो मे डूब कर हँसने लगी। वृक्षो और लताओ की पत्ती-पत्ती मे चिपकी, गिरने को तैयार पानी की बूँदे, प्रभात सूर्य की तिरछी किरणो के स्पर्श से चमकने लगी। पेडो की घनी शाखाओ के बीच बने झरोखो से सूर्य की कोमल किरणो ने नीचे की गीली और घास-फूस से भरी धरती की ओर झाँका। अभी-अभी जागे हुए और आनन्दित पक्षी अपने हजारो कठो के कोलाहल से वनभूमि को मुखरित करने लगे। केवल पपीहे की 'पी कहा' की आवाज कापती हुई हवा मे तैरने लगी। रूई जैसे हल्के सफेद बादल आकाश की स्वच्छ नीलिमा मे छुट-पुट, अलग-अलग बिखरे-बिखरे बिचर रहे थे।

सूर्यदेव आकाशमडल मे एक पहर चल कर राह तय कर चुके थे। पिछली रात को जिस तालाब के किनारे मातगिनी सकट मे पड कर डाकुओ से घिर गई थी, वही एक इमली के बहुत पुराने पेड के नीचे, झाड-झखाड की आड मे छिप कर भीगी घास के उपर मातगिनी चुपचाप बैठी थी। उसके शरीर के कपडे भीगे और कीचड से सने थे। बरसात मे भीग गए लम्बे बाल कधे, पीठ और बाजू पर लटक रहे थे। वह सिर झुका कर, जल भरे घने मघो से भी काले अपने बालो को धूप मे सुखा रही थी। उसके पास ही उसकी सखी कनक बैठी हुई थी। थोडी ही देर पहले तेल की मालिश करने के कारण उसका शरीर चमक रहा था। उसके कधे पर एक मैला अगोछा भी

था। पीतल की एक बडी सी कनसी भी पास ही रखी थी। उसके काले दाँतो से पता लगता था कि अभी उसने दातून भी नही की है। घर से सभवत इसीलिए निकली थी पर अभी कुछ कर नही सकी है। लगता है जेसे दोनो सखियाँ किसी गहरे व गंभीर मसले पर विचार मग्ने है। विषय भी स्पष्ट हे। अपनी विश्वासपात्र और बुद्धिमती सखी से मातगिनी पिछली रात की समस्त घटनाएँ क्रम-क्रम से धीरे-धीरे बता रही थीं।

कुछ देर तक तो हेरान सी कनक सब सुनती रही, फिर एकाएक वह काँप उठी और बोली, 'हाय माँ! मे होती तो मर ही जाती। धन्य है तेरा कलेजा और तेरा साहस, दीदी! अब भी क्या तू अपने पति के के पास वापस जाएगी?'

सखी के दुख मे सहानुभूति प्रकट की कनक ने। उसकी आँखो मे आँसू भर आए। उसने कहा, 'मे खूब समझती हूँ दीदी, कि तुम्हारा हमारे घर रहना ठीक नही है, पर अपने घर भी तुम कैसे वापस जा सकती हो? हाँ, लेकिन अपनी बहन के घर जाने मे भला क्या बुराई है?'

यह सुनकर मातंगिनी के चेहरे पर एक अपूर्व भाव दिखाई दिया। उमडते आँसुओ को रोक कर उसने जिस कठोर भाषा मे माधब से विदाई ली थी, उसी भाषा मे वैसा ही प्रभाव भर कर उसने कहा, 'यह असम्भव है! इस जीवन मे अब वहाँ नही जा सकती।'

मातगिनी का चेहरा देख कर उसकी बात का प्रतिबाद करने का साहस कनक न जुटा सकी। अपनी व सखी की बिबशता पर वह अपना मुँह ढाँप कर रोने लगी।

एकाएक पीछे से किसी स्त्री कठ की आवाज सुन पडी, 'अरे बेटियो, यहाँ बैठी तुम लोग का सलाह कर रही हो। जरा मै भी तो सुनूँ। अरे तुम रो क्यो रही हो। क्या हुआ है, बेटी?'

हैरानी की मुद्रा बनाए वह आकर इन दोनो सहेलियो के पास खडी हो गई। वह साँवले रग की अधेड उम्र स्त्री थी। बाल सफेद हो गए थे। बुढापे के कारण देह मे झुर्रियाँ पड गई थी। वह एक साफ मोटी धोती पहने थी, उसके भी कधे पर मैला अंगौछा था। चेहरे पर तेल की मालिश की चमक थी। उसके यहाँ आने का कारण स्पष्ट था।

कनक ने जल्दी-जल्दी आँसू पोछ लिए हँसने की कोशिश मे दाँत चमका कर पूछा, 'अरे लगता है यह तो सुखिया की माई है। आज फूलपुकुर मे कैसे आई?'

सुखिया की माई प्रसन्न हो उठी। बोली, 'आज आने मे बडी देर, हो गई थी बेटी। सोचा, घर का कामकाज करने से पहले ही वहा आऊँ। हाँ, तुम लोग तो अपना

हाल बताओ। क्या हुआ है ? तुम दोनो रो क्यो रही हो ?'

कनक की आँखे फिर आँसुओ मे भर आई। उसने कहा, 'कुछ न पूछो, सुखिया की माई ! इस अभागिन के दुख का हाल अब तुमसे क्या कहूँ !'

इसी क्षण मातगिनी ने अर्थ पूर्ण नीरव दृष्टि से कनक की ओर निहार कर उसे सचेत कर दिया। उस दृष्टि ने जैसे कनक से कहा कि मेरे दुख की बात इससे कहने की नही है। इस बुढिया को कुछ मत बताना। कनक ने भी वैसी ही अर्थपूर्ण दृष्टि से उत्तर दिया—डरो नही, तुम्हारा गुप्त भेद न बताऊँगी।

कनक ने आगन्तुक बुढिया की ओर लक्ष्य करके कहा, 'इसके दुख की बात भला क्या कहूँ ? अभागिन को इसके पति ने घर से निकाल दिया है। अब यह कहाँ जाकर रहे। किसका सहारा ले यही समझ मे नही आ रहा है। इसी समस्या को सोच-सोच कर रुलाई आ रही है।'

सुखिया की माई ने कहा, 'अरे छि छि, इसी के लिए इतना रोना-धोना ? यह तो दुनिया का नियम ही है, और सभी तो जानते है कि पति-पत्नी सबेरे झगडते है और रात को फिर उनमे मेल हो जाता है। अभी इसके आदमी पर गुस्सा सवार होगा, जब शात होगा तो आप ही मना कर घर लिवा ले जाएगा। जानती है कनक। मेरा दामाद जब मेरे यहाँ आ कर रहता है तब एक रात भी ऐसी नही जाती जब दोनो मे झगडा न होता हो, लेकिन इसमे क्या ? वह क्या मेरी बेटी को किसी पति से कम प्यार करता है ? कभी नही। अभी पिछले हफ्ते, बुधवार की ही तो बात है, सुनो, दामाद एक ऐसी सुन्दर नथ ला कर आया कि कुछ मत पूछो'।

सुखिया की माई अपने दामाद के स्वभाव का और भी परिचय देती कि उसे बीच मे ही रोक कर कनक ने कहा 'तुम ठीक ही कह रही हो, सुखिया की माई ! लेकिन यहाँ की बात तो कुछ और ही है। राजू दादा और एक लडकी से ब्याह करना चाहते है। वही जो उस गाँव से आया था उसी की लडकी से। अब तुम शायद समझ गई होगी कि वे बार बार मातगिनी को क्यो दुख दे रहे है। सुखिया की माई, अब मेरी सखी कभी भी अपने स्वामी के यहाँ गृहस्थी करने नही जाएगी। और ठीक भी तो है। वहाँ इसे अब अपमान, गाली, लाँछना के सिवा और क्या मिलेगा ? सहने की भी तो एक सीमा होती है। लेकिन अब प्रश्न है कि यह जाए कहाँ ? और कही तो इसे ठिकाना भी नही है। अगर मायका पास होता तब भी कोई चिन्ता न थी। कम से कम मायके वाले तो इसे छोड न देते।'

सहृदय बूढी कह उठी, 'सचमुच इस बेचारी की तो किस्मत ही फूट गई। तू ठीक ही कहती है कनक। ऐसी हालत मे इसका वहाँ जाना तो ठीक नही है। वह क्या सचमुच दूसरा ब्याह करना चाहता है ? ऐसी चन्द्रमुखी सी पत्नी उसे कहाँ मिलेगी। फिर एक कच्ची उम्र की छोकडी को घर लाने से लाभ भी क्या है ? क्या

वह गृहस्थी कर सकेगी ? नही बेटी तुम अब वहाँ मत जाना बल्कि अपनी बहन के घर जाकर देखो वह क्या कहती है ?'

कनक ने कहा, 'यह भी तुमने क्या खूब उपाय बताया सुखिया की माँ ? बहन के घर जाने का रास्ता भी तो इसके लिए बन्द है। यही तो मुसीबत है।'

इन बातो को सुनकर मातगिनी ने घृणा और शर्म से सिर झुका लिया। कनक बोलती रही, 'पिछली बार श्राद्ध के समय राजूदादा को माधव बाबू ने निमन्त्रण नही दिया, इसके लिए यह अपनी बहन से खूब झगडी थी तब से दोनो मे एक तरह से बोलचाल बन्द है। हाँ, मे अपने घर मे इसे रख सकती थी, पर तुम तो जानती ही हो, सुखिया की माई, कि हम लोग कितने गरीब है। इसे मै ले जाकर रखूँ और यह उपवास कर के मरे यह क्या ठीक होगा ?'

सुखिया की माई ने माथा पीट लिया। बोली, 'मौत है बेचारी के लिए और क्या ? तुम भी निरी मूर्ख हो बेटी ! ऐसे स्वामी को लेकर क्या बहन से झगडना ठीक था ? अगर मेरा दामाद होता तो क्या इसे ही भला-बुरा कहकर मै चुप हो जाती ? उसके माँ-बाप को भी हजार बाते सुनाती। खैर, उसे मरने दे, तू मेरे साथ चल।'

फिर मातगिनी की ओर घूम कर बोली, 'मेरे साथ चल। जब तक तुम्हारा जी चाहे, मेरे मालिक के यहाँ रहना। बडी मलकिन तुम्हे बहुत प्यार करती है। तुम्हे देख कर वह खुश होगी। फिर जब तुम्हारे पति का गुस्सा ठण्डा हो जाय—और जल्दी ही वह ठण्डा भी हो जाएगा—जब वह खुद आकर खूब आरजू-मिन्नत कर के लिवा ले जाय तभी जाना। और देखो, अब आसानी से इसकी बातो मे आना भी मत। अब वह जब तक अच्छी तरह अपना कसूर न मान ले। खुशामद न करे तब तक जाने का नाम मत लेना।'

कनक खुश होकर बोली, 'तुमने ठीक ही कहा सुखिया की माई ! यह अभी तुम्हारे ही साथ जाए। तुम्हरा क्या विचार है दीदी ? तुम्हारा इस समय सुखिया की माई के साथ जाना ही ठीक रहेगा। मै जानती हूँ कि बडी मालकिन तुम्हे खूब चाहती है। तेरे जाने से सचमुच उन्हे खुशी ही होगी। तुम्हारा क्या ख्याल है दीदी ?'

मातगिनी मन ही मन माथे पर बल डाले हुए खीझ रही थी। पर कनक ने उसकी ओर ध्यान ही न दिया। वह कहती रही, 'हाँ, हाँ, यह जाएगी तुम्हारे साथ। तुम जाओ, नहा लो सुखिया की माई। जाओ देर मत करो, यह भी अभी ही तुम्हारे साथ चली जाएगी।'

सुखिया की माँ सतुष्ट हो कर नहाने चली गई। तब मातगिनी ने कहा, 'कनक, क्या यह भी मेरे भाग्य मे लिखा था ?'

कनक ने थोडा उत्तेजित होकर कहा, 'अब नही मत करना दीदी ! तुम्हे मेरे सिर की कसम है। अभी इसके साथ जाओ। शाम को आकर मै तुमसे भेट करूँगी बस अब तुम कुछ मत बोलना।'

मातंगिनी से उत्तर पाने की प्रतीक्षा किए बिना ही कनक अपनी कलसी उठा कर नहाने चली गई ।

|१३|

मथुरा घोष का निवासस्थान देहात की समृद्धि के साथ सफाई और सुन्दरता के अभाव का एक बढिया नमूना है ।

बहुत दूर-दूर तक फैले धान के खेतो के पार पेडो की पत्तियो की झरी से इस घर की छत पर कार्निस और काली दीवार दिखाई देती है । नजदीक आने पर दिखाई देता है कि जगह-जगह दीवार के पलस्तर की परते जीर्ण ईटो को छोडकर नीचे गिर चुकी है और जो नही गिरी है वे गिरने को तत्पर है । कही-कही किवाड का एक पल्ला जो रग उतर जाने के कारण फूहड लग रहा है, केवल कबजो के सहारे ही झूल रहा है । किसी-किसी खिडकी के पल्ले मे कब्जा का नाम निशान भी बाकी नही है । सस्ते किस्म का टाट का टुकडा उन पल्लो की जगह झूल रहा है । उस बडी इमारत के बाहरी ओर बहुत थोडी सी जगह पर चूने का पलस्तर बाकी बचा है । पलस्तर से शोभित जो थोडा सा हिस्सा था, उसमे स्वय मथुरा घोष रहते न हो, पर उस पर उन्ही की तरह महामहिमान्वित किसी दूसरे आदमी ने अधिकार कर रखा था । यह ढूँढने पर विनसियन खड़खड़ियो के कुछ टुकड़े अवश्य मिल जायेगे । लेकिन इतनी बडी इमारत इन छोटे-छोटे अलंकारो से सजने वाली न थी । इमारत के अधिकाश भाग मे पलस्तर न रह जाने के कारण वहाँ ईटो पर धूल और काई जम गई है जो एक भयानक दृश्य उपस्थित कर रही थी । कही-कही दीवाल की ईटों के बीच एक दो बरगद या पीपल के पौधे या घास उग आई थी ।

इस इमारत के चार हिस्से थे, सभी बिल्कुल अलग-अलग । सामने ही बडा भारी दरवाजा है जिसके दोनो पल्लो पर लोहे का पत्तर मढा है और उस पर तारकोल पुता हुआ है । इसके बाद लम्बा चौड़ा आँगन है । आँगन तीन ओर से दो तल्ले बरामदो से घिरा है । बरामदे ज्यादा ऊँचे नही है । फाटक के ठीक सामने एक हाल है । जिसके पाँच बड़े-बडे दरवाजे है । हाल के अन्दर व बाहर चूने की दस्तकारी है लेकिन कई बरसो की लगातार बरसात ने उस दस्तकारी पर स्याही पोत दी है । खासकर वहाँ, जहाँ पानी निकलने के लिये पाइप लगे है । इस हाल के भीतर जाने के लिये भूल-भूलैया की तरह घुमावदार अधेरे ओर सीलन से भरे कई कमरे पार करने पडते है । इमारत के दूसरे हिस्से के बीच मे खुला आँगन है । उसके चारो ओर भी बरामदे है ।

चुने की चित्रकारी यहाँ भी की गई है लेकिन काल के प्रकोप ने खम्भो को नगा कर रखा है। बच्चो ने भी जगह-जगह लाल, नीले, पीले और काले आदि इन्द्रधनुषी रगो से दीवारो को भर रखा है। पान खाकर यहाँ-वहाँ थूकने से या किसी चिन्ताहीन नाजुक दासी के हाथो से गिर कर मटकी फूट जाने से तथा पान बनाने वाली दासी के दीवार मे हाथ पोछने के दागो की चित्रकारी सी बन गई है। कोयले की सहायता से बनाए गए बहुत से चित्र चित्रकारो की कल्पना व रग के कमाल के अभाव मे भी दुष्ट बालको के समय नष्ट करने की अपेक्षा बुद्धिमती बालिकाओ के फालतू समय के सदुपयोग का प्रमाण दे रहे है। आँगन मे ईटो या टाइल का फर्श नही है। वहाँ धरती माता सभी प्रकार के घास फूस को जन्म देकर अपनी ही गोद मे उनका पालन कर रही है। दुनिया भर का गन्दा पानी आँगन के एक कोने मे जमा है।

यही से एक तग गलियारे से होकर एक कम चौडे पर मजबूत दरवाजे को पार कर तीसरे भाग मे पहुँचा जा सकना है। इसी हिस्से मे रसोईघर है। दोनो ओर तरह-तरह की इकहरी कोठरियाँ है। बीच मे बडा सा आँगन है। घास-फूस यहाँ कुछ अधिक ही है। वहाँ साग-सब्जी, पर नित्य ही अत्याचार होने का प्रमाण भी मौजूद है। धुएँ की कालिमा यहाँ युग-युगो से जमती चली आ रही है।

इसी के पीछे चौथा हिस्सा है। लेकिन तीसरे हिस्से की ओर से इसमे प्रवेश करने के सभी रास्ते बन्द हैं। घर की औरतो मे से बहुत कम को इस हिस्से मे आने का अधिकार प्राप्त है।

पुरुषो मे यह हिस्सा गोदाम—महल के नाम से जाना जाता है। इसमे घुसने का एक ही रास्ता है। किवाड के पल्ले मोटे और मजबूत है। इसके तीन ओर ऊँची ऊँची दीवार है ताकि कोई इसमे न आ सके। दीवारो पर काँच के टुकडे गडे है इससे आना असम्भव है। चौथी ओर कोठरियो की दीवार है जी मजबूत और मोटी है। इनके दरवाजे खिडकी जेसे छोटे है। लोग तो यही जानते है कि सामान रखने का गोदाम-घर है। घर के एक ओर सुपारी का बाग है। बीच-बीच मे मौलश्री के पेड है। चारो ओर-ईटो की दीवार से घिरा एक तालाब है। वह हमेशा पानी से भरा रहता है। इस हिस्से को घर का छोटा द्वार कहते हैं। इस भाग मे रसोईघर के पास से जा सकते है। इसके बाद का एक और दरवाजा पार करते ही घर से मिला बाग है।

इसी इमारत के दूसरे महल की दूसरी मजिल पर जाने की सीढी बहुत तग है, अंधेरी भी। यही है मथुरा घोष का शासन—कक्ष। इस कमरे की दीवारो पर साफ-सुथरी चूने की दस्तकारी है। लेकिन ऐसी भी बात नही कि कहीं-कही दाग न लगा हो। कमरे के एक कोने मे सागौन लकडी का एक पलग पडा है। डोरिये की जाली का पर्दा चारो ओर जमीन तक लटक रहा है। लकडी की कई बडी-बडी आलमारिया भी है। काल के प्रहार और लापरवाही के कारण उनकी पालिश उड गई है। ये आलमारियाँ

दूसरी ओर की दीवार के साथ खडी है। एक-दो दराजवाली लिखने की मेज, कुछ साधारण से गाँवो मे बजाए जाने वाले बाजे, सदूक जिनका ऊपरी पल्ला चारो ओर से मोटे पीतल मे पत्तरो से मढा है और बीच-बीच मे चन्दन की लकडी के टुकडे जडे है। इतना ही इस कमरे का सामान है। एक और अगल-बगल दो तैल-चित्र लटक रहे है। एक चित्र है काली माई का और दूसरा है दुर्गा माँ का।

आमने-सामने की अन्य दो दीवारो पर तरह-तरह के विदेशी चित्रकला के नमूने लटके है लेकिन वे चित्र काली व दुर्गा के चित्रो की भाँति ऊचे नही है। कुमारी माता मेरी और उसके बच्चे से सम्बन्ध रखने वाले शिल्पी की प्रतिभा कौन सी कला-कौशल प्रकट करना चाहती है यह समझ मे नही आता। इसी कमरे मे एक खिडकी के बिल्कुल पास एक रमणी बैठी है। उम्र २४ वर्ष के लगभग। चेहरे व शारीरिक गठन से लगता है कि वह अभी भी सुन्दर है। रग सावला, आँखें बडी-बडी और पुतलियाँ भौरे की तरह गहरी काली है। आँखो मे हर समय चमक रहती है। चेसेरा भी हँसी से चमकता। इसी लिए शरीर पर मात्र एक साडी भी अच्छी लगती है। उसने घूँघट नही रखा है। नहाने के कारण गीले चमकीले हो रहे बाल पीठ पर बिखरे है। अस्तव्यस्तता के कारण वह और भी अच्छी लग रही है आमतौर से औरते जो भारी गहने पहनती है उनकी जगह वह हल्के व सोने के गहने पहने है। पॉव की पायल बार-बार झनकार उठती है। उसकी उँगलियाँ छोटे बच्चो के बाल बाँधने की डोर गूँथने मे व्यस्त है। एक दस वर्ष की लडकी उसके पास ही बैठी थी। उस बालिका का सुन्दर चेहरा उक्त वयस्त लडकी के चेहरे सा ही दिखता है। उन दोनो के पास थोडा हट कर एक वयस्क स्त्री विनम्र भाव से चुपचाप बैठी है। उसे देखकर लगता था कि वह किसी गहरे दुख के कारण अशात सी है।

सुखिया के भाई का सासो की दुनिया मे बहुत ऊँचा स्थान है। सुखिया के भाई ने अपना वायदा पूरा करके दुविधा मे पडी मातगिनी को अपनी मालकिन यानी मथुरा घोष की प्रथम पत्नी के पास पहुँचा दिया था।

मथुरा की स्त्री और मातगिनी बैठी आपस मे धीरे-धीरे बाते कर रही थी। कुछ दूरी पर बैठी सुखिया की भाई अपने आप बडबडा रही थी। कनक की झूठी गप्प से सुखिया की भाई को अभागिन व भगाई हुई मातगिनी के बारे मे जितना पता लगा था उससे बढकर उसने मातगिनी की दुर्दशा का वर्णन सुना रहा था। इस कुटिनी के सामने असलियत खोलने की मातगिनी की हिम्मत न पडी। मातगिनी चुपचाप से बैठी सोचती रही। इच्छा न होने से भी वह बिना किसी प्रतिवाद के सब बातें सुनती रही। उसने मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि समय आने पर वह इस नव परिचिता स्त्री से अपनी असलियत बता देगी लेकिन यह तो छिपाना ही पड़ेगा कि उसका आदमी इतनी नीचता पर उतर आया है।

मथुरा की स्त्री ने एक तरह से उसे अपना बना लिया था। वह मातगिनी को आश्रय ही नही दे रही थी बल्कि सदा अपने पास रखना चाहती थी। मातगिनी को

इस घर मे रखने से पहले उसे एक काम करना पडेगा। अपने पति से आज्ञा लेने के लिए उन्हे एक बार भीतर आने का अनुरोध करने को उसने सुखिया की भाई के बाहर भेजा। कुछ देर बाद स्वामी जब भीतर आए तो गृहिणी ने माथे पर आँचल खीच लिया। अब वहाँ ठहरना अनुचित समझ मातगिनी बाहर चला गई। लेकिन इसके पहले ही गृहस्वामी के कठोर नेत्रो का परिचय और हैरानी की एक दृष्टि जेसे उसे दिखाई पडी।

|१४|

मथुरा घोष की बडी पत्नी का नाम तारा था और छोटी पत्नी का नाम चम्पा जो तारा से सात-आठ साल छोटी थी। देह की गठन और सुघराई और रग मे चम्पा अपनी सौत से हर प्रकार से बढ चढ कर थी। वह स्वभाव से ही सुन्दरता का माया जाल फैलाने मे निपुण थी। गर्व से भरी, हुक्म चलाने की आदी चम्पा घर की स्वामिनी बन कर सब पर शासन करती थी। घर के सब लोग उससे डरते थे। शायद मन ही मन उसे नापसन्द भी करते थे। उसके रूखे स्वभाव के कारण सभी जान चुके थे कि ऊपरी सौन्दर्य के साथ इसके हृदय मे दयाभाव तनिक भी नही है। यही कारण था कि तारा के बडे होने के बावजूद भी छोटी चम्पा ही वास्तव मे घर की स्वामिनी थी। मथुरा घोष के स्वभाव मे प्यार करने की इच्छा जैसी कोई चीज न थी लेकिन सौंदर्य का मोह सभी पर अपपा प्रभाव डालता है। इसी कारणवश मथुरा घोष भी अपनी छोटी पत्नी के सौदर्य पर लट्टू था। उसकी सुन्दरता के सम्मुख मथुरा घोष ने आत्मसमर्पण कर रखा था। यह कहना तो अनुचित होगा कि मथुरा घोष चम्पा को प्यार करता था, बल्कि कहना होगा कि वह चम्पा पर अध भाव से अनुरक्त था।

तारा के स्वभाव मे एक ऐसा धैर्य और माधुर्य था कि उस पर क्रोधित होने का प्रश्न ही नही उठता। तारा की ओर से मथुरा घोष यद्यपि निराश था पर उसके प्रति वह कोई बुरा व्यवहार भी नही कर पाता था।

अपने घर मे राजमोहन की स्त्री को जगह देने की अनुमति स्वामी से प्राप्त करने मे तारा को अधिक मेहनत नही करनी पडी। उत्तर मे मथुरा ने यही कहा कि ईश्वर की कृपा से घर मे अनाज की कमी नही है और जब तुम कहती हो कि उसका स्वभाव और चरित्र अच्छा है तब जब तक जी चाहे वह यहाँ रह सकती है। लेकिन सरल स्वभाव की तारा यह न समझ सकी कि इसका परिणाम विपरीत होगा। चम्पा को यह कदापि रुचिकर न था कि सौत की इच्छा के कारण किसी पराई स्त्री को घर मे जगह दी जाय।

शाम हो गई थी और मातंगिनी के दुर्भाग्य से जो दिन अनेक कष्टो का सदेश लेकर आया था अब यह भी शाम की ओर अग्रसर होने लगा था। तिमजिले के खुले बरामदे मे बैठी तारा अपनी बेटी का जूडा बाँधने मे व्यस्त थी लेकिन छोटी माँ के मन के अनुसार बना नही पा रही थी। पास बैठी मातगिनी हूँ-हाँ करती हुई चम्पा के उबाने वाले तथा अशिष्ट प्रश्नो का बडी विवशता से उत्तर दे रही थी। नाऊन से पावो म महावर लगवाती हुई चम्पा मातगिनी से लगातार प्रश्न करती जा रही थी। मातंगिनी समझती थी कि उसके पति ने दया कर के आश्रय दिया है पर जी मे आने पर किसी भी समय उसे घर से निकाल भी सकता था। वह विवश आश्रिता उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर देने की अनिच्छा भी कैसे प्रकट कर सकतो थी ? अत मातगिनी बडे ही विनम्र भाव से सक्षेप मे उत्तर दे रही थी लेकिन वह सुन्दरी अपने गर्व पर चोट समझ कर मन ही मन क्रोधित होती जा रही थी।

तभी मातगिनी को पुकार कर तारा ने कहा, 'देखती हो, दोपहर से कोशिश करने पर भी मै इसका जूडा ठीक से बाँध नही पा रही हूँ। शायद तुम्ही अच्छा बाँध सको। अगर बाँध सको तो मै इस काम से छुट्टी पा लूँ।'

मातगिनी ने बालिका का जूडा बाँधना शुरू करते हुए कहा, 'मुझे भी अच्छी तरह बाँधना नही आता, पर कोशिश कर सकती हूँ।'

लड़की के पीछे बैठ मातगिनी ने चोटी खोल कर नये सिरे से जूडा बाँधना शुरू किया।

चम्पा ने बीच मे ही रोक कर कहा, 'यह तो पश्चिमी ढग से जूडा बाँध रही है, इससे अच्छा तो पहले वाला ही था।'

मातगिनी ने उत्तर दिया, 'इस देश के रिवाज के तरह यदि मै बाँध सकूँगी तो यह सुन्दर चेहरा और भी निखर जायेगा।'

चम्पा ने कहा, 'नही वह सब रहने दो। गृहस्थ की बेटी को कुलटा की तरह इस प्रकार के जूड़े नही चाहिए।'

अब तारा ने टोका, 'कुलटा स्त्री भी यदि सुन्दर हो तो कोई उसके सौन्दर्य की अवहेलना नही कर सकता। तुम जो कह रही हो उस दृष्टि से तो तुम्हे ही अपने सुन्दर चेहरे को बदसूरत बना कर रखना चाहिए। क्या कुलटा स्त्रियो के सिर पर हमसे अधिक बाल होते है ?'

फिर तारा को सबोधित कर के बोली, 'तुम्हारे जी मे जैसा आए वैसा ही जूडा बँध लो।'

चम्पा कुछ न बोली। लेकिन उसके उदास चेहरे से यह जान पडता था कि तारा के मुँह से अपने रूप की प्रशंसा सुन कर भी वह अपने मन की जलन बुझा न पा रही थी। तभी सीढ़ी पर भारी कदमो की आवाज सुनाई पडी और मथुरा घोष

आकर बरामदे मे खडे हो गए। चम्पा ठोढी तक घूँघट खीच कर जल्दी से चली गई। तारा ने भी घूँघट खीच लिया और जाने के लिए उठ कर फिर बैठ गई। मातगिनी अपना पूरा शरीर ढँक कर सिमट कर खड़ी हो गई। मथुरा घोष अपनी बेटी से बातें करने लगे।

दरवाजे की आड मे खडी चम्पा गौर से देख रही थी कि बेटी से बातें करते हुए उसके पति की प्यासी आँखे बार-बार कपडो से ढँकी खडी मूर्ति पर टिक जाती थी। मथुरा घोष के इधर आने के बाद सभी औरते अपने-अपने काम मे लग गई। सिर्फ चम्पा पति को देख रही थी। जब पति कमरे म आए तो चम्पा वही खडी मिली।

चम्पा जानती थी कि उसके पति उसी के कमरे मे आएँगे। उसे स्वय उनसे मिलने की कोई जरूरत न थी। लेकिन पति यह न समझें कि उसी के लिए वह कमरे मे आई है अत वह पान डिब्बा खोलकर बैठ गई। डिब्बे से वह पान के साथ खाने के कई मसाले निकालने लगी। कमरे मे आते ही मथुरा घोष ने फर्श पर बिखरे चाँदी, सीग और लकडी की कई डिबियाँ को बिखरा देखा। उन्हे लगा कि चम्पा को उनके आने का पता नही चला क्यो कि अभी भी उसका घूँघट नीचा था और उसकी पीठ ही पति की ओर थी। वह दालचीनी, इलायची, लौंग और जायफल की छोटी छोटी डिबिया कर्श पर फेकती जा रही थी। थोडी देर चुप रहने के बाद मथुरा घोष ने कहा, 'अरे, फिर क्या हो गया ? लगता है कि आँधी का वेग फिर बढ गया है।'

बिना कुछ बोले चम्मा फर्श पर बिखरी डिबियो को समेटने लगी।

मथुरा ने कहा, 'अच्छा, यह तो बताओ अब कि मेरे किस कसूर की यह सजा है।'

अब भी कुछ जवाब दिए बिना ही चम्मा ने डिबियो को समेट कर बड़े डिब्बे मे रखा और बद करके इस भाव से उठ गई जैसे वह जो कुछ ढूँढ रही थी वह उसे मिल गया।

मथुरा ने उसका हाथ पकड कर रास्ता रोकते हुए कहा, 'ऐसा नही हो सकता, प्यारी! इस लम्बे घूँघट की यहाँ क्या जरूरत है ?' कहते हुए उसने चम्पा के सिर से घूँघट उतार दिया।

चम्पा ने अब बडी रुखाई से उत्तर दिया, 'मेरे काम मे क्यो रोड़ा अटका रहे हो ?'

'बताओ तो जरा कि मुझसे क्या कसूर हुआ जो तुम मुझसे यो खफा हो ?'

चम्पा ने केवल इतना ही कहा, 'मुझे छोडो और जाने दो।'

चम्पा का जाने का मन होता तो अब तक वह आसानी से चली गई होती, क्योकि पति ने बहुत हल्के ढग से उसका हाथ पकड रखा था और उससे छूट कर आगे बढ जाना तनिक भी कठिन न था। फिर उसने यही कहा, 'छोड़ो, मुझे काम है।'

'रानी साहिबा के लिए भी कोई काम है ?' मथुरा ने हस कर कहा।

चेहरे पर क्रोध ला कर उसने कहा, 'मुझे पान लगाना है।'

मथुरा ने कहा, 'तो यही पर लगाओ न ! मुझे भी एक दो बीडे दे देना।'

चम्पा ने फिर कहा, 'छोडो भी, मुझे जाने दो।'

मथुरा ने प्यार से कहा, 'क्यो, क्या कसूर किया है मैने ? बताओ, मै अभी प्रायश्चित करूँगा।'

प्यार आनन्द लेती हुई और ऊपर से कठोर बनी चम्पा उसी तरह बोली, 'तुमसे भला क्या कसूर हो सकता है ! और मै होती भी कौन हूँ, तुम्हारा कसूर बताने वाली ? नही, नही ! तुम्हारे जी मे जो आवे, तुम वही करो, कौन भला उसे कसूर समझेगा ? फिर मै ही किस गिनती मे हूँ ?'

क्षथुरा बोले, 'अरे, यह तो सचमुच भयानक क्रोध है ! अब प्यारो यह तो बताओ कि मुझे क्या प्रायश्चित करना है ? मै अभी कर देता हूँ।'

गुमान से भरी चम्पा बोली, 'जाओ, उसी के पास जाओ, जिसे तुम प्यार करते हो ! वही जो बतावे वही करना मुझ जैसी अभागित ने तुम्हारे घर मे रहने के सिवा और कौन-सा सुख पाया है ? और फिर मेरी बात तुम सुनोगी भी क्यो ? फिर तुम्हारे घर मे तो ऐरे गैरे सभी रह ही सकते है।'

अब मथुरा समझ गए कि मामला क्या है। बोले, 'ऐसी क्या बात हो गई ?' वह कहना चाहते थे कि सौत के कहने पर उस गरीब को मैने आश्रय दिया है इसीलिए यह गुस्सा है। पर वह चुप रह गया।

लेकिन चम्पा क्यो चुप रहती ? वह कहने लगी, 'यह तुम्हारा घर है, तुम जिसे चाहो अपने घर मे आश्रय दे सकते हो।' चम्पा ने इस ढंग से जवाब दिया कि लगे कि उसका गुस्सा अभी तक ठण्डा नही हुआ है और उसने पति यह जान गए है कि वह क्यो गुस्सा है, इससे वह मन ही मन प्रसन्न थी।

अब मथुरा ने गम्भीरता से कहा, 'यह औरतो का गुस्सा छोड़ो और मुझसे साफ-साफ बताओ कि उस अनाथ औरत को घर मे जगह देने से तुम्हे क्या आपत्ति है ?'

चम्पा बोली, 'अनाथ औरत है ? पता लगाया है कि क्या उसने कोई बुरा काम किया है जो घर से निकाल दी गई है ?

'लेकिन उसने बुरा काम ही किया है, यह तुम कैसे कह सकती हो ?'

'तो क्या तुम समझते हो कि बिना किसी कारण के ही उसे घर से निकाल दिया गया है ? अपनी बीबी को कोई इस तरह बिना कारण ही घर से नही निकाल देता।'

'हाँ, हो सकता है कि उसी का कसूर हो, पर यह भी तो हो सकता है कि उसके पति की ही ज्यादती हो ? और कारण या कसूर चाहे जो हो या जिसका भी हो पर

उसे आश्रय देना किसी प्रकार भी अन्याय नही कहा जा सकता ।'

फिर नाराज होकर चम्पा ने जवाब दिया, 'तो तुम वही करो न जो तुम चाहते हो। मेरी राय की फिर क्यो आवश्यकता है ?'

'फिर वही ! छि ! औरतो का हृदय तो और भी दया से भरपूर होना चाहिए ।'

'दया के योग्य हो तो फिर कौन दया न करेगा ? अच्छे बुरे सभी पर दया करनी चाहिए।'

'लेकिन तुम कैसे कह सकती हो कि वह दया के योग्य नही है ? अभी तक तो सभी लोगो ने उसके अच्छे स्वभाव की ही बात कही है ।'

'सभी लोगो ने कहा है ?' अपनी सुन्दर और बडी नथ को झटका देती हुई बोली चम्पा, 'सुकी की मा की अट-संट बकवास से ही तो तुम्हे सब पता चला है । केवल उसके झूठे प्रमाण को लेकर सभी लोगो का बहाना बना कर तुम यकीन करते हो ?'

मथुरा ने ताजुब से पूछा, 'क्या तुमने, उसके बारे मे किसी को भी अच्छा के सिवा बुरा कहते सुना है ?'

'औरते के बारे मे मर्दो की अपेक्षा औरते ज्यादा अच्छी तरह सब कुछ जानती है।''

'बताओ न कि तुमने क्या सुना ?'

चम्पा ने फिर क्रोध का सहारा लेकर कहा, 'औरतो की गुप्त बातें जानने के प्रयत्न मे तुम्हारी शराफत क्या बाधा नही देती ?'

अब मथुरा घोष झुँझला गया। असली उद्देश्य चाहे जो हो लेकिन मथुरा की इच्छा थी कि मातगिनी उसी के घर मे रहे। जो आदमी सब काम अपनी ही इच्छा से करने का अभ्यासी हो, अपनी पत्नी को कही बाधा बनते देख उसका क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। अत उसे अपनी पत्नी पर अब क्रोध आ गया। फिर भी कुछ देर तक चुपचाप सोचने के बाद उसने कहा, 'यह तो तुम कम से कम मानोगी ही कि जाति बिरादरी की औरत को यो घर से निकाल देने से दूसरो की नजर मे कितना गिरना और कितना अपमानित होना है। तुम्हे मालूम ही है कि उससे हमारा दूर का रिश्ता भी है। उसके प्रति क्या हमलोगो का कोई फर्ज नही है ?'

'हाँ, रिश्ता होने से वह रिश्तेदारिन तो अवश्य बन गई, पर क्या बहन के घर उसे आश्रय नही मिला क्या ? सगी बहन से ज्यादा हम लोग प्रिय है ? वे लोग उसे इससे ज्यादा ही अच्छी तरह जानते है, लेकिन क्या वह वहाँ आश्रय माँगने नही गई ?'

मथुरा ने कठोर होकर कहा, 'तुम बडी नीच हो ! पृथ्वी पर जो बेसहारा है उसे भी सहारा नही दोगी ? तुम्हे उस पर भी गुस्सा आता है। मेरे घर मे क्या खाने-पीने की कमी है ?'

अब चम्पा ने रूठ कर कहा, 'तुम चाहे जो भी समझो पर यदि वह यहाँ रहेगी

तो मै यहाँ नही रहूँगी। मै अपने मायके चली जाऊँगी। जिस घर मे ऐसी औरत रहे वहाँ मेरा रहना मेरे पिता कभी पसन्द न करेंगे।'

'यह तुम क्या कह रही हो ?

'नही, मुझे मेरे मायके भेज दो।'

अब मथुरा जरा नर्म होकर बोला, 'तुम जानती हो कि मै तुम्हारे बिना नही रह सकता। यह बचपना छोडो।'

'तब उसे यहाँ से भगा दो। यहाँ से निकालने मे तुम्हे क्या आपत्ति है ? यह तुम्हारी क्या लगती है ?

'अच्छी बात है, लेकिन सोचने के लिए थोडा समय चाहिये।'

इतना कह कर मथुरा उठ कर बाहर चले गये। मन मे सोचा कि जब तक चम्पा का क्रोध ठण्डा नही पडता तब तक उसे किसी तरह भुला-बहला कर रोक रक्खेगा।

उस दिन शाम को जब वह फिर उस कमरे मे आया तो उसने कुछ अजीब रग-ढंग वहाँ देखा। उसकी सेज पर काफी दूर, कमरे के एक कोने मे, दूसरे कमरे से एक तख्त लाकर उस पर नया बिछौना बिछाया गया था। उस दूसरे बिछौने को देख कर उसने पूछा, 'यह किसके लिये है ?'

बिना कुछ उत्तर दिए ही चम्पा बिछौने पर पड कर सो गई।

मथुरा की वह रात कैसी बीती, यह तो वही जानता है। अगले दिन सबेरे नीद टूटने पर बैठक मे जाकर उसने देखा कि राजमोहन उसकी प्रतीक्षा मे बैठा है। उसने अपना परिचय दिया। उसने मथुरा से अपने आने का उद्देश्य बताया कि खबर मिली है कि उसकी पत्नी वहाँ है। एक मनमुटाव के कारण घर छोड कर चली आई है। उसे लौटा ले जाने मे वह उसकी मदद चाहता है।

पति को उसकी पत्नी लौटा देने का आग्रह मथुरा टाल न सका। चम्पा को खुश रखने और घर की शान्ति को बनाये रखने के लिए उसे और कोई दूसरा रास्ता भी दिखाई न दिया।

जब मातगिनी को राजमोहन के आने की खबर मिली तो उसका खून जम कर बर्फ हो गया। मुर्दे की भाँति वह सुकी के भाई के पीछे-पीछे चली गई। उसे ठीक से घर पहुँचा आने का भार सुकी की भाई पर ही था। तारा ने पिछवाडे के दरवाजे तक उसे पहुँचाया। सम्भव होता तो कुछ दूर तक वह वह उसे पहुँचा आती। उसने उसे बडे दुखी मन से विदा किया और पति के साथ हुए मनमुटाव को भुला कर सुख-शाति के साथ रहने का उसे बार-बार उपदेश दिया।

| १५ |

राधागंज का दक्षिणी भाग बडा ही भयानक है। घनी घास और दूसरे पेड़-पौधो ने उसे दुर्गम बना रखा है। विषधर सर्पों की यह अधकारपूर्ण आवास-भूमि भी मनुष्य के पद-चाप से चौक उठती है। यहाँ पगडडी खोज निकालने के लिये निरीक्षण-शक्ति की आवश्यकता है। हर रोज के आने-जाने वालो की बात तो दूसरी है। वे तो वन के भीतर बनी कुटी तक भी पहुँच जा सकते है। वहाँ बनी कुटिया का छप्पर झाडियो से थोडा ही ऊँचा था। झोपडी का फर्श भी सीलन से भरा था। बाँस और टट्टर की बनी दीवारें थी। फर्श पर भी दो-तीन टट्टर ऊपर-नीचे पडे हुए थे। एक कोने में खाना बनाने के बर्तन काले होकर पडे थे, जैसे वे इसी तरह काम मे लाए जाते हो।

उस समय सबेरा नही हुआ था। सिर्फ घने पत्तो की आड़ मे से किरणें वनभूमि मे यहाँ-वहाँ दिखाई पड़ रही थीं।

उस झोपडी मे रहने वाले केवल दो व्यक्ति थे। उनके शरीर का रंग पक्का और डीलडौल मजबूत था। वे कमर मे कपड़ा लपेटे थे। गाजे की बदबू से कमरा भरा था। वे दोनो पारी-पारी सें गाँजा पी रहे थे। उस सुनसान जगह मे भी वे बहुत धीरे-धीरे बाते कर रहे थे।

एक ने पूछा, 'इससे हमारा क्या काम है ?' यह भीखू की आवाज थी।

दूसरे ने कहा, 'एक मोटी रकम चाहिये।' यह डाकू सरदार की आवाज थी, 'पूरे पाँच हजार रुपये ? एक रात की कमाई के हिसाब से कुछ बुरा भी नही। क्या कहते हो ? फिर हिस्सेदार भी तो कोई नही जो गले पड सके।'

भीखू जैसे खुशी से नाच उठा। बोला, 'तो रास्ते मे ही उस वकील का काम तमाम करके दस्तावेज हथिया लेना चाहिये। उसी के साथ वह रहेगा। फिर दूसरी जगह से उसे हथियाना क्या आसान होगा ?'

सरदार ने कहा, पर राजमोहन की स्त्री ने तो सब चौपट कर दिया। राजमोहन के साथ हम लोगो की बात उसने पूरी सुन लिया था। माधव को यह पता लग गया है कि हम उस दस्तावेज के फेर मे है। फिर क्या वह सतर्क और सावधान न होगा ? वह जायेगा तो उसके साथ सिपाही भी तो होगे। और हमलोग तो दो ही जन है। अब आया तेरी समझ मे कि हम इस प्रकार दूसरे ढग से दस्तावेज हथियाने की कोशिश क्यो कर रहे है

भीखू बोला, 'सरदार ! लेकिन यह कैसे सभव होगा ? दो आदमियो के बूते पर चढाई करने से भला क्या होगा ?'

सरदार ने कहा, 'वह काम तो मै करूँगा। जहाँ लाठी से काम नही होता वहाँ अक्ल काम करती है।'

भीखू चिलम भर कर धुआँ उडाने लगा। फिर थोडी देर चुप रहने के बाद वह बोला, 'मेरी तो समझ मे नही आता कि तुम यह सब काम कैसे कर लोगे ? जिसके लिए यह काम करना है क्या वह पाँच हजार मे से एक हजार भी पेशगी न देगा ? रुपया तो जब हाथ मे आ जाय तभी आया समझो। रुपया हाथ मे आ जाने पर हम अगर निकल भी भागे तो हमे फिर कौन पकड सकता है ?'

अब गम्भीर होकर सरदार ने कहा, 'अरे भाई ! वे लोग भी कच्ची गोली नही खेलेंगे। दस्तावेज हमारे हाथ आ गया है। यह देख कर ही वे एक हजार नही, दो हजार और अधिक यानी तीन हजार देंगे। बाद मे जब मुकदमा जीत जाएँगे तब दो हजार और मिलेगा। और वसीयतनामा नष्ट कर देने पर ही उनकी जीत होगी, यह निश्चित है।'

'तो फिर क्या है, मै भी तो सुनूँ ?'

'अब नही, तू पहले से जान लेगा तो काम पूरा न होगा। राजमोहन बडा धूर्त है, वह अगर तुझसे बात उगलवा लेगा तो सब काम धरा-धराया पडा रह जायेगा। बस तू मेरी छाया बन कर मेरे पीछे लगे रहना तभी काम बनेगा।'

सुन कर भीखू उत्तेजित होकर बोला, 'क्या राजमोहन मुझे बेवकूफ बना लेगा ? पर तभी उसने बहुत धीमे स्वर मे कहा, 'चुप-चुप, पैरो की आहट आ रही है।'

दूर जगल मे उल्लू जैसे चीखता है, वैसी ही आवाज आदमी के गले से निकली। सरदार ने भी बिल्कुल वैसी ही आवाज निकाल कर उत्तर दिया। वह समझ गया कि राजमोहन आ रहा है। दूसरे ही क्षण राजमोहन कुटिया मे आ गया। सरदार ने देखते ही कहा, 'आओ राजमोहन, क्या खबर है ?'

'खबर ठीक ही है। मेरी बीवी वापस आ गई।'

प्रसन्न हो उठा सरदार, पूछा, 'अच्छा कैसे मिली ? कहाँ थी ?'

'वह बहन के घर न जाएगी, यह मै पहले ही जानता था। जानते हो वह कहाँ गई थी ?'

'कहाँ गई थी ?'

'मथुरा घोष के घर गई थी।'

'अच्छा तो क्या बताया उसने ?'

'बतायेगी क्या ? अभी तक तो कुछ भी नही जान सका। पूछताछ तो बहुत की पर कुछ पता न चला।'

अब सरदार ने बडी गभीरता से दबी आवाज मे कहा, 'कुछ भी हो, उसे खत्म ही कर डालो।' सरदार की आँखो से अगारे बरस रहे थे। क्रोध छिपाने के लिए उसने आँखे नीची कर ली।

राजमोहन ने दयालु स्वर मे कहा, 'जरा सोचो तो सरदार ! इसकी भला क्या

जरूरत है ?'

'यह बात मै तुमसे पहले ही कह चुका हूँ।'

राजमोहन ने समझाते हुए कहा, 'उस बदमाश औरत से मै तुमसे कम घृणा नही करता। उस रोज अगर वह मिल जाती तो तुम देखते कि उसे मै कितना प्यार करता हूँ। लेकिन अब तो मै समझता हूँ कि शायद मेरा खून भी ठण्डा पड़ गया है। अब न तो यह काम करने का मुझमे साहस है और न मै अब उतना कठोर बन सकता हूँ। वह न तो माधव के घर गई, न ही उसने उस बात को लेकर ही शोर मचाया। अब जब अब तक उसने ऐसा नही किया तो आगे ही करेगी, इसे कैसे कहा जा सकता है ?'

थोडी देर तक कुछ सोचने के बाद सरदार ने कहा, 'मै उसे एक ऐसी जगह भेज दूँगा जहाँ तुम्हे भी ऐतराज न होगा।'

'कहाँ ?'

'तुम अपनी स्त्री को लेकर हमारी गुमटी मे रहोगे।'

'डाकू बन कर रहना पडेगा क्या ?'

'अभी भी तुम डाकू नही हो क्या ?'

'काम से शायद हूँ पर नाम से डाकू कहलवाला सभव नही है।'

'इसके मतलब तुम नही जाओगे ?'

'नही मेरी स्त्री के अलावा घर मे और लोग भी है। उन सबका डाकू बनना सभव नही है।'

'क्या हमारे घर-बार नही है ?'

'है। लेकिन मै अपने घर वालो को यह नही बता सकता कि मै कैसा जीवन बिता रहा हूँ।'

सरदार ने अब रोब दिखाते हुए कहा, 'अगर हमारे साथ जाने की इच्छा हो तो अपनी बहन और उसके बच्चो को उसके पति के घर भेज दो। उसके खरचे की तुम्हे चिन्ता नही करनी होगी। रही तुम्हारी बुआ, तो उसके तुम जैसे और भी दूसरे भतीजे होगे। अपना ठिकाना वह खुद खोज लेगी।'

राजमोहन सहमत नही हो सका और वाद-विवाद चलता रहा। अत मे सरदार की फटकार खाकर वह माधव घोष की जमीदारी छोडने को राजी हो गया।

उस समय दोपहर ढली न थी।

राजमोहन नहा-धोकर ब्यालू के लिए घर आया। पहले उनकी भेंट बहन किशोरी से हुई। उसे देख कर राजमोहन बोला, "किशोरी, पहले उस भागजली को मेरे पास भे दो। घर छोड कर कहाँ भाग गई थी ? जा बुला तो ला।'

चकित होकर किशोरी ने पूछा, 'किसकी कात कह रहे हो भैया ?'

राजमोहन झुँझला कर बोला, 'किसकी बात कह रहा हूँ ? अरे, तेरी भाभी के बारे मे कह रहा हूँ, क्या तेरी बुद्धि ठिकाने नही है ?'

'भाभी तो घर मे नही है ।'

'घर पर नही है ? इसके माने क्या वह आई नही ?'

'तुमने कहा भर था कि उसे घर भेज दोगे, लेकिन क्या भेजा भी था ?'

झुँझला कर बोला राजमोहन, 'उसे सुकी की भाई के साथ जाते तो मैने देखा था । तो क्या यह भी फरेब था ?'

'बडे ताजुब की बात है ! फिर वह गई कहाँ ? सबसे पूछो कि क्या किसी ने उसे देखा है ?'

राजमोहन ने भाग कर घर मे इधर-उधर देखा पर कही भी मातंगिनी का पता न चला । तब किशोरी से बोला, 'कही अपनी बहन के यहाँ तो नही चली गई ? जरा दौड कर देख तो आ । बुआ से कह कि वह कनक के घर देख आवे । वह वहाँ भी जा ही सकती है ।'

किशोरी और बुआ दोनो दो ओर दौड गईं और थोडी देर के बाद दोनो ही निराश वापस आ गईं ।

क्रोध, निराशा और आश्चर्य से अभागा राजमोहर बडबडाने लगा । उस दोपहर की धूप मे ही उसने किशोरी को पता लगाने के लिए मथुरा घोष के यहाँ भेजा । किशोरी के लिए अकेले इतनी दूर जाना सहज न था, फिर भी उसने भाई के आदेश का पालन किया, लेकिन वह भी कोई आशाजनक खबर न ला सकी ।

| १६ |

तीन दिन बीत गए । कृष्ण पक्ष की अंधेरी रात थी । माधव के कमरे मे रोशनी हो रही थी । वह बिल्कुल अकेला था । कीमती लकड़ी के बने और साटन की खोल से ढँके सोफा कोच पर वह अधलेटा पड़ा था । पास ही कुछ किताबे रखी थी । एक किताब माधव के हाथ मे थी । वह उदास आँखो से खुली खिडकी की राह आकाश की ओर देख हा था । मुकदमे के फैसले के बारे मे तरह-तरह की आशंकाएँ मन मे उठ रही थी । दि उसके शत्रुओ को सफलता मिल गई तो माधव का भविष्य क्या होगा ? मातंगिनी के भ्य मे क्या लिखा है ? वह जानती थी कि उसका पति उसे अच्छे मार्ग पर न ले जाएगा । मथुरा घोष के यहाँ आश्रय लेना, वहाँ से लौटना और फिर एकाएक गायब हो जाने की उसे खबर मिली थी । किस विवशता से वह एक पराए के घर मे आश्रय लेने

गई ? अफवाह उसने जरूर सुनी थी' पर मातंगिनी को वह अच्छी तरह जानता था कि किसी असाधारण कारण से ही उसने यह रास्ता अपनाया होगा। अपने मन का धीरज खोकर वह ऐसी राह अपनाएगी ,ऐमी स्त्री वह नही है। आश्रम और मदद का विश्वास होने पर भी वह बहन के घर नही आई। माधव इसका कारण भी अच्छी तरह जानता था और उसके इस कृत्य के लिए मन ही मन प्रशसा भी करता था। लेकिन उसके घर छोडने क्या कारण हो सकता है, यह वह सोच कर भी समझ न सका। डाकुओ द्वारा उसके लूटे जाने के पहले ही मातंगिनी ने उसे सब बता दिया था। वह उसके इस चरित्र से पूरी तरह परिचत था कि उसका दुर्भाग्य चाहे जिस रूप मे आए पर किसी पाप के कारण उसने घर न छोडा होगा। वह किसी भयानक विपत्ति मे फँस गई है इसमे तनिक भी शका नही है। मातगिनी को लेकर उसके मन मे अनेक भाव उत्पन्न हो रहे थे। उसका हृदय जलने लगा। मन मे उठते भावो को दबाना उसके लिए कठिन हो रहा था। मातगिनी के जाते समय जो हृदय-विदारक दृश्य उपस्थित हुआ था उसे याद कर उसका जी भर आया। उसकी ऑखो से ऑसू की धारा बहने लगी।

अपने को सम्हाल कर वह बरामदे मे आ खडा हुआ। लेकिन वहाँ भी चिन्ता ने पिण्ड नही छोडा। वह टकटकी लगाए एक ओर देखने लगा। अचानक उसकी दृष्टि एक अजीब वस्तु की ओर उठी। पहले तो उसे एक छाया दिखलाई पडी पर शीघ्र ही वह छाया कही दूर जली गई।

पेड के तने से सटी इस छाया का एकदम हट जाना माधव को सचमुच हैरानी मे डाल गया। फिर भी वह उसी के बारे मे सोचता रहा। थोडी देर बाद माधव ने फिर उसी पेड की ओर देखा—वह छाया फिर वही आ गई थी। उसका कौतूहल फिर बढा। वह उसे गौर से देखता रहा। सहसा वह छाया फिर वहॉ से खिसक गई। अब उसे विश्वास हो गया कि अवश्य ही कुछ दाल मे काला है। यह कोई उल्लू या निशा-चर तो हो नही सकता। तभी वह छाया फिर दिखाई पडी। इस बार उसने और गौर से देखा। आदमी के सिर से छाया मिलती-जुलती थी। लेकिन छाया इतनी ऊँचाई पर थी जहाँ साधारण आदमी जा ही नही सकता। माधव ने आसलियत जानने का निश्चय कर लिया। माधव का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके मन मे जो भी बात आती वह उसे तत्काल कर डालता। लपक कर उसने बैठक मे टगी तलवार उतारी और सीढ़ियाँ उतरने लगा। इधर-उधर तालाश करता करता हुआ वह पेड के तने तक जा पहुँचा। उसे उल्लू की भयानक चीख सुनाई पडी। इसके साथ ही साथ किसी ने उसकी तलवार पर कठोर चोट की। हमला करने वाला कौन है यह जानने के पहले ही एक मजबूत हाथ उसके मुँह पर आ पडा। साथ ही साथ ऊँचे कद का आदमी पेड पर से कूद पडा। माधव को अपने सामने एक भयानक आकृति वाला आदमी दिखाई पड़ा। उसके हाथ मे भी हथियार था। जिसने माधव की तलवार छीनी थी। उसे देखने के पहली ही दूसरे

व्यक्ति ने कहा, 'बाँध ले इसे। पहले इसका मुँह बन्द कर ले!'

दूसरे आदमी ने अपनी कमर से अगोछा और रस्सी खोली। अगोछा उसके मुह मे ठूँस दिया गया। माधव समझ गया कि यहाँ इस स्थिति मे हाथापायी करने से कोई लाभ नही है, न ही चिल्लाने से कुछ होगा। अत उसने आत्मसमर्पण कर दिया। बाँधने वाले ने उसे अपनी विशाल बाहो मे उठाया और लाद ले चला। दूसरे ने पीछा किया। यह सब काम इतनी नीरवता और तत्परता से पूरा हुआ कि कोई जान न सका।

|१७|

जिस समय माधव घोष पर यह आफत आ टूटी उस समय मथुरा घोष विश्राम के सुख मे अधलेटा बैठा था और तारा उसके पास बैठी पखा झुला रही थी। मथुरा अन्दर से बेचैन था। वह चुपचाप पडा था लेकिन उसके दिल से ठडी आह निकल रही थी। उसके मन मे छिपी बेचैनी का आभास मिल जाता था। लेकिन तारा उसकी बेचैनी का कारण न जानती थी। तारा ने ही चुप्पी तोडते हुए कहा, 'तुम्हे नीद क्यो नही आ रही है ?'

'नीद नही आ रही या मेरे सोने का यह समय नही है ?'

'तो सोने क्यो आए हो ? यदि नाराज न हो तो एक बात पूछूँ ?'

'पूछो, क्या पूछना चाहती हो ?'

'तुम्हारे मन मे शाति नही है। तुमसे जो सच्चा प्रेम करता है उससे भी क्या हिचक हो सकती है ?

चौक कर मथुरा ने अपने को जल्दी ही सम्हाल लिया और बात को टालने के लिए हँस कर बोला, लेकिन तारा की स्नेहमयी दृष्टि से इस प्रयास का भेद खुल जाने मे देरी न लगी। मथुरा बोला 'पागल हुई हो ? मुझे आशाति क्यो होगी ?'

तारा ने स्नेह-भर शब्दो मे कहा, 'प्रियतम, मुझे बहलाने की कोशिश मत करो। हम स्त्रियो के लिए पति तो भगवान से भी बढकर है। तुम सारी दुनिया को धोखा दे सकते हो पर मुझे नही।'

'तुम पागल न होती तो ऐसी बाते क्यो करती ? अपने मन की बात खोल कर हो।'

'इसका कारण तुम खुद हो। तुम्हारी जमीदारी, मुकदमे, लगान, घर, बाग-बचा, नौकर-चाकर, घर-गृहस्थी—इन सबो के बारे मे तुम्हे ही चिन्ता करनी है। मेरे लिए चिन्ता करने को बचा ही क्या है ? मेरा पति और मेरी लडकी! अगर मै

कहूँ कि आज तीन दिन से मुझे तुम्हारी चाल मे वह पहले जैसा जोश दिखाई नही पडता और तुम्हारी आँखो मे एक प्रकार का सूनापन है, तब बीच बीच में तुम घूर-घूर कर देखते हो। जानते हो ? मा की आँखे यह समझने मे कभी नही चूकती कि अपनी औलाद को बात अपने सीने से नही से नही लगाता है। पिछले तीन दिनो से बिन्दु ने जब भी स्नेह से तुम्हारा हाथ पकडा है या तुम्हारे पास बैठ कर खेलना चाहती है तब भी तुमने प्रेम से बुलाया तक नही। चम्पा से भी तुम्हे बोलते मैने नही देखा।'

सौत का जिक्र करते समय तारा के चेहरे पर हँसी की रेखा खिंच गई, क्षण भर को। तारा बोली, 'देखती हूँ कि इधर कई दिनो से चम्पा भी बेचैन सी रहती है। तुम उसका हाल भी नही पूछते। तुम्हारी यह ठडी साँस खीचना, आखिर यह सब है क्या ? तुम्हे हो क्या गया है ?'

कोई उत्तर न देकर मथुरा चुप ही रहा। पति को चुप देख कर तारा बोली, 'तुम क्या मुझे अपने दुख की साझी नहीं समझते ? मै जानती हूँ, तुम्हे मुझसे प्रेम नही है।'

तारा थोडी देर पति से उत्तर पाने की पतीक्षा मे चुप रही। मथुरा फिर भी चुप रहा। अपनी स्नेहमयी पत्नी के पवित्र मुख की ओर देख कर उसने एक आह भरी और फिर चुप रह गया।

अब तारा अपने को जैसे सम्हाल न सकी और रुँधे स्वर मे बोली, 'तुम्हारे मन मे सुख-चैन-शाति नही है। तुम मुझमे कुछ भी मत छिपाओ। अपनी जान दे कर भी अगर मै तुम्हारी शाति-चैन-सुख वापस ला सकूँ तो वह भी करने को तैयार हूँ।'

मथुरा अब भी चुप रहा। हँसी या बहस करने की आदत उसको न थी। वह कठोर मुद्रा बनाए बैठा ही रहा। वह चेहरे पर कपट भाव लाकर पत्नी के नगे प्रश्नो से बचना चाहता था। लेकिन उसके अन्तर की बेचैनी हृदय को पिघला देने वाली थी। तारा की आँखो से भी सावन-भादो की झड़ी लग रही थी। नारी सुलभ हृदय की व्याकुलता के द्वारा उसने पति के चेहरे का यह परिवर्तन देखा।

तारा बोली, 'कैसी कुघडी मे मेरा जन्म हुआ था ? अभी तक शायद मै अपने पापो का प्रायश्चित नही कर सकी हूँ। अपनी जान देकर भो यदि तुम्हारी शाति लौटा सकूँ तो जीवन सार्थक समझूँगी। पर मै भी कैसी अभागिनी हूँ, अभीतक मै तुम्हारे दुख का कारण भी नही जान सकी।'

तारा के इन करुण शब्दो और दुख भरी रुलाई मे मथुरा का हृदय छू गया कसूर स्वीकारने की मुद्रा बना कर वह बोला, 'तुमसे अपना दुख बताने मे मुझे कोई हानि नही। साथ ही तुमसे सव कुछ खोलकर कहने का साहस भी मुझमे नही हे । स लिए तुम दुखी मत होना। सचमुच ही तुम्हारे सुनने योग्य कुछ भी नही है।'

पति की यह बात सुन कर तारा के निर्मल मुख पर पीडा की रेखाएँ स्प हो

उठी, लेकिन अगले ही क्षण वह सहज भाव से बोली, 'तो क्या तुम मेरी एक साधारण सी जिद भी मान सकोगे ? बचन दो।'

लेकिन उसकी बात पूरी होने के पहले ही उल्लू की चीख का भयानक व कर्कश स्वर सुनाई पडा, जिसे सुनते ही मथुरा उठ खडा हुआ।

तारा ने पूछा, 'तुम उठ क्यो गये ? यह भयानक आवाज सुन कर तो मुझे भी डर लगा लेकिन यह तो उल्लू की आवाज है।'

लेकिन तारा की बात पूरी होने से पहले ही मथुरा कमरे से बाहर जा चुका था। तारा हैरान होकर उधर ही देखती रही। यह आवाज उल्लू की ही थी। इस बात पर उसे तनिक भी शक नही था। इस आवाज को सुन कर जाने क्यो उसके मन मे होने लगा कि कुछ अशुभ होने वाला है। घबराहट और कौतूहल से भरी वह कमरे से बाहर निकल आई। पति सीढी से होकर नीचे उतर गए है यह जान कर वह ऊपर वाली सीढी से छत पर चली गई। वह यह देखना चाहती थी कि यदि सचमुच यह उल्लू की ही आवाज थी तो उल्लू भी इधर-उधर कही जरूर बैठा होगा। इसी आवाज का बहाना पाकर पति भी कमरे से बाहर निकल गया और अपनी उस दुर्बलता को जो पत्नी के सम्मुख खुलने जा रही थी सम्हाल लिया। तारा नीचे उतरने ही वाली थी कि अचानक उसने एक मनुष्य की छाया को नीचे उतरते देखा। यह किसी स्त्री की नही बल्कि किसी पुरुष की ही छाया थी, यह वह तत्काल ही समझ गई।

तारा पहचान गई कि यह उसका पति ही था। मथुरा दरवाजा पार कर जङ्गल में जा घुसा। तारा हैरानी से देखती रह गई। एक अजीब उत्तेजना से उसका शरीर काँपने लगा। क्षण भर बाद उसके मन मे बेहोशी आने की शका पैदा हुई। उसका पति अयोग्य है फिर भी वह उसे प्यार करती है। वह कोई भी पैशाचिक काम कर सकता है, यह वह जानती थी लेकिन अपने पति के भावी दुख को कल्पना-मात्र से ही उसका मन दुख से भर गया।

वह पत्थर की प्रतिमा की भाँति खडी रही। नीचे छज्जे से झाँक कर वह पति की गतिविधि का निरीक्षण करती रही, पर वह तो एकाएक उसकी आखो से ओझल हो गया था। फिर भी अंधेरे मे वह अपने पति को देखने का प्रयत्न करती रही। उसका डर दस गुना बढ गया। उस विराट महल को तारा संगमरमर की मूर्ति की तरह देखती खडी रही। अन्त मे वह पति की तलाश से निराश होकर वापस जाने ही वाली थी कि एक मनुष्य मूर्ति उसे फिर दिखाई पडी। मथुरा घोष उस समय गोदाम महल की इमारत के एक छोटे से फाटक मे से बाहर निकल रहा था।

अपने पति को अपनी ही कोठी के किसी विशेष भाग से यो निकलते देख कर उसे हैरानी हुई। उस समय तक वह भय से पूरी तरह मुक्त नही हो पायी थी। इतनी रात गये, अकेले पति का इस तरह कोठी से बाहर जाना और उस विशेष हिस्से से

निकलना जहाँ से किसी का भी आना-जाना न होता था। किसी निशाचर या उल्लू की अमगल सूचक चीख, जो अभी तक उसके कानो मे गूँज रही थी, सब मिल कर उसके मन मे एक भयानक डर पैदा कर रहे थे और किसी आने वाली विपदा की सूचना दे रहे थे। वही निश्चल मूर्ति की तरह खडी रह कर तारा फिर से पति के प्रकट होने की प्रतीक्षा करने लगी।

इस प्रकार लगभग आधा घण्टा बीत गया। लेकिन उसका पति उस दरवाजे से वापस न लौटा। जब वह वहाँ खडी-खडी थक गई तो आने वाली विपत्ति की अस्पष्ट कल्पना मन ही मन करती हुई वह अपने कमरे मे लौट आई। एकाएक उसके मन मे विचार उठा कि क्या इस घटना के साथ उसके पति के गुप्त रहस्यो का सम्बन्ध तो नही है! उसने अपना कर्त्तव्य भी निश्चय कर लिया।

कुछ देर बाद मथुरा अपने कमरे मे वापस लौट आया। लेकिन अब वह पहले की अपेक्षा अधिक चचल और बेचैन दिखाई दे रहा था। लेकिन साथ ही उसकी आँखो मे गर्व भी छलक रहा था। तारा ने जो कुछ देखा था उसके बारे मे उसने कोई पूछ-ताछ नहीं की, न ही जिज्ञासा प्रकट की।

|१८|

उस कोठरी को देख कर देखने वाले के मन मे अंधेरा सा छा जाता है। छत की ऊँचाई बहुत कम है। कमरे की इतनी कम जगह और छत इतनी नीची कि इसे देख कर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह साधारण आदमियो के रहने की जगह न होकर अपराधियो को सजा देने के लिए बनाई गई काल कोठरी है। कमरे मे सिर्फ एक ही दरवाजा था, वह भी लोहे का और खूब मजबूत। इस लौह-द्वार के अलावा और भी एक रास्ता था लेकिन इसका आकार इतना छोटा था कि एक छोटा बच्चा भी घुटनो के बल खिसक कर मुश्किल से अन्दर जा सकता था। इस छोटे पर भयानक कमरे मे कोई सामान न था। यहाँ कोई था भी नही। यही माधव घोष को बन्दी बनाया गया था।

जिन लोगो ने माधव को बाँध कर बन्दी बनाया और यहाँ लाकर रखा था, वे लोग भी इस समय यहाँ न थे। दरवाजे का कुण्डा बाहर से बन्द था। माधव घोष को उस कोठरी रूपी जिन्दा—कब्र मे दफनाया जा चुका था। लेकिन माधव घोष न तो डरा था न ही उसने साहस छोडा था। एक भयानक घृणा और झुंझलाहट से उसका मन भरा हुआ था। उसने मन ही मन दृढ-सकल्प कर लिया था कि वह उनके अत्याचार की परवाह न करेगा।

अन्त में उस काल-कोठरी के दरवाजे के खुलने की आवाज़ आई। कुण्डा और दरवाज़ा बडी सावधानी से खोले गए। फिर दरवाज़ा चरमरा उठा। जिन बर्बर शत्रुओ ने उसे कैद कर रखा था उन्होने मुँह से कोई आवाज निकाले बिना ही द्वार को होशियारी से फिर बन्द कर दिया।

माधव ने दरवाजे की ओर घृणा भरी दृष्टि उठाई और इस तरह वह चहल कदमी करने लगा मानो उन लोगो के आने का उसे पता ही न हो। सरदार और भीखू दोनो दीपक के काफी निकट आ कर बैठ गए। भीखू ने कमरे मे खोसी चिलम और गाँजा निकाला। गाजे को बाँए हाथ की हथेली पर रख कर मलने लगा। तब तक सरदार ने दीपक की बत्ती बढा कर रोशनी तेज करते हुए कहा, 'बाबू आज तो बहुत सीधे दिखाई पड रहे हो ?'

चहलकदमी करते माधव ने रूठ कर उस दुष्ट की ओर इस प्रकार देखा जैसे कुछ कहना चाहता हो पर एकाएक घूम कर वह फिर चहलकदमी करने लगा। अब तक भीखू ने गाजा तैयार कर लिया था। दोनो डाकू पारी-पारी से चिलम पीने लगे। बन्दी की मूक और प्रत्यक्ष घृणा से उनका मन ऊब गया था। सरदार जितना बर्बर अपनी शक्ल-सूरत से दिखाई देता था, वास्तव मे काम करने मे वह वैसा बर्बर न था। तभी तो अब तक उसने कोई ऐसा कठोर मजाक नही किया था। फिर भी व्यग्यभरी हँसी हँसते हुए उसने कहा, 'गाँजा पीजिए साहब! इतना लाजवाब बना है कि लखपति भी इसके दो-एक कश लेकर अपने को धन्य समझेगा।'

माधव गुस्सा पीकर चुप रहा। सरदार का उत्साह मानो ठंडा पड गया। गाँजे का दम लगाते हुए वह भद्दी गालियाँ बकने और फूहड बातें करने लगा।

अन्त मे माधव ने ही वातावरण की घुटन को तोड कर कहा, 'क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे मालिक मुझे लेकर क्या करना चाहते है ?'

'हमारा कोई मालिक नही।' दम्भ से कहता हुआ सरदार फिर गाँजा का कश खीचता हुआ गंदी बाते बकने लगा।

माधव ने फिर कहा, 'मालिक न सही, पर इस काम के लिए तुमने किसका हुक्म लिया है ?'

'किसी का भी हुक्म नही।'

'किसी का हुक्म नही है तो क्यो मुझसे खिलवाड कर रहे है ?'

घमण्डी सरदार यह अच्छी तरह समझता था कि धनी और इज्जत वाले लोगो के लिए वह भय का कारण था। अब माधव की बात सुन कर उसने माधव के शान्त स्वभाव पर चोट करने की ठान ली।

तभी माधव ने पूछा, 'इस काम के लिए तुम्हें रुपया कौन देगा ?'

'सोच कर देखो।'

'यह सोचना मेरा काम नही है ।'

तभी दबी हुई लम्बी सास खीचने की आवाज सुन कर बातचीत मे लगे दोनो आदमी चौक कर चुप हो गए । तभी भीखू हैरानी से चिल्ला उठा, 'वह क्या ?'

सरदार भी ताज्जुब करता हुआ बोला, 'ठीक ही तो, वह क्या है ?'

तीनो ही कुछ देर के लिए हैरानी से खडे रहे ।

सरदार बोला, 'क्या इस कमरे मे कोई और भी है ? तब तो मामला कुछ और ही बन जायगा । देखे ।'

सरदार व भीखू जहाँ बैठे थे, वही से उस धुँधली रोशनी मे कोठरी का पूरा भाग दिखाई पड रहा था । सरदार उठ कर एक बार चारो ओर चक्कर लगा कर देख आया, पर उसे कुछ भी दिखाई न पडा । अपनी जगह पर वापस आकर बेठते हुए वह बोला, 'अजीब बात है ! लेकिन जाने दो । हाँ, तो हुजूर हमारे मालिक के बारे मे कह रहे थे, क्या हुजूर को मालूम है कि वे कौन है ?'

उसकी भाषा और कहने के ढग से माधव को खीझ-सी आ गई लेकिन अपने पर किसी तरह नियंत्रण रख कर वह बोला, 'जानता हूँ, मथुरा घोष है । लेकिन उनका अभिप्राय क्या है ?'

भीखू हैरान-सा माधव को देखता रहा । सरदार के कान मे उसने कहा, 'इसे सब कुछ कैसे पता लग गया ?'

सरदार ने धीरे से कहा, 'इसमे भला हैरानी की क्या बात है ! राधागज में लोहे की काल-कोठरी और किसकी है, मथुरा के अलावा ?'

पर उसने माधव के प्रश्न का उत्तर न दिया । उससे और बातें करके वह अपना मतलब निकालने के लिए चुप बैठा रहा । भीखू का मिजाज चढने लगा । वह बोला, 'हमे रुपया चाहिए, रुपया ! हाड-मास के आदमी को लेकर हम क्या करेंगे ?'

सरदार बोला, 'खा ले, लील जा ।'

सरदार की इस दिल्लगी से भीखू कर्कश स्वर मे हँस पडा । लेकिन तभी अचानक फिर वही रुँधी हुई आवाज सुनाई पडी । इस बार छत के पास से वह स्वर आ आ रहा था ।

डर से सरदार के मुँह से निकला, 'अब फिर !'

भीखू तो डर के मारे पत्थर जैसा हो गया । उसने भूत-प्रेतो के बारे मे बहुत कुछ सुन रखा था ।

माधव भी बेचैन था लेकिन किसी अन्य करण से ।

तभी भीखू फुसफुसा कर बोला, 'यह जगह बहुत दिनो से खाली पडी रही है, जाने किसी जिन-प्रेत ने ही डेरा डाल रखा हो !'

उसका साहसी सरदार भी भूत-प्रेतो से खूब डरता था । लेकिन उसने इस

समय डर की परवाह न की। डाकुओ का धंधा ही ऐसा है, सदा ही नए, बीहड और सुनसान रास्तो पर चलना। इसीलिए इस समय जबरदस्ती वह अपने मन को मजबूत बनाए रखने का प्रयत्न कर रहा था।

सरदार ने कहा, 'लगता है, यहाँ कही कोई छिपा हुआ है। मै उधर देखता हूँ, भीखू! तुम जरा बाबू पर नजर रखना।'

सरदार ने अपनी पहनी हुई धोती को फाड कर थोडा सा कपडा निकाला और उसे भिगोकर आग जलाई तो रोशनी बढ गई। सावधानी से रोशनी लेकर, दरवाजा खोल कर वह बाहर निकल आया। एक-एक करके उसने तीनो कमरे देखे फिर बरामदे मे आया, पर कही कुछ भी दिखाई न पडा। लेकिन इतनी ही देर मे भीखू बुरी तरह डर चुका था। इस स्थान से जल्दी से जल्दी हट जाने को उसने सरदार से इशारा किया ताकि वे अपना काम शीघ्र ही कर लें।

सरदार ने समझा और कहा, 'माधव बाबू, अब हमे देर हो रही है। यहाँ हमारे लिए सोने का स्थान भी नही है। लेकिन अगर तुम्हे हमारी शर्त मजूर हो तो तुम्हे छोडा जा सकता है।'

माधव ने पूछा, 'शर्त क्या है ?'

'अपने चाचा का वसीयतनामा हमे दे दो।'

बिना सोचे ही माधव ने उत्तर दिया, 'वह मेरे पास कहाँ है!'

कह कर उपेक्षा से माधव फिर टहलने लगा।

सरदार ने कहा, 'नही है तो तुम यही पर सडो-गलो, हम जाते है।'

माधव ने धीरे से कहा, 'अच्छा, अगर मै वसीयतनामा तुम्हे देना भी चाहूँ तो यहाँ से कैसे दे सकता हूँ ?'

सरदार बोला, 'इसकी व्यवस्था तो तुम्हे ही करनी है। तुम्हारी जगह अगर मै होता तो जिन लोगो ने मुझे बन्दी बनाया होता, उन्ही के हाथ एक पत्र लिखकर घर भेज देता कि उसी के हाथ वसीयतनामा भेज दे।'

'अगर घर वाले पूछे कि चिट्ठी कहाँ से आई है ?'

ठीक इसी समय फिर वह आवाज सुनाई पडी। एक बहुत दबी व घुटी हुई आवाज जैसी मनुष्य कभी नही कर सकता। इस बार आवाज छत की ओर से आ रही थी।

दोनो डाकू इस बार डरसे सहम कर खडे हो गये। माधव भी विचलित-सा हो गया। वह बोला, 'क्या इसके ऊपर भी कोई कमरा है ?'

'नही! पर जाकर देखता हूँ।' सरदार झट से कूद कर दीवार पर चढ गया, वहाँ से छत पर। लेकिन कही कोई न दिखा। कोठरी के पीछे भी झाँका फिर कमरे मे लौट आया।

माधव ने पूछा, 'क्या इसके बगल मे दो कमरे हैं ?'

'लगता तो ऐसा ही है।'

'क्या किसी और को भी लाकर वहाँ रखा है ?'

'नही।'

शायद कोई और भी पकडा गया होगा। लगता है कि शैतान की इस कैद मे फँस कर कोई भयानक पीडा से कराह रहा है। माधव ने स्वयं से कहा, फिर मुखर होकर बोला, 'जाकर वहाँ देखो न कि वहाँ क्या कोई और भी बन्द है ?'

सरदार बोला, 'तुमने ठीक ही पकडा है। दरवाजे पर ताला जरूर ही बन्द है पर पुकारने पर कोई होगा तो उत्तर तो जरूर ही देगा।'

सरदार ने कपडे का पलीता बना कर फिर रोशनी की ओर जाकर देखा। लेकिन वहाँ तो दोनो कमरो के दरवाजे खुले थे। वहाँ कोई भी न था।

माधव भी हैरान सा रह गया।

सरदार को अब तक वहाँ भूत-प्रेतो के रहने का ही विश्वास हो गया था। डर कर भीखू भी सरदार से चिपक कर खडा हो गया।

सरदार ने माधव से कहा, 'देखो, हम अब और ज्यादा देर यहाँ नही रहेगे। भूत-प्रेतो की गतिविधि तो तुम जानते ही हो। यदि तुम्हे कुछ कहना है तो तत्काल कहो नही तो हम जाते है।'

माधव ने सोच कर देखा कि फिलहाल उनकी शर्त मानने के सिवा और कोई चारा न था। अगर वे चले ही गए तो न जाने वह दरवाजा फिर कब खुले, कब तक उसे इसी मे सडना पडे, कौन जाने! अगर वह उनकी शर्त स्वीकार कर लेता है तब हो सकता है कि उसके पत्र के सहारे उसके लोग उसे ढूँढ निकालें। अत. उसने यही अंतिम प्रयास करना चाहा।

माधव ने सरदार से कहा, 'तुम्हे रुपये की ही जरूरत है न! वसीयतनामा पा जाओगे तो रुपये ही तो पाओगे न! जितने रुपये तुम्हे मिलेंगे उससे ज्यादा तो मे ही दे सकता हूँ। वसीयतनामा की जगह रुपये लेकर मुझे छोड दो।'

सरदार ने कहा, 'नही, नही! इससे हमे कोई मतलब नही। हम लोग इतने बेवकूफ नहीं हैं कि तुम पर यो ही विश्वास कर ले। एक बार तुम हाथ से गये तो फिर हाथ न आओगे। फिर तो तुम कौन, मै कौन ? अगर चाहो तो चिट्ठी दो, नही तो हम चलते हैं।'

तभी कमरे के भीतर ही कपडे की सरसराहट सुनाई पडी। डाकुओ ने सोचा कि अब यहाँ पर और न ठहर कर भागना ही ठीक है। माधव उनका चेहरा देख कर उनके मन की बात समझ गया और कागज-कलम माँगने लगा। कागज-कलम तो वे

साथ ही लाए थे। उसे लेकर माधव अपने घर के प्रधान मुशी के नाम चिट्ठी लिखने लगा।

सरदार ने रोका, 'जैसा मै कहूँ, वही लिखते जाओ। धोखा देकर, हमे फँसा दो ऐसा नही हो सकता। याद रखना, कभी मै भी तुम्हारी ही तरह लिखना-पढ़ना जानता था।'

माधव ने कलम रोक कर हैरान दृष्टि से डाकू सरदार की ओर देखा और उसके कहे अनुसार ही लिखने लगा।

ठीक इसी क्षण कुण्डे की गभीर झन-झन के साथ एक भयकर शोर सुनाई दिया। दूसरे ही क्षण यह भयकर शोर और तेज हो गया। भीखू ने एक छलॉग मे ही दरवाजा पार किया और कमरे से बाहर निकल गया। सरदार भी भाग कर बाहर निकल आया। वहाँ उसने जो दृश्य देखा, उसे देख कर वह दरवाजा बन्द किए बिना ही भाग खडा हुआ।

अब माधव पूरी तरह मुक्त था। थोडी देर तो वह यो ही चुपचाप खडा रहा। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने व्यवहार पर लज्जित होकर वह कमरे से निकल कर बरामदे मे आ गया। पहले तो उसे कही कुछ भी दिखाई न पडा लेकिन कुछ क्षण इधर-उधर देखने के बाद उसने देखा कि एक दरवाजे से खुले आगन मे रोशनी की एक क्षीण रेखा सी आकर खड़ी हो गई है। वह उसी ओर लपक कर गया तो देखा कि वहाँ एक औरत खडी है। एक छोटी सी लालटेन भी जमीन पर रखी थी। लालटेन को हाथ मे उठा कर माधव ने जब देखा तो उसने जो कुछ भी देखा उससे उसका डर जाता रहा।

हैरानी से माधव ने पूछा, 'तारा!'

तारा भी विस्मय से मूक थी। बोली, 'तुम, माधव!'

लेकिन उस समय भी ऊपर से वही कराह की आवाज आ रही थी।

|१९|

बचपन से ही तारा और माधव एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। तारा के पिता और माधव के नाना एक ही गाँव के निवासी थे। बचपन मे माधव अक्सर अपने नाना के यहाँ उस गाँव मे जाया करता था। तारा उसी समय की उसकी बचपन की सखी थी। दूर का ही सही, पर उनमे कुछ रिश्ता जरूर था, तभी तो वह बचपन मे उसकी सखी बन गई थी।-माधव उम्र मे उससे दो-चार साल छोटा था फिर भी उसका नाम लेकर तारा ही पुकारता था। तारा का मथुरा के साथ ब्याह हो जाने के बाद

भी परस्पर उनके मनोभव मे कोई अन्तर न आया था। बचपन के बेरोक-टोक मेल-मिलाप से एक दूसरे के प्रति उनमे जो प्रेम जाग चुका था वह अपने स्थान पर अमिट था। चाची के साथ माधव के मुकदमे मे धन की आशा के कारण मथुरा चाची को छिपा कर मदद देता रहता था। यह बात माधव अच्छी तरह से जानता था। इसी बात को ले कर रिश्ते के दोनो भाइयो मे मनमुटाव व अनबन हो गई थी। पहले माधव कभी-कभी मथुरा के घर आता-जाता था पर इसी बात को लेकर आना जाना बन्द हो गया था। मथुरा से माधव काफी छोटा था इसलिए तारा के साथ बातचीत करने मे कभी कोई रुकावट न थी। माधव भी इसका लाभ उठाने मे कभी पीछे नही रहा। दोनो ही एक दूसरे से स्नेह और एक दूसरे का आदर करते थे। प्यार के इस रिश्ते मे दोनो के मन मे लेश-मात्र भी मैल न था। बचपन की प्रीति, प्रतिदिन के जीवन मे नित्य के व्यवहार तथा एक-दूसरे के प्रति उच्च आदर्श का बहता हुआ आदर भाव एक ऐसे स्नेह का रूप धारण कर चुके थे कि जिसे भाई-बहन की प्रीत की भाँति अलग नही किया जा सकता था। इतना सब होते हुए भी आज अचानक जब तारा और माधव गोदाम-महल मे एक दूसरे के सामने खडे हुए तो दोनो ही एक अजीब सी बेचैनी का अनुभव करने लगे। आखिर तारा ही बोली, 'अरे माधव, तुम यहाँ ?'

माधव पलट कर तारा से यही प्रश्न न दुहरा सका और यह भी समझ न पाया कि वह क्या जवाब दे। तारा भी खामोश खडी रही पर ऐसी स्थिति मे औरते ही पहले अपने आपे मे आती है। तारा को अपने चरित्र पर पूरा भरोसा था और माधव की ओर से भी उसे किसी प्रकार के भय की आशंका न थी। उसके प्रति माधव के मन मे कितना स्नेह और आदर-भाव है यह वह अच्छी तरह और खूब जानती थी। यही सोच कर तारा ने पूछा, 'देवर जी, पहले यह बताओ कि यमदूतो की तरह दिखने वाले जो दो आदमी अभी यहाँ से भागे थे वे कौन थे ? उन लोगो से तुम्हारा क्या काम था ? मेरी समझ में कुछ नही आ रहा है। जब मैं बरामदे मे खडी थी तब एक आदमी गोल-गोल आँखो से मुझे घूरता हुआ, मुझे चुडैल समझ कर डर कर भाग गया।'

'तो क्या तुमने ही दरवाजा खोल कर कुण्डे की आवाज की थी?'

'हाँ, दरवाजा मैने ही खोला था। मै भीतर घुसने ही जा रही थी कि उन यम-दूतों को देख कर, डर कर बाहर वापस लौट आई।'

'लेकिन यह आवाज कहाँ से आ रही थी ?'

'कैसी आवाज ?'

'तो क्या तुमने वह अजीब सी आवाज नही सुनी ?'

'सुनी है, दुख से भरी कराह ! मैने तो समझा था कि वह कराह तुम्हारे ही कमरे से आ रही है।'

'नही।'

'नही, तुम मुझे डराने की कोशिश मत करो। मै लौट जाऊँगी।'

'मै यहाँ क्यो आया हूँ ? यह जाने बिना ही लौट जाओगी ?'

'नही, नही। जल्दी से बताओ कि तुम यहाँ कैसे आए ? फिर मै तुम्हें अपने आने का कारण बताऊँगी। जल्दी करो।'

'लेकिन पहले सावधान हो जाना पड़ेगा। कही आसपास कोई है तो नही ? यह मै क्यो कह रहा हूँ। यह तुम जल्दी ही समझ जाओगी।'

माधव एक बार बाहर निकला और महल से बाहर जाने वाले दरवाजे की साकल लगाने लगा फिर वह उसी कमरे मे लौट आया जिसमे वह बन्द था। तारा को भी वही बुला लिया। फिर अपने बन्दी बनने का इतिहास सुनाने लगा। उसने एक अक्षर भी छिपाए बिना सब कुछ सुना दिया। उसके मन में झुँझलाहट और घृणा की सीमा न थी। वह जानता था कि तारा को अपने पति से कितना ही अधिक प्रेम क्यो न हो, उसके हृदय की पवित्रता पति के इस घृणित काम मे साथ न देगी। सब सुन कर तारा दुख से छटपटाने लगी। उसका मन भी पति की ओर से घृणा से भर गया।

तारा बोली, 'इसके अर्थ हैं कि मै जिसे खोजने निकली हूँ वह तुम नही हो।' वास्तव मे पति को चिंतित व दुखी देख कर उसके मन मे तरह-तरह की आशकाएँ पैदा हो रही थी। लेकिन वह किसी प्रकार भी पति की दुश्चिन्ता का कारण न जान सकी। उसने जब छिप कर पति को गोदाम-महल की ओर आते देखा था तभी सोचा था कि वह राज शायद यही छिपा हो। मन ही मन रहस्य जानने की इच्छा लिए वह सोए हुए पति की तकिए के नीचे से चाभी का गुच्छा उठा कर खोजती हुई यहाँ आ पहुँची थी।

तारा ने कहा, चाभी का गुच्छा लिए न जाने किस अलौकिक शक्ति के कारण मै इस डरावनो दीवार की बगल के अंधेरे रास्ते से होती हुई यहाँ तक आ गई। क्योंकि अपनी जान दे कर भी मै यदि अपने पति की खुशी लौटा पाती तो मै यह करने को भी तैयार थी। इसीलिए, सोचो तो कि पहले पहल तुम्हे यहाँ देख कर मेरे मन की क्या दशा हुई होगी! अपने पति के दुख का कारण तुम्हे समझ कर मेरा मन तुम पर अप्रसन्न हुआ था। लेकिन तुम तो कह रहे हो कि तुम आज शाम ही यहाँ लाए गए हो। तब तो अवश्य ही कोई और कारण होगा।'

माधव बोला, 'तुम्हे मै यो निराश न जाने दूँगा। वह आवाज जो तुमने सुनी है, उसका भेद तो अभी तक मिला ही नही।'

- डर के मारे तारा का समूचा शरीर काँपने लगा।

माधव ने कहा, 'डरो मत, डरने की जरूरत नही है। पर जब तुम वायदा करोगी कि तुम डरोगी नही तभी बताऊँगा।'

उत्सुकता से भर कर तारा बोली, 'बताओ।'

तब माधव ने डाकुओ के साथ बातचीत करते समय जो कुछ सुना था उसे बता दिया और इस ढंग से बताया कि तारा ये सब बाते भूत-प्रेत की न समझे।

मन से बहुत पीडित हो तथा डर कर तारा दुखी हो उठी। स्त्री स्वभाव से ही भूत-प्रेत से डरने वाली होती है। पति की चिन्ता की खोज करने मे उसका इस प्रकार की घटना से सामना होगा, यह वह सोच भी नही सकी थी। उसे मन मे पछतावा भी हो रहा था। उसने हठ कर के माधव से कहा कि वह उसे भीतरी ड्योढी तक छोड आवे।

माधव ने जोश मे कहा, 'बस इतने से ही हार मान गई ? मै कसम खाकर कहता हूँ कि इसमे डरने की कोई बात नही है।'

माधव के मन मे उत्तेजना और कौतूहल इस हद तक बढ चुका था कि वह यह भी भूल गया था कि उसका इस प्रकार तारा के साथ रहना असामाजिक और निन्दापूर्ण है।

पहले तो तारा काफी देर तर्क शान्त रही फिर साहस जुटा कर बोली, 'ढूँढोगे कहाँ ? क्या डाकुओ ने सब जगह ढूँढ नही ली होगी ?'

'जरूर ढूँढी है, पर मुझे लगता है कि एक जगह उन्होने नही देखी। वह जो दरवाजा देख रही हो', माधव ने इशारे से लोहे का एक दरवाजा दिखाया जो अभी तक भी नही खुला था। बोला, 'वह जरूर वहाँ जाने का रास्ता होगा।'

ठीक इसी क्षण फिर वही दर्द भरी आवाज सुनाई पडी, इस बार बहुत साफ। लगता था जैसे कही बहुत पास से ही कराहने की आवाज आ रही थी। इस बार दोनो ही चौंक उठे। वेदना मे डूबा वह स्वर दोनो को पीडा पहुँचा रहा था।

माधव के सिर पर जैसे वज्र सा गिरा। एक कराहनीय चोट से वह तिलमिला उठा। तारा के हाथो से चाभी का गुच्छा छीन कर वह जल्दी से उस लोहे के दरवाजे पर पहुँचा और घुटने के बल झुक कर ताले के छेद मे चाभी डाल कर घुमाया, पर चाभी न लगी। पागलो की तरह झपट कर उसने दो और चाभियाँ लगाईं पर वह असफल रहा। यदि उसके वश में होता तो वह ताला तोड कर भीतर चला जाता लेकिन चौथी चाभी लगाते ही स्प्रिंगदार दरवाजा यो खुला कि जैसे उसमे बिजली का करेंट आ गया हो। उल्लास से माधव सब कुछ भूल गया और औरो से चिल्लाया, 'तारा देरी मत करना। मेरे पीछे-पीछे आना', कहता हुआ वह पागलो की भाँति अन्दर की ओर दौडा। अधिक जल्दी के कारण उसके बदन पर खरोंचे भी आ गई थी।

तारा भी उत्सुकतावश रोशनी लिए आगे बढी। आनन्द तथा हैरानी से माधव ईंट की बनी एक-एक सीढी खोजता रहा। सीढी बहुत ही सकरी और सीधी थी, मकडी के जाले से खूब लगे थे। माधव बिना कुछ बोले छलाँग लगाता हुआ सीढी पर चढ़ने लगा और हैरानी से विमूढ तारा भी उसका पीछा करने लगी।

सीढी पार कर के एक दरवाजा था, लेकिन वह दुमजिले पर न था। माधव समझ गया कि यही चोर कोठरी है। घर के किसी भी अन्य हिस्से से यह दिखाई नही देती क्योकि एक ही कमरे को बॉट कर ऊपर-नीचे दो कोठरियाँ बनाई गई है। बगल के दूसरे कमरे और दीवाल की ऊँचाई से मिले होने के कारण किसी अन्य स्थान का अनुमान लगाना भी कठिन था। ऊपर वाली कोठरी मे तो खिडकी भी न थी।

उत्तेजना से माधव का शरीर कॉप रहा था। दो तीन बार प्रयत्न मे असफल होकर अन्त मे उसने अपने जख्मी हाथो से दरवाजा खोल ही दिया। झनझन की आवाज से सारी कोठरी झनझना उठी। तारा और माधव भीतर गये। देखा कि वहा वार्निश किया हुआ महोगनी लकडी का एक पलग बिछा था। और दीपक की धुंधली रोशनी मे एक नारी मूर्ति उस शैया पर लेटी थी। उस मूर्ति को देखकर मातंगिनी की याद आ गई जो अपने कमजोर शरीर मे भी सुन्दर नजर आ रही थी।

|२०|

मातगिनी की प्राण-शून्य देह को उठा कर माधव और तारा एक ऐसी जगह ले गए जहाँ किसी अन्य व्यक्ति का आना-जाना सभव न था। तारा की अथक और स्नेहमयी सेवा तथा खुली स्वच्छ हवा के स्पर्श से मातगिनी के मुख पर जल्दी ही लाली दिखाई पडी। फिर भी उसके निर्बल शरीर मे पूरी ताकत नही आई। खिडकी पर बैठ कर तारा मातगिनी से उसका इतिहास सुनती रही। मातगिनी बहुत धीरे-धीरे थके स्वरो मे सब बता रही थी। उसकी ऐसी स्थिति थी जैसे उसे जिन्दा ही मृत की समाधि मे डाल दिया गया था।

हुआ यह था कि जिस समय मथुरा घोष ने सुकी की माई को मातगिनी को घर पहुँचाने को कहा था उस समय वह सोच भी न सकी थी कि वह कैसे इस राक्षस की कैद मे फँस जायेगी। सुकी की माई को पहले ही समझा-बुझा दिया गया था। उसे रास्ते मे ही मातंगिनी से पूछा था कि घर वापस जाते हुए उसे डर तो नही लग रहा है?

मातगिनी ने कहा था, 'सुकी की मॉ, सच पूछो तो अगर मेरे लिए रहने को कोई और ठिकाना रहता तो मै वहाँ कभी वापस न जाती।'

उस चुडैल ने कहा था, 'अच्छा तो मै तुम्हे एक ऐसी जगह पर छिपा सकती हूँ जहाँ से कोई तुम्हे खोज कर निकाल ही नही सकता।'

तब बहुत सोच कर मातगिनी ने कहा था, 'नही, मै छिप कर नही रहूँगी। लोग तरह-तरह की बातें उठावेंगे।'

'तो अपनी बहन के घर चली जाओ।'

'ऐसा तो कदापि नही हो सकता।' आह भर मातगिनी ने कहा।

वह बुढिया बडी चलाक व चलता पुर्जा थी। वह मतगिनी के प्रति दया दिखा कर उसे अपने बाप के घर ले जाने का बहाना करने लगी। तब मातगिनी ने बडे दुख से अपनी विवशता बताई 'लेकिन मेरे पास जाने का खरचा नही है।'

'ओह खरचे को चिन्ता तुम क्यो करती हो? बडी अम्मा तुम्हारे लिए नाव किराए पर कर देंगी और मैं तुम्हे वहाँ तक छोड आऊँगी।'

मातगिनी फफक कर रोपडी। कृतज्ञता से उसका मन भर आया। उसकी मानसिक स्थिति को समझ कर बुढिया ने पूछा, 'तो मैं बडी अम्मा से कह आऊँ?'

'हाँ कह आओ।'

'तो मैं तुम्हे जहाँ बैठा जाऊँ वही बैठी रहना ताकि तुम्हे कोई देख न ले।'

बस इसी बात के बाद उस चुडैल के पीछे चलती हुई मातगिती गोदाम-महल की चोर कोठरी मे पहुँच गई। इस सुनसान अँधेरे कमरे की सजावट देख कर मातगिनी बहुत हैरान हुई। सुकी माई से इस स्थान के बारे मे पूछने को मातगिनी घूमी तो पाया कि वह चुडैल तब तक गायब हो चुकी थी और दरवाजा बाहर से बन्द हो चुका था।

बुद्धिमती मातंगिनो को समझते देर न लगी कि वह बुरी तरह फन्दे मे फँस गई है। वह सोचने लगी कि इस दशा मे उसे अब क्या करना चारिए। लेकिन वह कोई उपाय तत्काल सोच न पाई।

उसे शाम को मथुरा घोष नें आकर अपने-आपको उसके चरणो पर डाल दिया।

घृणा से भर कर मातंगिनी ने जब उसे फटकरा तो उसने भी अपनी घृणित लालसा मिटाने का और बदला लेनें का मन ही मन निश्चय कर लिया। उस समय मातगिनी से विदा लेते हुए मथुरा घोष ने स्पष्ट रूप से कहा, 'प्राणकारी! तुम्हे अपने आपको मुझे सौंपना ही पडेगा।'

मातगिनी की आँखो से उस समय क्रोध की जो ज्वाला बरस रही थी उससे एक नहो बीस पुरुषो के कलेजे भी भस्म हो जा सकते थे। उसने घृणा से चीख कर कहा, 'कभी नही, मै कभी भी तुम्हारी नही हो सकूँगी। 'फिर वह मथुरा के सामने आकर अपनी लम्बी काया तान कर खड़ी हो गई और बोली, 'मेरी ओर देखो, मे निर्बल नारी हो कर भी अभी युवती हूँ मुझमे कम ताकत नही है। तुम अकेले मुझसे ताकत आजमा कर देख लो, हाँ अगर तुम कायर की तरह कही अपनी किसी साथी को न बुला लेना।'

मथुरा उसकी शक्ति और आत्मविश्वास को देख कर दग रह गया। फिर बोला, 'अच्छा तो तुम्हारी जठराग्नि ही मेरी सहायता करेगी। मै नारी के विरुद्ध किसी अन्य शस्त्र का प्रयोग नही करूँगा।'

मातंगिनी बोली, 'ठीक है। उपवास ही मेरा एक सहारा है।'

मथुरा ने सोचा कि वह मातगिनी को खाना न देकर, भूखा रख कर उसे विवश करके अपनी लालसा पूरी करने के लिए अपने रास्ते पर ला सकेगा, पर मातगिनी ने तो अपनी रक्षा के लिए अपने प्राण देने का ही निश्चय कर लिया था।

और दोनो ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इस समय मातंगिनी उप-वास के कारण ही इतनी कमजोर और मृत-प्राय सी हो रही थी।

सबेरा होने से पहले ही माधव चला गया पर शरीर अत्यन्त कमजोर होने के कारण मातगिनी न जा सकी। माधव और तारा ने सलाह की कि शाम तक मातंगिनी तारा के ही पास रहेगी। शाम के बाद करुणा आकर उसे ले जाएगी।

तारा माधव को घर के बाहर तक छोड आई। फिर वापस आ कर वह हँसी करते हुई बोली, 'अब कैद करने की बारी उसकी है।' इतना कहते हुए उसने खूब सतर्कतापूर्वक दरवाजा बन्द कर दिया। फिर वह चाभियो का गुच्छा पति के कमरे मे ठीक जगह पर रख कर लौट आई और बिस्तर पर लेट गई। उस रात फिर एक चूहे ने भी तनिक सा शोर नही किया। लेकिन इतनी शाति मे भी तारा सो न पाई। अब उसने अपने पति की गुप्त बातो को जान लिया था। उसके उदार हृदय पर यह ज्ञान का असह्य पीडा छोड़ गया था। इस बात को जिस-जिसने भी जाना, उनमे से सबसे अधिक दुख इसी प्रेममयी तथा पतिव्रता पत्नी ने पाया। पति के गुप्त रहस्यो को जान लेने के बाद उसका कलेजा बार-बार काँप उठता था।

उस दिन मातगिनी ने सारा दिन उसके निर्जन कमरे मे आकर बिताया। शाम को आकर करुणा उसे लिवा ले गई। बहुत दिनो से दुर्दशा और क्लेश भोगते रहने के बाद मातगिनी ने हेमागिनी को अपनी बाँहो मे भर लिया।

मिलन की प्रथम-प्रसन्नता कुछ कम होने पर हेम ने कहा, 'दीदी, वायदा करो कि फिर कभी मुझे छोड़ कर नही जाओगी।'

मातगिनी ठंडी आह भरने लगी। उसकी आँखें बरसने लगी।

हेम दुख से बोल उठी, 'दीदी मेरी बात का उत्तर दो न! हाय-हाय! ऐसा लगता है कि फिर हमलोगो मे एक बार बिछोह होगा।'

मातंगिनी जब चुप रही तो निराश हेम ने फिर कहा, 'दीदी, भला बताओ न कि अब किस अपराध के कारण हमे फिर छोड़ कर चली जाओगी?'

बहुत देर बाद मातगिनी ने कहा, 'पिता के पास जाऊँगी।'

|२१|

उस दिन शाम को बडी तेज आँधी आई और चारो ओर अंधकार छा गया। बिजली की कडक मे आसमान भी काँप उठा। मथुरा घोष अकेला ही बैठा था। विश्राम के समय उसे आँधी की हुँकार मे मानो शख की आवाज सुनाई दे रही थी। पहले उसने सोचा कि जिन लोगो ने उसके जीवन मे कलक और दुर्दशा पैदा की है उनकी पुकार की परवाह वह न करेगा। परन्तु जब सकेत-ध्वनि लगातार ऊँची होती गई तो वह उठा और निश्चय स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ पेड के नीचे खडी आकृति को देख कर उसे डाकू सरदार के रूप मे पहचानते उसे देरी न लगी।

तनिक व्यग्य भरे शब्दो मे मथुरा ने कहा, 'हमारे साथ काफी खेल हो चुका। आखिर मामला क्या है ? मुझ पर बहुत काफी कलक लग चुका। तुमने मुझे काफी धोखा दिया।'

सरदार ने शात मन से उत्तर दिया, 'धोखा हमने कभी नही दिया। जहाँ तक हो सका है, हमने आपका साथ ही दिया है। लेकिन हमारे साथ रहनेवालो को भी आखिर तक सजा भोगनी पडती है।'

मथुरा ने सरदार को लगातार उपदेश देते देख कर क्रोध से कहा, 'तुम अच्छी तरह जानते हो कि अब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नही है। लेकिन इस भयानक तूफानी रात मे तुमने मुझे क्यो बुलाया है ?'

क्रोध से काँपते हुए सरदार ने कहा, 'क्यो, क्यो ? क्या इसीलिए कि इस समय के अलावा किसी और समय हमारे लिए निकलना मुश्किल है। जानते हो कि पुलिस हर समय हमारे पीछे पडी रहती है।'

'तो राधागज छोड कर कही और चले क्यो नही जाते ?'

सरदार के चेहरे पर व्यग्य की हँसी छा गई। वह बोला, 'पहले तो कभी ऐसी बाते न करते थे ! बाबू, अब शायद तुम्हारे बुरे दिन आ गए है। परन्तु इतना तो मानोगे न कि हम जिन लोगो का काम करते हैं उनके बारे मे अच्छी धारणा भी रखते हैं।'

मथुरा ने पूछा, 'मतलब ?'

क्रोध से भरी आवाज में सरदार बोला, 'जो इतने दिनो तक मेरे साथ-साथ छाया की तरह रहता था, आज वह भी मेरे साथ नही है।'

'हाँ, सो तो देख ही रहा हूँ। लेकिन वह गया कहाँ ? उसका नाम क्या है ? शायद भीखू है न ! खूब याद आया।'

'हाँ, वह पकडा गया है।'

मथुरा चौक पडा फिर बोला, 'कोई और घटना तो नही घटी ?'

सरदार के स्वर मे निराशा भरी थी। बोला, 'वह भी हो गई है। भीखू ने सब कुछ मान लिया है।'

घबरा कर मथुरा ने पूछा, 'क्या मान लिया है ?'

निराश सरदार बोला, 'बहुत कुछ ! जो कुछ उसने स्वीकार कर लिया है उससे मुझे और तुम्हे काले पानी की सजा मिल सकती है। लेकिन मुझे वह लोग पकड नही सके। राधागज मे यह मेरा अतिम दिन है। हमने तुम्हारी भलाई करनी चाही। कोई कभी यह न कहे कि हमने तुम्हारी भलाई नही की। इसीलिए सावधान करने चला आया।'

इतना कह कर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही सरदार झाड़ी मे गायब हो गया।

घर लौट कर मथुरा लगभग दो घण्टे तक सोचता रहा। उसकी मानसिक शक्ति काफी तेज थी। उसने हिम्मत जुटाई। वह जानता था कि पुलिस रुपयो की लालची और बेईमान है। धन की उसके पास कमी नही है। भरपूर घूस देकर वह पुलिस का मुँह बद कर देगा। शहर मे मजिस्ट्रेट भी एक लफगा आदमी ही है। हर एक मामले में टाँग अडाना उसका स्वभाव है। वे अक्सर पुलिस के अनेक पापो का प्रायश्चित करने का प्रयास करते है। मथुरा जानता था कि वह मजिस्ट्रेट रूपी-आइरिश और लफगे आदमी से भीखू का इकरारनामा बदलवा देगा। तभी किसी के भाग कर भीतर आने की आवाज से उसके चिन्तन मे बाधा पडी। आने वाला एक सरकारी कर्मचारी था।

आते ही चिल्ला कर उसने कहा, 'बाबूजी, भागिए ! अब एक क्षण की भी देरी ठीक नही।'

हैरान मथुरा बोला, 'क्यो क्या बात है ?'

'भीखू ने मजिस्ट्रेट के सामने मान लिया है कि कई डकैतियाँ और राहजनी के काम उसने आपके ही कहने पर किया है।'

'क्या मजिस्ट्रेट के सामने उसने मान लिया ?' पूछते ही मथुरा का चेहरा पीला पड गया।

'उसका इकरारनामा लिखे जाने के बाद ही मै भागता हुआ यहाँ आपको खबर देने आया हूँ। मेरा ख्याल है कि आज रात मे ही वे राधागज आवेंगे।'

मथुरा बोला, 'राधागज ! आज रात मे ही ?'

'हाँ हुजूर, अब जल्दी कीजिए, यहाँ से भागिये।'

'हाँ, जरूर भागूँगा।'

अगले ही दिन वह आइरिश अफसर मथुरा घोष को हथकड़ी पहनाने उसके घर

पहुंचा। उसके पीछे अनेक सुसज्जित सिपाही और बहुत से लोग थे। मथुरा घोष के मकान का कोना-कोना छान मारा पर वह कही न मिला।

आखिर मथुरा घोष, उसी कोठरी मे जहाँ माधव बन्द था, मृत दशा मे पडा पाया गया। उसने गले मे फाँसी लगा कर आत्महत्या कर ली थी।

सरदार तो निश्चित रूप से भाग गया। लेकिन राजमोहन न भाग सका। भीखू के इकरारनामे से वह भी बुरी तरह फँस गया था और पकडा गया था। पर ज्यादा बुद्धिमानी दिखाने के सम्पूर्ण रूप मे भीखू तथा राजमोहन दोनो को ही कालापानी भेज दिया गया।

माधव के घर मातगिनी रह न सकी। दोनो ही इसका कारण अच्छी तरह जानते थे। उसे उसके पिता के घर भेज दिया गया। वह खुद आकर लिवा ले गये। माधव ने उस वृद्ध की माहवारी सहायता मे कुछ वृद्धि कर दी। मातगिनी के जीवन का का अन्त अल्पायु मे ही हो गया।

तारा अपने पति के भयकर जीवन का अंत देख कर मन ही मन चुपचाप वह कुछ सोचती रही। उसने शाति से लम्बा, विधवा का जीवन बिताया और जब वह मरी, तो लोगो ने दुख प्रकट किया।

माधव, चम्पा और अन्य लोगो मे कई लोग मर चुके है। उनके जीवन का इतिहास बहुत सक्षिप्त है।

दुर्गेशनन्दिनी

□

[रचनाकाल · सन् १८६५]

□

बंकिमचन्द्र के उपन्यासो मे 'दुर्गेशनन्दिनी' सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास है। सन् १८६५ मे ही यह कृति बगला मे पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। सभवत यही बंकिमचन्द्र की पहली प्रकाशित रचना भी है। यह कृति बंकिमचन्द्र ने अपने ज्येष्ठ-भ्राता श्री श्यामाचरण चट्टोपाध्याय को समर्पित की थी।

'दुर्गेशनन्दिनी' का जन्म किस घटना से हुआ, इसका विवरण बंकिमचन्द्र के कनिष्ट भ्राता श्री पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इस रूप मे दिया है

'. हमारे पितामह एक सौ आठ वर्ष की आयु तक जीवित रहे।. .उनके निकट बैठ कर बंकिमचन्द्र और मै उनसे खूब कहानियाँ सुना करते थे। उनकी कहानियो में अधिकाश ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिए होती, विशेषकर बगाल के मुसलमान-शासको से संबधित। .. उन्ही से बंकिमचन्द्र ने सर्वप्रथम गढ मदारन की घटना के बारे में सुना। उन्होने उस समय के मुस्लिम बादशाहो के बारे मे बहुत-सी बाते बताईं और बहुत-सी घटनाओ का उल्लेख भी किया। मदारन ग्राम जहानाबाद और विष्णुपुर के मध्य मे स्थित है। उस अंचल मे मदारन की घटनाओ को लेकर बहुत-सी किम्वदन्तियाँ प्रचलित है। बंकिमचन्द्र ने मदारन ग्राम की यात्रा की, वहाँ के जमीदारो के गढो के भग्नावशेषो को देखा। वही सुना कि उडीसा की ओर से पठान आ कर वहाँ लूटपाट करते थे और स्त्रियो को बन्दी बना कर ले जाते थे। राजपूत-कुल-तिलक कुमार जगत सिह ने उनकी रक्षा का बीडा उठाया और वे बन्दी बने। . यह कथा बंकिमचन्द्र ने अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की आयु में सुनी थी। कई वर्षों तक उनके मन मे बसी रह कर 'दुर्गेशनन्दिनी' उनकी अमर रचना के रूप मे अवतरित हुई।'*

'दुर्गेशनन्दिनी' की रचना से बंगला साहित्य मे नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ। इसके प्रकाशन के पूर्व स्वय बंकिमचन्द्र को विश्वास न था कि उनकी यह रचना इतना यश कमाए गी। निंदा-प्रशसा की सम्भावनाओ के बीच वे स्वयं चिन्तामग्न थे और इसके प्रकाशन के प्रति बहुत उत्साहित न थे। लेकिन जब 'दुर्गेशनन्दिनी' पुस्तक रूप मे सामने आई और साहित्य के पडितो ने इस रचना का मुक्तकण्ठ से अभिनन्दन किया तो बंकिमचन्द्र कुछ उत्साहित अनुभव करने लगे।

---

* बंकिम-प्रसंग।

'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रकाशित होने पर सम-सामयिक पत्रिकाओ मे इसकी विचित्र और विशद् आलोचना हुई। 'सवाद-प्रभाकर', 'रहस्य-सन्दर्भ', 'हिन्दू-पेट्रियट' मे प्रकाशित आलोचनाएँ उल्लेखनीय है। अधिकाश आलोचनाएँ प्रशसापूर्ण थी।

बकिमचन्द्र के जीवन काल में ही 'दुर्गेशनन्दिनी' के तेरह सस्करण बंगला भाषा में हो चुके थे, और अग्रेजी, हिन्दी और कन्नड मे अनुवाद भी।

●

पहला भाग

| १ |

देवमन्दिर

सन् १५९० ई० मे गरमी के अन्तिम दिनो मे एक दिन एक घुडसवार विष्णुपुर से मन्दारन के रास्ते पर अकेले चला जा रहा था। दिनमान को अस्ताचल जाने के लिये उद्यत देख कर घुडसवार ने घोडे को तेजी से दौडाना शुरू किया। सामने था लम्बा मैदान, देख कर घुडसवार ने सोचा कि काल-धर्म के अनुसार यदि प्रदोष-काल मे आँधी-पानी का प्रबल वेग शुरू हो जायेगा तो इस खुले मैदान मे निराश्रय रहने मे बडा कष्ट झेलना पडेगा। फिर भी मैदान पार होते-होते सूर्यास्त हो गया। क्रमश आकाश भी नीला-काला होने लगा। रात्रि के इस प्रथम चरण मे ही चारो ओर ऐसा गहरा अधेरा छा गया कि घोडा बढाना मुश्किल होने लगा। ऐसी स्थिति आ गई कि मात्र बिजली चमकने पर ही उसकी रोशनी मे राहगीर आगे बढ पा सकता था।

थोडी ही देर मे महा-हंगामे के साथ गरमी का तूफान चालू हो गया। साथ ही प्रवल वेग से वर्षा भी शुरू हो गई। घुडसवार को फिर रास्ते का अन्दाज मिलना बन्द हो गया। उसने विवश होकर घोडे की लगाम ढीली कर दी। घोडा अब अपनी ही तबियत से बढने लगा। इसी प्रकार कुछ दूर चलने के बाद अचानक घोडे को एक किसी कठोर चीज की ठोकर लगी। उसका पैर फिसल गया। ठीक उसी क्षण एक बार फिर बिजली कौधी। घुडसवार को सामने पडी कोई सफेद चीज क्षण भर को दिखाई दी। उस सफेद स्तूप जैसी चीज को मकान का भाग समझ कर घुडसवार कूद कर घोडे की पीठ पर से जमीन पर आ गया। अब उसने जाना कि घोडे के पाव मे पत्थर की सीढियो की ठोकर लगी है। अब पास ही आश्रय के लिए स्थान देख कर घुडसवार ने घोडा वही छोड दिया। अब वह उसी अधेरे मे पूरी सतर्कता के साथ सीढियाँ चढने लगा। फिर बिजली कौधने पर घुडसवार को मालूम हुआ कि सामने की अट्टालिका एक

देवमन्दिर है। सावधानीपूर्वक वह उस देवमन्दिर के दरवाजे तक जा पहुँचा। देखा दरवाजा बन्द है। धक्का देने पर मालूम हुआ कि दरवाजा बाहर से नही, भीतर से बन्द है।

सुनसान मैदान के बीच बने इस जनहीन स्थान पर ऐसे समय मन्दिर के दरवाजे कौन भीतर से बन्द करेगा ? यह सोच कर घुडसवार का विस्मित और आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक ही था। सिर के ऊपर प्रबल बेग से वर्षा हो रही थी, इसलिए वह बराबर दरवाजे पर चोट करने लगा, ताकि भीतर जो हो वह दरवाजा खोल दे। लेकिन मन्दिर के भीतर से दरवाजा खोलने कोई न आया। एक बार तो उसके मन मे आया कि पाँवो से धक्का मार कर दरवाजा तोड दे, लेकिन देवमन्दिर के दरवाजे को पैरो से तोड़ना देवालय के प्रति अप्रतिष्ठा होगी, अत वैसा न कर सका। लेकिन पूरी शक्ति से हाथो से दरवाजा भड़भडाना बन्द नही किया। थोडी देर बाद भीतर से अर्गला खुली। द्वार खुलने पर ज्यो ही युवक पथिक मन्दिर के भीतर गया कि उसके कानो को एक अस्फुट चीख सुनाई पड़ी और ठीक उसी समय, दरवाजे से आते हवा के तेज झोको से वहाँ टिमटिमाता दीपक भी बुझ गया। इसलिए वह यह न देख पाया कि मन्दिर के भीतर कौन लोग है या मन्दिर मे किस देवता की मूर्ति स्थापित है। ऐसी विषम स्थिति देख कर युवक अपने निर्भीक स्वभाव के अनुरूप हँस पडा। फिर देवमन्दिर की अदृश्य प्रतिमा को अधेरे मे ही प्रणाम किया। इसके बाद अधेरे मे ही उच्चस्वर मे पुकार उठा, 'मन्दिर मे कौन है ?'

किसी ने उत्तर तो न दिया पर कानो को स्त्री अङ्गो के आभूषणो के बजने की झनकार सुनाई पडी। युवक कुछ भी स्पष्ट रूप से समझ न सका और पुकारना या पूछना व्यर्थ समझ कर उसने आधी-पानी से बचाव के लिए फिर से मन्दिर का दरवाजा बन्द कर लिया। फिर टूटी अर्गला की जगह दरवाजे से अपनी पीठ लगा कर खडा हुआ और बोला, 'मन्दिर के भीतर जो कोई भी हो, सुने, मै यहाँ दरवाजे से लगा शस्त्र लेकर बैठा हूँ। मेरे विश्राम मे कोई विघ्न न डाले। यदि यहाँ पुरुष है तो विघ्न होने पर फल पाओगे और यदि यहाँ स्त्री है तो निश्चिन्त होकर विश्राम करे। राजपूत के हाथ मे ढाल-तलवार रहते स्त्री के पैर में काँटा भी नही चुभ सकेगा।'

'आप कौन है ?' मन्दिर के भीतर से ही स्त्री-कण्ठ द्वारा प्रश्न हुआ। सुन कर अति विस्मित होते हुए युवक ने उत्तर दिया, 'स्वर से समझता हूँ कि प्रश्न किसी सुन्दरी ने किया है। लेकिन मेरे परिचय की भला आप को क्या आवश्यकता है ?'

फिर स्त्री-कण्ठ से उत्तर मिला, 'हमे बहुत डर लग रहा है।'

'मै कोई भी हूँ ? हमारे यहाँ अपना परिचय देने की रीति नही है, पर मेरे रहते स्त्री-जाति को किसी प्रकार के डर की अशंका नही होनी चाहिये।'

'आपकी बात सुन कर डर जाता रहा, साहस जुटा। अभी तक हमलोग डर के

मारे मरी सी थी। अभी भी मेरी सहचरी अर्द्ध-मूर्छिता है। हम शाम को यहाँ शैलेश्वर महादेव की पूजा करने आए थे। बाद में प्रचण्ड आँधी-पानी आने के कारण हमारी सवारी लेकर दास-दासियाँ हमें छोड कर जाने कहाँ चले गये है।'

'तो भी चिन्ता की कोई बात नही। आप लोग विश्राम कीजिए। कल सुबह मै आप लोगो को आपके घर पहुचा आऊँगा।'

''शैलेश्वर महादेव आपका कल्याण करे।'

आधी रात के लगभग जब आंधी-पानी का वेग थम गया तो युवक ने कहा, 'अब आप लोग साहस करके थोडी देर यहा अकेली ही रहे। मे दिया लाने के लिए आस-पास के गाँव मे जाता हूँ।'

उसी रमणी ने कहा, 'महाशय, गाँव तक जाने की जरूरत नही है। इस मन्दिर का रखवाला एक नौकर कही पास ही मे रहता है। अब तो चाँदनी भी निकल आई है। मन्दिर के बाहर ही कही उसकी कुटी दिखाई पडेगी। इस सुनसान प्रात मे वह अकेला ही रहता है, इसलिए आग जलाने का प्रबन्ध वह सदा अपने घर म रखता है।'

इसी सूचना के अनुसार युवक ने मन्दिर के बाहर आकर देखा। चाँदनी मे उसे तत्काल ही देवमन्दिर के सेवक का मकान दिख गया। उसके घर के द्वार पर पहुँच कर उसे जगाया। इतनी रात को जगाये जाने पर पहले तो मन्दिर का रखवाला डर गया, दरवाजा न खोल कर, वह एक आड मे छिद्र से देखने लगा कि कौन आया है, बहुत गौर से देखने पर भी उस आगन्तुक मे दस्यु के कोई चिन्ह और लक्षण न दिखे तो दर्शनीय युवक पथिक से कम से कम एक स्वर्ण-मुद्रा पाने का लोभ वह सम्हाल न सका। मन ही मन सब सोचता हुआ उसने घर का दरवाजा खोला और दिया जलाया।

रखवाले से दीपक लेकर युवक मन्दिर मे वापस आया और तब उसने देखा कि मन्दिर मे संगमरमर की विशाल शिवमूर्ति स्थापित है। उसी मूर्ति के पीछे दो स्त्रियाँ सिकुडी-सिमटी बैठी है। दीपक की रोशनी आते ही कम उम्र वाली युवती स्त्री ने घूँघट खीच कर सिर झुका लिया। लेकिन युवक ने उसके खुले हाथ मे हीरो के आभूषण और कीमती काम वाले जरीन के कपडे शरीर पर लिपटे देखे। गहनो की अधिकता देख कर युवक को समझते देरी नही लगी कि युवती किसी निर्धन या हीन वश की नही है। दूसरी स्त्री के पहनावे मे थोडी सी हीनता और आकर्षण की कमी देख कर युवक ने समझा कि यह युवती की सहचरी या दासी होगी। लेकिन वह भी साधारण दासियो से अधिक सम्पन्न दिखती थी। उम्र भी पैतिस साल के आसपास लगी। युवक को सहज ही लग गया कि अभी तक जो भी बातचीत हुई है वह इसी बडी उम्र वाली स्त्री से ही हुई है। फिर और गौर से देखने से युवक को और विस्मय हुआ कि दोनो स्त्रियो का पहनावा इस देश की स्त्रियो के साधारण पहनावे से भिन्न है। दोनो ही पछाँही प्रान्त की स्त्रियो का पहनावा पहने थी। मन्दिर के भीतर दीपक रखने की जगह पर दीपक

रख कर युवक स्त्रियो के सामने जा खडा हुआ। दीपक की रोशनी पूरी तरह अब युवक के शरीर पर पड रही थी। उन दोनो स्त्रियो ने देखा कि युवक की आयु पच्चीस वर्ष के लगभग या थोडी अधिक होगी। शरीर इतना लम्बा है कि दूसरे को उतनी ऊँचाई भद्दी लगती परन्तु इस युवक की चौडी छाती की विशालता और स्त्री अगो के भरे-पूरे गठन के कारण यह लम्बाई इस युवक के आकर्षण को आलौकिक व श्री बढाने वाली सिद्ध हुई है। वर्षा की नई कोमल दूब जैसी बल्कि उससे अधिक ही उसकी स्निग्ध-कान्ति है। वसन्त के पेडो की नई पत्तियो जैसे वर्ण पर कवच आदि राजपूत-जाति के सभी श्रृगार शोभा पा रहे थे। कमर मे मियान मे बन्द तलवार कमरबन्द मे झूल रही थी। लम्बे हाथ मे एक लम्बा सा भाला, मस्तक पर उष्णीष है। उसमे लगा एक हीरा चमक रहा है। कानो मे चमकदार जडाऊ कुण्डल है और गले मे कीमती रत्नहार।

एक दूसरे को देख कर दोनो ही एक दूसरे के परिचय के लिए मन ही मन लालायित हुए। लेकिन शिष्टता-अशिष्टता के चक्कर मे किसी ने पहले परिचय पूछने की अभिलाषा प्रकट न की।

|२|

परिचय

युवक ने ही पहले अपनी जिज्ञासा प्रकट की। बडी उम्र वाली स्त्री को सबोधित कर के उसने कहा, 'लगता है कि आप लोग किसी भाग्यवान की पुरस्त्री हैं। परिचय के लिए कहने में सकोच हो रहा है। लेकिन मेरे लिए अपना परिचय देने मे जो अडचन है, शायद वह आप के लिए न हो, इसीलिए पूछने का साहस कर रहा हूँ।'

बडी उम्र वाली ने उत्तर दिया, 'हम स्त्रियो का परिचय भी भला क्या है! जो कुल की उपाधि भी धारण नही कर सकती वे भला क्या परिचय देगी! एकान्त मे रहना ही जिनका धर्म है उनका आत्म-परिचय भी क्या हो सकता है? जिस दिन विधाता ने स्त्रियो के लिए पति का नाम मुँह से कहने का निषेध किया था, उसी दिन स्त्रियो के लिए परिचय देने का मार्ग भी अवरुद्ध हो गया था।'

युवक इस बात का कोई उत्तर न दे सका। उसका मन दूसरी ओर था। युवती रमणी रह रह कर घूँघट को थोडा खिसका कर साथवाली स्त्री के पीछे से युवक की ओर एकटक देख रही थी। बडी उम्र वाली स्त्री से बातें करते समय एकाएक युवक की दृष्टि उधर गई, फिर दृष्टि लौटी नही, वही टिक गई। उसे ऐसा लगा जैसे ऐसी

अलौकिक रूपराशि वह और कभी न देख पायेगा। युवती की आँखो से युवक की आखे टकराईं। युवती ने तत्क्षण अपनी आँखें झुका ली।

युवक से उत्तर न पा कर सहचरी स्त्री ने सिर उठा कर युवक के चेहरे की ओर गौर से देखा और तत्काल समझ गई कि उसकी सगिनी युवती भी सतृष्ण आँखो से युवक को देख रही है। उसने युवती के कान के पास अपना मुँह ले जाकर कहा, 'क्यो री, क्या शिवजी के सामने ही स्वयवरा होगी ?'

नवीना ने लजा कर व सहचरी की उँगली उमेठ कर मृदु स्वर मे कहा, 'तू मर जा।'

यह स्थिति देख कर चतुर सहचरी ने मन ही मन सोचा कि यह जो सब लक्षण देख रही हूँ, उससे कही इस तेजस्वी युवक की तेजमय कान्ति देख कर मेरे संरक्षण मे आई यह बालिका मन्थर-शर से विद्ध हो, तो और चाहे कुछ न ही पर इसके मन का सुख सदा के लिए नष्ट हो जायगा, इसलिए यह पथ तो तत्काल ही बन्द करना आवश्यक है। तो फिर वह क्या उपाय करे ? इशारे से अथवा छल से ही युवक को यहाँ से हटा दूँ तो उत्तम होगा। यही मन मे निश्चय कर के उसने नारी-सुलभ स्वभावगत चतुराई से कहा, 'महाशय, स्त्री की सुकीर्ति ऐसी अपदार्थ वस्तु है कि वह किसी सहारे पर टिकी नही होती। आज के इस प्रबल तूफान मे बच पाना कठिन था, लेकिन अब तो आँधी और वर्षा रुक गई है। देखूँ, यदि पैदल ही चलकर हम लोग घर पहुँच सकें।'

युवक ने तत्काल कहा, 'यदि इस आधी रात के समय भी आप लोग घर जाना ही चाहे तो चलिये मै आप लोगो को घर तक पहुँचा आऊँगा। इस समय आकाश तो साफ हो गया है। मै तो अब तक अपनी राह चला गया होता, लेकिन आप की यह रूपवती सखी का बिना रक्षक के रहना उचित न होगा, यही सोच कर अभी तक रुक गया हूँ।'

इस स्त्री ने उत्तर दिया, 'हम लोगो पर आप जैसी दया दिखा रहे है, और कही आप हमे अकृतज्ञ न समझ ले, इसलिए मै कुल बातें स्पष्ट रूप मे कहने मे असमर्थ हूँ। महाशय, स्त्री के हीन भाग्य की बात और क्या कहूँ ? हम पर सहज ही कोई विश्वास नही करता। आप हमे पहुँचा आवें, यह हमारा परम सौभाग्य होगा, लेकिन जब मेरे मालिक, इस बालिका के पिता-पूछेंगे कि इतनी रात को किसके साथ आई हो तब यह बेचारी भला क्या उत्तर देगी ?'

क्षण भर चुप रह कर, कुछ सोच कर युवक ने कहा, 'यह उत्तर देगी कि महाराज मानसिंह के पुत्र कुमार जगतसिंह के साथ आई है।'

उस क्षण यदि मदिर पर वज्र भी गिरता तो मन्दिर मे आश्रय लेने वाली दोनो स्त्रियाँ इतनी ज्यादा विचलित न होती जितना इस क्षण युवक के मुँह से उसका परिचय पा कर हो उठी। दोनो ही एक साथ ही उठ कर खडी हो गईं। युवती तो शिवलिंग के पीछे सिमट गई और बातें करने वाली बडी उम्रवाला न तत्काल गले मे आँचल डाल कर, झुक कर

दण्डवत प्रणाम किया और द्रविन हो हाथ जोड कर बोली, 'युवराज, बिना जाने-पहचाने हमसे बहुत अपराध हो गया है, हम नादान अन्नाओ को उदारता से क्षमा कर दीजिएगा।'

युवराज ने हँस कर कहा, 'आप लोगो ने जो गुरुतर अपराध किए है, उनकी क्षमा नही होगी। हाँ, यदि अपना परिचय आप लोग दे तो क्षमा करने का प्रयत्न कर सकता हूँ। परिचय न देने पर समुचित दण्ड तो सहना ही पडेगा।'

मुलायम और नम्र शब्दो से रसिका का साहस सदा ही बढता है। उस स्त्री ने मुस्करा कर कहा, 'आप जो भी दण्ड उचित समझे दे, हम स्वीकार करेगी।'

'साथ चल कर तुम लोगो को तुम्हारे घर तक पहुँचा आऊँगा।'

सहचरी ने देखा कि वह लोग सचमुच विकट संकट मे फस गई है। एक विशेष कारण से वह नवीना का ठीक परिचय दिल्लीश्वर के सेनापति को नही देना चाहती थी, और यदि वे उनको पहुँचाने के लिए घर तक आये तो इससे और भी अधिक विपत्ति है, वह तो परिचय देने से भी अधिक विपत्तिजनक है। अत चिन्ता के कारण सहचरी सिर झुकाए सोचती रही।

ठीक इसी समय मदिर की थोडी दूरी से घोडो की टापो की एक साथ आती हुई आवाज सुनाई पडी। सुन कर, एकाएक व्यस्त होकर युवराज झपट कर मदिर के बाहर गये। उन्होने देखा कि लगभग एक सौ सवार उसी ओर आ रहे है। उनकी वर्दी देख कर फौरन पहचान लिया कि वे उन्ही के राजपूत सैनिक है। कुछ पहले युवराज युद्ध-सबधी काम से ही विष्णुपुर अंचल मे जाकर जल्दी ही एक सौ घुडसवारो की एक टुकडी के साथ अपने पिता के पास जा रहे थे। दिन के पिछले पहर अपने साथियो से आगे बढ कर चले आए थे। बाद मे एक रास्ते से और उनके साथी दूसरे रास्ते से निकले। इसलिए वे अकेले ही आँधी-पानी के सकट मे फँस गये थे। अब उन्हे उनके सैनिको ने देखा है या नही यह जानने के लिए उन्होने कहा, 'दिल्लीश्वर की जय!'

सुनते ही एक सवार भाग कर उनके पास आया। उसे देख कर युवराज ने कहा, 'धरमसिंह, प्रबल आँधी और पानी के कारण मै यही रुक गया था।'

धरमसिंह ने झुक कर प्रणाम करते हुए कहा, 'हमलोगो ने श्रीमान को बहुत खोजा, फिर इधर आये। इस बरगद के पास घोडे को देख कर रुक गया।'

'ठीक है, तुम घोडा लेकर यही प्रक्षीक्षा करो और दो आदमियो को पास के किसी गाँव से एक पालकी और वाहक लाने के लिये फौरन भेजो। बाकी सवारो को आगे बढने के लिए कह दो।'

यह आज्ञा सुन कर धरमसिंह थोडा विस्मित हुआ लेकिन मालिक की आज्ञा सुन कर प्रश्न करना अनुचित और अनवाश्यक समझ कर—जो आज्ञा—कह कर युवराज का आदेश पालन करने के लिए सवारो की ओर बढ गया। सैनिको ने जब

पालकी लाने के आदेश की बात सुनी तो एक ने दिल्लगी करते हुए कहा, 'आज तो यह बिल्कुल नई बात सुन रहा हूँ।' तब दूसरे ने कहा, 'क्यो नही ? महाराज, राजपूत-पति के तो सैकडो रानियाँ होती है न !'

इधर मदिर के भीतर युवराज के न रहने पर युवती ने अपना घूँघट हटा कर अपनी सहचरी से कहा, 'विमला, युवराज को अपना ठीक-ठीक परिचय देने मे तुम्हे क्या आपत्ति है ?'

विमला बोली, 'इसका उत्तर तो मै तुम्हारे पिताजी को ही दूँगी। इस समय यहाँ यह शोर-गुल क्यो हो रहा है ?'

'लगता है कि युवराज को खोजते हुए उनके सैनिक यहाँ आए है। जहाँ स्वय युवराज ही उपस्थित है, वहाँ तुझे चिन्ता क्यो हो रही है ?'

युवराज की आज्ञा पाकर जो घुडसवार पालकी और वाहक लेने को गाँव मे गये थे उनके वापस आने के पहले ही, पानी आँधी के कारण भाग कर गाँव मे आश्रय लेने गये स्त्रियो के सग आए रक्षक व वाहक वापस लौट आए। उन लोगो को दूर से वापस आते देख कर युवराज जगतसिंह मदिर में गये और विमला से बोले, 'कुछ हथियार बन्द सिपाहियो के साथ पालकी लेकर कहार आ रहे है। तुम जरा बाहर आ कर देख लो कि वे तुम्हारे आदमी है या नही ?'

मदिर के दरवाजे पर खडी होकर विमला ने देख कर बताया कि वे उन्ही के आदमी है।

युवराज ने कहा, 'तो अब मै यहाँ खडा नही रहूँगा। वे लोग मुझे यहाँ देखेंगे तो अनिष्ट हो सकता है, इसलिए मै अब चलता हूँ। शैलेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुमलोग बिना किसी बिघ्न और विपत्ति के घर पहुँच जाओ। हाँ, तुम लोगो से सी एक प्रार्थना है कि मुझसे यहाँ भेंट होने की बात एक सप्ताए तक किसी से प्रकट न करना। और भूल भी मत जाना, बल्कि याद रखने के लिए यह एक साधारण वस्तु अपने पास रखो। मुझे तो तुम्हारे प्रभु की कन्या का परिचय नही मिला, यही बात मेरे लिए याद रखने के चिन्ह-स्वरूप रहेगी।' कह कर युवराज ने अपने गले से मोतियो की एक माला उतार कर विमला के मस्तक पर रख दी। विमला ने भी वह मूल्यवान हार अपनी केशराशि मे धारण कर के अत्यन्त विनम्र व विनीत भाव से प्रणाम कर के कहा, 'युवराज, किसी विवशतावश मैने जो परिचय नही दिया, उसके लिए मुझे अपराधिनी मत समझिएगा। ऐसी घृष्टता करने का विशेष कारण है। लेकिन यदि इस विषय मे आप को बहुत ही जिज्ञासा हो तो कृपया आप इतना भर बतला दे कि आज के बाद, एक पक्ष बाद आप से कहाँ भेंट हो सकेगी ?'

थोडी देर सोचने के बाद युवराज जगतसिंह ने कहा, 'ठीक है, आज से एक पक्ष बाद रात को इसी मदिर मे मुझसे भेंट होगी। अगर उस दिन यहाँ न मिलूँ तो समझना कि अब इस जीवन में कभी भेंट न हो सकेगी।'

'देवता आप की रक्षा करें।' कह कर विमला ने सिर झुका कर प्रणाम किया।

युवराज ने एक बार फिर मुड कर तृष्ण और कातर दृष्टि से नवीना की ओर देखा और कूद कर घोडे पर सवार हुए और चले गये।

|३|

मुगल पठान

शैलेश्वर के मदिर से युवराज जगतसिंह ठीक आधी रात को चले गये। जगतसिंह राजपूत है, किस काम से बंगाल आये थे, अकेले ही क्यो विचर रहे थे, यह सब जानने के लिए बगाल की तत्कालीन राजकीय स्थिति का जाना जरूरी है।

—बगाल मे बख्तियार खिलजी ने सब से पहले मुसलमानी राज्य का झडा गाड़ा। इसके बाद कई शताब्दियो तक मुसलमानो ने बगाल पर बेखटके शासन किया। फिर दिल्ली के बादशाह इब्राहिम लोदी को लडाई मे हरा कर ९७२ हिजरी मे सुलतान बाबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। लेकिन उसी समय तैमूर-वशियो के अधीन बंगाल नही आ सका। जब तक प्रसिद्ध मुगल-सम्राट अकबर बादशाह का अभ्युदय नही हुआ, तब तक बंगाल देश मे स्वाधीन पठान राजा ही राज्य करते रहे। बुरे वक्त मे दाऊद खाँ ने सोते हुए शेर के शरीर पर हाथ रखा। इसके फलस्वरूप उन्हे अकबर के सेनापति मुनइम खाँ द्वारा पराजित होकर राज्यच्युत होना पडा। ९८२ हिजरी में अपने आदमियो के साथ दाऊद खाँ को उडीसा भाग जाना पडा। तब बंगाल का राज्य मुगलो के हाथ लगा। पठानो ने उडीसा मे गहरे पाँव जमाया। उनको वहाँ से निकालने मे मुगलो को बहुत अधिक प्रयास करना पडा। ९८६ हिजरी मे दिल्लीश्वर के प्रतिनिधि खाँजहाँ खाँ ने पठानो को फिर से गहरी पराजय दी और उडीसा को जीत कर अपने प्रभु को सौंपा। इसके बाद ही एक भयानक उपद्रव खडा हो गया। अकबर बादशाह ने बगाल से राज-कर की वसूली की जो नई प्रथा चलाई, उससे बगालके जमीदारो और जागीरदारो पर गहरा असंतोष फैला। अपने पुराने अधिकार की सुरक्षा के लिए उन्होने हथियार उठाया। बहुत ही भीषण राजद्रोह उपस्थित होने पर और सुअवसर पाकर उडीसा के पठानो ने फिर सिर उठाया और कतलू खाँ पठान के नेतृत्व मे फिर से उडीसा पर अधिकार कर लिया। मेदिनीपुर भी उनके अधिकार मे चला गया।

फिर बदला लेने आए कर्मठ राजप्रतिनिधि आजिम खाँ और उनके बाद शहबाज

खा, लेकिन दुश्मन द्वारा जीते गए राज्य को कोई छुडा न सका। तब इस दु साहसी कार्य को पूरा करने के लिए एक हिन्दू योद्धा को वहाँ भेजा गया।

महामति अकबर बादशाह अपने पूर्वज सम्राटो मे सबसे अधिक चतुर और कुशल-नीति थे। अनुभव से उन्हे विश्वास हो चुका था कि इस देश मे राजकाज के उचित सचालन मे विदेशी नही बल्कि यहाँ के आदमी ही अधिक योग्य और पटु है। फिर लडाई और राज-शासन मे राजपूत तो सबसे अधिक दक्ष है। अतएव, वे हमेशा ही कठिन राजकाज के लिए खास कर राजपूतो को ही नियुक्त करते थे।

इस समय अकबर बादशाह के राज्य मे ऊँचे पदो पर जो राजपूत नियुक्त थे, उनमे सर्वप्रमुख थे मानसिंह। वे अकबर के पुत्र सलीम के साले थे और अत्यन्त विश्वास पात्र थे। आजिम खाँ और शहबाज खा जब पठानो से उडीसा जीतने मे असफल रहे तब अकबर बादशाह ने मानसिंह को ही बगाल और बिहार का शासक बना कर भेजा।

९९६ हिजरी मे पटना पहुँच कर मानसिंह ने पहले फुटकर उपद्रवो और विद्रोहो को दबाया और शात किया। दूसरे वर्ष उडीसा-विजय की आशा से उधर की यात्रा की। जब मानसिंह पहले पहल पटना पहुँचे तो उसी नगर मे रहने का इरादा कर के उन्होने बगाल के शासन के लिए सैद खाँ को अपना प्रतिनिधि बनाया। यह प्रतिनिधित्व और गुरुभार पाकर सैद खाँ तत्कालीन बगाल की राजरानी तण्डा मे रहने लगा। इस समय उडीसा विजय के लिए रवाना होकर मानसिंह ने सैद खाँ को लडाई मे बुलाया। सैद खाँ को मानसिंह ने सदेश भेजा कि हम बर्दवान मे तुम्हारी सेना के साथ मिलना चाहते है।

बर्दमान पहुंचने पर राजा मानसिंह ने देखा कि आदेशानुसार सैद खाँ वहाँ नही पहुँचा था। उसका सदेश लेकर आया उसका एक दूत। वह सैद खाँ का सदेश लाया कि सैनिक-संग्रह करने मे बहुत देर लग सकती है, यहाँ तक कि पूरी तैयारी कर के जाते-जाते वर्षा शुरू हो जा सकती है, अत यदि राजा मानसिंह बरसात के अत तक वही शिविर डाले रहे तो वर्षा बीतने पर सेना लेकर वह मानसिंह की सेवा म हाजिर हो सकेगा। विवश राजा मानसिंह उसकी सलाह मान कर दारुकेश्वर के तट पर शिविर डाले रहे। वे वही रह कर सैद खाँ की प्रतीक्षा करने लगे।

वहाँ रहते हुए राजा मानसिंह को लोगो से खबर मिली कि अनके आगे न बढने से तथा उनके ठहरने को उनकी सुस्ती और तैयारी की कमी मान कर कतलू खाँ की हिम्मत बहुत बढ गई है। वह अपनी सेना के साथ मन्दारन के पास आकर गाँवो मे लूट-पाट मचाए हुए है। राजा मानसिंह यह पता लगाने को अत्यन्त उत्सुक और उद्विग्न हो गये कि शत्रु-सेना कहाँ पर है, किसलिए आयी है और शत्रु क्या कर रहा है? इसके लिए उन्होने तत्काल ही अपने एक प्रधान सेनाध्यक्ष को भेजना उचित समझा। मानसिंह के साथ ही उनके सुपुत्र जगतसिंह भी आये थे। इस कठिन काम का बोझ

उठाने के लिए उत्सुक जगतसिंह के बारे मे जान कर उन्होने ने एक सौ चुने हुए घुड-सवारो के साथ जगतसिंह को ही शत्रु-शिविर की ओर भेजा। काम पूरा कर के जल्दी ही जगतसिंह वापस आ गये।

| ४ |

नये सेनापति

शैलेश्वर के मंदिर से चल कर जगतसिंह सीधे अपने पिता राजा मानसिंह के शिविर मे पहुँचे। राजा मानसिंह को अपने पुत्र के द्वारा यह जानकारी मिली कि पठानो की लगभग पचास हजार सेना धरपुर गाँव के पास पडाव डाल कर जमी है और आस-पास के गाँवो मे लूट-पाट व मार कर रही है तथा जगह-जगह किले बनाकर या अधिकार करके बेखटके अपनी मनमानी कर रही है। तब मानसिंह ने मन ही मन निश्चय किया कि पठानो के इस उत्पात का जल्दी ही दमन करना अति आवश्यक है, लेकिन यह काम अति कठिन भी है। तत्काल कर्तव्य-निर्धारित करने के लिए उन्होने अपने विश्वस्त साथियो, सेनापतियो को जुटा कर समस्त परिस्थिति का वर्णन किया और कहा, 'दिन पर दिन, गाँव पर गाँव, परगने पर परगने दिल्ली के बादशाह के हाथ से निकलते जा रहे है। अब तो पठानो द्वारा किए जा रहे उपद्रव व उत्पात का तत्काल दमन किए बिना काम नही चलेगा, लेकिन प्रश्न है कि उनका तत्काल दमन किस प्रकार सभव हो सकता है? वे सख्या मे भी हमसे बहुत अधिक है। इसके अलावा उन्होने अनेक किलो का निर्माण किया है जिसमे रह कर वे लडेंगे। और लडाई मे उन्होने पराजित करने पर भी हम उन्हे पूरी तरह विनष्ट और स्थानच्युत नही कर सकेंगे। वे अपने किलो मे सहज रूप से सुरक्षित बने रहेगे। लेकिन आप लोग खूब अच्छी तरह सोच विचार कर देखे कि यदि लडाई मे हमारी पराजय हुई तो शत्रु के अधिकार मे निराश्र यहोने के कारण हमे बिल्कुल ही समाप्त हो जाना पडेगा। स्थिति का ठीक से अदाज किए बिना अनुचित साहस के भरोसे पर दिल्ली के बादशाह की सेना का बहुत अधिक सहार करा देना और साथ ही उडीसा-विजय की आशा को सदा के लिए मिटा देने का खतरा उठाना भी मेरे विचार मे अत्यधिक अनुचित होगा। मुझे तो सैद खाँ की प्रतीक्षा करना ही एक मात्र उचित रास्ता दिखता है। लेकिन स्थिति को देखते हुए शत्रु के दमन का तत्काल उपाय करना भी अति आवश्यक हो रहा है। अब आप लोग अपनी राय व सलाह दे कि क्या किया जा सकता है?'

बहुत सोच विचार के बाद सभी सेनापतियो ने एक मत होकर यही सलाह दी

कि अभी तो सैद खाँ के आने तक प्रतीक्षा करना ही ठीक होगा । तब राजा मानसिंह ने कहा, 'मै तो यह सोच रहा हूँ कि अपनी समस्त सेना को बरबादी के मुँह मे न झोक कर, थोडी सी सेना को किसी योग्यतम सेनापति के साथ शत्रु का सामना करने को भेज दूँ ।,

एक वृद्ध व पुराने मुगल सैनिक ने कहा, 'महाराज, जहाँ पूरी सेना भेजने मे भी विजय की निश्चित सभावना नही है, वहाँ थोडी सी सेना भेजने पर भला कौन-सा काम सिद्ध हो सकेगा ?'

मानसिंह बोले, 'किसी प्रकार की आमने-सामने की लडाई के लिए यह थोडी सी सेना नही भेजी जा रही है । यह सेना की टुकडी छिपी रह कर, गाँव लूटने मे लगी पठानो की छोटी-छोटी टुकडियो का संभव मुकाबला तो कर ही सकेगी ।'

मुगल सैनिक ने पूछा, 'पर महाराज, मौत के सामने कौन सेनापति जाने को तैयार होगा ?'

सुन कर राजा मानसिंह के भवो मे बल पड गये । वे बोले, 'क्या इतनी बडी राजपूत और मुगल सेना मे कोई ऐसा वीर नही है जो मौत से न डरता हो ?'

यह सुनते हो पाँच-सात राजपूत व मुगल उठ कर खडे हो गये और बोले, 'महाराज हम जाने को तैयार है ।'

वहाँ जगतसिंह भी उपस्थित थे वे उम्र मे सबसे छोटे थे । अत उन्होने सब के पीछे रह कर कहा, 'आज्ञा मिलने पर यह दास भी दिल्लीश्वर की सेवा के लिए जाने को तैयार है ।'

राजा मानसिंह खुश हुए । मुस्करा कर बोले, 'क्यो नही ? आज मुझे तो विश्वास हो गया कि अभी मुगलो और राजपूतो का नाम मिटने मे बहुत देर है । तुम लोग जब इस काम का भार उठाने को तैयार हो तब मै सोचूँगा कि किसे रोकूँ और किसे भेजूँ ?'

एक विश्वस्त पार्षद ने हँस कर कहा, 'महाराज इस काम का भार उठाने को इतने सारे लोग लालायित हैं, यह बडी अच्छी बात है । इनमे जो सब से कम सेना लेकर जाने को जो तैयार हो उसे, ही यह अवसर दिया जाना चाहिए । इस प्रकार हमारी सेना अधिक खर्च नही होगी ।'

राजा मानसिंह बोले, 'यह उत्तम सलाह है ।' 'फिर सबसे पहले जाने को तैयारी की घोषणा करने वाले से उन्होने पूछा, 'तुम अपने साथ कितनी सेना ले जाना चाहते हो ?'

उसने कहा, 'मै पन्द्रह हजार पैदल सेना से ही काम पूरा कर सकूँगा ।'

राजा ने सोच कर कहा, 'पन्द्रह हजार पैदल सेना ले लेने के बाद यहाँ शिविर मे तो फिर अधिक सेना बचेगी ही नही । यह बताओ, कौन ऐसा वीर है जो दस हजार सेना ले कर लडाई के लिए जाने की हिम्मत रखता हो ?'

सभी सेनापति चुप हो रहे । तब राजा मानसिह के प्रियपात्र और राजपूत योद्धा जसवन्तसिह ने राजा की आज्ञा का पालन करने की अनुमति माँगी । खुश होकर

राजा ने प्रसन्न चेहरे से सबो की ओर ताका। उसी क्षण कुमार जगतसिंह उनके सामने ही विनीत भाव से उठ कर खडे हो गये। राजा ने ज्योही उनकी ओर ताका कि अति विनम्रता पूर्वक वह बोले, 'महाराज का आदेश प्राप्त हो तो यह सेवक मात्र पाँच हजार सैनिको की सहायता से अत्याचारी कतलू खाँ को सुवर्णरेखा के उस पार तक खदेड आने का बचन देता है।'

सुन कर राजा मानसिंह विस्मित हुए। सभी दूसरे सेनापति कानाफूसी करने लगे। कुछ देर बाद सोच कर राजा ने कहा, 'कुँवर, हमे विश्वास है कि तुम राजपूत कुल के गौरव हो, लेकिन तुम्हारा अदम्य साहस सभवत सीमा को पार कर रहा है।'

जगतसिंह ने फिर विनम्रता पूर्वक हाथ जोड कर कहा, 'यदि मै अपने दिए वचन का पालन न कर सकूँ और दिल्लीश्वर की सेना का अपव्यय करूँ तो मै सहर्ष राजदण्ड से दण्डनीय होऊँगा।'

फिर थोडी देर सोच कर और गम्भीर रह कर राजा मानसिंह ने कहा, 'कुँवर मैं तुम्हारे राजपूत-कुल के धर्म के पालन मे किसी प्रकार की भी बाधा नही डालूँगा, अत अब इस काम के लिए तुम्ही जाओगे।'

फिर उन्होने जगतसिंह को आँसू भरी आँखो से गले लगा कर विदा किया। अन्य सेनापतिगण अपने-अपने शिविर के लिए चले गये।

| ५ |

गढ़ मन्दारन

जगतसिंह जिस मार्ग से होकर विष्णुपुर प्रदेश से जहानाबाद आये थे, उसी के थोडा दक्षिण ओर मन्दारन नामक गाँव है। उस समय यह गाँव एक सम्पन्न नगर था। उस दिन शैलेश्वर से मंदिर से दोनो स्त्रियाँ जिनसे जगतसिंह की भेंट हुई थी, मदिर से निकल कर इसी गाँव की ओर गई थी।

मन्दारन मे कुछ पुराने किले भी थे। सभवत इसीलिए इसका नाम गढ मन्दारन पडा होगा। नगर मे आमोदर नदी बहती है। एक स्थान पर इस नदी की धारा इस प्रकार टेढी हो कर मुडी थी कि वहाँ एक त्रिकोण बनाती भूमि के दो सिरे नदी से घिर गये थे और तीसरे सिरे पर आदमियो का बनाया एक गढ था। इस त्रिकोण भू-खण्ड के सामने जहाँ नदी का मोड था वहाँ एक विशाल किला पानी से आकाश की ओर सिर उठाए खडा था। पूरी अट्टालिका, नीचे से ऊपर तक काले पत्थर की बनी थी। दो ओर से नदी का प्रबल प्रवाह किले की जड से हर समय टकराता रहता था। नदी के उस पार और कई किले थे।

बँगाल के पठान सम्राटों के प्रमुख हुसेनशाह के विख्यात सेनापति इस्माइल गाजी ने यह किला बनवाया था। लेकिन एक समय यह किला जयधर सिंह नाम के एक हिन्दू सैनिक को जागीर-स्वरूप मिला था। जलधर सिंह के उत्तराधिकारी वीरेन्द्रसिंह यहाँ रहते थे।

युवावस्था मे बीरेन्द्रसिंह का अपने पिता से अच्छा वर्ताव व सबध न था। वीरेन्द्रसिंह अत्यन्त ही अभिमानी और उतावले स्वभाव के थे। पिता के आदेश आज्ञा पर कभी ध्यान न देते, इसलिए पिता-पुत्र मे सदा ही वाद-विवाद होता रहता। वृद्ध जागीदार ने पास ही के अपनी जाति के एक अन्य जागीरदार की कन्या से अपने पुत्र का विवाह करने का निश्चय किया। कन्या के पिता को कोई पुत्र न था। इसलिए इस विवाह से वीरेन्द्रसिंह की सम्पति काफी अधिक बढने की निश्चित सम्भावना थी और कन्या भी अद्वितीया सुन्दरी थी। ऐसा सम्बन्ध वृद्ध जागीरदार की दृष्टि मे सर्वात्तम था। वे विवाह की तैयारी भी करने लगे। परन्तु किसी कारणवश वीरेन्द्रसिंह को यह सम्बन्ध रुचिकर न था। उन्होने अपने ही गाँव की एक पति-पुत्र-हीना निर्धन स्त्री की कन्या से छिप कर विवाह कर लिया और अब दूसरा विवाह करने को किसी प्रकार भी राजी न हुए। इस पर वृद्ध ने क्रोध मे आकर पुत्र को घर से निकाल दिया। पिता के घर से निष्कासित होकर युवक वीरेन्द्रसिंह जोवन यापन के लिए सिपाही गीरी का सहारा लेने दिल्ली चले गये। उस समय उनकी धर्मपत्नी गर्भवती थी। अत. वे पत्नी को अपने साथ न ले जा सके। वह बेचारी अपनी माँ की कुटिया में ही रही।

इधर पुत्र के चले जाने के बाद वृद्ध जागीरदार के मन मे पुत्र-वियोग की मार्मिक मानसिक पीडा होने लगी। अपने किये पर पछताते हुए उन्होने पुत्र की खोज-खबर लेने की भरसक पूरी चेष्टा की, लेकिन उन्हे किसी प्रकार भी सफलता न मिली। पुत्र को तमाम प्रयत्नो के बाद भी वापस लाने मे असमर्थ होने पर वृद्ध जागीरदार पश्चाताप के रूप मे अपनी पुत्रवधू को उसकी दरिद्रा माता की कुटिया से अत्यन्त आदरपूर्वक अपने घर में लिवा लाये। समय आने पर वीरेन्द्र सिंह की पत्नी ने एक कन्या को जन्म दिया। लेकिन थोड़े ही दिनो बाद कन्या की माता का देहान्त हो गया।

दिल्ली पहुँच कर मुगल सम्राट के आज्ञाकारी राजपूत सैनिको मे वीरेन्द्र सिंह भरती हो गये। थोडे ही दिनो मे अपने गुणो के कारण वे ऊँचे पद पर पहुँच गये। कुछ समय तक उन्होने धन और सुयश अर्जित करते रहे, तभी उन्हे अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला। अब परदेश मे रह कर चाकरीवृत्ति करना उन्होने अनुचित और अनावश्यक समझा और नौकरी से मुक्ति लेकर अपने घर वापस आ गये। उनके साथ ही दिल्ली से अनेक सहचर भी आये। उनमे एक परिचारिका और एक परमहंस स्वामी भी थे। परिचारिका का नाम था विमला और परमहस का अभिराम स्वामी।

विमला घर गृहस्थी को कामो मे लगी रहती। इसके अलावा विशेष रूप से उस पर बीरेन्द्रसिंह की कन्या के लालन-पालन का भार था। इन कामो की जिम्मेदारियो के अलावा विमला के किले मे रहने का और कोई कारण न था। यद्यपि विमला वहाँ दासी का ही कार्य करती थी पर उसमे दासी के कोई लक्षण न थे। घर की मालकिन की जो प्रतिष्ठा और सम्मान रहता है, गाँव वालो मे विमला उसी प्रकार मान्य थी। बस्ती के लोग उससे डरते और उसकी आज्ञा मानते थे। विमला के मुखश्री को देख कर सहज ही मे जाना जा सकता है कि अपनी जवानी मे वह अति-परम-सुन्दरी रही होगी। प्रात काल मे चन्द्रमा के अस्त होने के समय का सा सौदर्य उसमे अभी भी था।

अभिराम स्वामी के एक शिष्य थे—गजपति विद्यादिग्गज। उन्हे अलंकारशास्त्र मे गति हो या न हो पर रसिकता प्रकट करने की चाह उनमे बहुत प्रबल थी। वे विमला को देख कर कहते, 'दाई तो जैसे हण्डी का घी है। मदन की अग्नि जितनी ही मन्द पड़ती जा रही है, देहराशि उतनी ही कठोर होती जा रही है।' जिस दिन गजपति विद्यादिग्गज ने वह विद्वतापूर्ण रसिकता का प्रदर्शन किया था उस दिन से विमला ने नाम रख दिया था—'रसिकराज रसोपाध्याय।'

शक्ल-सूरत और काम के अलावा बिमला की सभ्यता और बातचीत का ढंग ऐसा साफ-सुथरा था कि यह गुण अन्य दासियो और परिचारिकाओ मे नही पाये जाते। बहुत से लोग तो यहाँ तक कहते थे कि विमला बहुत दिनो तक किसी मुगल सम्राट की पुरवासिनी भी रही है। यह सच है या झूठ यह तो विमला ही जाने, पर इस सम्बन्ध मे उसने कभी कोई चर्चा नही की।

यह भी पता नही कि विमला विधवा है या सुहागिन। वह गहने पहनती थी, इकादशी का व्रत[1] भी नही करती थी, यानी सुहागिन के समस्त आचरण यह निभाती थी।

विमला दुर्गेशनन्दिनी, तिलोत्तमा से आन्तरिक स्नेह रखती थी। तिलोत्तमा भी विमला की वैसी ही अनुरागिणी थी। वीरेन्द्र सिंह के साथी अभिराम स्वामी हमेशा किले मे नही रहते थे। बीच-बीच मे तीर्थ-पर्यटन के लिए निकल जाते थे। दो एक महीने गढ मन्दारन मे रहते तो दो एक महीने विदेश भ्रमण मे। वीरेन्द्र सिह अभिराम स्वामी का जैसा और जितना सम्मान करते थे उसे देख कर दूसरे सभी समझते थे कि अभिराम स्वामी वीरेन्द्र सिंह के दीक्षा गुरु है। वीरेन्द्र सिंह सासारिक कामो मे सब कुछ अभिराम स्वामी के परामर्श और आदेश से ही करते थे। गुरू की सलाह भी अक्सर ही लाभदायद होती थी। वास्तव मे अभिराम स्णामी बहुत अनुभवी और प्रखर बुद्धि के थे। अपने व्रत और धर्म से उन्होने अधिकाश सासारिक विषयो मे सयम का अपूर्व अभ्यास

१. बंगाल की विधवा स्त्रियाँ इकादशी को निर्जल-व्रत करती है।

कर लिया था। आवश्यकता के अनुसार राग क्षोभ आदि का दमन करके वे स्थिर चित्त से किसी भी विषय की आलोचना कर सकते थे। ऐसे अवसरो पर उतावले तथा क्रोधी स्वभाव वाले वीरेन्द्र सिंह की समस्याओ का हल वही कर सकने मे पूर्णरुपेण सफल थे।

विमला और अभिराम स्वामी के अलावा आसमानी नाम की एक दासी भी वीरेन्द्र सिह के साथ आई थी।

| ६ |

अभिराम स्वामी से मंत्रणा

शैलेश्वर के मदिर से तिलोत्तमा और विमला सकुशल किले मे वापस आ गईं। इसके तीन-चार दिन बाद की बात है। वीरेन्द्र सिंह अपने दीवानखाने मे मसनद के सहारे बैठे थे। तभी अभिराम स्वामी वहॉ आये। वीरेन्द्र सिंह ने उठ कर प्रणाम किया और स्वामी जी की आज्ञा पाने के बाद बैठ गए। अभिराम स्वामी ने कहा, 'वीरेन्द्र, आज तुमसे एक विशेष बात कहनी है।'

'आज्ञा दीजिए।' वीरेन्द्र सिंह ने विनम्रतापूर्वक कहा।

स्वामी जी बोले, 'तुम तो जानते ही हो कि इस समय मुगलो और पठानो के बीच घोर सग्राम छिडा हुआ है।'

'जी हाँ, जानता हूँ। कभी की गभीर स्थिति का पैदा हो जाना संभव है।'

'हॉ, सभव तो है। तो इस सबंध मे तुमने अपने कर्तव्य का क्या निश्चय किया है।'

'अवसर आने पर बाहुबल से शत्रु को परास्त करूँगा।'

परमहस मुस्कराए। फिर मृदु भाव से बोले, 'हॉ वीरेन्द्र, तुम जैसे वीर का यही उत्तर उपयुक्त है, लेकिन वास्तविकता यह है कि मात्र वीरता से ही विजय नही होती। वीरता के साथ चाहिए नीति। नीति के अनुसार सधि और विग्रह करने पर ही विजय होती है। तुम तो वीरो मे अग्रणी हो, लेकिन तुम्हारी सेना एक हजार से अधिक नही है। कौन ऐसा वीर है जो हजार सिपाही लेकर शत्रु की सौगुनी बडी सेना को पराजित कर दे? मुगलो और पठानो के पास तुममे सौ गुनी ज्यादा सेना है। एक पक्ष की सहायता के बिना दूसरे पक्ष पर विजय कभी नही पा सकोगे। मेरे इस स्पष्ट कहने का बुरा मत मानना। स्थिर चित्त से समस्त परिस्थिति पर विचार करो। एक बात यह भी विचारणीय है कि तुम भला दोनो पक्षो से शत्रुता क्यो मोल लोगे? शत्रु बुरा तो है ही लेकिन

दो शत्रुओ की अपेक्षा एक ही शत्रु होना सदा लाभदायक रहता है। अत मेरी राय मे इस प्रकार सोचो और एक ही पक्ष को शत्रु बनाओ।'

वीरेन्द्र कुछ देर तक चुपछाप सोचते रहे फिर बोले, 'तो आप किस पक्ष को अपनाने की राय देते है ?'

स्वामी जी बोले, 'य तो धर्मस्ततो जय', जिस पक्ष को अपनाने मे अधर्म न हो, उसी पक्ष मे जाओ। राजद्रोह महापाप है। राजपक्ष ही ग्रहण करना चाहिये।'

वीरेन्द्र फिर सोच मे डूब गए। फिर थोडी देर बाद बोले, 'लेकिन आज राजा कौन है ? पठान और मुगल दोनो ही तो राज्य के लिए लड रहे है।'

'नही, जो कर वसूल करता है वही तत्कालिक राजा होता है।'

'तो क्या, अकबर शाह ?'

'हाँ।'

यह सुन कर वीरेन्द्र सिंह के चेहरे पर अप्रसन्नता की रेखा खिंच गई। क्रमश आँखें लाल हो उठी। वीरेन्द्र सिंह का स्वरूप और मनोभाव देख कर अभिराम स्वामी ने कहा, 'वीरेन्द्र, क्रोध का यह समय नही है। मैने तुम्हे दिल्लीश्वर का साथ देने को कहा है, मानसिंह का साथ देने को नही कहा।'

वीरेन्द्र सिंह ने दाहिना हाथ फैलाकर स्वामी जी को दिखाया और दाहिने हाथ पर बाँयें हाथ की उँगली रख कर कहा, 'उन पदो के आशीर्वाद से इस हाथ को मानसिंह के रक्त से प्लावित करूँगा।'

'शान्त होओ, वीरेन्द्र ! क्रोध मे अधे होकर अपना काम मत बिगाडो। मानसिंह को उसके पहले के अपराध के लिए अवश्य सजा देने पर अकबर शाह से लडाई ठानने की क्या आवश्यकता है ?'

'लेकिन जरा सोचिए तो कि अकबर शाह का साथ देने मे किस सेनापति की अधीनता म लडना होगा ? किस योद्धा की सहायता करनी होगी ? किसका अनुचर बनना होगा ? मानसिंह का ? गुरुदेव, इस शरीर से यह काम वीरेन्द्र सिंह के लिए सम्भव नही।'

'तो क्या पठानो की सहायता करना तुम्हे उचित लगता है ?'

'इस समय भी पक्ष और विपक्ष का भेद मानना क्या ठीक है ?'

'हाँ, पक्ष और विपक्ष का भेद तो मानना ही पडेगा।

'तो मेरे लिए पठानो को ही सहयोग देना ठीक रहेगा।'

वीरेन्द्रसिंह का निर्णय सुन कर अभिराम स्वामी ने लम्बो सास छोडी और चुप रह गये। उनकी आँखो से आँसू बहने लगे। यह दृश्य देख कर वीरेन्द्रसिंह अत्यधिक विस्मित हुए। बोले, 'गुरुजी, क्षमा किजिए। मेने अनजाने ही क्या अपराध कर दिया ?'

स्वामी जी ने अपनी चादर की छोर से आँखें पोछते हुए कहा, 'तो सुनो, इधर कई दिनो से मै लगातार ज्योतिष की गणना कर रहा हूँ। तुमसे अधिक तुम्हारी कन्या पर मेरा स्नेह है, यह तो तुम जानते हो न ? स्वाभाविक है कि मैने उसी के सबंध मे बहुत तरह की गणना की है।'

सुन कर वीरेन्द्रसिंह का मुँह सूख सा गया। अत्यन्त आग्रहपूर्वक उन्होने स्वामीजी से पूछा, 'तो आपने गणना करने मे क्या देखा ?'

'देखा कि मुगल सेनापति से तिलोत्तमा का बडा अमगल है।'

वीरेन्द्रसिंह का चेहरा मुरझा गया। स्वामी जी कहते गए, 'मुगलो का विरोध करने मे ही तिलोत्तमा का अमगल है। मुगलो को अपने पक्ष मे रखने से नही होता। इसीलिए मै तुम्हे मुगलो का पक्षपाती बनाने का प्रयत्न कर रहा था। यह बात इतनी स्पष्ट रूप से कह कर तुम्हे मानसिक क्लेश पहुँचाने की मेरी इच्छा कदापि न थी। लेकिन मनुष्य का मान अक्सर विफल होता है। लगता है कि भाग्य मे लिखा अवश्य ही हो कर रहेगा। नही तो तुम इतनी अधिक जिद क्यो करते ?

वीरेन्द्रसिंह मौन रहे। स्वामी जी बोले, 'वीरेन्द्र, दरवाजे पर कतलू खाँ का दूत खडा है। उसे ही देख कर मै तुम्हारे पास आया और यह चर्चा की। मेरे ही कहने पर पहरे वालो ने उसे अभी तक तुम्हारे सामने आने से रोक रहा है। अब मै अपनी बात कह चुका, मेरा कर्तव्य पूरा हुआ। अब दूत को बुला कर जो समझो जवाब दे दो।'

वीरेन्द्रसिंह ने चिन्तित मुद्रा से सिर उठा कर कहा, 'गुरुजी, जितने दिनो तक मैने तिलोत्तमा को नही देखा था, उतने दिनो तक कन्या की कल्पना से मै उसे याद भी नही करता था। अब तो तिलोत्तमा को छोड कर संसार मे मेरा अपना कोई भी नही। मै आप की आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ। अब मै पिछली बातो को समाप्त करता हूँ। मानसिंह का ही सहयोगी बनूँगा। द्वारपाल, दूत को बुला लाओ।'

आदेश पा कर द्वारपाल दूत को लिवा लाया। दूत ने वीरेन्द्रसिंह को कतलू खाँ का पत्र दिया। पत्र मे लिखा था कि वीरेन्द्रसिंह अपनी एक हजार घुडसवारो की सेना और पाँच हजार स्वर्ण मुद्राएँ पठान-शिविर मे भेजें, नही तो कतलू खाँ बीस हजार सेना गढ मन्दारन भेजेंगे।

पत्र को कई बार पढ कर वीरेन्द्रसिंह ने जवाब दिया। 'दूत, अपने मालिक से कहना कि वे सेना ही भेजे।'

सिर झुका कर दूत ने सलाम किया और चला गया।

यह सब बातें आड मे छिप कर विमला सुनती रही।

।७।

असावधानी

किले के जिस भाग मे किले की जडो को अपने जल से धोती हुई आमोदर नदी कल-कल करती बहती है, उसी ओर एक कमरे की खुली खिडकी पर बैठी तिलोत्तमा एकटक नदी की भँवरो को निहार रही थी। शाम का समय। पश्चिम आकाश मे क्षितिज पर पहुँच गए सूरज की धुंधली किरणो से आस पास के बादल सुनहरा रंग धारण किए हुए थे, उनके साथ-साथ नीले-आकाश का प्रतिबिम्ब भी आमोदर की बहती धारा मे काँप-काँप कर दिखाई पड जाता था। नदी के पार की ऊँची अट्टालिकाएँ और ऊँचे पेड आकाश पर बने चित्र से लग रहे थे। किले के भीतर से मोर, सारस और कलनादी पक्षियो के प्रफुल्ल कोलाहल की आवाज आ रही थी। कही रात्रि-आगमन की सोचकर अपना नीड खोजने मे व्यस्त पक्षी आकाश के नीचे चुपचाप उड रहे थे। आमो के उपवन के बीच से आती हवा आमोदर के स्पर्श से ठडी हो कर तिलोत्तमा के बालो और कधे पर पडे वस्त्र को कपित कर रही थी।

तिलोत्तमा सुन्दरी है, अति सुन्दरी।

तिलोत्तमा की उम्र मात्र सोलह साल की है। उसके अगो का भराव प्रगल्भवयसी रमणियो की तरह अभी तक सम्पूर्णता नही प्राप्त कर सका है। देह के आयतन और चेहरे की गढन मे अभी भी बालिका भाव-स्पष्ट है। सुगठित गोल ललाट अभी भी प्रशस्त नही है, उसकी बगल मे बहुत घनी काली घुंघराली अलके भौहो पर, कपोलो पर, ठोढी पर, बाँहो पर, हृदय पर आ-आकर लहराती है। आँखो मे चचलता नही, बल्कि शान्त-भाव है। अभी उसमें विद्युत कटाक्ष नही पैदा हुए। वे आकार मे बहुत बडी और गहराई लिए है। ज्योति भी स्थिर और शात है। आँखो का रग भी उषाकाल मे सूर्योदय के पूर्व वाला आकाश का नीलापन जैसा है। उनमे कुटिलता का नामनिशान नही है। उसे अभी आँखो की कोरो से अर्द्ध-दृष्टि कर के देखना नही आया। दृष्टि की सरलता-मन की सरलता का प्रतिबिम्ब है। यदि कोई उसकी ओर देखे तो तिलोत्तमा की दृष्टि धरती मे टिक जाती है। दोनो ओठ गुलाबी, रस से टलमल करते हुए। छोटे-छोटे, तराशे हुए कुछ उभरे, मुस्कराते उन ओठो को देख कर कोई कभी भूल नही सकता। लेकिन उस मुस्कान मे सरलता और अबोध बालिका-भाव के सिवा और कुछ नही है।

तिलोत्तमा की देहराशि सुगठित हो कर भी अपूर्ण है, आयु की नवीनता या शरीर की स्वाभाविक गठन के कारण हो, इस सुन्दर देहराशि मे स्थूलता का नाम नही, बल्कि क्षीणता ही है। अँगुलियो मे रत्न-जडित अँगूठियाँ, बाँहो मे रत्न-जडित आभूषण, कण्ठ मे रत्न-कण्ठी। सभी अंगो की गढन अति सुन्दर और लुभावनी।

तिलोत्तमा अकेली ही खिडकी पर बैठी है। साँझ की शोभा में खो गई है। माथे पर पसीने की बूँदें है। वह इस तरह बैठी है कि चेहरे के एक ओर ही हवा लग रही है। वह अनमनी सी दूर तक देख रही है, गायो का चरना देखती रही, गाये वापस घर की ओर चली गईं, फिर भी उसकी आँखें उधर ही उलझी रही। उसके कानो को मात्र कोयल की कूक ही सुन पड रही है। लेकिन उसका चेहरा कुछ उदास है, कुछ मलिन—शायद वह सब देख, सुन और सोच कर भी कुछ नही देख पा रही, कुछ नही सुन पा रही, कुछ नही सोच पा रही।

दासी दीपक जला कर ले आई। तिलोत्तमा यहाँ से हट कर, एक पुस्तक लेकर दीपक के पास जा बैठी। तिलोत्तमा पढ सकती है। उसने अभिराम स्वामी से सस्कृत की शिक्षा ली है। उसके हाथ की पुस्तक का नाम है—कादम्बरी। थोडी देर पढ कर, फिर ऊब कर कादम्बरी भी छोड दी। फिर एक दूसरी पुस्तक उठाई—वासवदत्ता। मन नही लगता। अनमनी हो जाती है। वासवदत्ता को छोड कर गीत-गोविन्द उठाती है। गीत-गोविन्द मे थोडा सा मन लगा, फिर जाने क्या सोच कर, मुस्कराकर उसे भी रख दिया। फिर जाकर पलग पर बैठ गई, फिर पास ही रखी कलम उठा कर दावात मे डुबा कर पलग की पाटी पर बिना उद्देश्य लिखने लगी—क, स, म, घर, द्वार, पेड, आदमी। थोडी देर मे पलग की एक पाटी इन अक्षरो से भर गई। अब कहाँ लिखे ? सोच कर जागी। अपना ही कृत्य देख कर हँस पडी। क्या-क्या लिखा है—पढने लगी। लिखा था—

'वासवदत्ता, महाश्वेता, क, ई, इ, पा, प, पेड,
शव, गीत गोविन्द, विमला, लता-पत्र, गढ,
और अत मे—कुमार जगतसिह।'

अपना ही लिखा पढ कर तिलोत्तमा का चेहरा लाज से लाल हो उठा। फिर अपनी ही मूर्खता पर चौकी। भला कमरे मे कौन है जिससे लजाये ?

'कुमार जगतसिह !' तिलोत्तमा ने अपने हाथो लिखा नाम कई बार पढा। एक बार, दोबार, तीन बार, आठ बार, दस बार, अनेक बार। दरवाजे की ओर बार-बार सतर्क हो कर देखती और छिपा कर पढती—जैसे चोरी कर रही हो।

लेकिन कितनी देर पढती ! आखिर साहस छूट गया। कही कोई आकर देख न ले ! हडबडा कर गई और पानी ला कर अपना लिखा धोने लगी। धो कर भी मन शात न हुआ। कपडे से रगड-रगड कर अच्छी तरह पोछा। फिर पढ कर देखा। वहाँ अब स्याही का नाम-निशान न था पर फिर लगा कि जैसे स्पष्ट पढा जा रहा हो। फिर पानी लायी, फिर पोछा, फिर भी दिखता ही रहा—लिखा हुआ नाम,

'कुमार जगतसिह।'

|८|

विमला की मन्त्रणा

अभिराम स्वामी की कुटिया म विमला खडी थी। स्वामीजी जमीन पर ही योगासन लगाये बैटे थे। जगतसिंह से जिस तरह उसकी व तिलोत्तमा की अचानक भेंट हुई, विमला शुरू से आखिर तक वही सब स्वामीजी से बता रही थी। अपनी बात पूरी करके विमला ने तनिक चिन्ता से कहा, 'आज चौदहवाँ दिन है, कल पक्ष पूरा हो जायगा।'

स्वामीजी ने सोच कर पूछा, 'तो तुमने क्या तय किया है?'

'उचित सलाह व आदेश के लिये ही आपके पास आई हूँ।'

'तो, मेरी अब यही सलाह है कि अब इस बात को मन मे स्थान न दो।'

विमला के चेहरे का भाव बदला। वह उदास होकर चुप रह गई। स्वामीजी ने उसके भाव को ताड कर पूछा, 'उदास क्यो हो गई?'

विमला बोनी, 'तो फिर तिलोत्तमा के लिये क्या होगा?'

विस्मित होकर स्वामी जी ने पूछा, 'तो क्या तिलोत्तमा के मन मे अनुराग फूट चुका है?'

कुछ देर जैसे अपने को रोकने की कोशिश मे विफल होकर विमला एकाएक फट पडी, 'अब आप से कितना और कैसे कहूँ? मै इन चौदह दिनो मे दिन रात तिलोत्तमा के मनोभाव को अच्छी तरह परखती और देखती रही हूँ। मुझे तो यही जान पडता है कि उसके मन मे प्रगाढ अनुराग जड जमा चुका है।'

हँस कर स्वामीजी बोले, 'तुम भी स्त्री हो। मन मे अनुराग का लक्षण-मात्र देख कर ही प्रगाढ अनुराग की कल्पना करने लगती हो। विमला, तुम तिलोत्तमा के मानसिक सुख के लिए चिन्तित न होना, अबोध बालिका स्वभाव के कारण ही प्रथम-दर्शन मे उसका मन इतना चचल हो उठा है, इस सम्बन्ध मे कभी कोई चर्चा न करने से वह जगतसिंह को स्वय ही जल्द भूल जायगी।'

विमला ने जिद करने जैसे स्वर मे कहा, 'नही, प्रभु नही, ऐसे लक्षण नही है। इन चौदह दिनो मे तिलोत्तमा का स्वभाव बिल्कुल ही बदल गया है, वह बिल्कुल बदल गई है। तिलोत्तमा अब मेरे साथ व सहेलियो के साथ पहले की तरह हँस कर बातचीत नही करती। बल्कि अब वह प्राय बातचीत ही नही करती। उसकी किताबे अब पलग के नीचे पडी सड़ रही है। तिलोत्तमा के लगाये प्रिय पौधे अब पानी न पाकर सूखने लग गये हैं। तिलोत्तमा की पालित चिडियो की भी अब पहले जैसी देखभाल नही होती। वह अब न तो रात को सोती है, न भर पेट खाना ही खाती है, न अब वह

साज-शृङ्गार ही करती है। पहले जो तिलोत्तमा कभी भी चिंतित नही होती थी, वही अब दिनरात चिंता मे खोई-खोई अनमनी सी रहती है। अब तो तिलोत्तमा का चेहरा भी स्याह पड गया है।'

सुन कर अभिराम स्वामी भी चिन्ता मे डूब कर शान्त हो सोचते रहे। फिर कुछ देर बाद बोले, 'मै समझता था कि मात्र दर्शन से ही इतना प्रगाढ अनुराग नही पैदा हो सकता। लेकिन तुम स्त्रियो का चरित्र, विशेष कर बालिका का चरित्र तो ईश्वर ही समझे। लेकिन तुम भी भला क्या कर सकती हो ? वीरेन्द्र इस विवाह के लिये कभी सहमत न होगा।'

'इसी आशका के कारण अभी तक मेने इस बात का कही कोई उल्लेख नही किया। मदिर मे उस दिन भेट होने पर जगतसिंह को भी अपना या तिलोत्तमा का कोई परिचय नही दिया। लेकिन इस समय यदि ठाकुर साहब • ।' कहते-कहते अचानक ही विमला के भाव बदल गये और स्वर मे भिन्नता आ गई। वह बोली, 'इस समय यदि ठाकुर साहब ने मानसिंह से मित्रता कर ही ली है तो जगतसिंह को जामाता के रूप मे अपनाने मे हानि ही क्या है ?'

'लेकिन मानसिंह क्यो कर सहमत होगा ?'

'न होगे तो युवराज स्वतत्र है।'

'जगतसिंह भी भला वीरेन्द्रसिंह की कन्या से क्यो कर विवाह करेगा ?'

'जाति और कुल-दोष किस पक्ष मे नही है ? जयधर सिंह के पूर्वपुरुष भी तो यदुवशी है।'

'यदुवशी-कुल की कन्या क्या मुसलमान के श्यालक-पुत्र की स्त्री होगी ?'

उदासीन दृष्टि से देख कर विमला ने कहा, 'होगी क्यो नही ? यदुवश का कौन-सा कुल घृण्य है ?'

सुनते ही स्वामी जी की आँखो से क्रोध की ज्वाला निकलने लगी। उन्होने अति कठोर स्वर मे कहा, 'पापी नारी, क्या अपना दुर्भाग्य तू अभी तक भूली नही ? जा, हट जा!'

|९|

कुलतिलक

अपने पिता मानसिंह के पास से सेना सहित विदा होने के बाद जगतसिंह ने जो जो काम किए उनसे पठानो की सेना मे बड़ा ही आतंक फैला। जगतसिंह ने प्रतिज्ञा

की थी कि मात्र पाँच हजार सेना लेकर वे कतलू खाँ की पचास हजार सेना को सुवर्ण-रेखा के उस पार तक खदेड देंगे। वह अभी तक अपनी प्रतिज्ञा पूरी होने की सभावना को अधिक निकट नही ला सके, पर शिविर मे आकर दो हफ्ते के भीतर उसने जिस वीरता व सेनापतित्व का परिचय दिया था, उसे सुन कर मानसिंह ने कहा था, 'जान पडता है कि मेरे कुमार से राजपूतो के नाम का पहला गौरव फिर जाग जाएगा।'

जगतसिंह अच्छी तरह जानते थे कि केवल पाँच हजार सेना ले कर पचास हजार सेना को युद्ध मे पराजित करना किसी तरह भी सभव नही है, बल्कि इसमे पराजय या मृत्यु ही मिलेगी। अत अपने सामने युद्ध की कोशिश न करके उसने ऐसी रण-प्रणाली का प्रयोग किया जिससे युद्ध मे सीधा सामना न हो। वह अपनी थोडी-सी सेना को बडी सावधानी से छिपा कर रखता। घने जगल मे या खूब ऊँची-नीची जमीन के बीच मे वह ऐसी जगह अपना शिविर गाडता था जहाँ बहुत पास से भी कोई उसकी सेना को देख न सके। इस प्रकार खाईं-खदको मे छिपे रह कर जब कही थोडी पठान सेना की उसे टोह मिलती, तूफानी वेग से उस पर टूट कर वह उसे खत्म कर डालता। उसके बहुत से निपुण गुप्तचर थे। वे फल-फूल व मछली आदि बेचने वाले अथवा भिखारी, अपग, ब्राह्मण और वैद्य का वेश बना कर नाना स्थानो मे घूमते-फिरते रह कर पठानी सेना की गति-विधि की पूरी जानकारी रखते थे। जगतसिंह अपने गुप्तचरो से खबर पाते ही बडी सावधानी से छिप कर ऐसी जगह शिविर गाडता, जिससे पास आती पठानी सेना पर अचानक हमला बोल सके। यदि पठानी-सेना संख्या मे अधिक होती तो जगतसिंह कभी उस पर आक्रमण करने का उपक्रम न करता, क्योकि वह जानता था कि उसकी जो उस समय की स्थिति थी उसमे एक युद्ध मे पराजय होने से भी सब कुछ नष्ट हो जायगा। ऐसी स्थिति मे वह पठानी सेना को पहले आगे बढ जाने देता फिर पीछे से सतर्कतापूर्वक हमला बोल कर आगे गई सेना की रसद, घोडे, तोपें आदि छीन-कर ले आता। यदि पठानी सेना सख्या मे अधिक न हो कर कम होती तो भूखे बाघ की तरह दहाडते हुए और झपटते हुए जाकर अचानक पठानी सेना पर टूट पडता और उसे टुकडे-टुकडे कर डालता। पठानी सेना को शत्रु के गुप्त स्थानो का पता न रहता, अत वे सतर्क न रहते, न युद्ध के लिए तत्पर रहते और पराजित ही होते। इस प्रकार बहुतेरी पठानी सेना को फट जाना पडा।

इससे पठानो में बडी खलबली मची। और वे कही सीधे युद्ध मे जगतसिंह की सेना को नष्ट करने का अवसर खोजने पर, जगतसिंह की सेना कब और कहाँ है, यह वे लाख यत्न करने पर भी न जान पाये। केवल यमदूतो की तरह राजपूत सैनिक, पठानी सेना को अचानक हमले के समय एक बार दिखाई देते और उन्हे मौत के घाट उतार कर फिर गायब हो जाते। जगतसिंह बहुत चतुर था। वह पूरी सेना एक समय मे एक जगह कभी न रखता था। छोटी-छोटी टुकडियो मे बाँट कर कई जगहो मे छिपा रखता

था। और पठानी सेना की गति विधि की टोह लगते ही, आवश्यकतानुसार मेना भेजता। एक स्थान पर काम हो जाने पर फिर वहॉ सेना का चिन्ह भी न रहना। राजपूत कब कहाँ है, कहॉ नही, यह पठान कभी जान न पाते। कतलू खाँ के पाम प्रतिदिन ही सेना के नष्ट होने की खबरें पहुँचती। सुबह, दोपहर, शाम—हर समय यही अमंगल सवाद आता। अब नतीजा यह हुआ कि थोडी सख्या मे पठानी सेना का किले से बाहर निकलना असभव् हो गया। लूट-खसोट भी बन्द हो गई। सेना ने किले मे छिपकर रहना ही ठीक समझा। फिर एक स्थिति आई कि बाहर निकले बिना रसद जुटाना भी कठिन हो गया। अभी तक शत्रु आक्रमण से त्रस्त प्रदेश का इस प्रकार नियत्रित हो जाना सुन कर राजा मानसिंह ने पुत्र को पत्र लिखा—

'कुलतिलक। हमने समझ लिया है कि राज्य से तुम पठानो का अधिकार दूर कर सकोगे। अत तुम्हारी सहायता के लिए दस हजार सेना और भेजते है।'

युवराज जगतसिंह ने उत्तर दिया—

'महाराज की जैसी इच्छा। और सेना आए तो अच्छा ही है, नही तो आप के श्री चरणो के आशीर्वाद से यह दास पॉच हजार सेना से ही क्षत्रिय कुलोचित प्रतिज्ञा-पालन का प्रयत्न करेगा।'

कुमार जगतसिंह वीरमद से मत्त हो बिना किसी बाधा के युद्ध मे विजय पाने लगे। शैलेश्वर। तुम्हारे मदिर मे जिस सुन्दरी की अबोध-दृष्टि से यह योद्धा अपने आप पराजित हो गया था, उस सुन्दरी की क्या इस सेना-कोलाहल के बीच उसे एक बार भी याद नही आई? यदि नही आई तो जगतसिंह भी तुम्हारी तरह ही पत्थर है।

| १० |

विमला के प्रयत्न

जिस दिन विमला पर नाराज हो कर क्रोध से अभिराम स्वामी ने उसे अपनी कुटिया से निकाल दिया था, उसके दूसरे ही दिन प्रदोष के समय अपने कमरे मे बैठी विमला शृगार करने मे व्यस्त थी। पैतिस साल की स्त्री का सतर्क शृगार। शृगार होगा क्यो नही? उम्र के साथ क्या जवानी भी चली जाती है? जवानी का संबध उम्र से नही, रूप और मन से है। जिसमे रूप नही, वह बीस वर्ष मे भी वृद्धा है और जिसमे रूप है वह सदा ही युवती है चाहे उम्र जो भी हो। जिसके मन मे रस नही, वह सदा प्रवीणा है, जिसके मन मे रस है, वह सदा नवीना है। विमला की देहराशि आज भी

रूप से ओत-प्रोत है और मन रस से भरपूर। शायद उम्र बढने पर रस का और भी परिपाक होता है।

पान की लाली से विमला के रगे ओठो को देख कर कौन उसे युवती नही कहेगा ? काजल अजित आँखो का चकित कटाक्ष देख कर कौन कह सकता है कि वह चौबीस साल से अधिक की है। उसकी चंचल आँखे बडी-बडी और आवेशमयी हैं। किसी-किसी विगत यौवना कामिनी की आँखें देखते ही ऐसा लगता है कि यह रमणी दर्पिता है, यह रमणी सुख की लालसा से भरी हुई है। विमला की आँखें भी उसी तरह की है। अत निश्चित रूप से कहा जा सकता है विमला युवती है बल्कि उसे स्थिर-यौवना भी कहा जा सकता है। उसकी चम्पकवर्ण त्वचा की कोमलता देख कर कौन कहेगा कि कोई षोडशी उससे अधिक कोमल है ! उसकी बँधी वेणी से छूट कर एक छोटी सी अलक कानो पर होकर कुचित होती हुई गाल पर आ पडी है, उसे देख कर कौन कह सकता है कि यह अलक या यह गाल किसी युवती के नही है। दर्पण के सामने बैठी हुई विमला बाल सँवार रही है, बायें हाथ मे केश-गुच्छ लेकर जिस तरह वह कघी कर रही है, अपना ही यौवन-भार देख कर मन्द-मन्द मुस्करा रही है, बीच-बीच मे वीणा सी मधुर ध्वनि मे मृदु-मृदु गा रही है। इस समय विमला मनमोहिनी नवीना ही है।

बाल सँवार कर भी विमला ने चोटी नही बाँधी, बल्कि केश गुच्छ को पीठ पर लटका दिया। सुगधित रूमाल से मुँह पोछा, गुलाबजल और कपूर से तर पान से फिर ओठो को लाल किया, मुक्ता-जडित चोली पहनी, सभी अगो मे रत्नाभूषण धारण किये, फिर न जाने क्या सोच कर उनमें से थोडे से उतार कर रख दिए। फिर जरी की साडी पहनी, मोती टँकी चट्टियाँ पहनी और सँवारे हुए बालो पर युवराज का दिया बहूमूल्य मुक्ताहार बाँध लिया।

इस प्रकार खूब सज-धज कर विमला तिलोत्तमा के कमरे मे गयी। उसे देखते ही तिलोत्तमा विस्मित चकित हुई। हँस कर पूछा—'यह सब क्या विमला ? शृगार किसलिए ?'

'तुझे इसकी चिन्ता क्यो हो रही है ?'

'सच बताओ, कहाँ जा रही हो ?'

'मैं कही जा रही हूँ, यह तुमसे किसने कहा ?'

तिलोत्तमा लजा गई। उसे लजाते देख कर विमला ने करुणा स्वर मे मुस्करा कर कहा, 'मैं बहुत दूर जाऊँगी।'

अचानक तिलोत्तमा का चेहरा खिले कमल सा प्रफुल्लित हो उठा। उसने भी मृदु स्वर में पूछा, 'बताओ न, कहाँ जाओगी।'

विमला पूर्ववत मुस्करा कर बोली, 'अन्दाज लगाओ न !'

तिलोत्तमा विस्मय से उसके मुँह की ओर ही ताकती रही।

'जरा सुनो।' कह कर तिलोत्तमा का हाथ पकड कर विमला खिडकी के पास

खीच ले गई। वहाँ कान के पास मुँह ले जाकर कहा, 'मै शैलेश्वर के मंदिर जाऊँगी। वही किसी राजकुमार से भेट होने वाली है।'

तिलोत्तमा की समस्त देहराशि रोमाचित हो उठी। पर वह कुछ बोल न सकी। विमला ही बोली, 'स्वामी जी से मेरी बातचीत हुई थी। उनकी समझ मे यही आता है कि जगतसिंह से तुम्हारा विवाह किसी तरह भी नही हो सकता। तुम्हारे पिता इसके लिए किसी तरह भी सहमत नही होगे। उनके सामने यह बात उठाना भी विपत्ति को बुलाना है।'

'ऐसा क्यो ?' धरती पर नजर गडाए हुए तिलोत्तमा ने निराशा भरे स्वर मे पूछा।

विमला बोली, 'मै राजकुमार से वचनवद्ध हूँ कि आज रात को मिल कर परिचय दूँगी। लेकिन मात्र परिचय से भला क्या होगा ? फिर भी अभी परिचय दूँगी ताकि अपना कर्तव्य वे खुद ही सोचे। राजकुमार यदि तुम पर अनुरक्त हो तो···'

और आगे न बोलने देने के लिए तिलोत्तमा ने विमला के मुँह पर कपडा रख दिया। बोली, 'तुम्हारी बात सुन कर लाज लगती है। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, जाती क्यो नही ? लेकिन मेरी बात किसी से मत कहना और मुझसे भी किसी की बात मत कहना।'

'तो फिर इस गहरे समुद्र मे क्यो कूदी ?'

'तू जा ! मै अब तेरी कोई बात नही सुनूँगी।'

'तो फिर मै मदिर नही जाऊँगी।'

'क्या मै तुझे कही जाने से रोक रही हूँ ? जहाँ तेरी इच्छा हो, वही तू जा न !'

'मै तो अब नही जाऊँगी।'

'तो यहाँ से चली जा।'

विमला ठठा कर हँस पडी, फिर बोली, 'मै तो चली, हाँ मै जब तक लौट न आऊँ, तब तक सोना मत।'

तिलोत्तमा सिर्फ मुस्करा उठी। उस मुस्कान का अर्थ था—मुझे भला नीद आयेगी ही क्यो ? विमला समझ गई। चलते-चलते विमला ने एक हाथ तिलोत्तमा के कधे पर रख कर दूसरे से उसकी ठोढी उठाई, फिर कुछ देर तक एकटक उसके चेहरे को ताक कर अचानक स्नेह से उसका मुँह चूम लिया। तिलोत्तमा ने देखा—जब विमला चली जा रही थी तब उसकी आँखो मे दो बूँद आँसू थे।

तभी आसमानी ने दरवाजे पर आ कर कहा, 'मालिक ने आपको याद किया है।'

सुन कर तिलोत्तमा ने विमला के पास आकर कान मे कहा, 'यह कपडे उतार कर जाओ।'

'तुम डरो नही।' विमला ने दृढता से कहा।

विमला सीधे वीरेन्द्रसिंह के कमरे मे गई। वहाँ वीरेन्द्रसिंह लेटे थे। एक

दासी उनके पाँव दबा रही थी और दूसरी पखा झल रही थी। सीधे उनके पलँग के पास पहुँच कर विमला ने पूछा, 'मेरे लिए क्या आज्ञा है ?'

सिर घुमा कर वीरेन्द्रसिंह ने देखा, देख कर चकित हुए। पूछा, 'विमला क्या तुम किसी दूसरे काम से निकली हो ?'

'जी, मेरे लिए जो आज्ञा हो, बताइए ?'

'तिलोत्तमा कैसी है ? कुछ बीमार थी ? अब कैसी है ?'

'जी, अच्छी हैं।'

'तुम कुछ देर पखा झलो और आसमानी से कहो कि वह तिलोत्तमा को हमारे पास बुला लाये।'

पखा झलने वाली दासी पंखा रख कर उठ गई।

विमला ने इशारा कर के आसमानी को बाहर ठहरने को कहा।

वीरेन्द्रसिंह ने दूसरी दासी से कहा, 'लछमिन, तू हमारे लिए पान लगा ला।'

पैर दबाने वाली भी पान लाने चली गई।

तब वीरेन्द्रसिंह ने पूछा, 'विमला, तुम्हारा आज यह वेश क्यो है ?'

'आज इसी की जरूरत है।'

'क्या जरूरत है, हम भी तो सुनें !'

'तो सुनिये,' कह कह विमला ने वीरेन्द्रसिंह पर काम का तीखा तीर छोडा। बोली, 'तो सुनिये, इस समय मै अभिसार के लिए निकली हूँ।'

'क्या यम के उद्देश्य से ?'

'क्यो, क्या आदमी के उद्देश्य से नही हो सकता ?'

'वह आदमी तो आज भी नही पैदा हुआ विमला !'

'हाँ, एक को छोड कर।' कह कर विमला तेजी से तीर की तरह वहाँ से चली गई।

|११|

आसमानी की सहायता

विमला के इशारे के कारण आसमानी कमरे के बाहर खडी प्रतीक्षा करती रही। बाहर आकर विमला ने उससे कहा, 'आसमानी, तुमसे आज एक खास और गुप्त काम है।'

आसमानी बोली, 'वेश-भूषा देख कर ही मै सोच रही थी कि आज कोई खास मामला है जरूर।'

विमला बोली, 'एक बहुत जरूरी काम है। मै आज काफी दूर जाऊँगी। इतनी रात को अकेली न जा सकूँगी। तुम्हारे सिवा और किसी पर विश्वास भी नही जिसे साथ ले जा सकूँ, अत तुम्हे ही साथ चलना होगा।'

'कहाँ जाओगी ?'

'आसमान! पहले तो तुम इतनी बाते नही पूछती थी ?'

'तो तुम थोडा इन्तजार कर लो, मै कुछ काम निबटा कर आती हूँ।'

'एक बात और है। मान लो, अगर आज तुमसे उस समय के किसी आदमी से भेंट हो जाय तो क्या वह तुम्हे पहचान लेगा ?'

'ऐसा क्या ?'

'मान लो, यदि कुमार जगतसिंह से ही भेंट हो जाय ?'

आसमानी गद-गद हो भाव-विभोर स्वर मे बोली, 'क्या ऐसा भी दिन आएगा ?'

'हो सकता है!'

'तो कुमार जरूर पहचान लेगे।'

'तब तो तुम्हारा चलना ठीक नही है। फिर और किसे ले जाऊँ ? अकेली तो जा ही नही सकती।'

'कुमार को एक बार देखने को मन मे बडी लालसा है।'

'तो मै क्या करूँ ? मन की लालसा मन मे ही रहे।'

विमला चिन्तित हो सोचने लगी। तभी अचानक मुँह मे आँचल ठूँस कर आसमानी हँसने लगी। यह देख विमल तुनक कर बोली, 'तू मर जा! अपने आप यो क्या हँसती है ?'

आसमानी ने उसी तरह हँसते हुए कहा, 'मै सोच रही थी कि मेरे चाँद के टुकड़े दिग्गज तुम्हारे साथ जायँ तो कैसा हो।'

विमला ने उल्लास से हँसते हुए कहा, 'यही ठीक है। रसिकराज को साथ ले जाऊँगी।'

'यह क्या ? मैने तो मजाक किया था।'

'मजाक नही। मूर्ख ब्राह्मण पर मुझे विश्वास है। उस जैसे अंधे के लिए दिन और रात, सभी बराबर है, वह तो कुछ भी न समझ सकेगा। इसलिए उस पर मुझे पूरा विश्वास है। लेकिन वह ब्राह्मण चलने को तैयार न होगा।'

'यह जिम्मा मेरा रहा। मै उसे अभी साथ लिए आती हूँ। तुम फाटक के सामने क्षण भर इन्तजार करो न!' यह कह कर आसमानी किले के भीतर एक छोटी सी कुटी की ओर चली गई।

इसी कुटी मे रसिक राज, अभिराम स्वामी का शिष्य गजपति विद्यादिग्गज रहता है। दिग्गज का नाम और रूप भिन्न है। वह लम्बा है साढे पाँच हाथ और चौडाई मे अधिक से अधिक एक या सवा बालिश्त। कमर मे एडी तक दोनो पाँव नापने पर साढे तीन या चार हाथ होगे। मोटाई तो मुश्किल से चारपाई की पाटी भर, रग दावात की स्याही जैसा लगता है कि कभी भूल से अग्निदेव उसके पावो को लकडी समझ कर उसे भस्म करने चले थे पर कुछ भी रस न मिलने पर आधा ही जला कर छोड दिया है। लम्बाई अधिक और शरीर क्षीण होने के कारण दिग्गज महाशय थोडे से कुबडे हैं। चेहरे पर नासिका ही प्रमुख है। सिर घुटा हुआ, नए उगे बाल सुई की तरह गडने वाले।

इस गजपति को विद्यादिग्गज की उपाधि यो ही नही मिली। उसकी बुद्धि बडी पैनी है। पाठशाला मे व्याकरण शुरू किया और सात ही महीने मे सहर्णर्घ सूत्र व्याख्या सहित कण्ठस्थ कर लिया। फिर पन्द्रह वर्षो मे शब्द-काण्ड समाप्त किया। फिर दूसरा काण्ड प्रारम्भ करने के पहले अध्यापक ने पूछा, 'अच्छा बताओ कि राम शब्द मे अम् लगाने पर क्या होता है ?' शिष्य ने तत्काल बताया, 'रामकान्त !'

अध्यापक विचलित हो उठे। खीझ कर कहा, 'बच्चा, तुम्हारी विद्या पूरी हो गई। अब तुम घर जाओ। अब यहाँ तुम्हारे पढने को कुछ नही बचा मेरे पास अब कोई विद्या नही जो तुम्हे दे सकूँ।'

गजपति ने प्रसन्न हो कर अहकार के साथ कहा, 'मेरा एक निवेदन है—मेरी उपाधि ?'

'बच्चा ! तुमने जो विद्या अर्जित की है, उसके लिए सभी पुरानी उपाधियाँ बेकार हैं। तुम्हारे लिए कोई नई उपाधि होनी चाहिए। बल्कि तुम 'विद्यादिग्गज' उपाधि ही ग्रहण करो।'

उपाधि पाकर प्रसन्न होकर गुरु के चरणो में प्रणाम करके दिग्गज घर चले गये।

घर आकर दिग्गज पण्डित ने सोचा कि व्याकरण तो इतना पढा, अब स्मृति पढना आवश्यक है। सुना है इस विषय मे अभिराम स्वामी बडे माने हुए पडित है। फिर उनके सिवा मुझे और कौन पढा सकता है। अब उन्ही के पास चल कर स्मृति पढनी चाहिए। यही सोच कर दिग्गज महाराज किले मे आ डटे। अभिराम स्वामी बहुतो को पढ़ाते थे। सोचा—एक यह भी रहे, क्या हानि है।

दिग्गज महाराज थोडे आलकारिक और रसिक भी है। उनकी रसिकता का स्रोत आसमानी के लिए कुछ अधिक ही तीव्र था। इसका एक गूढ मतलब भी था। गजपति सोचते थे कि उनका जन्म इस देश मे केवल लीली करने को ही हुआ है। यही उनका वृन्दावन है और आसमानी उनकी राधा है। और आसमानी भी कम रसिका नही थी, ऐसे मदनमोहन को पाकर वह बन्दर पालने की साध मिटा लेती थी।

कभी-कभी पता पाकर विमला भी बन्दर नचाने जाती थी दिग्गज सीचते थे—यह उसकी चन्द्रावली है। होगी भी क्यो नही, घृतभाण्ड वाली बात ठीक ही तो कही है।

| १२ |

आसमानी

आसमानी को वेणी नागिन जैसी है। शायद इसी ताप से नागिन ने सोचा कि यदि मै वेणी से परास्त हो गई तो क्या मुह लेकर लोगो के सामने यह देह ले कर घूमूँगी ? इसीलिए वह बिल मे जा समाई। तब ब्रह्मा की आफत हुई। उन्होने सोचा कि नागिन तो बिल मे चली गई, अब आदमी को काटेगा कौन ? यही सोच कर उन्होने नागिन की पूँछ पकड कर उसे बिल से बाहर निकाला। विवश नागिन को फिर बाहर आ कर मुँह दिखाना पडा। इसी क्षोभ से वह अपना सिर पटकने लगी। पटकते-पटकते उसका सिर चिपटा हो गया। तभी से साँप के फन है।

आसमानी का चेहरा सुन्दर है, मुखचन्द्र। अस्तु, चन्द्रदेव ने ब्रह्मा से फारियाद की। ब्रह्मा ने कहा कि डरो मत, स्त्रियो का चेहरा ढँका रहेगा, तभी से घूँघट की सृष्टि हुई। आसमानी की आँखें खजन जैसी है, यह खजन कही पंख फैलाकर उड न जाये, अत विधाता ने पलको का द्वार लगाया। नासिका गरुण की नाक जैसी बडी। नाराज हो कर गरुण पेड पर जा बैठे-तब से सभी पक्षी पेडो पर ही रहने लगे। आसमानी के ही कारण, एक दूसरे कारण से अनार फल बगाल छोड कर पटना भाग गया और हाथी कुम्भ लेकर बरमा देश भाग गये। बाकी रहा धवलगिरि। उसने देखा, मेरा शिखर कितना ऊँचा, मात्र ढाई कोस ही तो, पर यह शिखर तीन कोस से कम न होगा, यह सोचते ही धवलगिरि का माथा गर्म हो गया, तब उसके सिर पर बर्फ रखी गई, तभी से वह सिर पर बर्फ रखे बैठा है।

लेकिन यह सब होते हुए भी भाग्य के लिखे दोष के कारण आसमानी विधवा है।

आसमानी ने आ कर देखा कि दिग्गज की कुटी का दरवाजा बंद है, लेकिन भीतर दिया जल रहा था। पुकारा, 'अजी, महाराज जी ?'

कोई जवाब न आया।

फिर पुकारा, 'अरे गोसाइँ जी ?'

फिर जवाब नदारद।

'मर जा मरदुआ ! जाने भीतर क्या कर रहा है ! अरे ओ रसिकराज रसोपाध्याय, प्रभू ?'

अब भी जवाब नही।

आसमानी ने कुटी के दरवाजे के छेद से झाँक कर देखा कि ब्राह्मण भोजन करने बैठा है। भोजन के बीच मे वह नही बोल सकता। बोल देने से भोजन अशुद्ध हो जायगा। आसमानी को लगा कि इसकीनिष्ठा की परीक्षा ली जाय। देखूँ, बोल कर फिर खाता है या नही!

'कहती हूँ, ओ रसिकराज ?'

उत्तर नही।

'ओ रसराज ?'

'हूँ—।'

मुँह मे कौर भर कर जवाब देता है ? इससे बातचीत कैसे होगी ? सो फिर बोली, 'ओ रसमाणिक।'

'हुँ—।'

'कहती हूँ कि बोल तो दो। बाद मे फिर खा लेना।'

'हूँ—हूँ—।'

'अच्छा। ब्राह्मण होकर यह कर्म। आज ही स्वामी जी से कहती हूँ। यह घर के भीतर दूसरा कौन है ?'

ब्राह्मण शंका से अपने ही घर मे चारो ओर देखने लगा। किसी को न देख कर फिर खाने लगा।

आसमानी चीखी, 'यह चण्डालिन औरत जात है न! मै इसे पहचानती हूँ।'

दिग्गज का चेहरा सूख गया। बोला, 'कौन चण्डालिन है ? छू तो नही गई ?'

तब आसमानी बोली, 'अरे, तुम तो फिर खाने लगे। बोलने के बाद भी खाते हो ?'

'कहाँ ? मैं कहाँ बोला ?'

आसमानी खिलखिला कर हँस पडी। बोली, 'यह क्या, फिर बोले ?'

'अच्छा, हाँ, हाँ, अब नही खाऊँगा।'

'तो उठ कर दरवाजा तो खोलो।'

आसमानी छेद से देख रही थी। ब्राह्मण सचमुच थाली छोड कर उठने को हुआ। तो बोली, 'नही, नही, वह जो बचा है उसे भी पेट मे डाल लो।'

'नही, अब नही खाऊँगा, बोल चुका हूँ।'

'यह क्या ? न खाओ तो तुम्हे मेरे सिर की कसम।'

'राधे माधव! बोलने के बाद क्या फिर खाना चाहिए ?'

'अच्छा तो मैं जाती हूँ। अपनी बहुत-सी भीतरी बातें कहने आई थी। लेकिन अब कुछ नही कहूँगी। जाती हूँ।'

'नही, नही आसमान! तुम नाराज मत होना। लो, मै भोजन कर लेता हूँ।'

ब्राह्मण फिर खाने लगा। दो-तीन ही कौर खाए होंगे कि आसमानी बोल उठी, 'उठो, हो गया, अब दरवाजा खोलो।'

'बस थोडा-सा है, यह भी खा लूँ।'

'यह तेरा पेट कभी न भरेगा। उठो, नही तो कह दूँगी कि तुमने बोलने के बाद भी भोजन किया है।

'अरे, लो उठ गया।'

बड़े दुख से ब्राह्मण बचा खाना छोड कर उठा। कुल्ला किया और दरवाजा खोला।

|१३|

आसमानी का प्रेम

कुटी का दरवाजा खुला तो आसमानी भीतर गई। दिग्गज ने सोचा कि आज प्रणयिनी खुद आयी है, इसका सरस स्वागत होना चाहिए। अत हाथ उठा कर कहा, 'ओ, आयाहि वर दे देवि!'

आसमानी ने कहा, 'यह तो बडा सरस काव्य है। कहाँ पाया?'

'तुम्हारे लिए आज ही बनाया है।'

'तो क्या यो ही तुम्हें रसिकराज कहती हूँ?'

'सुन्दरी, तुम बैठो, मै जरा हाथ धो लूँ।'

आसमानी ने मन ही मन कहा—'अरे मूर्ख, तू हाथ धोएगा, अभी वही जूठा मै तुझे फिर खिलाऊँगी।' फिर बोली, 'यह क्या, हाथ क्यो धोने लगे? जरा भोजन तो पूरा कर लो।'

'यह कैसे हो सकता है? खाना छोड कर उठ आया हूँ। अब फिर कैसे बैठूँ, खाने?'

'क्यो खाना तो अभी पडा है। क्या उपवास करोगे?'

'क्या करूँ! तुमने ही तो जल्दी मचा दी।'

'तो फिर से खाना होगा!'

'हे ईश्वर! आसन से उठ आया, कुल्ला भी कर चुका। अब फिर कैसे खाऊँगा?'

'वाह, खाओगे कैसे नही? मेरा जूठा खाओगे।' कह कर आसमानी ने उसकी थाली से एक ग्रास निकाल कर खा लिया।

ब्राह्मण अवाक् देखता रहा ।

आसमानी ने कहा, 'खाओ ।'

ब्राह्मण एक शब्द भी न बोला ।

'सुनो, खा लो, किसी से नही कहूँगी । किसी को मालून न होगा ।'

'अरे, ऐसा भी कही होता है ?' कह कर ही दिग्गज ने अनुभव किया कि अभी उसकी भूख मिटी नही ।

आसमानी समझ गई, बोली, 'अच्छा चाहे मत ही खाना, पर एक बार थाली के पास बैठे तो जाओ ।'

'क्यो इससे क्या होगा ?'

'मेरी इच्छा है । क्या तुम मेरी इतनी साध भी पूरी नहीं कर सकते ?'

अब ब्राह्मण चुपचाप थाली के पास जा बैठा ।

आसमानी ने पूछा, 'शूद्र का जूठा अगर ब्रह्मण छू ले तो क्या होता है ?'

'नहाना पडता है ।'

'मै आज जान लूँगी कि तुम मुझे कैसा प्यार करते हो ? क्या तुम मेरी बात पर आज रात को नहा सकते हो ?'

'यह कौन-सी बडी बात है ? अभी नहा सकता हूँ ।'

'तुम्हारी थाली का प्रसाद पाने की इच्छा है । तुम अपने हाथ से दल-भात सान दो ।'

'यह कौन-सी बडी बात है !' कह कर दिग्गज दाल-भात सानने लगा ।

'मै एक लतीफा सुनाती हूँ । जब तक मै कहती रहूँ तुम दाल-भात सानते रहना । नही तो मै नही खाऊँगी ।'

'अच्छा ।'

आसमानी ने राजरानी की कहानी शुरू की । दिग्गज अपना मुँह फैलाए, उसका मुँह ताकते सुनता रहा । सुनते-सुनते दिग्गज का मन आसमानी के चेहरे से अटक गया । आसमानी की हँसी, चितवन और नथ के बीच मे अटक गया । दिग्गज को होश नही कि वह कहाँ है । उसका हाथ अपने आप दाल-भात सानते-सानते, एक कौर लेकर मुँह तक चला गया । मुँह भी फैल गया । कौर भीतर । दाँत भी स्वभावगत चलने लगे । उधर, दिग्गज कहानी मे भूला और आसमानी के चेहरे से चिपटा था ।

अचानक आसमानी हँस पडी, खिलखिला कर हँसी । बोली, 'क्यो रे ढोंगी ? कहता था मेरा जूठा नही खायेगा ।'

तब दिग्गज के होश लौटे । झटपट एक और कौर मुँह मे डाल कर निगलने लगा । फिर जूठे हाथो आसमानी के पाँव पकड लिये । रो कर बोला, 'मुझे बचा लो आसमानी ! किसी से मत कहना !'

| १४ |

दिग्गज-हरण

ठीक इसी समय बाहर से विमला ने कुण्डी खटखटाई। विमला दरवाजे के छेद से सब देख रही थी। कुण्डी की खटखटाहट सुन कर दिग्गज का चेहरा उतर गया। आसमानी ने भी घबराहट दिखाते हुए कहा, 'क्या गजब हो गया! यह तो विमला आ गई है, छिपो, छिपो।'

दिग्गज महाराज रो पड़े। पूछा, 'कहाँ छिपूँ ?'

आसमानी ने कहा, 'उस अधेरे कोने मे सिर पर एक काली हाँडी रख कर जा बैठो। अधेरे मे वह देख न सकेगी।'

दिग्गज वैसा ही करने चले। लेकिन दुर्भाग्य से ब्राह्मण ने अरहर की दाल वाली हाँडी सिर पर औंधा ली। उसमे आधी हाँडी दाल बची थी—दिग्गज ने ज्यो ही सिर पर हाँडी औंधाई कि सिर से दाल की अनेक धारें बही—ब्राह्मण की चोटी से दाल का झरना फूट कर बह निकला। कधे, छाती, पीठ और बाहो से होकर अरहर की दाल की धाराएँ पर्वत से उतरती नदियो की भाँति दिखने लगी। विमला को देख कर दिग्गज फो-फो कर के रोने लगे। इससे विमला को बड़ी दया आई। विमला ने कहा, 'दिग्गज महाराज, रोओ नही। तुम यह बचा हुआ बाकी भात भी खा लो तब मै किसी से यह बात नही कहूँगी।'

सुनकर ब्राह्मण की बाँछे खिल उठी। फिर से खुश होकर भोजन करने बैठे। इच्छा थी कि देह-वाली दाल भी पोछ लें, लेकिन ऐसा करने की हिम्मत न पड़ी। बरबाद गई आधी हाँड़ी दाल के लिए पछताते हुए सब चावल खा गये। भोजन कर लेने पर आसमानी के कहने से नहाया। फिर ब्राह्मण के स्थिर होने पर विमला ने कहा, 'रसिक, एक जरूरी बात है।'

'क्या ?'

'तुम हमे प्यार करते हो न ?'

'हाँ।'

'हम दोनो को ?'

हाँ, दोनो को।'

'तो, जो कहे, वह कर सकोगे ?'

'क्यो नही कर सकूँगा ?'

'अभी ?'

'अभी।'

'इसो समय ?'

'हाँ।'

'हम दोनो क्यो आई है, जानते हो ?'

'नही।'

तब विमला बीच मे बोल उठी, 'हम दोनो तुम्हारे साथ भाग जाएँगी।'

ब्राह्मण विस्मय से मुँह फैला कर रह गया। बडी कठिनाई से विमला हँसी रोक सकी। पूछा, 'बोलते क्यो नही ?'

'आँय ··आँय लेकिन, लेकिन · '

आसमानी ने पूछा, ' क्या तुमसे न होगा ?'

'जरा जरा, स्वामी जी से पूछ आऊँ।'

विमला बोली, 'स्वामी जी से क्या पूछोगे ? क्या यह तुम्हारी अम्मा की सराध है जो स्वामी जी से पूछोगे ?'

'नही, अच्छा, नही पूछूँगा, परन्तु कब चलना है ?'

'कब क्या, अभी, तुरन्त ! देखते नही, मै जेवर-कपडे ले आई हूँ।'

'अभी ?'

'अभी नही तो कब ? नही तो कहो न, हम दूसरा आदमी खोजें।'

'नही, नही, चलो अभी चल रहा हूँ।'

'रामनामी ले लो।"

दिग्गज ने रामनामी गले मे डाल ली। विमला आगे-आगे चली और ब्राह्मण देवता पीछे पीछे। इसी समय दिग्गज ने कहा, 'सुन्दरी ?'

'क्या ?' पूछा विमला ने।

'फिर कब आओगी ?

'अब क्या आऊँगी ? सदा के लिए चली।'

'सामान तो सब रहा जा रहा है।'

'यह सब मै खरीद दूँगी।'

'लेकिन पोथियाँ ?'

'हाँ, वह जल्दी से ले लो।'

दिग्गज की कुल जमा दो ही पोथियाँ थी। एक व्याकरण की, एक स्मृति की। फिर व्याकरण की भी पोथी हाथ मे लेकर सोचा कि इसकी भला क्या आवश्यकता है ? यह तो पूरी कण्ठस्थ है। अत सिर्फ स्मृति-पोथी ली। फिर भगवती का नाम ले कर विमला और आसमानी के पीछे चले।

'तुम लोग आगे-आगे चलो, मैं पीछे से अभी आ रही हूँ।' कहकर आसमानी घूम कर अपने घर चली गई। विमला और दिग्गज साथ-साथ चले। अँधेरे मे छिपकर

दोनो किले के द्वार के बाहर गये। कुछ दूर चल कर दिग्गज ने पूछा, 'लेकिन अभी आसमानी नही आई ?'

'वह शायद नही आ सकी। अब उसका क्या करोगे ?'

रसिकराज चुप हो गए।

थोडी देर बाद फिर साँस छोड कर कहा, 'बर्तन-भाँडे सब रह गये।'

|१८|

दिग्गज की हिम्मत

तेजी से आगे बढती जाती विमला जल्दी ही मन्दारन से आगे निकल गई। रात गहरी अधेरी थी। तारो की झिलमिल रोशनी मे ही वह सतर्कता पूर्वक चलती रही। मैदान के रास्ते पर पांव रखते ही विमला कुछ शंकित हुई। उसका साथी चुपचाप पीछे-पीछे आ रहा था। वह कुछ भी नही बोल रहा था। ऐसे मे आदमी की आवाज सुनने से हिम्मत बढती है, कुछ सुनने को जी चाहता है। विमला ने साथी गजपति को चुप देख कर पूछा, 'क्यो रसिक-रतन, क्या सोच रहे हो ?'

उदास स्वर मे दिग्गज ने कहा, 'कहता हूँ कि बासन-भाँडे ।'

जवाब न देकर विमला बीच मे ही खिलखिलाकर हँस पडी।

कुछ देर बाद विमला ने फिर कहा, 'क्यो दिग्गज, तुम्हे भूतो से डर लगता है ?'

'राम-राम, राम-राम कहो' कहता हुआ दिग्गज बढ कर विमला के अति निकट आ गया।

'इस क्षेत्र मे भूतो का बडा उपद्रव है।' विमला ने कहा।

सुन कर दिग्गज ने आगे बढ कर विमल का आँचल पकड लिया।

विमला कहती गई, 'हम उस दिन शैलेश्वर की पूजा करने जा रहे थे। रास्ते मे बडे बरगद के नीचे एक विकराल मूरत खडी देखी थी।'

आँचल के कपन से विमला समझ गई कि ब्राह्मण बुरी तरह थर-थर काँप रहा है। सोचा कि अब और अधिक डरवाने से शायद ब्राह्मण आगे बढने से इन्कार कर दे, अत सम्हल कर शात स्वर मे पूछा, 'रसिकराज, तुम्हे गाना आता है ?'

दिग्गज बोला, 'आता क्यो नही ?'

'तो एक गीत गाओ।'

दिग्गज ने तत्काल ही शुरू किया—'एक—हूँ—जाने दो मो को सजनवा।'

रास्ते मे बैठी एक गाय पागुर कर रही थी। वह यह अलौकिक संगीत-स्वर सुन कर उठ कर, भागी।

रसिकराज का गाना चलता रहा। बोल थे—

'काहे करत तुम नित-नित हमसो रार
नही नही मानूँगी तिहार।'

अचानक दिग्गज का गाना एकाएक रूक गया। अचानक उसके कानो मे ऐसे मधुर शब्द पडे कि उसके कान ही जाग गए, स्वर सो गया, कठ रूक गया। अमृत मय शब्द सा मधुर सगीत उसके कानो मे गया। विमला खुद ही खूब खुल कर पूरी आवाज मे गाने लगी थी।

सुनसान मैदान से उठ कर सगीत स्वर आकाश की ओर उठने लगा। गरमी की हवा मे भी शीतलता का आभास मिलने लगा।

दिग्गज साप्त रोक कर सुनने लगा। जब विमला ने समाप्त किया तो एकाएक दिग्गज बोल उठा, 'फिर ?'

'फिर क्या ?'

'एक और गाओ।'

'क्या गाऊँ ?'

'कोई बगाली गीत गाओ ?'

'अच्छा गाती हूँ। कह कर विमला ने फिर शुरू किया।

गाते गाते विमला को लगा कि जैसे कोई उसका आँचल जोरो से पकड कर खीच रखा हो। उसने पीछे मुड कर देखा कि गजपति बिल्कुल उसके पैरो के पास आ गया था और अपनी शक्ति भर जोर लगा कर उसका आँचल पकड रखा था। विमला ने चकित होकर पूछा, 'क्या बात है क्या हुआ ? फिर भूत देखा क्या ?'

ब्राह्मण का कण्ठ जैसे जकड़ा था। उँगली उठा कर एक ओर दिखाया, 'वह।'

विमला भी स्तब्ध होकर उसी ओर देखने लगी। तेजी से चलती साँस की आवाज उसके कानो ने सुनी और उस दिशा मे सडक के किनारे कोई चीज दिखाई दी।

साहस करके पास जाकर विमला ने देखा, एक खूब सजा-बजा घोडा खूब घायल होकर पडा दम तोड रहा था। पास ही एक सैनिक को भी पड़ा देखा।

विमला वहाँ रुकी नही, रास्ते पर बढती गई। सैनिक और घोडे को इस अवस्था मे देख कर चिन्तित अवश्य हुई। लेकिन कोई बातचीत उसने नही की और चुपचाप आगे बढती गई। लगभग एक मील चलने के बाद दिग्गज ने फिर उसका आँचल पकड कर खीचा। विमला ने पूछा, 'क्या है ?'

दिग्गज ने एक चीज लेकर दिखाई। विमला ने देख कर कहा—'यह किसी सिपाही की पगडी है।'

देख कर विमला गहरी चिन्ता मे डूब गई। फिर अपने आप ही बोली, 'जिसका घोडा है, उसी की पगडी है? नही, यह तो किसी पैदल सवार की पगडी है।'

थोडी देर बाद चाँद निकला। विमला और भी अनमनी हो गई। बडी देर के बाद हिम्मत करके दिग्गज ने कहा, 'सुन्दरी, कुछ बोलती क्यो नही हो? बातचीत क्यो नही करती?'

'रास्ते पर कुछ निशान दिखते हैं तुम्हे?'

दिग्गज ने खूब सावधानी से रास्ते पर देख कर कहा, 'हाँ, बहुत से घोडो की टापो के निशान देख रहा हूँ।'

'कुछ समझे?'

'नही।'

'वहाँ वह घायल घोडा, सिपाही की खुली पगडी, यहाँ इतने घोडो के टापो के निशान, इतने से भी कुछ नही समझ सके? कहूँ भी तो किससे?'

'क्या?'

'इस रास्ते से अभी-अभी एक बडी सेना आ गई है।'

दिग्गज डर कर बोला, 'तो जरा धीरे-धीरे चलो, ताकि वे लोग काफी दूर बढ-कर चले जायँ।'

उदास व चिन्तित स्वर मे विमला ने कहा, 'बडे मूर्ख हो! वे लोग बढ कर कहाँ जायँगे? देखते हो, घोडो के टापो के निशान से उनका किस ओर बढना दिखाई देता है? देखते नही, यह सेना गढ मन्दारन की ओर गई है।'

दोनो ने जल्दी-जल्दी पाँव बढाया। जल्दी ही शैलेश्वर के मन्दिर की उज्ज्वल पताका दीख पडी। विमला ने मन मे सोचा कि राजकुमार जगतसिंह के साथ इस मूर्ख ब्राह्मण की भेट की कोई आवश्यकता नही है। बल्कि इससे नुकसान होने की ही सभावना है। इसलिये वह ब्राह्मण को टालने का ही उपाय सोचने लगी। ब्राह्मण ने खुद ही रास्ता बता दिया।

विमला की पीठ से लगभग सटते हुए ब्राह्मण दिग्गज ने उसका आँचल पकड कर खीचा। विमला ने पूछा, 'अब क्या हुआ?'

दिग्गज ने घुटती हुई आवाज मे पूछा, 'अब कितनी दूर है?

'क्या?'

'वही बरगद!'

'कौन सा बरगद?'

'वही, जहाँ उस दिन तुम लोगो ने कुछ देखा था?'

'क्या देखा था ?'

'रात को उसका नाम नही लेना चाहिये ।'

समझ कर विमला ने सुयोग का लाभ उठाया । गभीर स्वर मे बोली, 'वह !'

दिग्गज और भी डर गया । पूछा, 'क्या ?'

विमला ने एक ओर उँगली उठा कर कहा, 'वही है वह बरगद ।'

दिग्गज जैसे जम गया । फिर न हिला । गतिहीन व शक्तिहीन होकर पीपल के की तरह काँपने लगा ।

विमला बोली, 'आओ ।'

दिग्गज ने काँपते हुए कहा, 'मै अब आगे न जा सकूँगा ।'

'डर तो मुझे भी लग रहा है ।'

सुनते ही दिग्गज पीठ फेर कर भागने का उपक्रम करने लगा । विमला ने पेड की ओर गौर से देखा । पेड के नीचे कुछ सफेद-सफेद दिखाई पडा । विमला जानती थी कि पेड के नीचे शैलेश्वर का साँड रहता है, पर दिग्गज से कहा, 'दिग्गज, अब इष्टदेव का नाम लो । पेड के नीचे कुछ देख रहे हो ?'

'अरे बाप रे !' कह कर दिग्गज भाग कर खडा हुआ । लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ, देखते-देखते वह आधा मील दूर चला गया ।

विमला दिग्गज को खूब अच्छी तरह जानती थी । वह समझ गई कि दिग्गज भाग कर सीधे किले के दरवाजे पर ही पहुँचेगा ।

अब विमला निश्चिन्त होकर मन्दिर की ओर बढी ।

सब बातें सोच विचार कर विमला आई थी, पर एक बात उसने नही सोचा था । जगतसिंह मदिर मे आये है या नही ? मन मे इस शंका के आते ही विमला का मन कष्ट पाने लगा । सोच कर देखा—राजकुमार ने निश्चयपूर्वक आने को नही कहा था । मात्र इतना ही कहा था—यही तुमसे भेंट होगी । यदि यहाँ भेंट न हो तो फिर नही होगी ।—तब तो आना निश्चित नही है ।

यदि राजकुमार नही आये तो इतनी झंझट बेकार ही उठाई । उदास होकर विमला अपने आपही कहने लगी—'यह मैने पहले क्यो नही सोचा ? दिग्गज को भी व्यर्थ ही भगा दिया ! अब इतनी रात मे अकेले कैसे लौटूँगी ? हे शैलेश्वर, तुम्हारी ही इच्छा पूरा हो !'

शैलेश्वर के मन्दिर मे जाने का मार्ग उसी बरगद के नीचे से है । पेड के नीचे पहुँच कर विमला ने देखा, वहाँ वह साँड नही है, पेड के नीचे जो सफेद चीज दिखी थी, वह भी अब वहाँ नही है । विमला को ताज्जुब हुआ । साँड यदि टहल गया होता तो मैदान में अवश्य दिखता ।

तभी विमला ने पेड के तने की ओर तेज निगाह फेंकी । लगा कि पेड के पीछे

से किसी आदमी के सफेद कपडे का एक भाग दिख रहा है। विमला बहुत चचल हो उठी। तेज कदम मन्दिर की ओर चली। मन्दिर मे पहुँच कर दरवाजे पर जोरो का धक्का मारा।

दरवाजा भीतर से बन्द था। एक गम्भीर स्वर गूँजा, प्रश्न हुआ, 'कौन ?'

शून्य मन्दिर के भीतर ही प्रतिध्वनि गूँजी, 'कौन ?'

खूब साहस बटोर कर विमला ने कहा, 'रास्ते की थकी एक स्त्री।'

दरवाला खुल गया।

देखा, मदिर मे दिया जल रहा है। सामने हाथ मे खुली तलवार लिए एक दीर्घकाय पुरुष खडा है।

देखते ही विमला पहचान गई, कुमार जगतसिंह है।

|१६|

जगतसिंह से भेंट

घबराहट और उत्तेजना के कारण विमला इतनी अस्थिर हो गई थी कि मन्दिर मे घुसने के बाद थोडी देर वह चुपचाप वही बैठी रही, तब वह स्थिर हो सकी। फिर उठकर उसने अत्यन्त श्रद्धा से झुक कर शैलेश्वर को प्रणाम किया, फिर घूम कर उसने युवराज को आदरपूर्वक प्रणाम किया।

थोडी देर तक दोनो चुप रहे। कौन पहले और क्या कह कर अपने मन का भाव व्यक्त करे, यह सकट दोनो के मन पर छाया रहा। पहले क्या कह कर बात शुरू की जाय ?

विमला ऐसे अवसरो के लिए बडी चतुर स्त्री है। मुस्करा कर बोली, 'युवराज! आज शैलेश्वर की कृपा से आपके दर्शन हुए। अकेले, ऐसी भयानक रात मे, सुनसान मैदान से आते हुए डर रही थी। अब मंदिर मे आकर जब आपके दर्शन हुए तब साहस लौटा।'

युवराज ने पूछा, 'सब कुशल तो है ?'

विमला को यही अवसर का सुयोग मिला कि वह जान ले कि क्या सचमुच युवराज भी तिलोत्तमा पर अनुरक्त है या नही ? उसने सोचा कि पहले यही बात जान ली जाय तब दूसरी बात की जायगी। अत खूब सोच कर उसने कहा, 'जिसमे कुशल हो, उसी लिए तो शैलेश्वर की पूजा करने आई हूँ। अब जान गई कि आपकी ही पूजा से शैलेश्वर प्रसन्न है, उन्हे अब मेरी पूजा स्वीकार न होगी। अब आज्ञा हो तो मै चलूँ ?'

'हाँ जाओ, लेकिन तुम्हारा अकेले जाना उचित नही, हम तुम्हे पहुँचा आते है ।'

विमला समझ गई कि युवराज ने इस उम्र तक केवल अस्त्र-शिक्षा ही नही पाई है। बोली, 'अकेले जाना अनुचित क्यो है ?'

'रास्ते मे अनेको प्रकार के डर है ।'

'तो मै महाराज मानसिंह के पास जाऊँगी ।'

'क्यो, किसलिए ?'

'उनसे फरियाद करूँगी कि जिन्हे आपने सेनापति नियुक्त किया है, उनसे हमारे रास्ते के भय दूर नही हुए है। शत्रु को विनाश करने मे वे सक्षम नही है ।'

युवराज हँस पडे। बोले, 'तब सेनापति कहेगे कि शत्रु का विनाश तो देवताओ के लिये भी सहज नही, आदमी की क्या बिसात ? उदाहरण है कि स्वय महादेव ने तपोवन मे मन्मथ शत्रु को भस्म किया था। अभी एक ही पखवारा बीता है कि उसने उन्ही के मन्दिर मे भारी उत्पात किया है ।'

'इसका दुष्प्रभाव किस पर हुआ है ?'

'सेनापति पर ही ।'

'क्या ऐसी असम्भव बात पर महाराज विश्वास करेगे ?।

'मेरे पास गवाह है ।'

'ऐसा गवाह कौन है ?'

'सुचरित्रे · ।'

युवराज की बात को बीच मे ही काट कर विमला बोली, 'महाराज, यह दासी बडी दुश्चरित्रा है, मुझे विमला कह कर पुकारियेगा ।'

'तो विमला ही गवाह है ।'

'विमला ऐसी गवाही नही देगी ।'

'हो सकता हैं। जिसे एक पखवारे मे ही अपनी प्रतिज्ञा याद न रहे, वह भला सही गवाही कैसे दे सकती है ?'

'महाराज, कौन सी प्रतिज्ञा थी ?'

'सखी का परिचय देने की ।'

एकाएक विमला सतर्क हो गई, व्यग्य-वार्ता छोड कर गम्भीर स्वर मे बोली, 'युवराज परिचय देते संकोच होता है। परिचय पाकर सभव है आप सुखी न हो ?'

युवराज क्षण भर सोचते रहे। वे भी गम्भीर हो गये थे। सोच कर गम्भीर भाव से बोले, 'विमला, ठीक-ठीक परिचय पाकर क्या मेरे सुखी न होने का उपयुक्त कारण है ?'

'हाँ युवराज !'

राजकुमार चिन्तित हो उठे। थोडी देर बाद बोले, 'कुछ भी परिणाम हो, तुम मेरी जिज्ञासा शात करो। मेरी उत्सुकता बढती जा रही है। इससे बढ़ कर मेरी बेचैनी

का और कोई कारण नही हो सकता । तुम्हारी शंका यदि सत्य भी हो तो वह भी इस बेचैनी से अधिक सुखकर होगा । अपने मन को समझाने को एक बात तो मिलेगी । विमला, मै मात्र कौतूहल-निवारण के लिए नही आया । इधर पूरे पखवारे भर मै घोडे की पीठ छोड कर किसी अन्य शय्या पर नही लेटा हूँ । मेरा मन अत्यन्त व्याकुल है, तभी मै आया हूँ ।'

यही बात जानने के लिये तो अब तक विमला इतना प्रयत्न कर रही थी । लेकिन अभी भी वह सतुष्ट न थी । और भी कुछ सुनने के लिए उसने कहा, 'युवराज, आप राजनीति मे परम प्रवीण है । सोच कर देखिए, क्या इस समय, युद्ध के समय एक दुष्प्राप्य रमणी मे मन लगाना उचित है ! मै दोनो के ही कल्याण के लिए कह रही हूँ । आप मेरी सखी को भूल जाने का प्रयत्न कीजिये । युद्ध मे आप अवश्य ही अशस्वी होगे ।'

युवराज के चेहरे पर मन का क्लेश प्रकट करने वाली मुस्कान आई । बोले, 'किसे भूलूँगा ? एक बार के दर्शन-मात्र से ही मेरे हृदय पर तुम्हारी सखी का रूप गहरी छाप छोड गया । अब वह छाप कभी मिट नही सकती । लोग मेरे हृदय को पत्थर कहते है । और पत्थर मे जो चित्र एक बार अकित हो जाता है, वह पत्थर के नष्ट हुए बिना कभी नही मिटता । और युद्ध की बात क्या कहती हो ? विमला, तुम्हारी सखी को देखने के बाद से ही मै लडाई लड रहा हूँ । रणक्षेत्र हो या शिविर, मै एक पल के लिए भी उस मुँह की छवि नही भूला हूँ । जब सिर काटने के लिए ही पठानो ने खंजर उठाया है, तब, मरने पर, फिर वह मुँह कभी नही देख सकूँगा । दुबारा देखने को नही मिला, बार-बार यही बात याद आती है । विमला, बताओ ! मै तुम्हारी सखी को कहाँ देख सकता हूँ ?'

और ज्यादा सुन कर विमला क्या करती ! बोली, 'तो गढमन्दारन मे मेरी सखी को देख सकिएगा । मेरी सखी, सुन्दरी तिलोत्तमा, वीरेन्द्र सिंह की कन्या है ।'

जगतसिह को एक झटका सा लगा, जैसे उन्हे काले साँप ने डस लिया हो । तलवार के सहारे वे सिर झुकाये खडे रहे । थोड़ी देर तक चिन्ता-मग्न रह कर फिर लम्बी साँस छोड कर बोले, 'तुम्हारी ही बात सच निकली । हाँ, तिलोत्तमा मेरी नही हो सकती । अब मै रणक्षेत्र मे चला । शत्रु के रक्त मे ही अपने मन की अभिलाषा बहा दूँगा ।'

युवराज को इस प्रकार कातर देख कर विमला बोली, 'युवराज ! यदि स्नेह का पुरस्कार है तो मात्र आप ही तिलोत्तमा को प्राप्त करने के योग्य है । अभी से इतने निराश क्यो होते है ? आज यदि विधाता वैरी है तो कल वही परम सदय भी हो सकता है ।'

आशा बडी ठगिनी है, बडी मृदु वा मधुरभाषिणी । बहुत बुरे दिनो मे भी वह मनुष्य के कान मे लगातार कहती रहती है— 'ये तूफान और बादल हमेशा नही रहेंगे,

तुम दुखी क्यो होती हो ? मेरी बात सुनो।' आज विमला के मुँह मे आशा ही बोल रही थी—'क्यो दुखी होते हो ? मेरी बात सुनो।'

जगतसिंह ने आशा की ही बात सुनी। ईश्वर-इच्छा को कौन टाल सकता है ? विधाता की लिपि को पहले से कौन पढ सकता है ? इस ससार मे अघटन कौन सी घटना नही घटी ?'

युवराज ने आशा की बात सुनी। बोले, 'जो भी हो पर आज मेरा मन बहुत अस्थिर हो गया है। समझ मे नही आ रहा कि क्या करना चाहिए, क्या नही। जो कुछ भाग्य मे लिखा होगा, हो कर रहेगा। विधाता का लिखा कौन मेट सकता है ? इस समय मै केवल अपना मन ही खोल कर कह सकता हूँ। इस समय, यहाँ शैलेश्वर के सामने सच ही कह रहा हूँ कि मै जीवन मे तिलोत्तमा को छोड कर और किसी को प्यार नही कर सकूँगा। तुमसे मेरी केवल एक भिक्षा है कि तुम अपनी सखी से कुल बातें साफ-साफ खोल कर कह देना और कहना कि मै केवल एक बार उनके दर्शन का भिखारी हूँ। दूसरी बार के लिए कभी प्रयत्न भी न करूँगा, यह स्वीकार करता हूँ।'

विमला का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा, बोली, 'मेरी सखी की प्रतिक्रिया आप कैसे जान सकेंगे ?'

'मैं तुम्हे बार-बार तो कष्ट नही दे सकता। पर यदि तुम मुझसे फिर इसी मन्दिर मे मिलो तो मैं सदा तुम्हारे हाथो बिका रहूँगा। जगतसिंह से कभी न कभी तुम्हारा उपकार ही हो सकता है।'

विमला बोली, 'युवराज, मै आप की दासी हूँ, आज्ञाकारिणी हूँ। लेकिन रात को अकेले इस रास्ते से आने मे बहुत डर लगता है। कहे हुए बचन का पालन किए बिना नही बनता, इसी विवशता से आज आ सकी हूँ। आप जानते है कि इस समय यह प्रदेश शत्रुओ से भरा पडा है। अत दुबारा आऊँगी, ऐसा कहने की हिम्मत नही पडती।'

फिर कुछ देर के बाद राजकुमार ने कहा, 'तुम यदि कोई विशेष हानि न देखो तो मैं इस समय तुम्हारे साथ गढ मन्दारन चलूँ। वहाँ उपयुक्त व सुरक्षित जगह पर मै प्रतीक्षा करूँगा। तुम मुझे आ कर खबर दे जाना।'

प्रसन्न स्वर से विमला ने कहा, 'तो चलिए।'

मन्दिर से दोनो बाहर आये और चलने का उपक्रम करने लगे। ठीक इसी समय मन्दिर के बाहर किसी के सावधानी से चलने की पदचाप सुनाई पडी। राजकुमार ने आश्चर्य से विमला से पूछा, 'तुम्हारा कोई साथी भी है ?'

'नही तो !'

'तो यह किसके चलने की आहट आई। लगता है कि किसी ने छिप कर हमारी बातचीत सुनी है।'

राजकुमार ने बाहर खुले मे आकर मन्दिर के चारो ओर घूम कर देखा पर कही कोई दिखाई न पडा ।

|१७|

वीर-पंचमी

शैलेश्वर को प्रणाम कर शकित मन से दोनो गढ मन्दारन की ओर चुपचाप चल पडे । कुछ दूर जाने के बाद पहले जगतसिंह ने ही बात शुरू की । बोले, 'विमला, एक बात की मुझे जिज्ञासा है । तुम सुन कर क्या कहोगी, कह नही सकता ।'

'कहिये क्या है ?'

'मुझे यह दृढ विश्वास हो गया है कि तुम दासी नही हो ।'

'ऐसा विश्वास आप को कैसे हुआ ?'

'वीरेन्द्र सिंह की कन्या अम्बर नरेश की पुत्र बधू नही हो सकती, इसका एक विशेष रहस्य है । वह रहस्य बहुत गुप्त है । तुम दासी हो कर यह गुप्ततम रहस्य कैसे जान सकती हो ?'

लम्बी साँस छोड कर बडे कातर स्वर मे विमला ने कहा, 'आपका विश्वास ही ठीक है । मै दासी नही हूँ । भाग्य के कुचक्र से ही दासी की तरह समय काट रही हूँ । अदृष्ट को भी दोष क्या दूँ ? मेरा अदृष्ट बुरा नही ।'

राजकुमार को लगा कि इस बात से विमला का मन आहत हुआ है, अतएव इस संबंध मे आगे और बात नही की । विमला खुद ही बोली, युवराज, मै अपना ठीक परिचय आपको अवश्य दूँगी, पर अभी नही । वह कैसी आवाज है ? क्या कोई पीछे आ रहा है ?'

इसी समय, पीछे से कई आदमियो के चलने की पदचाप सुनाई पडी । ऐसा लगा, जैसे दो आदमी आपस मे फुसफुसा रहे है । तब तक मन्दिर प्राय मील भर पीछे छूट गया था ।

युवराज बोले, 'मेरा सदेह बढ़ता जा रहा है, मै देख आऊँ', कहकर वह कुछ दूर लौटे, इधर उधर भी देखा पर कही भी किसी आदमी का नाम-निशान न था । लौट कर विमला से कहा, 'मुझे सदेह है कि कोई हमलोगो के पीछे लगा है । अब हमे बहुत सतर्कता से चलना और बातचीत करना चाहिए ।'

अब दोनो बहुत ही धीमी आवाज मे बातचीत करते आगे बढे । थोडे समय बाद

गढ मन्दारन गाँव मे आकर किले के सामने पहुँचे। राजकुमार ने पूछा, 'इस समय तुम किले के भीतर कैसे जाओगी ? इतनी रात को अवश्य ही फटक बन्द होगा।'

'आप चिन्ता न करे। इसका प्रबन्ध करके ही मै बाहर निकली थी।'

'क्या कोई गुप्त-मार्ग है ?'

'जहाँ चोर है, वहाँ सेंध भी है।'

'तो अब और आगे जाने की मेरी जरूरत नही। मै किले के पास वाले आम के बगीचे मे तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। मेरी खातिर तुम मेरी ओर से अपनी स्वामिनी से निष्कपट भाव से सब निवेदन करना। एक पखवारे बाद हो या एक महीने के बाद, मै एक बार उन्हे देख कर अपनी आँखो की जलन मिटाऊँ गा।'

'यह आम का बगीचा, सुरक्षित स्थान नही है। आप मेरे साथ आइए।'

'और कितनी दूर चलना होगा ?'

'किले के भीतर चलिए।'

'विमला, यह तो शायद उचित न होगा। दुर्ग-स्वामी की आज्ञा बिना मै तो किले के भीतर नही जा सकता।'

'चिन्ता क्या है ?'

'राजकुमार लोग कही जाने मे चिन्ता नही करते। तुम्ही सोच कर देखो, अम्बर-नरेश के युवराज के लिए क्या यह उचित है कि वह किले मे स्वामी की आज्ञा बिना चोर की तरह प्रवेश करे ?'

'लेकिन मै आप को आमन्त्रित करके लिवा जा रही हूँ।'

'यह न सोचना कि मैं दासी समझ कर तुम्हारी अवज्ञा कर रहा हूँ। पर तुम्ही कहो न कि किले के भीतर मुझे लिवा जाने का तुम्हे क्या अधिकार है ?'

'मेरा क्या अधिकार है, यह जाने बिना क्या आप भीतर न चलेंगे ?'

'कदापि नही।'

तब विमला ने निकट जाकर, झुक कर युवराज के कान मे कुछ कहा।

राजकुमार बोले, 'तो चलिए।'

विमला बोली, 'युवराज मैं दासी हूँ। दासी से 'चलिए' नही, 'चलो' कहिए।'

'यही सही।'

जिस राजपथ से विमला युवराज को लिवाए ले जा रही थी, उसी राह से किले के दरवाजे पर जाना पडता है। किले की बगल मे ही आम का बगीचा है। लेकिन सिंह द्वार से बगीचा दिखाई नही पडता। अन्त पुर के पीछे जहाँ आमोदर नदी बहती है, उस ओर जाने पर आम के बगीचे के भीतर से होकर जाना पडता है। विमला इस समय राजमार्ग छोड कर युवराज के साथ आम के बगीचे मे घुसी।

आम के बगीचे में घुसते ही फिर सूखे पत्तो के कुचले जाने के साथ मनुष्य के

पावो की ध्वनि आने लगी। सुन कर विमला ठमकी। बोली, 'फिर वही।'

युवराज ने कहा, 'तुम जरा ठहरो। मै देख आता हूँ।'

म्यान से तलवार निकाल कर युवराज आवाज आने की दिशा की ओर बढे। लेकिन कही कुछ न दिखा। बगीचे मे बीच-बीच मे अनेक जगली लताओ के कारण ऐसा जंगल हो गया था और पेडो की छाया के कारण रात मे बगीचे मे ऐसा अधकार छा गया था कि युवराज जिधर भी बढते, आगे अधिक दूर तक कुछ न देख पाते। अत मे उन्होने मन को समझाया कि जगली जानवरो के चलने से भी सूखे पत्तो के कुचले जाने की आवाज आ सकती है। फिर भी, कुछ भी हो, सदेह दूर कर लेना चाहिए, यह सोच कर युवराज तलवार हाथ मे लिए हुए एक पेड के ऊपर चढ गये। पेड पर काफी ऊपर जाकर वह इधर-उधर देखने लगे। बडी देर तक देखने के बाद देख सके कि एक बडे आम के पेड की शाखाओ के बीच अधेरे मे दो जन बैठे है। उनकी टोपियो पर चाँदनी पड रही है, उसी से दिखना संभव हो सका। बाकी शरीर अधेरे मे छिपा था। राजकुमार ने ठीक से देखा, टोपियाँ पहने दो आदमी ही है, अब इसमे कोई सदेह नही रहा। उन्होने अच्छी तरह उस पेड को पहचान लिया ताकि दुबारा आने मे भ्रम न हो। फिर वह धीरे-धीरे पेड से उतर कर चुपचाप विमला के पास आये। जो कुछ देखा था, विमला से बातया। फिर कहा, 'इस समय अगर दो बरछे होते!'

'बरछे लेकर क्या कीजिए?'

'इन दोनो के लिए। मालूम करता कि ये कौन है? लक्षण अच्छे नही दीख रहे। टोपियो से शक हो रहा है कि पठानो ने किसी बुरे अभिप्राय से हमारा पीछा किया है।'

तब विमला को राह मे देखे घायल, मृत प्राय घोड़े, पगडी और घोडो की टापो के निशान की याद आयी। बोली, 'तो आप यहाँ पल भर प्रतीक्षा कीजिए। मै झटपट किले से बरछे लेकर आती हूँ।'

विमला भाग कर किले मे गई। जिस कमरे मे बैठ कर उसने शृगार किया था, उसके नीचे के कमरे मे आम के बगीचे की ओर एक झरोखा था। आँचल से चाभी निकालकर विमला ने कल मे घुमाई। फिर झरोखे का डण्डा पकड कर दीवार की ओर खीचा। शिल्प-कौशल से झरोखा, उसके किवाड़े, चौखट, सीखचे, सभी दीवाल के भीतर एक बड़े छेद मे समा गए। कमरे मे घुसने के लिए विमला को रास्ता मिल गया। कमरे के भीतर-जाकर विमला ने दीवार के भीतर से झरोखे के चौखट को पकड कर खीचा। झरोखा निकलकर फिर अपनी जगह स्थिर हो गया। झरोखे मे भीतर से भी चाभी लगाने की कल थी। विमला ने फिर उस कल मे चाभी लगाई। झरोखा अपनी जगह दृढ हो गया। बाहर से खुलने का डर न रहा।

फिर विमला जल्दी से किले के शस्त्रागार मे गई। वहाँ खडे पहरेदार से कहा,

'मैं तुमसे जो भी कहती हूँ, वह तुम किसी से मत बताना। बस मुझे अभी दो बरछे दो, मैं अभी वापस ला दूँगी।

पहरेदार ने विस्मित होकर पूछा, 'माँ, बरछे ले कर तुम क्या करोगी ?'

आज मेरा वीर पचमी का व्रत है। यह व्रत करने से वीर पुत्र होता है। इसके लिए शस्त्र पूजा का अनुष्ठान होता है ? मुझे एक वीर पुत्र की कामना है। आज की रात अस्त्र पूजा करनी है। पर यह बात किसी से मत कहना।'

विमला ने जो कुछ और जितना कहा, पहरेदार उतना ही समझा। किले के सभी कर्मचारी विमला की आज्ञा मानते थे। आगे कोई बात न कर के पहरेदार ने दो तेज बरछे विमला को दे दिया।

बरछे लेकर विमला पहले की तरह झरोखे के रास्ते जल्दी से जगतसिंह के पास वापस आ गई। लेकिन जल्दी की उत्तेजना के कारण हो या यह सोच कर कि अभी तो वापस आना ही है, विमला बाहर आते समय उस झरोखे को अच्छी तरह बन्द किए बिना ही चली आई। झरोखे के बिल्कुल पास ही आम का एक बडा पेड था। उसकी आड मे छिपकर एक अस्त्रधारी पुरुष खडा था। उसने विमला को आते और जाते देखा। विमला जब आँखो से ओझल हो गई तब तक वह शस्त्रधारी आड मे ही खडा रहा। फिर वह व्यक्ति जूते उतार कर नगे पाँव धीरे धीरे झरोखे के पास आया, झॉक कर भीतर देखा। कमरे मे किसी को न देख कर चुपचाप भीतर गया और वहाॅ से अन्त. पुर के भीतर घुसा।

इधर विमला से बरछा पा कर युवराज दौड कर अपने पहले वाले पेड पर चढे और दूसरे लक्षित पेड की ओर निगाह दौडाई तो पाया कि इस समय वहाँ एक ही टोपी दिख रही है, दूसरा व्यक्ति वहाँ से गायब हो चुका था। राजकुमार एक बरछा बाएँ हाथ मे लिया और दूसरे को दाहिने हाथ मे ले कर पेड वाली टोपी पर निशाना साधा। फिर पूरी शक्ति से बरछा फेंका। पहले तो पेड की पत्तियो का मर्मर-शब्द हुआ फिर दूसरे ही क्षण किसी भारी चीज के नीचे गिरने का एक धमाका हुआ। अब पेड पर टोपी नही दिखी। युवराज को यह समझते देरी न लगी कि टोपी वाला आदमी ही पेड पर से नीचे गिरा है।

युवराज झटपट पेड पर से उतरे। वहाँ गये जहाँ वह आदमी गिरा था। देखा कि एक सशस्त्र पठान सैनिक मुर्दा सा पडा है। उसे आँख के पास बरछा लगा था। उसे टटोल कर युवराज ने देखा कि वह मर चुका है। लाश के कवच मे से एक पत्र युवराज ने खोज निकाला। चाँदनी मे जगतसिंह ने वह पत्र पढा। उसमे लिखा था—

'कतलू खाँ के हुक्म की तामील करने वाले इस खत को देखते ही वाहक का हुक्म माने।

—कतलू खाँ।'

विमला ने सिर्फ आवाज सुन सकी। कुछ जान न सकी। थोडी देर बाद युवराज

ने आकर उसे कुल हाल बताया। सुन कर विमला बोली, 'युवराज, मैं यदि इतना जानती तो बरछा ला कर आप को न देती। मै बडी पापिनी हूँ, आज जो काम किया है, इसका प्रायश्चित बहुत दिनो तक नही हो सकेगा।'

'शत्रु-वध पर इतना क्लेश क्यो ? शत्रु-वध तो धर्मकार्य है।'

'यह विचार तो योद्धा करें, हम तो स्त्री जाति है।'

फिर थोडी देर बाद विमला बोली, 'युवराज ! अब देर करने से अनिष्ट होगा। जल्दी ~~किले मे~~ चलिए। मै दरवाजा खुला ही छोड आई हूँ।'

दोनो झरोखे की राह जल्दी से किले मे गये। पहले विमला और फिर जगत सिंह भीतर गये। भीतर जाते समय युवराज का दिल धडका, पैर काँपे। हजारो सिपाहियो की सेना के सामने जो कभी डरा न हो उसका मन इस सुख के निवास मे पाँव रखते समय कॉप गया।

विमला ने पहले तो झरोखा बद किया फिर युवराज को अपने कमरे मे ले जाकर कहा, 'आप थोडी देर इस पलग पर बैठें, मै अभी आती हूँ।'

विमला चली गई। फिर थोड़ी देर बाद आ कर पास के कमरे का दरवाजा खोला और बोली, 'युवराज, इधर आकर पास मे जरा एक बात सुनिए।'

युवराज का हृदय फिर कांप उठा। पलग से उतर कर वे विमला के पास दूसरे कमरे मे गये। विमला बिजली की गति से उसी क्षण वहाँ से हट गई। युवराज ने देखा, खूब सुसज्जित और सुवासित कमरा है। रजत-दीप जल रहा है। कमरे मे एक अवगुण्ठन वाली रमणी है—यही तिलोत्तमा है।

|१८|

दॉव पर दॉव

विमला वापस आकर अपने पलग पर बैठ गई। प्रसन्नता से उसका चेहरा खिल रहा था। किसी तरह अपना मनोरथ सफल करके वह सतोष का अनुभव कर रही थी। कमरे मे दिया जल रहा था। सामने ही दर्पण था। उसमे विमला ने क्षण भर के लिए अपना रूप देखा। वेशभूषा व केश-विन्यास वैसा ही था जैसा उसने शृगार किया था। बडी-बडी आँखो के कोनो मे काजल चमक रहा था और ओठ पान की लाली से दीप्त थे। विमला पलग पर अधलेटी बैठी थी, दर्पण मे अपनी ही रूपराशि देख-देख कर मुस्करा रही थी। वह सोच कर हँस पडी कि दिग्गज पण्डित सचमुच बिना कारण ही घर छोडने को तत्पर नही हुआ था।

विमला जगतसिंह के वापस आने की प्रतीक्षा कर रही थी। ठीक इसी समय आम की बगिया से तूर्यनाद का गँभीर शोर उठा। विमला डर कर चौक उठी। सिंह द्वार के सिवा आम की बगिया मे कभी तूर्यनाद नही होता। फिर इतनी रात को यह तूर्यनाद क्यो ? अचानक उसे वह सब याद आ गया जो उसने मदिर जाते समय रास्ते मे और लौटते समय बगिया मे देखा था। विमला के मन में यह विश्वास जम गया कि यह तूर्यनाद किसी अमगल अनहोनी घटना की पूर्वसूचना है। अत वह शकित मन से झरोखे के पास जाकर आम की बगिया की ओर देखने लगी। लेकिन बगिया मे उसे कोई खास बात नही दिखाई पडी। तब घबरा कर वह अपने कमरे से बाहर निकली। उसके कमरे की कतार के बाद ही आँगन है। उसी कतार मे किले के ऊपर जाने की सीढी है। कमरे से निकल कर वह उसी सीढी से ऊपर गई। इधर-उधर देखने लगी। फिर भी बगिया मे छाये अंधकार के कारण ठीक से कुछ भी न दिखा। विमला दूनी उद्विगनता के साथ छत की चारदीवारी के पास गई। उस पर छाती टिका कर झुक कर किले के नीचे तक झाँका। बगिया मे सर्वत्र अधकार था। कही कही चाँदनी पहुँचती थी। आमोदर के स्थिर जल मे चाँद और तारो की परछाइँ चमक रही थी। और कही कुछ दिखाई नही देता। विमला निश्चिन्त मन हो लौटने को हुई कि अक्समात् उसे लगा जैसे पीछे से किसी ने उसकी पीठ पर उँगली रखी। घबरा कर विमला ने मुँह फेर कर देखा तो पाया कि एक शस्त्रधारी अज्ञात् पुरुष खडा था। विमला एकाएक जैसे प्रतिमा सी पाषाण हो गई।

शस्त्रधारी ने कहा, 'चिल्लाना मत। तुम जैसी सुन्दरी के मुँह से चीख अच्छी नही लगती।'

जिस व्यक्ति ने अचानक विमला को इतना डराया, उसका पहनावा पठान सैनिक का था। वेषभूषा की तडक-झडक और चमक देख कर सहज ही जाना जा सकता था कि यह व्यक्ति कोई बडा अधिकारी है। उम्र भी तीस से ज्यादा न थी। कान्ति भी श्रीयुक्त थी। उसके चमकदार माथे पर जो टोपी थी उसमे एक बहुमूल्य होरा लगा था। यदि विमला के मन मे इस समय स्थिरता रहती तो वह देख सकती कि जगतसिह की तुलना में यह व्यक्ति बहुत हेठा नही है। जगतसिंह की तरह यह बहुत ऊँचा और चौडी छाती वाला तो नही पर देहराशि वैसी ही कातिपूर्ण और सुकुमार है। उसके कीमती कमरबन्द मे, रत्नजडित खोल मे छुरो थी और हाथ मे नगी तलवार थी। और कोई दूसरा हथियार नही दिख रहा था। वह बोला, 'देखो, चिल्लाना मत, चिल्लाओगी तो तुम्हारे लिए मुसीबत आ सकती है।'

तेज बुद्धि वाली विमला थोडी देर तो विह्वल रही, शस्त्रधारी के कहने से उसका मतलब समझ गई। विमला के पीछे ही छत का छोर था और सामने यह सशस्त्र योद्धा। छत से विमला को पल भर मे नीचे फेंक देना मुश्किल न था। यह स्थिति

समझ कर बुद्धिमती विमला ने संयत होते हुए पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मेरा परिचय जान कर तुम क्या करोगी ?'

'तुम इस किले के भीतर क्यो आये हो ? चोरो को शूली पर चढा दिया जाता है। क्या तुमने नही सुना ?'

'सुन्दरी मै चोर नही हूँ।'

'तो तुम किले मे कैसे आये ?'

'तुम्हारी ही मेहरबानी से आया हूँ। तुमने चोर-दरवाजा खुला छोड दिया था, उसी से आया हूं। तुम्हारे ही पीछे-पीछे इस छत पर भी आया हूँ।'

विमला ने मन ही मन सिर पीट लिया। फिर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'तुम्हे बताने मे भी कोई नुकसान नही। मै पठान हूँ।'

'यह तो पूरा परिचय नही हुआ। माना कि जाति के पठान हो पर तुम हो कौन ?'

'खुदा के फज्ल से मेरा नाम है ओसमान खॉ।'

'ओसमान खाँ कौन है, मै नही जानती।'

'ओसमान खाँ, कतलू खाँ का सेनापति है।'

विमला की देह काँपने लगी। इच्छा हुई कि किसी तरह भाग कर वीरेन्द्र सिह को खबर करे लेकिन इसके लिए कोई उपाय न दिखा। सामने यह सेनापति रास्ता रोके खडा था। और कोई रास्ता न देख विमला ने सोचा कि इस समय सेनापति को बातचीत मे जितनी देर भी लगा रख सके उतना ही अवकाश है। शायद तब तक किले का कोई पहरेदार ही इधर आ जाय, अतएव फिर से बातचीत शुरु की। बोली, 'आप इस किले के भीतर क्यो आये है ?'

'हमने विनयपूर्वक वीरेन्द्रसिंह के पास दूत भेजा था, लेकिन जवाब मे उन्होने कहलवाया कि हो सके तो सेना के साथ ही किले मे आना।'

'अच्छा, किले के मालिक ने आप का साथ न दे कर मुगलो का साथ दिया है, इसीलिए आप किले पर कब्जा करने आये है, लेकिन मै तो आप को अकेला ही देख रही हूँ।'

'हाँ, अभी तो मै अकेला ही हूँ।'

'लगता है, इसीलिए डर कर आप मुझे जाने नही दे रहे है।'

हँस कर ओसमाल खॉ ने कहा, 'सुन्दरी, तुम्हारे कटाक्ष के सिवा तुम्हारे पास डराने लायक और क्या है ? लेकिन मुझे इसका भी बहुत डर नही है। तुमसे एक भिक्षा है।'

विमला उत्तर न देकर कौतूहल से उसका मुँह ताकने लगी। तब ओसमान

खाँ ने कहा, 'तुम्हारी ओढनी मे जो चाभी बँधी है, वह मुझे दे दो। तुम्हे छू कर तुम्हारा अपमान करते मुझे संकोच हो रहा है।'

झरोखे की चाभी सेनापति के लिए कितनी आवश्यक है, यह समझते विमला जैसी चतुर स्त्री को देर न लगी। विमला ने देखा कि और कोई उपाय भी नही है। जो जबरदस्ती ले सकता है, उसका यो माँगना उपहास करना ही है। चाभी न देने से सेनापति अभी ही छीन सकता है। कोई दूसरी होती तो चाभी उसी क्षण फेंक देती परन्तु चालाक विमला ने कहा, 'अगर मैं खुशी से चाभी न दूँ तो आप किस तरह लेगे ?' कहते हुए विमला ने ओढनी उतार कर हाथ मे समेट ली।

ओसमान की आँखें ओढनी मे ही लगी थी। उसने कहा, 'सीधे से न दोगी तो तुम्हारी देह छूने का सुख पाऊँगा।'

'तो कीजिए।' कह कर विमला ने एक झटके से ओढनी को आम के बगीचे की ओर फेक दिया। ओसमान भी कम चतुर न था। विमला ने जैसे ही ओढनी फेकी कि ओसमान ने हाथ बढा कर उडती हुई ओढनी को पकड लिया।

ओढनी को हथिया कर ओसमान खॉ ने दूसरे हाथ से विमला का एक हाथ जकड कर पकड लिया फिर दॉतो से ओढनी दबा कर एक हाथ से चाभी खोल कर कमर मे खोस ली। फिर जो कुछ किया उससे विमला का मुँह सूख गया। विमला को बार-बार सलाम करके ओसमान खाँ ने हाथ जोड कर कहा, 'माफ कीजिएगा।' फिर ओढनी से विमला के दोनो हाथो को छत की छेददार दीवार से कस कर बाँध दिया। विमला बोली, 'यह क्या ?'

'प्रेम की फाँस है यह।'

'इस बुरे काम का आप को जल्दी ही फल मिलेगा।'

ओसमान विमला को उसी स्थिति मे छोड कर चला गया। विमला चिल्लाने लगी, पर कोई नतीजा न निकला। कोई सुन न पाया।

ओसमान पहले वाले रास्ते स उतर कर कमरे के नीचे वाले कमरे मे गया। वहाँ विमला की ही तरह झरोखे मे चाभी लगा कर उसे दीवार के भीतर कर दिया। रास्ता बन जाने पर ओसगान धीरे-धीरे सीटी बजाने लगा। जिसे सुन कर पेड की आड से एक योद्धा जूते उतार कर झरोखे के पास आया और भीतर चला गया। फिर एक दूसरा सैनिक आया, वह भी भीतर चला गया। इस तरह बहुत से पठान सैनिक चुपचाप किले के भीतर घुस गये। आखिर मे जो आदमी झरोखे के पास आया उससे ओसमान ने कहा, 'अब जरूरत नही है। तुमलोग बाहर ही रहो। पहले बताया हुआ, इशारा मिलने पर तुम लोग बाहर से किले पर हमला करना। यह बात तुम ताज खाँ से भी कह देना।

वह आदमी लौट गया।

ओसमान खाँ, भीतर गए सैनिको को लेकर फिर धीरे-धीरे पैर रखते हुए भीतर-

गया। जिस छत पर विमला बँधी थी उसके पास से जाते हुए कहा, 'यह औरत निहायत चालाक है। इसकी किसी बात पर विश्वास मत करना। शेख रहीम, तुम इसके पहरे पर रहो। अगर भागने की या किसी से बातचीत करने की कोशिश करे या चिल्लाए तो इसे जान से खतम करने मे मत हिचकना।'

'जो हुक्म।' कह कर रहोम वही पहरे पर डट गया।

छत पर से होकर पठान सैनिक दूसरी ओर चले गये।

|१९|

कटाक्ष

जब विमला ने देखा कि ओसमान खाँ दूसरी ओर दूर चला गया तो उसे आशा बँधी कि अब प्रयत्न करने से छुटकारा मिल सकता है। वह छुटकारे का उपाय सोचने लगी।

पहरे वाला थोडी दूरी पर चुपचाप खडा रहा। तब विमला ने ही उससे बातें शुरू की। पहरेदार हो या यमदूत, सुन्दरी रमणी से कौन इच्छापूर्वक बाते नही करता ? विमला ने पहले तो इधर-उधर की ऐसी-वैसी मालूली बातें शुरू की। धीरे-धीरे उसने पहरेदार से उसका नाम-धाम, घर का काम, सुख-दुख सब कुछ पूछ कर जान लिया। अपने बारे में विमला की इतनी दिलचस्पी देख कर पहरेदार मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। अब शिकार को सधता और रास्ते पर आता देख कर विमला ने अपने संग्रह से एक-एक करके हथियार निकालना शुरू किया। एक तो विमला की अमृत-पगी रसीली बातचीत , साथ ही उसकी बडी-बडी आँखो की तेज धार वाली कटाक्ष, पहरेदार जल्दी ही बिल्कुल बेक़ाबू हो गया। जब विमला को पहरेदार के हाव-भाव से मालूम हो गया कि वह आप समर्पण के लिए तैयार है तब उसने अत्यन्त मीठे स्वर मे कहा, 'मुझे जाने क्यो बडा डर लग रहा है। शेख जी, तुम मेरे पास आकर बैठो।'

पहरेदार कृतार्थ होता हुआ आकर विमला के पास बैठ गया। फिर थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करके विमला ने देखा कि दवा का असर बढ रहा है, क्योकि उसके निकट बैठने के समय से पहरेदार बार-बार उसकी तरफ देख रहा था, तब विमला बोली, 'शेखजी, तुम तो बहुत गरमाये हुए हो। तुम्हे तो पसीना आ रहा है। अगर मेरे हाथ खुले होते तो मै तुम्हे पंखा झल देती। चाहो तो हाथ खोल दो। फिर बाँध देना।'

शेख रहीम के माथे पर पसीने की एक बूँद भी नही थी, लेकिन विमला भी

बिना पसीना देखे क्यो कहेगी, यही सोच कर कि इन हाथो की हवा फिर कभी क्या नसीब होगी, उसने चटपट विमला को बंधन-मुक्त कर दिया।

थोडी देर तक अपनी ओढनी से पहरेदार को हवा करके विमला ने ओढनी ओढ ली। उसे फिर से बाँधने का नाम लेने को पहरेदार का मुँह नहीं खुला। इसका भी एक विशेष कारण था। जब ओढनी का बन्धन नही रहा और विमला ने ओढनी, ओढ ली तब उसका लावण्य और भी चमक उठा। जिस लावण्य को दर्पण मे देख कर विमला अपने आप हँसी थी, वही लावण्य इतने निकट देख कर पहरेदार भी स्तब्ध था।

विमला ने कटाक्ष करके पूछा, 'शेखजी! क्या तुम्हारी बीबी तुमसे मोहब्बत नही करती ?'

शेख ने घबरा कर पूछा, 'क्यो ?'

'अगर वह मोहब्बत करती होती तो इस बसन्त के मौसम मे (यद्यपि तब घोर गरमी थी और बरसात सिर पर थी) किस लालच से तुम्हारे जैसे मियाँ को छोडती ?'

शेख ने एक लम्बी साँस छोडी।

अब विमला के तरकस से एक के बाद एक तीर निकलने लगे।

'शेख जी, कहते हुए तो लाज लगती है, लेकिन अगर तुम मेरे मियाँ होते तो मै तुम्हे किसी कीमत पर भी लडाई मे न आने देती।'

शेख ने फिर लम्बी साँस छोडी।

विमला कहती गई, 'अहा! काश, तुम मेरे मियाँ होते।'

यह कह कर विमला ने भी एक नि श्वास छोडी। साथ ही साथ अपनी शक्ति भर एक तीक्ष्ण और कुटिल कटाक्ष भी छोडा। जिसे देख कर शेख जी का सिर चक्कर खाने लगा। धीरे-धीरे खिसक कर वह विमला के और पास आ बैठा। विमला भी उसकी ओर कुछ और खिसक गई।

पहरेदार शेख जी के खुरदुरे हाथ पर विमला ने अपना पत्ते जैसा कोमल हाथ रखा। पहरेदार की बाछे खिल गईं।

विमला बोली, 'कहते लाज आती है, पर अगर तुम लडाई जीत कर जाओ तो क्या मुझे याद रखोगे ?'

'भला तुम्हे याद नही रखूँगा ?'

'तो मन की एक बात तुमसे कहूँ ?'

'कहो न!'

'नही, नही कहूँगी। तुम जाने क्या सोचो!'

'नही, नही! कहो, कहो। मुझे अपना गुलाम समझो!'

'मेरी बडी इच्छा हो रही है कि अपने पापी पति के मुँह मे कालिख लगा कर तुम्हारे साथ चली जाऊँ।'

फिर वही कुटिल कटाक्ष। और शेख जी आनन्द से झूम उठे। पूछा, 'चलोगी ?'

'ले चलो तो जरूर चली चलूँगी।'

'नही, तुम्हे नही ले चलूँगा। बल्कि तुम्हारा गुलाम बन कर यही रहूँगा।'

'तुम्हारी इस मोहब्बत का क्या इनाम दूँ ? यही इस समय ले लो।' कह कर विमला ने गले का सुनहरा हार उतार कर पहरेदार के गले मे डाल दिया। लगा कि शेखजी सशरीर स्वर्ग पहुँच गये। विमला बोली, 'हमारे शास्त्रो मे लिखा है कि एक के गले की माला जब दूसरे के गले मे पडती है तब दोनो मे ब्याह हो जाता है।'

शेख इस तरह हँस पडा कि उसकी काली दाढी के अँधेरे के भीतर से सफ़ेद दाँत निकल पडे। अतिप्रसन्न होकर बोला, 'तब तो तुमसे मेरी शादी हो गई, समझो।'

'हाँ, हो तो गई ही।' कह कर विमला कुछ सोचने लगी।

शेख ने पूछा, 'क्या सोच रही हो ?'

'सोच रही हूँ कि शायद मेरे नसीब मे सुख नही है। तुम लोग किला जीत कर वापस जा नही सकोगे।'

'क्या हमारी जीत मे तुम्हे शक है ? अब तक हमारा कब्जा हो चुका होगा।'

'नही, इसमे एक छिपी बात है।'

'वह क्या ?'

'तुमसे यह बात बता देती हूँ। तुम शायद किसी तरह बच जाओ।'

पहरेदार मुँह खोल कर सुनने लगा। विमला कहने मे संकोच करने लगी। पहरेदार ने उतावली दिखा कर पूछा, 'बोलो, मामला क्या है ?'

'तुम लोग नही जानते। इस किले के पास ही जगतसिंह दस हजार सेना लिए बैठा है। यह जान कर कि तुम लोग आज छिप कर आओगे, वह पहले से ही आकर बैठ गया है। अभी कुछ नही बोलेगा, पर जब तुम लोग जीत कर निश्चिन्त होगे तब घेरा डालेगा।'

सुन कर पहरेदार हक्का-बक्का-सा रह गया। फिर बोला, 'यह क्या ?'

'इस बात को यहाँ किले मे सभी जानते है। हमे भी मालूम है।'

खूब प्रसन्न हो कर पहरेदार बोला, 'मेरी जान ! आज तुमने मुझे बहुत बडा आदमी बना दिया। मै अभी जाकर यह खबर सेनापति को दे आऊँ। ऐसी बडी खबर देने के लिए खिताब पाऊँगा। तुम यही बैठो, मै जल्द आता हूँ।'

पहरेदार के मन मे विमला की ओर से रत्ती भर भी सदेह न था।

विमला ने ठुनक कर पूछा, 'तो आ जाओगे न ?'

'वाह, आऊँगा क्यो नही ? बस अभी आया।'

'मुझे भूलोगे तो नही ?'

'हरगिज नही।'

'देखो, तुम्हे मेरे सिर की कसम है।'

'तुम सब्र तो रखो।' कह कर पहारेदार तेजी से भागा।

पहरेदार ज्यो ही आँखो से ओझल हुआ कि विमला भी उठ कर भागी। ओसमान् खाँ की बात ही सही निकली—'विमला के कटाक्ष से ही डर है।'

|२०|

कमरों की लूट

छुटकारा पाकर विमला ने सबसे पहले वीरेन्द्रसिंह को खबर देना चाहा। वह भागती हुई वीरेन्द्रसिंह के कमरे की ओर गई।

आधी दूर जाते न जाते पठान सेना की चिल्लाहट उसके कानो मे पडी—'अल्ला —ल्ला—हो।'

सुन कर विमला व्याकुल हो उठी। यह क्या पठानो की सेना की जयध्वनि है ? फिर उसे असीम कोलाहल सुनाई पडने लगा। विमला समझी कि किले के लोग जाग गये है।

विमला ने उसी उतावलेपन से वीरेन्द्रसिंह के कमरे मे जाकर देखा कि वहाँ तो भयानक कोलाहल है। पठान सेना दरवाजा तोड कर कमरे मे घुस गई है। विमला ने झाँक कर देखा—वीरेन्द्रसिंह की मुट्ठी बँधी हुई है, हाथ में नगी तलवार है। शरीर से खून की धाराएँ बह रही हैं। वे उन्मत्त की तरह तलवार घुमा रहे हैं। उनका युद्ध-कौशल विफल हो गया। एक बलवान पठान की बडी तलवार से टकरा कर उनकी तल-वार हाथ से छूट कर दूर जा गिरी। वीरेन्द्रसिंह बन्दी कर लिए गए।

यह सब देख कर, हताश हो विमला वहाँ से भागी। अभी भी तिलोत्तमा को बचाने का समय है। विमला उसके पास दौड कर भागी। रास्ते मे देखा कि तिलोत्तमा के कमरे तक पहुँचना कठिन है। सभी ओर पठान सेना फैल गई है। पठानो ने किले पर कब्जा कर लिया है, इसमे शक नही है।

विमला ने देखा कि तिलोत्तमा के कमरे तक जाने के माने है कि पठानो के हाथो मे पडना, अत वह लौट पडी। वह व्याकुल होकर सोचने लगी कि किस तरह जगतसिंह और तिलोत्तमा को इस संकट के समय खबर दे। विमला एक कमरे मे खडी यही सोचती रही। इसी समय कुछ सैनिको को एक कमरा लूट कर इसी ओर आते देखा। घबराहट मे विमला उसी कमरे मे एक बडी संदूक की बगल मे जा छिपी। सैनिक आकर उसी कमरे की चीजें लूटने मे व्यस्त हो गये। विमला समझ गई कि अब

बचना संभव नही है। लुटेरे जब उस सदूक को खोलने आयेंगे तब उसे जरूर पकड लेंगे। फिर भी विमला ने हिम्मत करके थोडी देर प्रतीक्षा की। वह सदूक के बगल से झाँक कर देखने लगी कि अब लुटेरे क्या कर रहे है। विमला मे साहस की कमी नही। फिर विपत्ति मे साहस और बढा। जब उसने देखा कि सैनिक अंधे हो कर लूटने मे ही व्यस्त है तब वह चुपचाप वहाँ से उठ कर भागी। सैनिक लूट मे लगे थे। उसे किसी ने न देखा। विमला ने घूम कर देखा—वही शेख रहीम था। उसने कहा, 'क्यो री भगोडी ? अब कहाँ भाग कर जायेगी ?'

दूसरी बार शेख के हाथो पडने से विमला का चेहरा एकाएक सूख गया, परन्तु मात्र क्षण भर के ही लिए। उसकी बुद्धि ने काम किया, वह प्रसन्न हो कर बोली, 'चुप रहो। आहिस्ता-आहिस्ता बाहर आओ।' अब शेख रहीम का हाथ खीच कर उसे विमला बाहर ले गई। रहीम भी खिंचा चला गया। उसे एक ओर निर्जन मे ले जाकर बोली, 'छि छि ! तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद न थी ! मुझे अकेली छोड कर कहाँ चले गये थे ? तुम्हे मैने न जाने कहाँ-कहाँ खोजा।'

कह कर विमला ने शेख रहीम पर फिर कटाक्ष का वार किया।

शेखजी का गुस्सा जाने कहाँ उड गया। बोला, 'मै जगतसिंह वाली खबर देने के लिए सेनापति को खोजता फिरा। पर उसे कही भी न पाकर तुम्हारे पास लौट आया। फिर तुम्हे छत पर न पाकर इधर-उधर खोजता भागा।'

'तुम्हारे लौटने मे देर हुई तो मैने सोचा कि शायद तुम मुझे भूल गये। इसी-लिये तुम्हे खोजने आई थी। अब देरी करने का क्या मतलब है ? किले पर तुम लोगो का कब्जा हो ही गया है। अब चलो भागने का रास्ता खोजें।'

रहीम बोला, 'आज नही, कल सुबह। मै बिना कहे, कैसे जा सकता हूँ ? कल सबेरे सेनापति से छुट्टी ले कर तब चलूँगा।'

विमला बोली, 'तो चलो, मै अपने गहने ले कर इसी समय रख लूँ, नही तो कोई दूसरा सिपाही लूट लेगा।'

'चलो।'

'रहीम को साथ ले चलने का अर्थ था कि वह दूसरे सिपाहियो से उसे बचा लेगा। विमला की शंका सच निकली। थोडी दूर जाते न जाते वे लोग एक दूसरे लूटने मे व्यस्त सिपाही-दल के सामने पडे।

विमला को देखते ही सभी एकबारगी कोलाहल कर उठे, 'अरे वाह, बडा प्यारा शिकार मिला है।'

तब रहीम ने डाँटा, 'अपना-अपना काम करो। इधर नजर मत डालो।'

सैनिक कुछ मतलब समझ कर चुप हो गये। एक बोला, 'रहीम, तेरी ही किस्मत अच्छी है। कही नवाब साहब तेरा माल हडप न बैठें !'

रहीम और विमला आगे बढ गये। विमला रहीम को अपने कमरे के नीचे वाले कमरे मे ले जाकर बोली, 'यह मेरा नीचे वाला कमरा है। यहाँ को जो चीजें ले चलना चाहो, उन्हे इकट्ठा करो। इसके ऊपर मेरा लेटने का कमरा है। मै वहाँ से गहने ले कर अभी आती हूँ।' यह कह कर उसने रहीम को तालियो का एक गुच्छा पकडा दिया।

कमरे मे खूब सारा सामान देख कर रहीम खुश हो सदूक-पिटारे खोलने व देखने लगा। तालियो का गुच्छा पाकर विमला पर उसे रत्ती भर भी सदेह न रहा। कमरे से बाहर आ कर विमला ने बाहर मे जजीर चढा दी और ताला लगा दिया। अब रहीम कमरे मे कैद हो गया।

विमला तब जल्दी-जल्दी ऊपर वाले कमरे मे गई। विमला व तिलोत्तमा के कमरे किले के एक किनारे थे। वहाँ अभी तक अत्याचारी सेना नही पहुँची थी। तिलोत्तमा व जगतसिह कोलाहल भी सुन पाये या नही, कहा नही जा सकता।

विमला अक्समात तिलोत्तमा के कमरे मे जाकर कौतूहल से दरवाजे पर बने छोटे से छेद से चुपचाप तिलोत्तमा व युवराज के भाव देखने लगी। अपना-अपना स्वभाव ही तो है। इस समय विमला के मन मे कौतूहल जाग गया था। लेकिन कमरे मे उसने जो कुछ देखा, देख कर विस्मित हुई।

तिलोत्तमा पलंग पर बैठी थी, जगतसिह पास ही खडे होकर उसका चेहरा निहार रहे थे। तिलोत्तमा रो रही थी। जगतसिह भी आँखे पोछ रहे थे।

विमला ने सोचा कि यह शायद विदाई के समय के विछोह वाले आँसू है।

|२१|

तहस-नहस

विमला को देख कर जगतसिह ने पूछा, 'यह कैसा शोर हो रहा है ?'

'पठानो की जय-ध्वनि है। जल्दी कुछ उपाय सोचिये। क्षण भर बाद शत्रु इस कमरे मे भी आ जायेंगे।'

जगतसिह ने पूछा, 'वीरेन्द्रसिह क्या कह रहे है ?'

'उनको शत्रु ने बन्दी कर लिया है।'

सुनते ही तिलोत्तमा के मुँह से एक चीख निकली और वह मूर्छित होकर पलंग पर गिर पडी।

जगतसिंह का भी मुँह सूख गया। वह विमला से बोले, 'देखो, देखो, तिलोत्तमा को सम्हालो।'

झटपट गुलाबपाश से गुलाबजल निकाल कर विमला ने तिलोत्तमा के चेहरे पर छींटे मारे और कातर भाव से हवा करने लगी। शत्रुओं का कोलाहल और निकट आ गया। विमला ने लगभग रोते हुए कहा, 'वे आ रहे है। युवराज, अब क्या होगा ?'

जगतसिंह की आँखो से चिनगारियाँ बरसने लगी। बोला, 'मै अकेला क्या कर सकता हूँ ? पर मै तुम्हारी सखी की रक्षा मे अपनी जान दे दूँगा।'

शत्रुओ का उन्मत्त शोर और पास आ गया। हथियारो की झनकार भी सुन पडने लगी। विमला चीख कर बोली, 'तिलोत्तमा, इस समय तुम क्यो बेहोश हो गईं ? अब किस तरह तुम्हारी रक्षा की जाय ?'

तिलोत्तमा ने आँखे खोली। विमला बोली, 'तिलोत्तमा को होश आ रहा है ? युवराज ! युवराज ! अब भी तिलोत्तमा को बचाइये।'

जगतसिंह ने कहा, 'इस कमरे के भीतर रहने से भला कोई कैसे बचा सकता है ? इस समय भी अगर कमरे से बाहर निकल सकती तो मै तुम लोगो को किले के बाहर, शायद अवश्य ही ले जा सकता। लेकिन तिलोत्तमा मे तो चलने की शक्ति भी नही है। विमला, पठान लोग अब जीने पर चढ रहे है। मे तो अपनी जान दे ही दूँगा पर पछतावा यही है कि जान दे कर भी तुम लोगो को बचा न सकूँगा।'

क्षण भर मे तिलोत्तमा को गोद मे उठा कर विमला ने कहा, 'तो चलिये, मै तिलोत्तमा को लेकर चल रही हूँ।'

विमला और जगतसिंह कमरे के दरवाजे पर आये। उसी समय चार पठान सैनिक लपक कर कमरे के दरवाजे पर आ गये। जगतसिंह ने कहा, 'विमला अब क्या हो सकता है ! पर तुम मेरे पीछे पीछे आओ।'

सामने शिकार देख कर पठान 'अल्ला—ल्ला—हो' चिल्लात हुए यमदूत की तरह उछलने लगे। कमर की तलवार झनझनाने लगी। उस शोर के खतम होने के पहले ही जगतसिंह की तलवार एक पठान के कलेजे मे मूँठ तक धँस गई। गहरी चीख के साथ पठान की जान निकल गई। उसके कलेजे से तलवार निकालने के पहले ही एक दूसरे पठान के भाले की नोक जगतसिंह के गले तक जा पहुँची। भाला लगे-लगे कि बिजली की तरह हाथ घुमा कर जगतसिंह ने भाला पकड लिया और झटके से खीच कर उसी भाले से भाला चलाने वाले को मार गिराया। बाकी दो पठानो ने पलक मारते जगतसिंह के सिर पर एक साथ तलवारो के वार किए। जगतसिंह भी पल भर का भी मौका न दे कर दाये हाथ की तलवार की वार से एक ही बार मे एक की तलवार के साथ उसकी बाँह काट कर गिरा दी। लेकिन दूसरे के वार को वे नही

रोक सके। वार सिर पर तो बैठा पर कंधे पर गहरी चोट आई। चोट खा कर युवराज भी घायल शेर की तरह दूने शक्तिशाली हो उठे। पठान के दूसरी बार वार करने के पहले ही युवराज ने दोनो हाथो की मुट्ठी बाँध कर, उछल कर आक्रमणकारी पठान के सिर पर तलवार का ऐसा भरपूर वार किया कि टोपी के साथ पठान का सिर दो टुकडे हो गया। लेकिन ठीक इसी समय उस सैनिक ने जिसका हाथ कट गया था; बायें हाथ से कमर से तेज छुरी निकाल कर जगतसिंह पर झपटा। जगतसिंह का उछलने से उठा शरीर जमीन पर आ रहा था कि छुरी उनकी बाँह मे गहरी चुभ गई। उस चोट को सूई चुभने जैसी समझ कर युवराज ने पठान की कमर मे जोरो से लात मारी। पठान दूर जा गिरा। जगतसिंह दौड कर उसका सिर काटने जा ही रहे थे कि 'अल्ला—ल्ला—हो' के शोर के साथ अनगिनत पठान कमरे मे आ गये। अब जगतसिंह समझ गए कि लडना केवल मृत्यु के लिए ही है।

राजकुमार जगतसिंह खून से लथपथ हो रहे थे। काफी खून बह जाने से उनकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी। तिलोत्तमा अभी तक बेहोशी की दशा मे विमला की गोद मे ही थी। विमला तिलोत्तमा को सम्हाले हुए रो रही थी। उसकी धोती भी जगतसिंह के खून के फौवारे से गीली हो रही थी।

पठान सैनिको से कमरा भर गया।

जगतसिंह ने तलवार के सहारे खडे होकर साँस ली।

तब एक पठान चिल्लाया, 'अरे गुलाम! हथियार डाल दे। तुझे हम जान से नही मारेंगे।'

मंद पडती आग मे जैसे किसी ने घी उँडेल दिया हो। अग्निशिखा की तरह लपक कर राजकुमार ने एक ही वार में बोलने वाले पठान का सिर घड से अलग कर के पैरो के नीचे डाला और तलवार घुमाते हुए ललकार कर कहा, 'यवन! देख ले, राजपूत किस तरह जान देते है।'

राजकुमार जगतसिंह की तलवार बिजली की तरह कौंधने लगी। उन्होने देखा कि अब अकेले युद्ध नही किया जा सकता। फिर भी जहाँ तक हो सके, शत्रुओ का संहार करना उनका उद्देश्य था ही। वे दोनो हाथो से तलवार चलाने लगे। उन्हे आत्मरक्षा का तनिक भी ध्यान न रहा। बस वे वार पर वार करते गये। एक-दो-तीन-पाँच, हर वार पर या तो कोई पठान धराशायी होता या उसके अग कटते। राजकुमार के शरीर पर चारो ओर से अस्त्र पडने लगे। लगा, अब हाथ नही चलता। शरीर से रक्त भी तेजी से बहने लगा। बाहे थकने लगी। सिर चकराने लगा। आँखो के आगे अंधेरा छाने लगा। कानो में मात्र कोलाहल सुनाई पडता।

तभी सुनाई पडा—'राजकुमार को कोई जान से मत मारना। जीते—जागते बाघ को पिंजड़े मे बन्द करना है।' यह बात ओसमान खाँ ने कही थी।

जगतसिंह की बाँहे शिथिल हो कर लम्बी हो गईं। शक्तिहीन मुट्ठियो से

छूट कर तलवार झनझना कर गिर पडी। अचेत होकर जगतसिह, मारे गए एक पठान के शव पर गिर पडे। बीस पठान एक साथ जगतसिंह की पगडी मे लगे रत्नो को निकालने के लिए दौड पडे। तभी ओसमान ने बज्र गम्भीर स्वर से वहा, 'खबरदार राजकुमार को कोई छूना मत।'

सभी रुक गये। ओसमान खाँ ने एक अन्य पठान सैनिक की सहायता से राजकुमार को उठा ला कर पलंग पर लिटाया। जगतसिंह ने कुछ देर पहले यह कल्पना की थी कि तिलोत्तमा से विवाह कर के एक दिन उसी पलंग पर तिलोत्तमा के साथ विराजेगे—वही पलंग अब उनके लिए मृत्युशैय्या बन गई।

जगतसिंह को लिटा कर ओसमान खाँ ने सैनिक से पूछा, 'औरतें कहाँ है ?'

ओसमान खाँ ने विमला और तिलोत्तमा को नही देखा। जब दूसरी बार सेना धडधडाती हुई कमरे मे घुसी तभी विमला की समझ मे भविष्य आ गया था। दूसरा कोई उपाय न देख कर वह तिलोत्तमा को लेकर पलंग के नीचे छिप गई थी। यह किसी ने देखा न था। उन्हे वहाँ न देख कर ओसमान खाँ ने पूछा, 'औरतें कहाँ है ? तुम लोग उन्हे किले मे खोजो। वह बाँदी बडी होशियार है। वह अगर भाग जाएगी तो मेरा मन शात न होगा, लेकिन होशियार रहना, बीरेन्द्रसिंह की लडकी पर कोई जोर-जुल्म न हो।'

छोटी-छोटी टुकडियो मे बँट कर सैनिक किले के दूसरे हिस्सो मे खोजने गये। दो एक जन कमरे के भीतर ही खोजने लगे। एक ने दूसरी तरफ देखने के बाद दिया ले कर पलग के नीचे निगाह दौडाई। जिसकी तलाश हो रही थी, देख कर कहा, 'यही है।'

ओसमान खॉ का चेहरा खुशी से खिल उठा। कहा, 'तुम लोग बाहर आओ, घबराओ मत।'

पहले विमला पलग के नीचे से बाहर आई, फिर तिलोत्तमा को बाहर निकाल कर बैठाया। तिलोत्तमा को अब होश आने लगा था। वह बैठ सकी। धीरे-धीरे विमला से पूछा, 'हम कहाँ है ?'

विमला ने कान मे कहा, 'घबराओ मत। कोई चिन्ता नही है। घूँघट काढ कर बैठो।'

जिस सैनिक ने औरतो को खोज कर निकाला था, उसने ओसमान खॉ से कहा, 'जनाब, इस गुलाम ने इन्हे खोज कर बाहर निकाला है।'

ओसमान खॉ ने कहा, 'क्या तुम इनाम चाहते हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?'

'गुलाम का नाम तो है करीमबख्श पर कहने पर कोई पहचानता नही। पहले मै मुगलो की फौज मे था, इसलिए सभी मजाक मे मुझे मुगल-सेनापति कहते है।'

सुन कर विमला काँप उठी। अभिराम स्वामी की ज्योतिषगणना उसे याद आई।

ओसमान खाँ ने कहा, 'अच्छा, ठीक है, याद रहेगा।'

दूसरा भाग

|१|

आयशा

जगतसिंह की जब आँखे खुली तब उन्होने देखा कि वे एक सुसज्जित कमरे मे एक बडी पलग पर लेटे हुए है। कमरा किसी तरह भी पहचाना नही लग रहा था, न ऐसा ही याद पडता था कि वहाँ पहले कभी आये हो। कमरा खूब लम्बा-चौडा और सजा हुआ था। फर्श पर रगीन पत्थर जडे थे। कीमती गलीचे बिछे हुए, ऊपर गुलाब-पाश आदि सोने व चाँदी और हाथी दाँत की कीमती चीजे रखी हुई थी। कमरे के दरवाजो और खिडकियो पर नीले परदे पडे थे, अत दिन की रोशनी भी बहुत मद्धिम होकर कमरे मे आती थी। कमरे मे चित्त प्रसन्न करने वाली तरह-तरह की सुबास थी।

कमरे मे घोर सन्नाटा, जैसे आस-पास भी कोई आदमी न हो। एक सेविका एक सुसज्जित व सुवासित पखा लिए झल रही थी। एक और सेविका कुछ दूर पर चुपचाप मूर्ती की तरह खडी थी। हाथी दाँत के जिस पलग पर राजकुमार लेटे थे, उसी पर बैठी एक स्त्री उनके घावो पर सावधानी से कोई लेप लगा रही थी। फर्श के गलीचे पर बढिया पोशाक पहने बैठा एक पठान पान चबा रहा था और फारसी की एक किताब पढ रहा था। कोई भी बोलता न था, न कही से कोई आवाज ही आ रही थी।

राजकुमार ने आँखें खोल कर कमरे मे चारो ओर देखा। करवट बदलने की कोशिश की, लेकिन वे हिल भी न सके। सारे बदन मे भयानक पीडा थी।

जो स्त्री पलंग पर बैठी लेप लगा रही थी, उसने राजकुमार की चेष्टा देख कर कहा, 'शात रहिए। हिलिए डुलिए मत।'

राजकुमार ने धीरे से पूछा, 'मै कहाँ हूँ ?'

'हिलिये नही, बोलिए भी मत। आप अच्छी जगह है।'

'क्या समय हुआ है ?'

'दिन का पिछला पहर है। आप शात रहे, बातचीत करेगे तो अच्छे होने में बाधा होगी। और अगर आप चुप न होगे तो हम यहाँ से चले जायेंगे।'

तब जगतसिंह ने उस रमणी से पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'आयशा।'

राजकुमार चुपचाप आयशा को देखने लगे। क्या इसे पहले भी और कही देखा है ? नही, और तो कही नही देखा।

आयशा की आयु होगी कोई बाइस वर्ष। देखने मे अतीव सुन्दरी। यो तो तिलोत्तमा भी परम सुन्दरी है, पर आयशा का सौदर्य वैसा नही। स्थिर यौवना विमला का सौदर्य भी इस समय तक आकर्षक था, लेकिन आयशा का रूप वैसा भी नही। किसी-किसी तरुणी का रूप बासन्ती मल्लिका की तरह जब विकसित होता है, कोमल, निर्मल और परिमलमय। तिलोत्तमा का रूप ऐसा ही है। किसी किसी रमणी का रूप दिन के पिछले पहर के कमल जैसा होता है—निर्वास, मुद्रितोन्मुख और शुष्क-पल्लव, फिर भी आकर्षक, अधिक विकसित, अधिक प्रभामय और मधु से परिपूर्ण। विमला वैसी ही सुन्दरी रमणी है। आयशा का रूप सबेरे के कमल जैसा, विकसित, रसपूर्ण, न सकुचित न शुष्क, कोमल व उज्ज्वल, ओठो से हँसी फूटी पडती है। रूप का उजाला उसमे था। लेकिन रूप का उजाला भी कई प्रकार का होता है। विमला के रूप मे भी उजाला है, टिमटिमाता हुआ, तेल चाहिए, नही तो नही जलेगा। घर का सब काम चलता है पर छूने पर जलना पडता है। तिलोत्तमा भी रूप से उजाला करती है, वह नए चाँद की किरणो की तरह सुविमल, मधुर, शीतल है। पर उससे घर का काम नही चलता, उतना प्रखर नही है। आयशा के रूप मे भी उजाला है, लेकिन वह सवेरे की सूर्य रश्मि की तरह, दीप्त और हँसी की प्रफुल्लता से परिपूर्ण।

आयशा यहाँ वैसी ही है जैसे बगीचे मे कमल। रग न चपई, न लाल, न सफेद। भरा हुआ ललाट, बकिम केश, कानो पर बालो की गोल गोल लटें, बालो के बीच महीन रेखा सी माँग। घनी भौहे, आपस मे मिलती सी, चचल आँखें, लम्बी नासिका, रसभरे ओठ, लम्बी ग्रीवा, भरे हुए कधे, स्थूल बाँहे, भरा-उभरा वक्ष।

जगतसिंह आयशा की ओर देर तक निहारते रहे। उन्हे तिलोत्तमा की याद आ गई। याद आते ही मन मे काँटे चुभने लगे। नसो मे रक्त-प्रवाह तेज हो गया। गहरे घाव से फिर खून की धारा फूट पडी। राजकुमार ने फिर अचेत होते हुए आँखे मूँद ली।

यह देख कर उसी पल पलग पर बैठी सुन्दरी आयशा घबरा कर उठ खडी हुई। जो आदमी फर्श पर बैठा किताब पढ रहा था वह रह-रह कर आँखे उठा कर सरस दृष्टि से आयशा को देख रहा था। जब वह पलंग से उठी, तब भी पठान उसे मत्र-मुग्ध हो कर देखता रह गया। आयशा ने उठ कर धीरे से पठान के पास जा कर उसके कान मे कहा, 'ओसमान, जल्दी से हकीम के पास आदमी भेजो।'

गढ मन्दारन का किला जीतने वाला आसमान खाँ ही फर्श पर बैठा था। आयशा की बात सुन कर उठ कर चला गया।

चाँदी की तिपाई पर जो बर्तन रखा था, उससे पानी जैसा कोई पदार्थ लेकर आयशा फिर राजकुमार के चेहरे पर छींटे मारने लगी।

ओसमान खाँ जल्दी ही हकीम को साथ ले कर लौटा। हकीम ने बडे यत्न से खून का बहना रोका और कई तरह की दवाइयाँ आयशा को दे कर उसके सेवन की व्यवस्था बता दी।

आयशा ने कान मे पूछा, 'कैसी हालत है ?'

'बुखार बहुत तेज है।'

ओसमान ने हकीम के साथ दरवाजे तक जा कर पूछा, 'बच जायगा तो ?'

'मालूम तो नही देता। पर फिर दर्द बढे तो मुझे बुलाइएगा।'

|२|

पत्थर का दिल

उस रात बहुत देर तक ओसमान खाँ और आयशा जगतसिंह के पास बैठे रहे। जगतसिंह को कभी होश आता, कभी वे अचेत हो जाते। हकीम भी कई बार आ-आकर देख गये। आयशा लगातार कुमार की सेवा मे लगी रही। जब रात का दूसरा पहर हुआ तब एक बाँदी ने आकर आयशा से कहा, 'आप को बेगम याद कर रही है।'

'चलती हूँ।' कह कर आयशा उठी। ओसमान भी उठा। आयशा ने पूछा, 'तुम भी चले।'

'हाँ, रात हो गई है। चलो तुम्हे पहुँचा आऊँ।'

दास-दासियो को सावधानी से रहने का आदेश देकर आयशा मातृगृह की ओर चली। रास्ते मे ओसमान ने पूछा, 'क्या तुम आज बेगम के पास ही रहोगी ?'

'नही, मैं अभी फिर राजकुमार के पास लौट आऊँगी।'

'आयशा, तुम्हारे गुणो की कोई हद नही। तुम इस परम शत्रु की जैसी सेवा कर रही हो, उतनी तो कोई बहन अपने भाई के लिए भी नही करती। तुम तो उस पर अपनी जान निछावर किए दे रही हो।'

आयशा हल्के से मुस्करा उठी। बोली, 'ओसमान, मै तो स्वभावत भी स्त्री हूँ। बीमार की सेवा करना हमारा धर्म है। न करने मे पाप है। करने मे तारीफ नही है पर तुम्हारा क्या है ? जो तुम्हारा परम शत्रु है, रणक्षेत्र मे तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी है। तुमने

अपने हाथो जिसकी यह दशा की हो, उसे अच्छा करने का प्रयत्न कर रहे हो, इसलिए तुम्ही वास्तविक प्रशंसा के अधिकारी हो।'

ओसमान बोला, 'आयशा, तुम तो अपने मधुर व सुन्दर स्वभाव के अनुरूप ही सब को देखती हो। मेरा उद्देश्य इतना ऊँचा नही। क्या तुम यह नही समझती हो कि यदि जगतसिंह बच जाये तो कितना फायदा होगा ? राजकुमार यदि अभी मर जाए तो हमारा क्या लाभ होगा ? रणक्षेत्र मे मानसिह जगतसिंह से घट कर नही है। एक योद्धा के बदले दूसरा योद्धा आयेगा। लेकिन अगर जगतसिंह जिन्दा रह कर हमारे पास कैद रहे तो मानसिह को हम मुट्ठी मे कर सकेगे। अपने बेटे को छुड़वाने के लिए वह विवश हो कर हमारी शर्तो पर हमसे संधि करेगा। अकबर बादशाह भी ऐसे कुशल सेनापति को वापस पाने के लिए सन्धि का पक्ष लेगा। और अगर हम अपने अच्छे सुलूक से जगतसिह को अपना ले तो वह भी सन्धि के लिए कोशिश करेगा और उसकी कोशिश बेकार न जायेगी। और मान लो कि ऐसा कुछ भी नही होता तो जगतसिह के छुटकारे के लिए हमे एवज मे मानसिंह से बहुत धन मिलेगा। लड़ाई मे जीत हासिल करने से ज्यादा लाभदायक है कि जगतसिंह बच जाय।'

यही सब सोच-विचार कर ओसमान खॉ ने जगतसिंह की जान बचाने की कोशिश की थी। और भी एक बात थी। किसी-किसी का स्वभाव होता है कि आदमी को कही दयालु प्रकृति न कहा जाय, इस लज्जा की आशका के कारण वह कठोरता दिखाता है और दानशीलता को नारी-स्वभाव कह कर उपहास करते-करते परोपकार कर बैठता है। पूछने पर बड़े व गुप्त प्रयोजन की बात कहता है। आयशा जानती थी कि ओसमान खॉ ऐसे ही आदमियो मे है। उसने हँस कर कहा, 'ओसमान, अगर सभी लोग तुम्हारी तरह मतलब साधने मे पटु हो तो दूसरे धर्म की जरूरत नही रह जायेगी।'

कुछ देर इधर उधर, टालमटोल करके ओसमान खॉ ने मृदु स्वर मे कहा, 'हॉ मै बड़ा स्वार्थी हूँ। इसका एक और सुबूत देता हूँ।'

आयशा ने अर्थभरी नजर से ओसमान खाँ को देखा।

ओसमान खॉ ने कहा, 'मै तो आशा की लतर पकडे बैठा हूँ। उसकी जड मे और कितने दिनो तक पानी डालता रहूँ ?'

आयशा का चेहरा गभीर हो गया। उसके इस बदले भाव मे भी ओसमान खाँ को नए तरह का सौदर्य दिखा। आयशा बोली, 'ओसमान, मै तो भाई-बहन के रिश्ते से तुम्हारे साथ उठती-बैठती हूँ। अगर ज्यादा आगे बढ़ोगे तो मै तुम्हारे सामने निकल न सकूँगी।'

ओसमान का खिला चेहरा मुरझा गया। बोला, 'यही बात तो बराबर सुनता हूँ। या खुदा, इस फूल सी देह मे क्या तूने पत्थर का दिल लगाया है ?'

फिर दोनो चुपचाप चलते रहे। आयशा को बेगम के कमरे तक पहुँचा कर ओसमान उदास मन से अपने घर लौट गया।

और उधर जगतसिह भीषण बुखार मे बेहोश पलग पर पडे रहे।

|३|

तुम या तिलोतमा

दूसरे दिन जगतसिह के कमरे मे आयशा, ओसमान खॉ और हकीम चुपचाप बैठे थे। आयशा पलग पर बैठी दवा तैयार कर रही थी। जगतसिह बेहोश थे। हकीम ने कहा है, इसी रात को बुखार उतरने के साथ-साथ जगतसिह की मौत की भी सम्भावना है। अगर उस समय संभल गये तो फिर जरूर बच जायेंगे, फिर कोई चिन्ता न रहेगी। अब बुखार उतरने का समय आ गया है। इसीलिए सभी लोग व्याकुल और व्यग्र हो उठे है। हकीम बार-बार नाडी देख रहे है—नाडी कमजोर है, और कमजोर हो गई, कुछ सम्हल गई। बार-बार धीमी आवाज मे यही सब कह रहे है। एकाएक हकीम का चेहरा काला पड गया। बोले, 'अब समय आ गया।'

आयशा और ओसमान खाँ पत्थर की तरह हो गये, हकीम नाडी पकडे रहे।

थोडी देर बाद हकीम बोले, 'हालत बहुत खराब है।'

आयशा का चेहरा बेहद उदास हो गया।

तभी एकाएक जगतसिह के चेहरे पर विकट भाव प्रकट हुआ। चेहरा एकबारगी सफेद पड गया। हाथो की मुट्ठियाँ बँध गई। आँखो मे अजीब भगिमा प्रकट हुई। आयशा समझ गई, दिये का तेल सूख गया। अब बुझने मे देर नही। हकीम हाथ मे दवा लिए बैठे थे। यह लक्षण देखते ही रोगी का मुँह फैला कर उँगली से दवा चटा दी। दवा भीतर जा कर फिर मुँह के बाहर आ गई, पेट मे बहुत थोडी ही पहुँची। लेकिन उतनी ही पेट मे जाते रोगी की हालत बदलने लगी। चेहरे पर स्थिर भाव आ गया। रग की सफेदी मिट गई, रक्त संचार होने लगा। हाथ की मुट्ठियॉ खुल गईं। हकीम गभीर भाव से फिर नाडी देखने लगे। बहुत देर तक सावधानी से देख कर खुश हो कर बोले, 'अब बच गये। अब चिन्ता की कोई बात नही।'

ओसमान ने लपक कर पूछा, 'बुखार उतर गया?'

'हॉ, उतर गया।'

आयशा और ओसमान दोनो के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे। तब हकीम ने

कहा, 'अब कोई चिन्ता नही। मेरे बैठने की भी अब कोई जरूरत नही है। यही दवा दोपहर रात बीतने तक घडी-घडी भर बाद खिलाते रहिये।'

हकीम चले गये। थोड़ी देर और बैठ कर ओसमान खाँ भी अपने घर चले गये। आयशा पहले जैसी पलग पर बैठी दवा देती रही।

रात को दो पहर के कुछ पहले जगतसिह ने आँखें खोली। उन्हे सब से पहले आयशा का प्रसन्न मुख ही दिखाई पडा। आँखो की भंगिमा व भाव से आयशा को मालूम हुआ कि शायद जगतसिह को बुद्धिभ्रम हो रहा है। जैसे वे कुछ याद करने की कोशिश कर रहे है पर कुछ याद नही आ रहा हो। थोडी देर बाद आयशा को देख कर पूछा, 'मै कहाँ हूँ ?'

पूरे दो दिनो के बाद जगतसिंह यही पहली बार बोले।

आयशा ने कहा, ' कतलू खाँ के किले मे।'

राजकुमार फिर कुछ याद करने लगे। थोडी देर बाद पूछा, 'मैं यहाँ क्यो आया हूँ ?'

'आप बीमार है।'

'नही नही, मै कैद हूँ।'

आयशा ने कोई जवाब न दिया। देखा कि जगतसिंह की स्मरण-शक्ति वापस आ रही है।

थोडी देर बाद राजकुमार ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मै आयशा हूँ।'

'आयशा कौन ?'

'कतलू खाँ की बेटी।'

राजकुमार फिर चुप हो गये। ज्यादा बोलने की शायद शक्ति ही न थी। कुछ देर बाद आराम करने के बाद पूछा, 'मै यहाँ कितने दिनो से हूँ ?'

'चार दिनो से।'

'गढ मन्दारन अभी तक तुम लोगो के ही कब्जे मे है ?'

'जी हाँ।'

'वीरेन्द्रसिह का क्या हुआ ?'

'वह कैदखाने मे है। आज उनका फैसला होगा।'

जगतसिह का चेहरा उदास हो गया। पूछा, 'और जो लोग थे, उनकी क्या हालत है ?'

आयशा उद्विग्न हुई, बोली, 'सब बातें मुझे नही मालूम।'

राजकुमार अपने आप जैसे बडबडाने लगे। एक नाम उनके मुँह से निकला। आयशा ने सुना—तिलोत्तमा।

धीरे-धीरे उठ कर आयशा हकीम द्वारा बताई दवाई लाने गई। राजकुमार

उसकी इठलाती-झूमती देहराशि की महिमा देखते रहे। आयशा दवा ले कर वापस आई। राजकुमार ने दवा पी कर कहा, 'मैं पीडा मे भी सपना देख रहा था कि एक देवकन्या मेरे सिरहाने बैठ कर सेवा कर रही है। वह तुम हो या तिलोत्तमा ?'

आयशा मुरझा कर बोली, 'आपने तिलोत्तमा को ही स्वप्न मे देखा होगा।'

|४|

घूँघटवाली

गढ मन्दारन के किले पर कब्जा होने के दो दिन बाद, एक पहर दिन चढने पर, अपने किले मे कतलू खाँ का दरबार लगा। दोनो ओर कतार बाँध कर दरबारी खडे हुए। सामने की फर्श पर कई हजार आदमी चुपचाप बैठे। आज वीरेन्द्रसिंह को सजा दी जायगी।

वीरेन्द्रसिंह को जंजीरो से बाँध कर हथियारबन्द पहरेदारो के बीच दरबार मे लाया गया। वीरेन्द्रसिंह का रग लाल हो रहा था, उनके चेहरे पर भय का कोई भी चिह्न नही था। तेज आँखो से चिनगारियाँ निकल रही थी। नथुने रह-रह कर फूल कर काँप उठते थे। वह रह-रह कर दाँतो से ओठ चबा रहे थे। जब उन्हे कतलू खाँ के सामने ले आया गया तो कतलू खाँ ने कहा, 'वीरेन्द्रसिंह, हम तुम्हारे कुसूर की सजा देंगे। तुम क्यो हमारे खिलाफ दल मे शामिल हुए ?'

अपने तमतमाते चेहरे पर स्पष्ट हो रहे क्रोध को रोक कर वीरेन्द्रसिंह ने कहा, 'तुम्हारे खिलाफ मैने कौन सा काम किया है ? पहले मुझे यही तुम बता दो ?'

एक दरबारी बीच मे ही बोल उठा, 'अदब से बाते करो।'

कतलू खाँ बोले, 'मेरे हुक्म के बाद भी तुम रुपये और सेना भेजने पर क्यो राजी नही हुए ?'

वीरेन्द्रसिंह ने निडर भाव से कहा, 'तुम राज के खिलाफ काम करने वाले डाकू हो। तुम्हें रुपये क्यो दूँ ? तुम्हे अपनी सेना भी क्यो दूँ ?'

उपस्थित जन-समुदाय ने देखा कि वीरेन्द्रसिंह अपने ही हाथो अपना सिर काटने को तत्पर हैं।

वीरेन्द्रसिंह का जवाब सुन कर कतलू खाँ का सारा शरीर क्रोध से काँपने लगा। लेकिन वह अपना क्रोध रोक लेने का अभ्यासी था। कुछ देर मे संयत हो कर कहा, 'तुम मेरे अधिकार में रह कर मुगलो से क्यो मिल गये ?'

'तुम्हारा अधिकार कहाँ है ?'

'सुन पापी, तुझे तेरे किये का उचित फल मिलेगा। अभी तक तेरे जीवन की कुछ आशा भी थी, लेकिन तू नासमझ है, अपने ही घमण्ड से अपने वध का इन्तजाम कर रहा है।'

वीरेन्द्रसिंह स्थिर होकर हँस पडे। बोले, 'कतलू खाँ, जब मै जंजीरो से बँध कर तेरे सामने आया हूँ तब तुझसे रहम की उम्मीद करके नही आया। तुम्हारे जैसे दुश्मन की दया पर जिसकी जिन्दगी हो, उसे जीने की क्या जरूरत है ? तुम्हे आशीर्वाद देकर मरता, लेकिन तुमने मेरे पवित्र कुल को कलकित किया है। तुमने मेरी जान से ज्यादा धन को '

वीरेन्द्रसिंह आगे बोल न सके। गला ही रुद्ध हो गया। आँखो मे भाप सी लगी। निडर, गर्वीले वीरेन्द्रसिंह सिर झुका कर रो पडे।

कतलू खाँ स्वभाव से ही निर्दयी है। इतना कि दूसरे को तकलीफ पहुँचाने मे उसे खुशी होती है। गर्वीले दुश्मन की यह दशा देख कर उसका चेहरा खुशी से खिल गया। कहा, 'वीरेन्द्रसिंह, क्या तुम मुझसे कुछ भी न माँगोगे ? जरा सोच कर देखो, तुम्हारा समय बहुत नजदीक है।'

जिस भयानक सताप से वीरेन्द्रसिंह का कलेजा जल रहा था, वह आग रोने से कुछ ठण्डी पड गई। पहले से भी अधिक सयत होकर बोले, 'और कुछ नही चाहिये, केवल यही चाहता हूँ कि मेरी हत्या करने का काम जल्दी ही पूरा करो।'

'ठीक है, ऐसा ही होगा।'

'इस जन्म मे और कुछ नही चाहिए।'

'क्या मरते समय अपनी बेटी से भी नही मिलोगे ?'

यह प्रश्न सुनते ही सभी उपस्थित-जन शोक से जड हो गए। वीरेन्द्रसिंह की आँखो से फिर आग बरसने लगी। बोले, 'अगर मेरी बेटी तुम्हारे घर मे जिन्दा हो तो नही मिलूँगा, और अगर मर गई हो तो ले आओ। उसकी लाश को गोद मे लेकर मरूँगा।'

सभी दर्शक एकदम साँस रोके चुप रहे। नवाब के इशारा करने पर सिपाही वीरेन्द्रसिंह को वध-स्थल की ओर खीच ले चले। वहाँ पहुँचने के कुछ पहले एक मुसलमान सैनिक ने वीरेन्द्रसिंह के कान के पास आकर कुछ कहा लेकिन वीरेन्द्रसिह ठीक से सुन न सके। तभी उस सैनिक ने धीरे से उनके हाथ मे एक मुडा हुआ कागज पकड़ा दिया। अनमने भाव से उन्होने कागज खोल कर देखा, विमला की लिखावट थी। लिखावट पहचानते ही उन्होने घृणा से कागज मसल कर दूर फेंक दिया। वह सैनिक कागज उठा कर एक ओर चला गया। पास के किसी दर्शक ने वीरेन्द्र का यह कृत्य देख कर दूसरे से फुसफुसाकर कहा, 'शायद बेटी का पत्र है।'

यह बात वीरेन्द्रसिंह ने सुन लिया। उसी तरफ मुड कर तेज स्वर मे कहा, 'कौन कहता है कि मेरी बेटी है ? मेरी कोई बेटी नही।'

चिट्ठी लाने वाला सैनिक चिट्ठी लेकर जाते-जाते पहरेदारो से कहता गया, 'मै जब तक न लौटूं, मेरा इन्तजार करना।'

'जो हुक्म, सरकार।' एक पहरेदार ने कहा।

चिट्ठी लाने वाला और कोई नही, ओसमान खाँ ही था।

ओसमानखाँ चिट्ठी वापस लेकर चहारदीवारी के भीतर गये। वहाँ एक मौलश्री के पेड के पीछे आड मे घूँघट काढे एक स्त्री खडी थी। ओसमान ने उसके पास जाकर फिर चारो ओर सतर्कता से देख कर, सब हाल ब्योरेवार बताया। घूँघटवाली ने कहा, 'आपको बडी तकलीफ दे रही हूँ। लेकिन क्या करूँ, आपकी बदौलत ही हमारी यह दुर्दशा हुई है। आपको मेरा यह काम करना ही होगा।'

ओसमान खाँ चुप रहे।

घूँघटवाली मर्माहत स्वर मे बोली, 'न करना चाहे तो न कीजिए। इस समय तो हम अनाथ है। लेकिन ईश्वर तो सहारा है ही।'

ओसमान ने व्यग्र होकर कहा, 'माँ, तुम नही जानती कि कैसे कठिन काम मे मुझे तुम लगा रही हो। कतलू खाँ सुन पायेगा तो मुझे जिन्दा न छोडेगा।'

'कतलू खाँ? क्या मुझे धोखा देते हो? कतलूखाँ की भला क्या मजाल कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके?'

'तुम कतलू खाँ को नही जानती। लेकिन चलो, मै तुम्हे वध-स्थल तक तो ले ही चलता हूँ।'

ओसमान खाँ के पीछे-पीछे जाकर घूँघटवाली वध-स्थल के पास चुपचाप खडी हो गई। वीरेन्द्रसिंह उसे देख न सके। वे उस समय एक भिखारी वेष वाले ब्राह्मण से बातें कर रहे थे। घूँघटवाली ने घूँघट के छेद से देखा कि वह भिखारी और कोई नही, अभिराम स्वामी थे।

वीरेन्द्रसिंह ने अभिराम स्वामी से कहा, 'गुरुदेव! अब विदा होता हूँ। मै आप से भला क्या कह कर जाऊँ? इस लोक के सम्बन्ध मे कहने को मेरे पास कुछ नही। प्रार्थना भी किसके लिए करूँ?'

तब अभिराम स्वामी ने उँगली के इशारे से पीछे खडी घूँघटवाली को दिखाया। वीरेन्द्रसिह ने उधर मुँह घुमा कर देखा ही था कि घूँघटवाली स्त्री झट से घूँघट हटा कर वीरेन्द्रसिह के जजीरो से जकड़े पैरो पर लोटने लगी। देख कर गद्‌गद्‌ स्वर मे वीरेन्द्रसिंह ने पुकारा, 'कौन, विमला?'

'स्वामी! प्राणेश्वर!' कह कर उन्मादिनी सी विमला ऊँचे स्वर मे कहने लगी, 'आज मै ससार के सामने ही कहूँगी, अब कौन रोकेगा? स्वामी! प्राणेश्वर! मुझे छोड कर कहाँ जाते हो? मुझे कहाँ रखे जाते हो?'

वीरेन्द्रसिंह की आँखो से आँसू की धारा बह निकली। हाथ पकड कर विमला से

बोले, 'विमला ! प्रियतमे ! अब इस समय मुझे क्यो रुलाती हो ? शत्रु देखेगा तो कहेगा कि मरने से डरता है।'

विमला चुप हुई, तब वीरेन्द्रसिंह ने फिर कहा, 'विमला मै तो जाता हूँ। तुम लोग मेरे पीछे आना।'

विमला धीरे से बोली ताकि कोई दूसरा न सुने, 'आऊँगी ! नाथ जरूर आऊँगी ! लेकिन पहले तो इस यन्त्रणा का बदला लूँगी।'

बुझने वाले दीपक की लौ की तरह वीरेन्द्रसिंह का चेहरा चमक उठा। पूछा, 'बदला ले सकोगी ?'

दाहिने हाथ मे बाएँ हाथ की उँगली छुला कर विमला उसी स्वर मे बोली, 'इसी हाथ से। यह मैने हाथ का सोना त्याग दिया। अब इसकी क्या जरूरत ?' कह कर कगन आदि आभूषण उतार कर दूर फेकते हुए बोली, 'तेज अस्त्र छोड कर अब इस हाथ से अलकार न छुऊँगी।'

वीरेन्द्र ने प्रसन्न हो कर कहा, 'तुमसे यह काम अवश्य हो सकेगा। भगवान तुम्हारी कामना पूरी करे।

तभी जल्लाद पुकार उठा, 'अब और देरी नही कर सकता।'

वीरेन्द्रसिंह ने विमला से कहा, 'तो अब तुम यहाँ से चली जाओ।'

'नही, मेरे सामने ही मेरा वैधव्य प्रकट हो। तुम्हारे रक्त मे मन के सकोच को विसर्जित करूँगी।' विमला ने सयत स्वर से कहा।

'अच्छा।' कह कर वीरेन्द्रसिंह ने जल्लाद को इशारा किया। विमला ने देखा कि कुठार सूर्य किरणो से चमक उठा। क्षण भर को उसकी पलकें अपने आप मुँद गई। फिर पलकें खोली तो पाया कि वीरेन्द्रसिंह का कटा सिर खून से सना धूल मे लोट रहा है।

विमला चट्टान की तरह दृढ हो कर खडी रही। सिर का एक बाल भी हवा मे न उडा। एक बूँद आँसू भी न गिरा। आखो की पलकें भी नही झपी। वह एकटक कटे सिर की ओर देखती रही।

| ९ |

विधवा

कहाँ है तिलोत्तमा ? कहाँ है पितृहीन अनाथ बालिका ? कहाँ है विमला ? कहाँ से विमला पति के वध-स्थल पर अचानक आकर दिखाई पडी थी ? उसके बाद फिर कहाँ चली गई ?

मृत्यु के समय वीरेन्द्रसिंह अपनी प्यारी बेटी से क्यो नही मिले ? नाम लेते ही शोले की तरह भभक कर क्यो जल उठे ? क्यो कहा था कि मेरी कोई बेटी नही ? क्यो विमला का पत्र बिना पढे ही दूर फेंक दिया था ?

क्यो ? कतलू खाँ के प्रति वीरेन्द्रसिंह के तिरस्कार की घटना कितनी भयकर थी ? पवित्र कुल को कलंकित किया है—कर कह जजीरो मे जकडा शेर दहाड उठा था ।

अब तिलोत्तमा और विमला कहाँ है ? क्या कतलू खाँ के हरम मे ?

ससार की यही गति है । अदृश्य चक्र की ऐसी ही कठोर गति है । रूप, यौवन, सरलता सब इस चक्र मे पड कर पिस जाते है ।

कतलू खाँ का यही नियम था कि किसी किले या गाँव पर विजय पाने के साथ यदि कोई सुन्दरी रमणी बन्दिनी होती थी तो उसे उसकी सेवा मे भेजा जाता था । गढ मन्दारन की जीत के दूसरे दिन कतलू खाँ वहाँ पहुच कर बन्दियो की व्यवस्था और भविष्य में किले के प्रबन्ध के लिए सेना को आदेश देता रहा । बन्दियो मे विमला और तिलोत्तमा को देखते ही, उसने अपना विलास-गृह सजाने के लिए उन्हे भेज दिया । फिर वह दूसरे कामो मे उलझ गया । कहा जाता था कि जगतसिह की गिरफ्तारी की बात सुन कर राजपूत सैना पास ही कही आक्रमण की योजना बनाने लगी । उनसे मोर्चा लेने की व्यवस्था आदि करने मे व्यस्त रहने के कारण कतलू खाँ नई आई बन्दिनियो के संग-सुख का अवसर नही पा सका ।

विमला और तिलोत्तमा अलग-अलग कमरो मे रखी गई थी । तिलोत्तमा की धूल-धूसरित देह फर्श पर पडी थी । उसकी ओर भला कौन देखता ! वसत के आगमन पर जब मन्द वायु के झोको से नई वल्लरी झूम उठती है तब उसकी सुगध पाने के लिए भला कौन उसके पास खडा नही होता ? और जब गर्मी की आँधी मे वहो वल्लरी नीचे गिर जाती है तब कौन उसकी ओर आँख उठा कर देखता है ? लकडहारा भी लकडी काट कर वल्लरी को पावो से कुचल कर ही चला जाता है ।

और विमला ? चचल, रसप्रिया, रसिका विमला की जगह अब एक गम्भीर, स्थिर, मलिना विधवा आँखो में आँचल लगाए बैठी है ।

क्या यही पहले वाली विमला है ? अब वह केश-विन्यास नही, सिर पर धूल ही चढ़ी है । अब वह रगीन ओढनी नही, वह रत्न जडित चोली भी नही । कपडे भी मैले कुचैले । फटा-सा छोटा-सा वस्त्र बदन मे लपेटे है । आँखें सूजी हुईं । कटाक्ष नदारद । ललाट पर गहरा घाव, खून बह रहा है ।

विमला ओसमान खाँ की प्रतीक्षा कर रही है ।

ओसमान खाँ पठान-कुल-दीपक है । युद्ध उसके लिये स्वार्थ का साधन, व्यवसाय और धर्म है । इसीलिए युद्ध मे विजय पाने के लिए ओसमान खाँ कुछ भी करने मे

नही हिचकता। लेकिन युद्ध मे विजय पा लेने के बाद, पराजितो पर किसी तरह का अत्याचार भी नही सह पाता। यह कतलू खाँ खुद ही विमला और तिलोत्तमा के लिए यह कठोर आदेश न दिये होता तो ओसमानखाँ की कृपा से वे कदापि बन्दिनी न बनने पाती। उसकी ही कृपा से पति के वध के समय विमला उनसे भेंट कर सकी। बाद मे जब ओसमान खाँ को मालूम हुआ कि विमला वीरेन्द्रसिंह की पत्नी है तब उसका मन और द्रवित हो उठा। ओसमान खाँ, कतलू खाँ का भतीजा है। इसलिए अन्त पुर मे आने-जाने की उसे कोई रोक नही है। लेकिन जिस हरम मे कतलू खाँ की उप-पत्नियाँ रहती थी, वहाँ कतलू खाँ के लडके भी नही जा सकते थे, ओसमानखाँ भी नही, लेकिन ओसमान कतलू खाँ का दाहिना हाथ था। उसके बाहुबल से वह आभोदर से लेकर उडीसा तक अधिकार कर सका था। इसीलिए ओसमान का महत्व कत्लू से कम न था। इसीलिए विमला की प्रार्थना पर अंतिम समय मे पति से उसकी भेंट सभव हो सकी।

वैधव्य प्रकट होने के दो दिनो बाद विमला ने बाकी बचे सभी आभूषण कतलू खाँ की बाँदी को दे दिये। बाँदी ने गहने पाकर पूछा, 'मेरे लिए क्या हुक्म है ?'

'बस एक हुक्म है कि, कल तुम जिस तरह ओसमान खाँ के पास गई थी, एक बार उसी प्रकार और जाओ। कहना कि मै एक बार उनमे और मिलना चाहती हूँ। कहना कि यह आखिरी बार है। फिर और कभी इसके लिये प्रार्थना नही करूँगी '

बाँदी ने वैसा ही किया। ओसमान ने कहलाया, 'वहाँ मेरे आने से हम दोनो पर मुसीबत आ सकती है। उन्हे मेरे मकान पर आने के लिए कहना।'

विमला ने पूछा, 'मै कैसे जाऊँगी ?

बाँदी ने कहा, ' उन्होने इसके लिए उपाय करने को कहा है।'

शाम के बाद आयशा की एक दासी ने आकर हरम के पहरेदार खोजा मे कुछ बातचीत की और फिर विमला को अपने साथ ओसमान के पास ले गई।

ओसमान ने पूछा, 'अब मै तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ ?'

बहुत छोटी सी बात है। बताओ कि राजपुत्र जगतसिंह क्या जिन्दा है ?'

'हाँ।'

'आजाद है या बन्दी ?'

'बन्दी। लेकिन कारागार मे नही है। शरीर मे गहरे घावो के कारण पीडित होकर शय्या पर है। कतलू खाँ को बताए बिना उन्हे अन्त पुर मे ही रखा गया है। ताकि वहाँ अच्छी तरह सेवा हो सके।'

सुन कर विमला बोली, 'इस अभागिन के सम्पर्क में आने से ही उनका यह अमंगल हुआ है। वह तो देवता-तुल्य है। अब जब राजकुमार चंगे हो जाये तो उन्हे

मेरा यह पत्र दे दीजिएगा। अभी तो इसे अपने ही पास रखिये। बस, मेरी यही भीख है।'

पत्र लौटाते हुए ओसमान खाँ ने कहा, 'मेरे लिए यह काम करना अनुचित होगा। राजकुमार चाहे जिस स्थिति मे हो, है वे बन्दी। बन्दियो के पास कोई पत्र बिना पढे हुए जाने देना नियम-विरुद्ध है।'

'इस पत्र मे आपके अहित की कोई बात नही है, इसलिए उन्हे देना कदापि अनुचित न होगा।'

'मै कभी-कभी कुछ बातो मे चाचा साहब के विरुद्ध आचरण भी करता हूँ पर ऐसी बातो मे नही। लेकिन आप जब कह रही है कि पत्र मे कोई विरोधी बात नही है, तो मुझे विश्वास करना ही पडेगा। लेकिन इसके लिए मै नियम कैसे तोड़ूँ ? मुझसे यह काम न होगा।'

विमला नाराज होकर बोली, 'तो आपही पढ कर दे दीजिएगा।'

पत्र लेकर ओसमान पढने लगा।

|६|

विमला का पत्र

''युवराज' ! मैंने वायदा किया था कि एक दिन आपको अपना परिचय दूँगी। आज उसका समय आ गया है।

पहले तो सोचा था कि मेरी तिलोत्तमा जब अम्बर के राजसिंहासन पर बैठेगी तब परिचय दूँगी। पर आज सभी आशाएँ धूल मे मिल गई है। मुझे तो ऐसा लगता है कि कुछ दिनो मे आप सुनियेगा कि इस धरती पर न कोई तिलोत्तमा है न विमला। हमारी जीवन आयु समाप्त हो गई है।

इसीलिए इस समय आप को लिख रही हूँ।

मैं बडी पापिन हूँ। मैने जीवन मे बहुतेरे अवैध काम किये है। मेरे मरने पर लोग अवश्य निन्दा करेंगे, तरह-तरह की बुरी बातें भी कहेगे, तब मेरे घृणित नाम पर लगी कालिख कौन धोयेगा ? ऐसा दयालु कौन है ?

एक दयालु है, पर वे जल्दी ही बस्ती छोड कर तपस्या करने चले जायेंगे। उन दयालु अभिराम स्वामी से इस दासी का काम न बनेगा। राजकुमार, चाहे एक दिन के लिये ही सही, पर मुझे जाने क्यो यह विश्वास हुआ था कि मै कभी आपके आत्मीयजनो

मे गिनी जाऊँगी। सो एक ही दिन के लिए नही आप मेरे आत्मीय का काम कीजिए। मैं यह बात कह भी किससे रही हूँ ? अभागिनियो का फूटा भाग्य अग्निशिखा की तरह है। जो हितैषी पास थे, उन्हे भी अग्निशिखा ने स्पर्श किया है। जो भी हो दासी की यह भीख याद रखिएगा। जब लोग कहे कि विमला कुलटा थी, दासी के रूप मे गणिका थी, तब कहियेगा कि नीच जाति की फूटे भाग्यवाली विमला रसना दोष से सैकडो अपराधो की अपराधिनी होने पर भी गणिका नही थी। जो इस समय स्वर्ग गये है उन्होने विमला के सौभाग्य से शास्त्र सगत ढग से उसका पाणिग्रहण किया था। विमला एक दिन के लिए भी अपने नाथ के सम्मुख विश्वासघातिनी नही थी।

इतने दिनो तक यह बात किसी को मालूम नही थी, आज भी कौन विश्वास करेगा ? लेकिन पत्नी होकर भी दासी का रूप बना कर क्यो रही थी सुनिये। गढमन्दारन के पास एक गॉव मे शशिशेखर भट्टाचार्य रहते थे। शशिशेखर एक सम्पन्न ब्राह्मण थे। युवावस्था मे उन्होने नियमित ढंग से विद्याध्ययन किया था। किन्तु अध्ययन से स्वभाव का दोष दूर नही होता। ईश्वर ने शशिशेखर को हर प्रकार के गुणो से सम्पन्न करके भी एक प्रबल दोष दे रखा था। वह था यौवनकालीन प्रबल दोष।

गढ मन्दारन मे जयधरसिंह के किसी अनुचर वश मे एक विधवा स्त्री थी। वह अपरूपा सुन्दरी थी। उसका स्वर्गीय पति राजसेन का सिपाही था, इसलिए बहुत काल तक घर से बाहर रहा। उस अलौकिक सुन्दरी पर शशिशेखर की दृष्टि पडी। थोडे समय मे ही उसके औरस से पति विरहणी सुन्दरी के गर्भ रह गया।

आग और पाप को बहुत दिनो तक नही छिपाया जा सकता। शशिशेखर के दुष्कृत्य की बात उसके पिता ने सुनी। पुत्र के किए पर कुल-कलक से मुक्ति पाने के लिये शशिशेखर के पिता ने पत्र लिख कर गर्भवती स्त्री के पति को जल्दी घर बुलवाया साथ ही उन्होने अपने दोषी पुत्र का भी भरपूर तिरस्कार किया। फिर कलकित नाम ले कर शशिशेखर देश छोड कर भाग गये।

भाग कर शशिशेखर सीधे काशी गये। वहाँ किसी सर्वश्रद्ध दण्डी के पाण्डित्य की चर्चा सुन कर उन्ही से विद्यादान लेने लगे। उनकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी, दर्शन शास्त्र मे गहन अध्ययन किया और ज्योतिष मे महामहोपाध्याय हो गये।

वहाँ शशिशेखर एक शूद्रा के घर के पास रहते थे। शूद्रा के एक युवती कन्या थी। ब्राह्मण पर भक्तिभाव रखनेवाली युवती शशिशेखर के घर का काम तथा भोजन की तैयारी करा देती थी। माता-पिता के पापो पर पर्दा डालना सन्तान का परम कर्तव्य है। अधिक क्या कहूँ, शूद्र कन्या और शशिशेखर के सम्बन्ध से ही इस हतभागी का जन्म हुआ।

यह सब सुन कर एक दिन दण्डी पण्डित ने कहा, "शिष्य दुष्कर्मी को मेरे यहॉ अध्ययन के लिये स्थान नहो है। तुम अब काशी मे मुँह मत दिखाना।

विवश शशिशेखर को लज्जित होकर काशी छोड़ देना पड़ा ।

माता को भी उनकी माँ ने दुराचारिणी की उपाधि देकर घर से निकाल दिया । दुखिनी माता मुझे लेकर एक कुटी मे रहने लगी तथा मिहनत मजदूरी कर के पेट पालने लगी । मेरी समाज उपेक्षिता दुखिनी माँ की ओर आँख उठा कर कोई देखता भी न था । पिता की भी कोई खबर नही मिली । कुछ बरसो बाद जाड़े के दिनो मे एक धनी पठान बङ्गाल से दिल्ली जाते समय काशी से होकर गुजरा । वह काफी रात बीते काशी पहुँचा और रात के आश्रय के लिये परेशान था । उनके साथ उनकी बेगम और एक छोटा बच्चा भी था । मेरी माँ की कुटी के पास आकर उसने कहा, 'इतनी रात को हिन्दू टोले मे किसी ने हमे ठहरने की जगह नही दी । अब हम इस छोटे बच्चे को लेकर कहाँ जाये ? ठण्डक भी ऐसी है कि यह बरदाश्त न कर सकेगा । हमारे साथ ज्यादा आदमी भी नही है । अगर तुम्ही हमे आश्रय दे दो तो इस कुटिया मे ही हम गुजर कर लेंगे । तुम्हे इस मेहरबानी के लिये बहुत सा इनाम दूँगा ।'

पठान किसी अति आवश्यक कार्य से दिल्ली जा रहे थे । उनके साथ एक नौकर भी था । मेरी माता दरिद्र भी थी और दयालु भी । चाहे धन की लालच हो या बच्चे पर दया खाकर उन्होने पठान को कुटिया से रहने दिया । पठान अपनी बेगम व बच्चे के साथ कुटिया के एक बगल लेट गया और दूसरी बगल हमलोग लेटे ।

उन दिनो काशी मे लडके चुराने वालो का बडा आतंक था । मै थी सिर्फ छ साल की । सब कुछ तो मुझे याद नही, मा से सुनी बातें ही कह रही हूँ ।

करीब आधी रात को मेरी नीद टूट गई । दिया जल रहा था । मैने देखा कि सेंध लगा कर एक चोर कुटिया से पठान बालक को चुरा कर लिए जा रहा था । मै जोर से चिल्ला उठी । मेरी चीख सुन कर सभी जाग गये ।

बच्चे की माँ ने जब बच्चा वहाँ न पाया तो वह भी चीख उठी । चोर बच्चे को लिये हुए खाट के नीचे छिपा था । पठान ने उससे बच्चे को छीन लिया । चोर पैरो पर लोट कर गिडगिडाने लगा । तब तलवार से उसका एक कान काट कर पठान ने उसे छोड दिया ।'

इतना पढते-पढते ओसमान अनमना होकर कुछ सोचने लगा फिर विमला से पूछा, 'क्या कभी तुम्हारा कोई और नाम भी था ?'

विमला ने बताया 'हाँ था । लेकिन वह मुसलमानी नाम था, इसलिये मेरे पिता ने वह नाम बदल दिया था ।'

'वह नाम माहरू था ?'

चकित होकर विमला ने पूछा, 'आप को कैसे मालूम हुआ ?'

'वह चोरी जाने वाला लडका मै ही हूँ ।'

विस्मय से विमला जड हो गई । ओसमान आगे पढ़ने लगे ।

'—दूसरे दिन विदा होते समय पठान ने माँ से कहा तुम्हारी बेटी ने मेरा जो उपकार किया है, उसका बदला देने की स्थिति मे मैं इस समय नही हैं लेकिन तुम्हारी जो भी इच्छा हो मुझसे कहो, मै वहाँ जाकर पूरी करूँगा। रुपये चाहो तो वह भेज दूँगा।

माँ ने कहा था—मुझे रुपयो की जरूरत नही। मिहनत्त मजदूरी से मेरा गुजर हो जाता है लेकिन अगर बादशाह तक आपकी पहुँच हो तो—

बीच ही मे पठान बोला—खूब है। मै बादशाह सलामत के दरबार मे आप का भला कर सकता हूँ।

तो इस बच्ची के बाप की खोज कराकर मुझे खबर दीजिएगा।

पठान ने वायदा किया। माँ को एक मोहर दी पर माँ ने नही ली। पठान ने वचन के अनुसार मेरे पिता की खोज की लेकिन कुछ पता न चला।

पता चला चोदह बरसो बाद। वहा से माँ के पास पत्र आया तब पिता दिल्ली थे। अपना शशिशेखर भट्टाचार्य नाम बदल कर उन्होने नया नाम अभिराम स्वामी रख लिया था।

जब यह खबर आयी थी तब मेरी माँ का देहान्त हो चुका था। और पिता की खबर पाकर मेरा मन भी अब काशी मे न लगता। जब पिता दिल्ली मे है तो मैं काशी मे किसके लिये रहूँ ? यही सोच कर मै अकेली पिता के पास चल पडी। मेरे वहाँ जाने पर पहले तो पिता नाराज हुए लेकिन मेरे रोने-धोने पर उन्होने मुझे अपने साथ रख लिया। उन्होने मेरा माहरू नाम बदल कर विमला रख दिया। मै भी पिता जी के साथ रह कर उनकी खूब सेवा करने लगी। मै वही काम करने लगी जिससे उनके मन को खुशी हो। पिता की सेवा करके मुझे भी आन्तरिक सन्तोष होता, सोचती कि पिता की सेवा से बढ़ कर दुनिया मे दूसरा सुख नही है। और शायद मेरी सेवा को देख कर अपने दयालु स्वभाव के कारण ही पिता जी मुझसे खूब स्नेह करने लगे। समुद्र की ओर तेजी से बढती हुई नदी की तरह स्नेह भी जितनी तीव्रता से प्रभावित होता है उतना ही वह बढता है। जब मेरे सुख के दिन बीत गये तब मुझे मालूम हुआ कि पिता जी सचमुच मुझे कितना प्यार करते थे।'

|७|

विमला का शेष-पत्र

'मै पहले ही बता चुकी हूँ कि गढ-मन्दारन मे मेरे पिता से एक निर्धन स्त्री गर्भवती हुई थी। मेरी माता का जो भविष्य हुआ, वही उस स्त्री का भी हुआ। उनके

भी गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया। मेरी माँ की तरह वह भी मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह करने लगी। विधाता का ऐसा कोई विधान नही है कि जैसा स्थान हो, उसी के अनुरूप सभी चीजें पैदा हो। पहाड के पत्थरो पर भी कोमल दूब उगती है और अँधेरी खान मे भी उज्ज्वल-रत्न पैदा होते है। उस दरिद्र स्त्री के घर भी एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या ने जन्म पाया। विधवा की वह बेटी गढ मन्दारन गाँव म अतीव सुन्दरी के रूप मे प्रसिद्ध हो गई।

काल के गर्भ मे सब कुछ समा जाता है। समय बीतने पर विधवा का कलक भी लोग भूल गये। विधवा की सुन्दरी कन्या एक जारज सन्तान है, यह बात धीरे-धीरे बहुत से लोग भूल गये। बहुतो को यह सब मालूम भी न था। दुर्ग की यह गुप्त बात तो अब शायद कोई भी नही जानता। मै अधिक क्या कहूँ ? उसी सुन्दरी के गर्भ से तिलोत्तमा का जन्म हुआ है।

तिलोत्तमा जब माता के गर्भ मे थो तभी इस विवाह के कारण मेरे जीवन की प्रमुख घटना घटी। एक दिन पिता जी अपने दामाद को साथ लेकर आश्रम मे आये। उनका परिचय मुझे यही दिया कि वह उनके मंत्र-शिष्य है। स्वर्गीय नाथ से ही मुझे उनका असली परिचय मालूम हुआ था।

मैंने जिस क्षण उन्हे देखा, मेरा मन मेरा न रह गया। लेकिन वह सब बातें आपको बताऊँ भी कैसे ? वीरेन्द्रसिंह जल्दी ही जान गये कि बिना विवाह किए वे मुझे नही पा सकते। शायद पिता जी भी सारी स्थिति समझ गये। एक दिन दोनो मे इस सबंध मे बातचीत हो रही थी, जो मैने आड मे छिप कर सुना था।

पिता जी ने कहा था, 'मै विमला को छोड कर नही रह सकता। लेकिन तुम यदि विमला से विवाह करोगे तो मै तुम्हारे पास रहूँगा। और अगर तुम्हारा वह अभिप्राय न हो तो ‥ ‥'

पिता की बात के बीच मे ही रुष्ट हो कर मेरे पति बोले, 'महाराज, एक शूद्र-कन्या से कैसे विवाह कर सकता हूँ ?'

पिता ने व्यंग्य से कहा था, 'उस जारज कन्या से जिस तरह किया था ?'

पति नाराज होकर बोले, 'जब विवाह किया था तब नही जानता था कि वह जारज है। जानबूझ कर एक शूद्रा से किस तरह विवाह करूँ ? और फिर आपकी बडी लडकी जारज होने पर भी कम से कम शूद्रा तो नही ही थी।'

पिताजी ने कहा, 'तुम विवाह नही करना चाहते तो मत करो। लेकिन तुम्हारे आने-जाने से विमला का अनिष्ट हो रहा है। अत. अब इस आश्रम मे तुम्हारे आने की जरूरत नही है। मै तुम्हारे घर आकर ही तुमसे मिल लिया करूँगा।'

उस दिन के बाद थोडे दिनो के लिए उन्होने आना-जाना बन्द कर दिया था। मैं चातकी की तरह बैठी दिन रात उनके आने की राह देखती रहती। लेकिन कुछ

समय तक आशा बेकार जाती रही। लेकिन अधिक दिन वे संयम नही रख सके। पहले की तरह ही आने-जाने लगे। उनके फिर से दर्शन पा कर मैने भी उनसे लज्जा करना छोड दिया। पिता जी ने यह सब देखा। एक दिन मुझे अपने पास बुला कर कहा, 'मैंने अनाश्रम-व्रत धारण किया है। अब मै हमेशा यहाँ नही रह सकता। अब मैं दूसरे स्थानो की यात्रा करूँगा। तब तुम कहाँ रहोगी ?'

पिताजी की बात सुन कर व्याकुल होकर मै रोने लगी। कहा, 'मै भी आपके साथ चलूँगी। नही तो काशी मे जिस तरह अकेली रहती थी, वैसे ही यहाँ भी रहूँगी।'

पिता जी ने कहा, 'नही विमला, मैने इससे भी उत्तम संकल्प किया है। उपाय किया है कि मेरे न रहने पर भी तुम्हारी रक्षा हो सके। तुम महाराज मानसिह की नई रानी के साथ रहना।'

तब मैने रो कर कहा, 'नही पिता जी, मेरा इस तरह परित्याग मत कीजिए।'

पिता जी ने कहा, 'नही, मै अभी नही जाऊँगा। तुम अब महाराज मानसिंह के यहाँ जाओ। मै यहीं रहूँगा। रोज तुम्हे देखने आऊँगा। तुम वहाँ कैसे रहती हो, यह देख कर, ठीक होने पर जैसा होगा करूँगा।'

युवराज! इस प्रकार मै तुम्हारे घर की बाशिन्दा हो गई। बड़े कौशल से पिता जी ने मुझे अपने दामाद की आँखो से दूर कर दिया।

युवराज! मै तुम्हारे पिता के संरक्षण मे बहुत दिनो तक रही पर तुम मुझे नही पहचानते! तब तुम मात्र दस साल के थे, और अम्बर के राजमहल मे माता के पास रहते थे! मै तुम्हारी विमाता के पास दिल्ली मे रहती थी। फूल की माला की तरह महाराज मानसिंह के गले मे अनेक रमणियाँ झूलती रहती थी। क्या तुम अपनी सभी विमाताओ को पहचानते थे ? क्या तुम्हे जोधपुर की उर्मिला देवी की याद है ? उर्मिला देवी के गुणो का कितना वर्णन करूँ ? उन्होने मुझे कभी दासी नही समझा, मुझे प्राणो से बढ कर सगी बहन जैसा मानती थी। उन्होने मुझे नाना प्रकार की विद्या सिखाने का प्रबन्ध किया। उन्ही की कृपा से मैने सब कुछ सीखा। उन्होने स्वयं भी मुझे पढ़ना-लिखना सिखाया। इन अटपटे अक्षरो से यह पत्र लिखने के योग्य हो सकी हूँ, यह उन्ही, तुम्हारी विमाता उर्मिला देवी की कृपा से।

उर्मिला देवी की कृपा से और भी बहुतेरे लाभ हुए। वे जिस स्नेह से मुझे देखती थी, वैसा ही परिचय महाराज से भी देती। गाने में मुझे निपुणता प्राप्त हो गई थी। मेरे गीत सुन कर महाराज सदा प्रसन्न होते थे। महाराज मुझे अपने परिवार की ही समझते। उन्हे मेरे पिताजी पर भक्ति थी। पिताजी आकर बराबर मुझसे मिलते रहते थे।

उर्मिला देवी के पास मै हर प्रकार से सुखी थी। केवल एक क्लेश था, जिसके लिए धर्म को छोड़ कर और सब कुछ त्यागने को मै तैयार थी, उनके दर्शन न हो पाते।

थे। क्या वे भी मुझे भूल गये थे ? नही, ऐसा नही था। युवराज ! क्या आपको आसमानी नाम की दासी की याद है ? आसमानी से मेरा गहरा स्नेहमय सखी-भाव था। उसे ही मैंने अपने नाथ की खबर लाने को भेजा। उनका पता लगा कर वह उन्हे मेरा संदेश दे आई। उत्तर मे उन्होने भी बहुत-सी बातें कहलाईं। अब उन सब को क्या लिखूँ ? आसमानी के हाथ मैंने उन्हे पत्र भेजा। उन्होने उसका उत्तर भी दिया, फिर यह क्रम बार-बार चला। इस प्रकार बिना मिले भी हम एक दूसरे से बातचीत करते रहे।

इसी तरह तीन साल बीत गये। तीन वर्षो के इस बिछोह मे भी हम एक दूसरे को नही भूले। हम दोनो ही यह समझते थे हमारा प्रणय सेवार की तरह पानी के ऊपर ही ऊपर नही तैर रहा है बल्कि पद्म की तरह नीचे जड भी है। मै नही जानती कि अचानक उनका संयम क्यो टूट गया। एक दिन उन्होने उल्टा काम किया। मैं रात को अपने कमरे मे अकेली सो रही थी। एकाएक नीद टूटी तो दिए के टिमटिमाते प्रकाश मे देखा कि मेरे सिरहाने कोई बैठा है। मेरे उठने के पहले ही मेरे कानो ने ये मधुर शब्द सुने, 'प्राणेश्वरी, डरो मत। मै तुम्हारा सेवक हूँ।'

मैं भला क्या उत्तर देती ? तीन साल के बाद भेंट हुई थी। मै सब कुछ भूल गई। उनके गले से लिपट कर रोने लगी। जल्दी ही मै मरूँगी, इसलिए अब मुझे लाज नही है, सब बातें खोल कर कहे दे रही हूँ।

जब मेरा बोल फूटा तो मैने पूछा, 'यहाँ तुम कैसे आ सके ?'

वे बोले, 'आसमानी से पूछना। उसी के साथ पनभरा कहार बन कर भीतर आया, तभी से छिपा हूँ।'

'अब !'

'अब क्या ? तुम जो करो।'

मैं सोचने लगी कि क्या करूँ, किस तरह बचाऊँ ! चित जिधर जाने लगा, उधर ही मति भी भागने लगी। यही सब सोच ही रही थी कि मेरे कमरे का दरवाजा खुला। देखा, सामने महाराज मानसिंह खडे हैं।

विस्तार की जरूरत नही। वीरेन्द्र सिंह कैदखाने मे बद किए गए। महाराज ने उन्हे दण्डित करने का निश्चय किया। मेरे मन की क्या दशा हुई, आप सहज ही समझ सकते है। मैं जाकर उर्मिला देवी के पैरो में लोटने लगी, अपना दोष माना। सब दोष अपने सिर ओढ लिया। पिता जी से भेंट होने पर उनके पाँवो पर भी पडी। महाराज उन पर श्रद्धा रखते थे, जरूर ही उनकी बात मान लेंगे। मैंने कहा, 'आप अपनी बडी लडकी की बात याद कीजिए।'

लगता है कि पिता जी ने महाराज से बातें की होगी। उन्होने मेरे रोने-धोने पर तनिक भी ध्यान न दिया। क्रोध से बोले, 'पापिनी, तू बिलकुल निर्लज्ज हो गई है।'

मेरी रक्षा के लिए उर्मिला देवी ने महाराज से बहुत तरह से कहा सुना। महाराज बोले, 'चोर यदि विमला से विवाह कर ले तो हम उसे क्षमा कर सकते है।'

महाराज का मतलब समझ कर मै चुप हो गई। लेकिन मेरे नाथ तो महाराज की बात सुन कर अत्यन्त क्रोधित होकर बोले, 'मै जीवन भर चाहे इसी कारागार मे पड़ा रहूँ, पर प्राणदण्ड भी चाहे मिले, लेकिन एक शूद्रा की बेटी से विवाह कदापि न करूँगा। आप हिन्दू होकर ऐसी बात कैसे कहते है ?'

महाराज बोले, 'जब मै अपनी बहन का विवाह शाहजादा सलीम से कर चुका हूँ तो तुमसे एक ब्राह्मण कन्या से विवाह करने को कहने मे हानि क्या है ?'

फिर भी वे तैयार न हुए, बल्कि कहा, 'महाराज ! जो कुछ होना था वह हुआ। आप मुझे छोड दोजिए, मै फिर कभी अब विमला का नाम भी न लूँगा।'

महाराज ने पूछा, 'तो तुमने जो अपराध किया है, उसका प्रायश्चित कहाँ हुआ ? अब यदि तुम विमला का त्याग करोगे तो दूसरे उसे कलंकिनी कह कर उससे घृणा करेंगे, उसे छुएँगे नही।'

फिर भी उस समय वे विवाह के लिए तैयार नही हुए। बाद मे जब कारागार का कष्ट न सहा गया तब लाचार हो कर आधे मन से कहा, 'विमला यदि मेरे घर मे दासी बन कर रह सके, विवाह की बात मेरे जीते जी कभी न उठाए, कभी पत्नी रूप मे अपना परिचय न दे तो मै उस शूद्रा से विवाह कर सकता हूँ, अन्यथा नही।'

मैने अतीव प्रसन्नता से वह भी स्वीकार किया। सचमुच मै धन, यश, गौरव या परिचय आदि के लिए इच्छुक न थी। पिताजी और महाराज दोनो ही सहमत हुए। तब मै राजभवन से अपने पति के घर दासी बन कर आई।

वास्तव मे उन्होने अनिच्छा तथा दूसरो के दबाव से ही विवाह किया था। ऐसी स्थिति मे विवाह करने पर भला कौन स्त्री का आदर करता है ? विवाह के बाद पति की आँखो मे मै बिष की तरह खटकने लगी। पहले का प्रणय अब बिल्कुल ही नही रह गया था। महाराजा मानसिंह द्वारा किए गए अपमान को याद कर वे मुझे बराबर ही भला-बुरा कहते थे। लेकिन उस तिरस्कार को ही मै आदर समझती थी। इसी तरह काफी समय बीत गया। उस समय कुल के परिचय का भला अर्थ ही क्या है ? मै अपना परिचय दे चुकी, और बाते जरूरी नही है। समय आने पर मै फिर से अपने पति की प्रणयभागिनी हुई थी। परन्तु अम्बरपति पर उनकी पहले से रोष-दृष्टि थी। भाग्य मे यही सब लिखा था, नही तो यह सब दुर्घटनाएँ क्यो होती ?

युवराजा मै अपना पूरा परिचय दे चुकी। इससे अपने पतिज्ञा का पालन-मात्र ही मेरा उद्देश्य नही है। बहुत से लोग सोचते है कि कुल धर्म छोड कर मै गढ़ मन्दारन के अधिपति की रक्षिता थी। मेरे मर जाने के बाद मेरे नाम के साथ जुडा यह कलंक आप मिटा देंगे, इसी आशा से इतना सब लिखा है।

इस पत्र में मैने मात्र अपना ही विवरण लिखा है। जिसकी बातो के लिए आप का मन चंचल है, इसका नाम भी नही लिया। अब समझ लीजिए कि वह नाम इस धरती पर से सदा के लिए लुप्त हो गया है। कभी कोई तिलोत्तमा नाम की भी थी, यह भूल जाइए।'

ओसमान ने पूरा पत्र पढ कर कहा, 'माँ, आप ने कभी मेरी जान बचाई थी। अब मै उसका बदला दूँगा।'

विमला ने लम्बी सास छोड कर कहा, 'अब इस धरती पर ऐसा कौन सा उपकार बचा है जो तुम मेरे लिए करोगे ? लेकिन एक उपकार '

'हाँ, कहिए, मै वही उपकार करूँगा।'

विमला की आँखे चमक उठी। बोली, 'ओसमान ! क्या कह रहे हो ? इस जले दिल को और धोखा क्या देते हो ?'

उँगली से एक अगूठी उतार कर ओसमान ने कहा, 'यह अँगूठी ले लो। दो एक दिन मे तो कोई काम न हो सकेगा। कतलू खॉ का जन्म दिन जल्दी ही आ रहा है। उस दिन बडा भारी उत्सव होता है। सभी पहरेदार भी खुशी से मतवाले रहते है। मै उसी दिन तुम्हारा उद्धार कर सकूँगा। उसी दिन आधी रात को तुम अन्त पुर के द्वार पर आना। वहाँ पर अगर कोई दूसरा आदमी तुम्हे ऐसी ही दूसरी अँगूठी दिखाए तो उसी के साथ बाहर चली आना। मुझे विश्वास है कि तुम बिना किसी सकट के चली आ सकोगी। आगे सब खुदा की मरजी पर है।'

'ईश्वर तुम्हे लम्बी उम्र दे और मै क्या कहूँ ?' इसके आगे विमला कुछ न कह सकी। उसका गला भर आया।

विमला वहाँ से चलने वाली थी तभी ओसमान ने कहा, 'एक बात के लिए सतर्क करे देता हूँ कि अकेली ही आइएगा। आप के साथ कोई और होगा तो काम बनने की जगह बिगड जायगा।'

विमला समझ गई कि ओसमान का इशारा तिलोत्तमा के लिए है। मन ही मन सोचा, 'ठीक है, दो जन न जा सकेंगे तो तिलोत्तमा अकेले ही जाएगी।'

विमला चली गई।

| ८ |

आरोग्य

दिन बीत जायेंगे। चाहे जैसे भी हो, दिन बीत ही जाते है, ठहरे नही रहते। यात्री चाहे जितने बडे तूफान मे फँसा हो, आश्रय न मिलता हो, तब भी दिन बीतेगा

हाँ, रुका नही रहेगा। कल तक ठहरो, थोडा धैर्य धरो। प्रतीक्षा करो। अच्छे दिन आवेगे, सूरज उगेगा। और किसके दिन नही बीतते ? दुख को स्थायी करने को कौन सा दिन ठहरा रहता है ? फिर यह रोना क्यो ?

तिलोत्तमा एक प्रकार से धूल मे पडी लोट रही है, फिर भी दिन तो बीत ही रहे है।

विमला के दिल मे प्रतिहिंसा की एक नागिन बैठी हुई शरीर को विष से जर्जर कर रही है। पल भर के लिए उसका दर्शन असहनीय हो उठता है, फिर भी दिन बीत ही रहे है।

कतलू खॉ मसनद लगा कर बैठा है। शत्रु पर विजय पा कर उसके दिन सुख से बीत रहे है। उसके दिन भी नही ठहरते।

बीमार जगतसिंह शैय्या पर है। रोगी का दिन कितना बडा और कठिन होता है। कौन नही जानता! फिर भी, उनके भी दिन बीत ही रहे हैं।

सभी के दिन बीत रहे है।

दिन पर दिन जगतसिंह चगे होने लगे। मृत्यु के मुँह से वापस आकर राजकुमार दिन पर दिन स्वस्थ होने लगे। खाना खाने लगे। शरीर मे शक्ति बढने लगी। फिर उन्हे कई चिन्ताओ ने आ घेरा—

पहली चिन्ता थी—तिलोत्तमा कहाँ है ? राकुमार जितने स्वस्थ होते, उतनी ही व्यग्रता से व्याकुल हो सब से पूछते। पर कोई ठीक से सतोषप्रद जवाब न दे सका। आयशा को नही मालूम। ओसमान को नही मालूम। शायद दास-दासियो को ज्ञात होगा पर आदेश न होने पर वे बताते नही। राजकुमार तो यो व्यग्र हो उठे जैसे काँटो की शय्या पर सो रहे हो!

दूसरी चिन्ता थी—अपना भविष्य! क्या होगा ? एकाएक इसका उत्तर कौन दे ? राजकुमार बन्दी है। ओसमान और आयशा की दया से कारागार के बदले इस आरामदेह कमरे मे रह रहे है। सेवा-टहल के लिए दास-दासियाँ है। जब जिस चीज की जरूरत होती है, हाजिर की जाती है। आयशा एक सगी बहन से अधिक स्नेह से सेवा करती है। फिर भी दरवाजे पर पहरेदार है। वे वैसे ही कैद है जेसे सोने के पिंजड़े मे कोई पक्षी। इससे कब छुटकारा होगा ? क्या कभी छुटकारा हो सकेगा ? उनकी सेना कहाँ है ? सेनापति के बिना उसकी क्या हालत होगी ?

तीसरी चिन्ता थी—आयशा! यह विस्मय मे डालने वाली, सेवा व परोपकार की प्रतिमूर्ति भला कैसे इस मिट्टी की धरती पर उतर आई है ?

जगतसिंह ने देखा, आयशा को विश्राम नही, थकावाट नही, अवहेला नहीं, दिन रात एकरस हो रोगी की सेवा मे लगी है। जब तक राजकुमार निरोग नही हुए, वह रोज सबेरे आ उपस्थित होती। जब तक रहती पलग पर बैठी रहती। और जब तक

उसकी माँ बेगम बाँदी भेज कर न बुलवाती वह कभी न जाती ।

रोगी होकर चारपाई पर सभी को लेटना पडता है । रोग शय्या मे जिसके सिर-हाने बैठ कर सुन्दरी रमणी ने पखा झला हो, वही जानता है कि रोगी बनने मे भी कितना सुख है ।

शय्या पर लेटे जगतसिंह देखते—इस शत्रुपुरी मे भी सगी बहन का स्नेह आयशा देती । वह रमणी और युवती है । पूर्ण विकसित कमल । आकर्षक मूर्ति । कुछ-कुछ लम्बा कद, वैसी ही गठन, देवी प्रतिमा सा रूप । प्रकृति ने रानी मूर्ति गढी है । बाँकी चाल है, हस की चाल । सुन्दर ग्रीवा की कोमल भगिमा । घने, घुँघराले केश-गुच्छ ।

जब तक रोगी जगतसिंह को सेवा की जरूरत थी, आयशा हर समय उपस्थित रही । लेकिन ज्यो-ज्यो जगतसिंह निरोग होते गये, आयशा का आना भी कम होता गया । अब तो बस दो-एक बार ही आती है ।

एक दिन । दिन के पिछले पहर, जगतसिंह कमरे की खिडकी पर खडे किले के बाहर देख रहे थे । दूर और पास मे कितने ही आदमी अपने कामो मे व्यस्त आ-जा रहे थे । दुखी हो कर राजकुमार उन पथिको से अपनी तुलना करने लगे । एक जगह देखा—एक आदमी को घेर कर कई लोग भीड लगाए खडे थे । समझे कि कोई तमाशा होगा । मन मे कौतूहल हुआ । थोडी देर बाद भीड छँटने पर देखा कि भीड के बीच वह आदमी कोई पुस्तक लेकर उन्हे कुछ पढ कर सुना रहा था । उसका आकार देख कर राजकुमार को विस्मय हुआ । पत्ते-विहीन मझोले आकार के ताड-वृक्ष जैसा आदमी । पुस्तक पढते समय हाथ भी झटकता था । जगतसिंह चकित होकर उसे देख रहे थे । ठीक इसी समय ओसमान खाँ कमरे मे आये ।

ओसमान खाँ ने पूछा, 'खिडकी से यो अनमने हो कर क्या देख रहे है ?'

'एक सीधी सी लकडी । आप भी देखिए ।'

'उसे क्या आप ने पहले कभी नही देखा ?'

'नही ।'

'वह तो आपलोगो का ही ब्राह्मण है । बातचीत मे बडा मजेदार । उसे मैने गढ मन्दारन के किले मे देखा था ।'

राजकुमार मन ही मन चिन्तित हुए । गढ मन्दारन के किले मे था ? तो क्या यह व्यक्ति तिलोत्तमा की कोई खबर दे सकता है ? व्याकुल हो कर पूछा, 'इसका नाम क्या है ?'

'उसका नाम कुछ मुश्किल है । एकाएक याद नही आता । गणपत ! नही गज-पत, या ऐसा ही कुछ ।'

'गजपत ? गजपत तो इस देश का नाम नही है । यो देखने मे तो यह बङ्गाली ही जान पडता है ।'

'बङ्गाली ही है। भट्टाचार्य। उसकी कोई उपाधि भी है—इल्म-इल्म ·· '

'जनाब, बङ्गाली उपाधि मे इल्म कैसे होगा ? बङ्गला मे इल्म को कहते है, विद्या। विद्याभूषण या विद्यावागीश ·· '

'हाँ, हाँ। विद्या के बाद ऐसा ही कुछ और है। बङ्गला मे हाथी को क्या कहते है ?'

'हस्ती।'

'और कुछ ?'

'करी, दन्ती, वारण, नाग, गज ··'

'बस, बस, याद आया। उसका नाम है, गजपति विद्यादिग्गज।'

'विद्यादिग्गज ! भारी उपाधि है। जैसा नाम, वैसी ही उपाधि। उससे तो बातचीत करने की इच्छा हो रही है।'

ओसमान ने गजपति की कुछ-कुछ बाते सुनी थी। सोचा, इससे बातें करने मे किसी तरह का अनिष्ट नही हो सकता। कहा, 'हाँ, कीजिए न !'

दोनो ही साथ-साथ पास के बाहर वाले कमरे मे गये और नौकर भेज कर गजपति को बुलवाया।

|९|

दिग्गज-सवाद

नौकर के साथ-साथ गजपति विद्यादिग्गज कमरे मे आये। राजकुमार ने पूछा, 'आप क्या ब्राह्मण है ?'

दिग्गज ने हाथ की मुद्रा बनाते हुए कहा—

'यावत् मेरौ स्थिता देवा यावत् गगा महीतले ।।
असारे खलु ससारे सार श्वसुर मन्दिरम् ।।

किसी तरह हँसी रोक कर जगतसिह ने प्रणाम किया। गजपति ने आशीष दिया, 'खुदा खाँ बाबूजी को अच्छी तरह रखे।'

युवराज बोले, 'महाशय, मै मुसलमान नही, मै तो हिन्दू हूँ।'

दिग्गज ने मन मे सोचा—बेटा यवन, मुझे झाँसा दे रहा है। कोई मतलब होगा, नही तो बुलाता क्यो ? मारे डर के मुँह सूख गया। बोला, 'खाँ बाबूजी, मे आपको पहचानता हूँ, आप के अन्न से पला हूँ। नाराज मत होइएगा। श्रीचरणो का दास हूँ।'

जगतसिंह ने कहा, 'महाशय, आप ब्राह्मण है, मै राजपूत, आप ऐसा मत कहिए। आप का नाम है—गजपति विद्यादिग्गज।'

दिग्गज ने सोचा, 'लो, नाम भी जानता है! न जाने क्या आफत आने को है! हाथ जोड कर कहा, 'दोहाई शेखजी की! मै गरीब हूँ। आपके पैरो पडता हूँ।'

जगतसिंह ताड गया कि ब्राह्मण मूर्ख और डरपोक है, इससे कोई मतलब न निकलेगा। पूछा, 'आपके हाथ मे कौन सी पोथी है?'

'जी, यह मानिक पीर की पोथी है।'

'ब्राह्मण के हाथ मे मानिकपीर की पोथी?'

'जी—जी, मै ब्राह्मण था, पर अब ब्राह्मण नही हूँ।'

राजकुमार ने विस्मित हो कर पूछा, 'यह कैसे? आप तो गढ मन्दारन मे रहते थे न?'

दिग्गज ने सोचा—लो फिर आफत आई। मै वहाँ रहता था, यह भी मालूम है। क्या मेरी भी वीरेन्द्रसिंह जैसी दशा होगी? डर के मारे ब्राह्मण रोने लगा। राजकुमार ने रोका, 'यह क्या करते हो?'

रोकर दिग्गज बोला, 'दोहाई खाँ साहब, मेरी जान मत लेना। मै तुम्हारा गुलाम हूँ। बाबा। तुम्हारा गुलाम। बाबा!'

'क्या तुम पागल हो?'

'नही बाबा! मै तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारा ही बाबा!'

'ठीक है तुम डरो नही। तुम मानिक पीर की पोथी पढो। मै सुनूँगा।'

ब्राह्मण झटपट गा—गा कर पढने लगा।

राजकुमार ने रोक कर पूछा, 'ब्राह्मण होकर मानिक पीर की पोथी क्यो पढते हो?'

'मै मुसलमान हो गया हूँ।'

'सो क्यो?'

'जब बहुत से मुसलमान बाबू गढ मे गये तो एक ने कहा—आ ब्राह्मण, तेरी जात मार दे। कह कर उसने मुझे पकड कर मुरगी का पालो बना कर खिला दिया।'

'यह पालो क्या होता है?'

'चावल और घी का बनता है।'

राजकुमार समझ गए। बोले, 'कहते रहो।'

'फिर उन्होने कहा कि 'अब तुम मुसलमान हो गये। तब से मै मुसलमान हूँ।'

'बाकी लोगो का क्या हुआ?'

'बहुत ब्राह्मण इसी तरह मुसलमान हो गये।'

राजकुमार ने ओसमान की ओर ताका। राजकुमार के मौन मे भी ओसमान ने

तीव्र तिरस्कार का भाव देखकर कहा, 'राजकुमार इसमे क्या हानि है ? मुसलमानो की नजर मे मुस्लिम धर्म ही श्रेष्ठ है। बल से हो या छल से, सत्य धर्म का प्रचार धर्म ही है।'

ओसमान को उत्तर न देकर राजकुमार ने दिग्गज से पूछा, 'कहिए विद्यादिग्गज महाशय।'

'अब मै शेख दिग्गज !'

'वही सही। शेख जी, गढमन्दारन के और किसी प्राणी की आप को खबर है ?'

वार्ता के इस क्षेत्र मे राजकुमार को बढते देख कर ओसमान विचलित हुए। दिग्गज ने कहा, 'हॉ, अभिराम स्वामी भाग गये।'

राजकुमार ने समझा, ब्राह्मण मूर्ख है। साफ साफ पूछा, 'वीरेन्द्रसिह का क्या हुआ ?'

'नवाब कतलू खाँ ने उन्हे कटवा डाला।'

सुनते ही राजकुमार का चेहरा तमतमा उठा। ओसमान से पूछा, 'यह क्या ? क्या यह मनगढंत ही कह रहा है ?'

ओसमान ने गंभीरता से कहा, 'नवाब ने विद्रोही समझ कर फैसला करके उन्हे प्राणदण्ड दिया है।'

राजकुमार की आँखो से चिनगारियाँ बरसने लगी। ओसमान से पूछा, 'क्या एक बात पूछूँ ? क्या यह काम आप की सलाह से किया गया है ?'

'मेरी सलाह के विरुद्ध।'

राजकुमार चुप हो गये। ओसमान ने मौका पाकर दिग्गज से कहा, 'अब तुम जा सकते हो।'

दिग्गज उठ कर चलने को हुए कि राजकुमार ने उसका हाथ पकड कर रोक कर पूछा, 'एक बात और ? विमला कहाँ है ?'

साँस छोडने के साथ ही दिग्गज की रुलाई छूट गई। बोला, 'विमला इस समय नवाब की उपपत्नी है।'

राजकुमार ने फुँफकारती आँखो से ओसमान को देख कर पूछा, 'क्या यह भी सच है ?'

ओसमान ने राजकुमार को जवाब न देकर ब्रह्मण से कहा, 'अब तुम और क्या कर रहे हो ? चले जाओ, फौरन।'

राजकुमार ने कस कर ब्राह्मण का हाथ पकड लिया। दिग्गज मे हिलने की भी शक्ति न रही। बोले, 'पल भर ठहरो। सिर्फ एक बात और है ! तिलोत्तमा ?'

'तिलोत्तमा भी नवाब को उपपत्नी हुई है। दास-दासियाँ लेकर वे सब खूब मजे मे है।'

राजकुमार ने झटके से ब्राह्मण का हाथ छोड दिया। ब्राह्मण लडखडा गया गिरते-गिरते बचा।

ओसमान लज्जित होकर कोमल बन कर बोले, 'मै सेनापति मात्र हूँ।'

राजकुमार ने घृणा से कहा, 'आप पिशाच के सेनापति है।'

| १० |

उस रात पल भर को भी जगतसिंह को नीद न आई। जैसे पलंग पर आग बिछी हो, दिल मे भी आग धधक रही हो। जिस तिलोत्तमा के मरने से जगतसिह का ससार सूना हो जाता, इस समय वह तिलोत्तमा जान पर क्यो नही खेल गई? यही उनके मार्मिक क्लेश का कारण था।

तिलोत्तमा मर क्यो नही गई? फूल सी सुकुमार देह, जिस पर जगतसिंह आँख फेरते, वह देह श्मशान की मृत्तिका होगी? इस विस्तृत धरती पर कही भी उस देश का नाम निशान न रहेगा। सोच कर जगतसिह की आँखो से आँसू बह चले। साथ ही कतलू खाँ के हरम की कल्पना-स्मृति भी कौध गई। फूल सी वह सुकुमार देहराशि पापी पठान के अंक मे—सोच कर अग्नि से शरीर भस्म होने लगा।

तिलोत्तमा उनके हृदय मदिर की देवी प्रतिमा है।

वही तिलोत्तमा पठान के कब्जे मे है। कतलू खाँ की उपपत्नी है!

राजपूत क्या अब भी उस प्रतिमा की आराधना कर सकता है?

जिस प्रतिमा को अपने हाथो स्थापित किया है उसे अपने ही हाथो पदच्युत करते संकोच करना क्या राजपूत कुलोचित है? जो प्रतिमा जगतसिंह के हृदय मे स्थापित थी, उसे उठा कर फेंकने मे हृदय के टुकडे-टुकडे हो जायँगे। फिर किस तरह सदा के लिए उस मोहिनी प्रतिमा को भूलें? जब तक मेधा रहेगी, अस्थि, मज्जा और रक्त की बनी देह भी रहेगी। तब तक वह हृदयेश्वरी बन कर रहेगी।

इसी चिन्ता मे राजकुमार के मन की स्थिरता तो गई ही, बुद्धि भी भ्रमित होने लगी, स्मृति भी भटकने लगी। रात बीत जाने पर भी वह सिर पकडे बैठे रहे। सिर चकरा रहा है। कुछ भी सोचने-विचारने की शक्ति नही रही।

एक ही आसन मे बहुत देर से बैठे-बैठे जगतसिंह की देह अकड गई। मानसिक यन्त्रणा से ज्वर का आभास मिला। वे उठ कर जा कर खिडकी पर खडे हो गये।

ठण्डी हवा जगतसिंह के सिर से आ लगी। आकाश घने बादलो से ढँका। तारे भी नही दिखते, ठण्डी हवा के छूने से जगतसिंह थोडे स्थिर हुए। खिडकी पर हाथ रख

कर खडे हुए। कुछ अनमने हुए। अब तक दिल पर जो छुरी चल रही थी, वह रुक गई। आशा छोडना ही बडा कष्टप्रद है। एक बार मन मे निराशा जम जाने के बाद फिर उतना कष्ट नही होता। अधेरे आकाश की ओर सजल आँखो से जगतसिंह देखते हुए सोचने लगे—अपने हृदय का आकाश भी इसी तरह अधकारपूर्ण और नक्षत्रविहीन हो गया है। पहले की बहुत सी घटनायें याद आने लगी। मन स्मृतियो मे डूब गया। वही खडे-खडे उन्हे कब नीद आ गई, उन्हे पता नही चला। खडे-खडे सोते हुए राजकुमार ने स्वप्न देखा। भयानक कष्टप्रद स्वप्न। ओठ काँपे, माथे पर पसीना आया, हाथो की मुट्ठियाँ बँध गईं।

चौकने से नीद टूटी। व्याकुल हो राजकुमार कमरे मे टहलने लगे। कब तक वे यंत्रणा से जलते रहे। कहना मुश्किल है। जब प्रभात की किरणे सर्वत्र फैल गईं, तब फर्श पर पडे जगतसिंह निद्रा मे खोये थे।

ओसमान खाँ ने आकर उन्हे जगाया। जगने पर ओसमान ने उन्हे एक पत्र दिया। पत्र लेकर राजकुमार एक टक ओसमान की ओर देखते रहे। ओसमान ने कहा, 'आप नीचे क्यो सो रहे थे? यह पत्र जिसने भेजा है, उसे मै वचन दे आया था कि पत्र आपको दूँगा। अब तक जिस कारण से यह पत्र आपको नही दिया था, वह कारण अब नही रहा। अब आपको सब कुछ मालूम हो चुका है। अब आप पत्र पढ लीजिएगा, मै फिर आऊँगा। जवाब देना चाहे तो वह भी पहुँचा दूँगा।'

कह कर ओसमान खाँ चले गये।

अकेले बैठे राजकुमार विमला का पत्र पढने लगे। पढ कर पत्र को जला डाला। जब तक पत्र जलता रहा। एकटक उसे देखते रहे। फिर अपने आप बोले, 'स्मृति-चिह्न को आग मे जला दिया पर स्मृति के सताप के लिए क्या करूँ?'

नहा-धोकर, पूजा-पाठ समाप्त कर राजकुमार ने हाथ जोड कर दृष्टि ऊपर उठा कर कहा, 'गुरुदेव, दास को भूलना मत। मै राजधर्म की रक्षा करूँगा। क्षत्रियोचित कार्य करूँगा। विधर्मी की उपपत्नी को चित्त से दूर करूँगा। इस कर्म मे यदि शरीर का अत हो तो तुम्हे पाऊँगा। मनुष्य के लिए जो कुछ संभव है, कर रहा हूँ। मैं अब तिलोत्तमा को देखना नही चाहता। उसकी आकाक्षा छोड दी है। क्या उसकी स्मृति भी मिटा सकूँगा? अब उस स्मृति की यातना नही सही जाती।'

प्रतिमा विसर्जित हो गई।

उधर धूल की शय्या पर लेटी तिलोत्तमा एक नक्षत्र की ओर देख रही थी। वहाँ से भी उसे अब प्रकाश नही मिलता। इस घोर तूफान मे जिस लता से उसने अपने प्राण बाँधे थे, वह भी टूट गई। जिस बेड़े को हृदय से लगा कर वह समुद्र पार कर रही थी, वह भी डूब गया।

| ११ |

गृहान्तर

उसी दिन पिछले पहर राजकुमार के पास आकर ओसमान ने पूछा, 'युवराज ! क्या आप कोई जवाब देना चाहते हैं ?'

राजकुमार ने उत्तर लिख रखा था। पत्र ओसमान को पकडा दिया। तब ओसमान ने कहा, 'क्षमा कीजिएगा, हमारा नियम यह है कि कोई दुर्गवासी जब किसी को पत्र भेजता है तो दुर्गरक्षक पत्र को पढे बिना नही भेजता।'

'इतना कहना काफी है, आप पत्र पढ लीजिए। जी चाहे तो दे दीजिएगा।'

ओसमान ने पत्र पढा। सिर्फ इतना ही लिखा था—

'अभागिन ! मै तेरे अपराधो को कभी न भूलूँगा। यदि तुम सचमुच पतिव्रता होओ तो जल्दी ही पति का मार्ग पकड कर अपने कलक को धो डालो।

जगतसिह।'

पत्र पढ कर ओसमान ने कहा, 'राजकुमार, आपका हृदय पत्थर है।'

राजकुमार ने व्यग्य से पूछा, 'पठानो से भी कडा ?'

ओसमान का चेहरा लाल हो गया। बोला, 'मेरा ख्याल है कि पठानो ने सब तरह की अशिष्टता आप से न बरती होगी।'

राजकुमार थोडा कुपित हुए, थोडा लज्जित भी। बोले, 'नही महाशय, मै अपनी बात नही कह रहा। आपने तो मुझ पर हर प्रकार से दया का ही व्यवहार किया है। बन्दी करके भी जान नही ली। दवा-दारू कराई है। जिसे कारागार मे जंजीर से बँधा होना चाहिये उसे आपने राजमहल का सुख दिया है। इससे ज्यादा और क्या कीजिएगा ? मैं आपकी शराफत के जाल मे फँसता जा रहा हूँ। इस सुख का नतीजा मेरी समझ मे नही आता। मै बन्दी हूँ तो मुझे कारागार मे जगह दीजिये। दया की इस जजीर से मुक्त कीजिए। अगर मैं बन्दी न होऊँ तो मुझे इस सोने के पिजडे मे अटका रखने की भी क्या जरूरत है ?'

ओसमान ने सयत स्वर मे कहा, 'राजकुमार, अशुभ के लिए आप इतने उतावले क्यो हो रहे हैं ? अमगल को बुलाना नही पडता। वह तो अपने आप ही आ जाता है।'

'इस फूल-शय्या को छोड कर कारागार की पाषाण-शय्या पर लेटने को राजपूत अमंगल नही मानते।'

'पाषाण-शय्या भी अगर अतिम अमंगल होती तो हानि ही क्या थी ?'

'यदि कतलू खाँ को उचित दड नही दे सका तो मृत्यु से भी क्या हानि है ?'

'युवराज ! सावधान ! पठान जो कहता है वही करता है।'

'सेनापति ! यदि आप मुझे धमकाने आये हो तो, यह प्रयास व्यर्थ होगा।'

'राजकुमार, हम एक दूसरे को इतना जानते है कि बेकार बात बढाना किसी का उद्देश्य नही हो सकता। मै आपके पास एक खास काम से आया हूँ।'

'तो कहिए।'

'मै इस समय जो प्रस्ताव करूँगा उसे कतलू खाँ की आज्ञा से किया हुआ समझिएगा।'

'ठीक है।'

'सुनिए, राजपूतो और पठानो की लडाई मे दोनो की हानि है।'

'पठानो का नाश करना ही इस युद्ध का उद्देश्य है।'

'सच है, पर दोनो के नाश के सिवा एक के उत्थान की कितनी सम्भावना है, यह आप देख रहे है। आपने देखा कि गढ मन्दारन को जीतने वाले बिल्कुल कमजोर ही नही है।'

'बलवान तो नही, हाँ चतुर-होशियार जरूर है।'

'कुछ हो, अपनी तारीफ करना मेरा उद्देश्य नही। मुगल बादशाह से बैर करके पठान उडीसा मे सुख से नही रह सकेगे, लेकिन मुगल बादशाह भी कभी पठानो को अपना गुलाम नही बना सकेगे। सोच कर देखिए, दिल्ली से उडीसा कितनी दूर है। माना कि दिल्ली के बादशाह ने मानसिंह की शक्ति के कारण इस बार उडीसा को जीत भी लिया तो उनकी विजय-पताका इस देश मे भला कितने दिनो फहरा सकेगी ? महाराज मान-सिंह के जाते ही उडीसा से दिल्ली का अधिकार भी चला जायगा। इसके पहले भी तो दिल्ली ने उडीसा पर फतह किया था, पर कितने दिनो टिक सके ? इस बार भी वैसा ही होगा। पठानो ने कभी गुलामी नही मानी। एक पठान भी जीता रहेगा तो लडता रहेगा। तो फिर राजपूतो और पठानो का खून बहाने से क्या लाभ ?'

'तो आप चाहते क्या है ?'

'मै कुछ नही चाहता। मेरे नवाब सुलह करने के लिए कहते है।'

'किस तरह की सुलह ?'

'दोनो पक्ष थोडा-थोडा झुकें। नवाब कतलू खाँ ने बंगाल का जो हिस्सा जीता है, उसे वे छोड देगे। बादशाह भी उडीसा से नजर फेर लें, अपनी सेना ले जायँ, और फिर कभी हमला न करे। इसमे भी पठानो का ही नुकसान है, बादशाह का नही। हम तो जीती हुई जमीन छोड रहे है, बादशाह को तो जो नही जीता, वही छोडना है।'

'अच्छी बात है, पर यह प्रस्ताव मुझसे क्यो किया जा रहा है ? सुलह की बात तो महाराज मानसिंह करेगे। उनके पास ही दूत भेजिए।'

'महाराज के पास दूत भेजा गया था। दुर्भाग्य से किसी ने उन्हे खबर दे दी है

कि पठानो ने आपको मार डाला है। उसी शोक व क्रोध से महाराज ने दूत की बात पर विश्वास नही किया। अगर आप खुद सुलह का प्रस्ताव करें तो वे अवश्य राजी होगे।'

'साफ-साफ कहिये। मेरे पत्र भेजने से ही जब महाराज को विश्वास हो सकता है तो मेरे जाने की बात क्यो करते है ?'

'इसलिए कि महाराज हमारी स्थिति ठीक-ठीक नही जानते। आप उन्हे हमारी ताकत का सही अदाज दे सकेगे। और आपके कहने से वे जल्दी मानेगे। फिर पत्र से पूरा काम भी न होगा। इससे आपको भी कारागार से मुक्ति मिल जायेगी। इसलिए नवाब कतलू खाँ की इच्छा है कि आप सुलह की बात चलावें।'

'पिताजी के पास जाने मे मुझे कोई एतराज नही है।'

'लेकिन एक निवेदन और है। आप अगर सुलह न करा सकें तो फिर यही लौट आने का वचन दे जायें।'

'वचन देकर भी लौट आऊँगा, इसका क्या भरोसा ?'

'पूरा भरोसा है। राजपूत कभी वचन-भग नही करते।'

'तो मै वचन देता हूँ कि पिताजी से मिल कर मै लौट आऊँगा।'

'तो आप महाराज से हमारी इच्छानुसार सुलह का प्रयत्न करेंगे, यह भी कह जाइए।'

'सेनापति ! मै यह वायदा नही कर सकता। दिल्ली के बादशाह ने मुझे पठानो को जीतने के लिए भेजा है। मै तो पठानो को जीतूँगा ही। सुलह के लिए मुझे नही भेजा गया। इसलिए न तो सुलह करूँगा न उसके लिये कोशिश करूँगा।'

ओसमान दुखी हो गये। बोले, 'आपने युवराज जैसा ही जवाब दिया है, लेकिन सोच कर देखिये, आपके छुटकारे का और दूसरा उपाय क्या है ?'

'मेरे छूटने न छूटने से दिल्ली के बादशाह का क्या बनता बिगडता है ? राजपूत-कुल मे और भी बहुत से राजकुमार है।'

'युवराज ! यह जिद छोड दीजिये।'

'क्यो ?'

'साफ बात यह है कि आपके द्वारा सुलह हो सकती है, इसी उम्मीद पर नवाब ने आपको इतने आदर से यहाँ रखा है। आप इतने टेढ़े पडेंगे तो तकलीफें बढ सकती है।'

'फिर डराते हो ? अभी-अभी मैंने आपसे कारागार जाने को कहा है।'

'युवराज ! अगर कारागार भर से नवाब साहब मान जाएँ तब खैर ही समझिये।'

युवराज के भवो मे बल पडे। आँखो से अगारे फूट निकले। बोले, 'बहुत होगा, वीरेन्द्रसिह की तरह ही कटवा देगे।'

'ठीक है, मै जाता हूँ। मैने अपना फर्ज पूरा किया। अब कतलू खाँ का हुक्म दूसरे दूत से सुनिएगा।'

थोडी देर बाद ही दूसरा दूत आया। वह सैनिक था। उसके साथ चार और हथियारबन्द सैनिक थे। राजकुमार ने पूछा, 'क्या है ?'

'आपकी जगह बदली जाएगी।'

'हम तैयार है, चलो।' कहकर युवराज सैनिको के साथ चल पडे।

| १२ |

मुक्ति-प्रयास

उत्सव का दिन। आज कतलू खॉ का जन्म-दिन है। दिन भर लोग राग-रग मे लगे रहे। रात के लिये और तैयारी है। अभी-अभी शाम बीती है। किले मे सब तरफ रोशनी ही रोशनी है। सभी दासियाँ सजी-बजी है। सुनहरे, जरीदार, नीले, लाल, गुलाबी, हरे कपडे पहने और गहनो से लदी सभी चमकती घूम रही है। सुन्दरियाँ अपने-अपने कमरे मे बैठी साज-शृगार कर रही है। आज नवाब हरम मे आकर प्रमोद करेंगे। नाच-गाना भी होगा।

एक सुन्दरी बालो को सजा कर कमरे-कमरे मे घूम रही है। आज किसी को कही आने-जाने की रोक नही है। वह सुन्दरी अनुपम रूप वाली है। कतलू खाँ के दिये आभूषण भी उसके पास खूब है। पर सुन्दरी के चेहरे पर रूप का जरा भी घमण्ड या आभूषणो का गर्व नही है। वह गम्भीर व स्थिर थी। आँखो से कठोर ज्वाला निकल रही थी।

इस तरह कमरे-कमरे घूमती हुई विमला एक सजे हुए कमरे मे घुसी। घुस कर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। इस उत्सव के दिन भी उस कमरे मे एक दिया टिमटिमा रहा था। एक किनारे एक पलंग पडा था। उस पर कोई सिर से पॉव तक चादर ओढे पडा है। पलंग के पास खडी हो कर विमला ने नम्रता से कहा, 'मै आई हूँ।'

चादर हटी। एक रमणी उठ कर बैठी। बोली नही। विमला ने फिर कहा, 'तिलोत्तमा, मै आई हूँ।'

तिलोत्तमा चुपचाप विमला की ओर एकटक देखने लगी।

तिलोत्तमा अब पहले वाली शर्मीली लडकी नही है। उस हल्की रोशनी मे भी देखा जा सकता है कि उसकी उम्र दस साल बढ गई है। देह बहुत ही शीर्ण और चेहरा

उदास है। एक बहुत छोटी धोती पहने है। उलझी लटें धूल से भरी है। शरीर पर एक भी आभूषण नही है। पहले के पहने आभूषणो के निशान भर है।

विमला बोली, 'मैंने कहा था, इसलिए आई हूँ। बोलती क्यो नही हो ?'

'क्या बोलूँ ? जो भी कहना था, सब कह चुकी हूँ।'

स्वर से विमला समझ गई कि तिलोत्तमा रो रही है। माथे पर हाथ रख कर चेहरा ऊपर उठा कर देखा। आँसू बह रहे थे। जिस तकिया पर सिर रख कर वह लेटी थी, उस पर हाथ रख कर देखा, वह गीली थी। विमला बोली, 'इस तरह दिन-रात रोते रहने से कितने दिन जी सकोगी ?'

'जीने की जरूरत ही क्या है ? इतने दिनो रही, इसी का पछतावा है।'

विमला चुप हो गई। वह भी रोने लगी थी। थोडी देर बाद बोली, 'अब आज क्या उपाय होगा ?'

तिलोत्तमा ने तिरस्कार से विमला के अंगो पर चढे आभूषणो को देख कर कहा, 'उपाय की जरूरत भी क्या है ?'

'बेटी ! बात मानो। तुम क्या अभी तक कतलू खाँ को नही जान पाई ? फुरसत न मिलने से कहो या हमारा शोक कम करने के लिए समय देने के लिए ही, अभी तक उस दुष्ट ने हमे छोड रखा है। लेकिन आज आखिरी दिन है। आज हमे नृत्यशाला मे न देखेगा तो आफत मचा देगा।'

'अब और कौन सी आफत बाकी है ?'

'तिलोत्तमा इतनी निराश मत हो। अभी हमारे पास प्राण है, धर्म है।'

'तब माँ, ये गहने उतार डालो। तुमने पहने है। मेरी आँखो मे गड रहे है।'

'बेटी, मेरे सभी गहनो को देखे बिना तिरस्कार मत करो।' कह कर विमला ने अपने कपडो मे छिपाई एक छुरी निकाली। उसका तेज फल बिजली की तरह चमका। विस्मित व शंकित हो कर तिलोत्तमा ने पूछा, 'यह तुम्हे कहाँ मिली ?'

'कल अन्त पुर मे एक नई दासी आई है। उसे देखा है।'

'हाँ, आसमानी आई है।'

'अभिराम स्वामी के पास से इसे मैने आसमानी से मगवाया है।'

थोडी देर बाद विमला ने पूछा, 'इस वेष को तुम आज नही छोडोगी ?'

'नही।'

'नाच-गाने में नही जाओगी ?'

'नही।'

'इससे छुट्टी नही पाओगी ?'

तिलोत्तमा रोने लगी। विमला बोली, 'शान्त हो कर सुनो। मैने तुम्हारे छुटकारे का प्रबन्ध किया है।'

तिलोत्तमा प्रश्नभरी दृष्टि से विमला की ओर देखने लगी। तब विमला ने ओसमान वाली अँगूठी देकर तिलोत्तमा से कहा, 'यह अँगूठी लो। नृत्यशाला मे मत जाना। आधी रात से पहले उत्सव पूरा न होगा। तब तक मै पठान को साफ कर दूँगी। मै तेरी विमाता हूँ, यह उसे मालूम हो चुका है। मेरे सामने तुम वहाँ नही जाओगी, इस बहाने उत्सव समाप्त होने तक, तुम्हे देखने की उसकी इच्छा को मै रोके रहूँगी। तुम आधी रात को अन्त पुर के द्वार पर जाना। वहाँ एक आदमी तुम्हे इसी तरह की दूसरी अँगूठी दिखाएगा। बस तुम उसी के साथ बेखटके चली जाना। तुम उससे जहाँ पहुँचाने को कहोगी, वह पहुचा देगा। तुम उससे अभिराम स्वामी की कुटी तक पहुँचाने को कहना।'

सुन कर तिलोत्तमा चमक उठी। विस्मय और आनन्द के प्रभाव से काफी देर तक वह बोल ही न सकी। बाद मे बोली, 'यह सब क्या है ? यह अँगूठी किसने दी ?'

'वह सब बहुत सी बाते हैं। कभी समय मिलने पर कहूँगी। अभी तो तुम वैसा ही करना जेसा मैने तुमसे कहा है।'

'तुम्हारा क्या होगा ? तुम कैसे निकलोगी ?'

'मेरी फिकर छोडो। मै किसी तरह तुमसे कल सबेरे मिलूंगी।'

विमला ने तिलोत्तमा के लिए ही अपने छुटकारे का रास्ता रोका है, यह वह तिलोत्तमा को नही समझा पाई। तिलोत्तमा अब प्रसन्न थी। यह देख विमला खुश हुई। बोली, 'तो मै चली।'

तब कुछ सकुचित हो तिलोत्तमा ने पूछा, 'तुम्हे तो यहाँ का सब हाल मालूम हो गया है। और और सब लोग कैसे है ?'

विमला ने देखा कि इस विपत्ति के समय भी तिलोत्तमा के दिल मे जगतसिंह जमे है। तब तक विमला को युवराज का वह निष्ठुर पत्र मिल चुका था। उसमे कही तिलोत्तमा का नाम भी न था। यह बात तिलोत्तमा जानेगी तो उसके घाव पर नमक पड जाएगा। अतः उस बात को छिपा कर विमला ने कहा, 'जगतसिह इसी किले मे है और शरीर से कुशल है।'

तिमोत्तमा चुप हो गई। आँखें पोछती हुई विमला वहाँ से चली गई।

१२

अँगूठी का उपयोग

विमला के जाने के बाद तिलोत्तमा अनेक प्रकार की चिन्ताओ मे डूब गई। पापी, दुरात्मा की कैद से जल्द मुक्ति की आशा हुई है, यही बात बार-बार याद आने

लगी। पर यही बात नही, विमला भी उसे प्राणो से ज्यादा प्यार करती है। उसने मुक्ति की व्यवस्था की है, यही सोच कर तिलोत्तमा प्रसन्न हुई। लेकिन छुटकारा पा कर भी तिलोत्तमा कहाँ जायेगी ? अब तो पिता जी का भी घर नही रहा। यही सोच कर वह रो पडी। तभी अन्य सभी चिन्ताओ को दबा कर एक नई चिन्ता उपजी—राजकुमार तो कुशल से है ? कहाँ है ? क्या वे भी बन्दी है ? सोचते-सोचते तिलोत्तमा की आँखे बरसने लगी। सोचा, हे भगवान ! राजकुमार मेरे ही कारण बन्दी बनाए गए। उनके लिए अपनी जान देकर भी क्या कभी उऋण हो सकती हूँ ? फिर सोचा—कि वे भी कारागार मे है ? वह कारागार कैसा होगा ? क्या वहाँ और कोई नही जा सकता ? वे वहाँ अकेले बैठे क्या सोचते होगे ? क्या उन्हे मेरी याद आती होगी ? जरूर आती होगी। मै ही तो उनकी यत्रणा का कारण हूँ। वे मुझे अवश्य ही खूब कोसते होगे।' फिर सोचा—नही, वे भला कोसेंगे क्यो ? जैसे वे बन्दी है, वैसे ही तो मै भी बन्दिनी हूँ। फिर भी यदि वे घृणा करेंगे तो मै, पाँव पकड कर समझाऊँगी। अगर न मानेंगे तो मै उनके सामने ही अपनी जान दे दूँगी। लेकिन उनसे कब भेंट होगी ? किस तरह उन्हे छुटकारा मिलेगा ? मेरे अकेले छुटकारा पाने मे भला क्या काम बनेगा ? विमला को यह अँगूठी कहाँ मिली ? क्या युवराज के छुटकारे के लिए यही कौशल काम न देगा ? क्या उन्हें यह अँगूठी देने से उन्हे मुक्ति नही मिलेगी ? मुझे लिवाने कौन आयेगा ? उसके माध्यम से क्या कोई उपाय नही हो सकता ? अच्छा, उसी से पूछूँगी। क्या एक बार भी भेंट नही हो सकती ? लेकिन किस तरह भेंट करूँगी ? भेंट होने पर क्या कह कर मन की तडप को मिटा सकूँगी ?

तभी एक बाँदी कमरे मे आई। उससे तिलोत्तमा ने पूछा, 'कितनी रात है ?' बाँदी ने कहा, 'रात का दूसरा पहर बीत चला।'

तिलोत्तमा दासी के बाहर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। उसके जाते ही विमला द्वारा दी गई अँगूठी ले कर वह कमरे से बाहर आई। उसका मन एक बार फिर आशंका से भर उठा। पैर काँपे, हृदय काँपा, मुँह सूखा। एक कदम आगे बढती तो एक कदम पीछे हटती। फिर हिम्मत कर के अन्त पुर के द्वार पर गई, पहरेदार, खोजे, हबशी सभी नशे मे धुत् थे। कोई उसे देख न सका। देखा भी होगा तो ध्यान नही दिया। लेकिन तिलोत्तमा के ऐसा लगता जैसे सभी उसे ही घूर रहे है। किसी तरह दरवाजे तक गई। वहाँ पहरेदारो मे कोई सो रहा था, कोई जागा था, पर बेहोश था, कोई-कोई कुछ-कुछ होश मे थे। किसी ने उसे रोका नही। एक व्यक्ति पहरेदार के वेष मे द्वार पर खडा था। उसने तिलोत्तमा को देख कर पूछा, 'आपके हाथ मे अँगूठी है ?'

डरी हुई, सहमी तिलोत्तमा ने विमला की दी अँगूठी दिखा दी। पहरेदार ने अच्छी तरह अँगूठी देख कर अपने हाथ की अँगूठी तिलोत्तमा को देखने को दी। फिर

बोला, 'मेरे साथ आइए, कोई डर की बात नही ।'

तिलोत्तमा धडकते दिल से पहरेदार के पीछे-पीछे चली । सभी ओर के पहरेदार आज अचेत थे । कही किसी ने कुछ न पूछा । पहरेदार तिलोत्तमा को साथ लिए कई दरवाजो, आँगनो को पार करता चलता गया । बाद मे किले के फाटक पर आकर पूछा 'आप अब कहाँ जाइएगा ?'

घबराहट मे तिलोत्तमा को याद नही रहा कि विमला ने कहाँ जाने को कहा था । याद करने ही कोशिश करने पर सर्वप्रथम जगतसिह याद आए । इच्छा हुई कि कह दे—जहाँ राजकुमार हो वही ले चलो—पर शत्रु-लज्जा ने मुँह न खुलने दिया । तभी पहरेदार ने फिर पूछा, 'कहाँ ले चलूँ ?'

तिलोत्तमा फिर भी न बोली । दिल धडकने लगा । । आँखो से कुछ दिखता नही, कानो से कुछ सुनाई नही पडता । मुँह से बोल नही निकलता । लेकिन उचेत सी वह कुछ फुसफुसाई । पहरेदार ने सुना—'जगतसिह ।' पहरेदार बोला, 'जगतसिह तो कैद खाने म है । वहाँ कोई नही जा सकता । मुझे हुक्म है कि आप जहाँ जाना चाहे वहाँ पहुँचा आऊँ ।'

पहरेदार किले के भीतर गया । पीछे-पीछे तिलोत्तमा कठपुतली सी चलती गई । पहरेदार ने कैदखाने के दरवाजे पर जा कर देखा कि वहाँ पहरेदार सजग है । उसने एक से पूछा, 'राजकुमार कहाँ है ?'

उसने उँगली से इशारा किया ।

पहरेदार ने पूछा, 'सो रहे है या जाग रहे है ?'

कमरे के द्वार तक जाकर वह लौटा और बोला, 'जाग रहे है ।'

पहरेदार ने कहा, 'कमरे का दरवाजा खोल दो । ये मुलाकात करने जायेगी ।

रक्षक ने कहा, 'ऐसा हुक्म नही है ।'

तब पहरेदार ने रक्षक को ओसमान की अँगूठी दिखाई, जिसे देखते ही झुक कर उसने सलाम किया और दरवाजा खोल दिया ।

कमरे मे एक मामूली खाट पर राजकुमार पडे थे । दरवाजा खुलने की आवाज से चौक कर उधर ही देखने लगे । तिलोत्तमा दरवाजे तक पहुँच कर भी आगे न बढ सकी ।

पहरेदार ने कहा, 'यह क्या ? आप देर क्यो कर रही है ?'

फिर भी तिलोत्तमा के पैर नही उठे ।

'न जाना हो तो वापस चलिए । यहाँ ठहरना नही हो सकता ।'

एक आवेश मे भर कर तिलोत्तमा आगे बढ गई । कमरे मे राजकुमार को देखते ही तिलोत्तमा फिर जड हो गई । दीवार पकड कर चेहरा झुकाए खडी हो गई ।

राजकुमार एकाएक तिलोत्तमा को पहचान न सके । एक स्त्री को आया देख कर चकित हुए । चारपाई से उठ कर दरवाजे के पास आए । देखा और पहचाना ।

क्षण भर को आँखो से आँखे मिली। तिलोत्तमा की दृष्टि पृथ्वी से हट कर राजकुमार के पैरो से जा लगी ?

राजकुमार एक झटके से थोडा पीछे हटे। तिलोत्तमा की देह भी स्थिर हो गई। राजकुमार बोले, 'वीरेन्द्रसिंह की बेटी ?'

तिलोत्तमा के हृदय मे काँटा चुभा। यहाँ भी यही सम्बोधन ! जगतसिंह क्या उसका नाम भूल गए ?

दोनो ओर से सन्नाटा।

राजकुमार ने पूछा, 'यहाँ किसलिए ?'

कैसा अजीब प्रश्न है ! तिलोत्तमा का सिर चकराने लगा। कमरा, खाट, दिया, दीवारे सभी जैसे घूमने लगे। सहारे के लिए तिलोत्तमा ने दीवार से सिर टिका लिया।

राजकुमार उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे। कौन उत्तर दे ? उत्तर मिलता न देख कर बोले, 'तुम्हे कष्ट हो रहा है, लौट जाओ। पिछली बातो को भूल जाओ।'

अचानक तिलोत्तमा पेड से छूटी लता की तरह जमीन पर गिर पडी।

| १४ |

भेंट

जगतसिंह ने झुक कर देखा कि तिलोत्तमा बेहोश है। अपने बस्त्र से वे हवा करगे लगे। होश न आता देख, पहरेदार को बुलाया।

तिलोत्तमा का साथी पहरेदार पास आया। जगतसिंह ने कहा, 'एकाएक ये बेहोश हो गई है। इनके साथी को खबर दो।'

'मै ही अकेला इनके साथ आया हूँ।'

'तो किसी दासी को खबर दो।'

पहरेदार चला। राजकुमार ने कहा, 'सुनो, किसी दूसरे से कहोगे तो बेकार शोर होगा। आज रात की खुशी छोड कर भला कौन इनकी मदद को आयेगा ?'

'हाँ, कारागार मे कोई नही आ सकता। मै भी नही ला सकता।'

'हाँ एक उपाय है। तुम किसी तरह नवाब की बेटी को खबर दे दो।'

पहरेदार जल्दी से चला गया।

राजकुमार तिलोत्तमा की दशा देख कर बुरी तरह व्यस्त हुए। अगर आयशा को खबर न मिल सके ! यदि आयशा भी कुछ न कर सके तो !

धीरे-धीरे तिलोत्तमा को कुछ-कुछ होश आया। उसी समय खुले द्वार के रास्ते पहरेदार के साथ दो औरते आई। एक परदे मे थी। दूर से परदे वाली का ऊँचा शरीर, संगीतमय मधुर चाल और लावण्यमयी ग्रीवा-भगी देख कर जगतसिंह समझ गए कि दासी के साथ खुद आयशा ही आई है।

दोनो के दरवाजे पर पहुँचने पर रक्षक ने पहरेदार से पूछा, 'क्या इन्हे भी जाने दूँ ?'

'यह तुम समझो, मै नही जानता।'

'अच्छा।' कह कर रक्षक ने दोनो औरतो को रोक दिया।

तब आयशा ने बुरका उलट दिया। बोली, 'पहरेदार! हमे जाने दो।'

रक्षक आयशा को पहचानता न था। तब दासी ने धीरे से उसस बताया। झट-पट झुक कर रक्षक ने सलाम किया और बोला, 'कसूर माफ हो, आप के लिए कोई रोक नही।'

आयशा कमरे मे गई। जाते ही पूछा, 'राजकुमार! कहिए क्या हाल है ?

राजकुमार ने कोई जवाब न देकर उँगली से जमीन पर पडी तिलोत्तमा की ओर इशारा किया।

आयशा ने पूछा, 'ये कौन है ?'

सकोच से युवराज ने कहा, 'वीरेन्द्रसिंह की बेटी।'

झपट कर आयशा ने तिलोत्तमा को गोद मे उठा लिया। दासी के हाथो मे गुलाबपाश था। आयशा ने तिलोत्तमा के चेहरे पर गुलाबजल छिडका। दासी हवा करने लगी। थोडी देर मे तिलोत्तमा उठ बैठी।

चारो ओर देखते ही तिलोत्तमा को सब याद आ गया। उठ कर कमरे से भाग जाना चाहा उसने। पर शरीर मे इतनी शक्ति न थी। आयशा ने उसका हाथ पकड कर कहा, 'बहन, घबराओ मत। तुम बहुत कमजोर हो। मेरे यहाँ चल कर आराम करो। फिर जहाँ जाना चाहोगी भिजवा दूँगी।'

तिलोत्तमा बोली नही। आयशा ने फिर कहा, 'मुझ पर विश्वास करो। मै तुम्हारे शत्रु की बेटी जरूर हूँ, पर बुरी नही हूँ। शक छोडो। सबेरा होने के पहले ही, जहाँ जाना चाहोगी भिजवा दूँगी।'

तिलोत्तमा के भाव से लगा जैसे वह तैयार हो।

आयशा ने कहा, 'तुम तो चल न सकोगी। इस दासी का सहारा ले कर चलो।'

दासी का कधा पकड कर तिलोत्तमा धीरे-धीरे चली। आयशा भी चलने को हुई। उसने राजकुमार की ओर देखा। लगा, जैसे राजकुमार कुछ कहना चाहते हो। तब आयशा ने दासी से कहा, 'इन्हे तुम मेरे कमरे मे पलग पर लिटा कर फिर मेरे पास आ जाना।'

दासी के साथ तिलोत्तमा चली गई।

जगतसिंह ने मन ही मन मे कहा, 'मेरी तुम्हारी यही आखिरी भेंट है।'

पहरेदार भी चला गया।

|१९|

साफ बातें

आयशा खाट पर बैठ गई। बैठने को और कुछ वहाँ न था। जगतसिंह खडे हो रहे।

आयशा बोली, 'राजकुमार, लगता है आप को कुछ कहना है? मेरे लायक कोई काम हो तो बिना संकोच कहिए। आप की सेवा करके मुझे खुशी होगी।'

राजकुमार बोले, 'नवाबजादी, मुझे किसी खास बात की जरूरत नही है। मेरी जो हालत है, उससे आप से अब फिर मुलाकात होने की आशा नही है। लगता है यही आखिरी भेंट है। आप का मुझ पर जो ऋण है उसे मै बातो से क्या चुकाऊँ! ऐसा भी नही लगता कि कभी कोई काम करके चुका सकूँगा। लेकिन यही भीख माँगता हूँ कि यदि कभी अवसर आ जाय तो मुझे याद करने मे संकोच न कीजिएगा।'

जगतसिंह की करुण आवाज से आयशा को दुख हुआ। बोली, 'आप इतने हताश क्यो हैं? आज का अमगल कल नही रहेगा।'

'मैं हताश नही हूँ। लेकिन अब मैं झूठी आशा भी नही बाँध सकता। अब यह जीवन मै नही चाहता। यह कारागार छोडने को भी जी नही चाहता। मेरे मन की कुल स्थिति भी आप को नही मालूम। मै बता भी नही सकता।'

आयशा व्याकुल हुई। स्नेह से उसने राजकुमार का हाथ पकडा फिर फौरन छोड भी दिया। ऊपर आँखे उठा कर बोली, 'कुमार, तुम्हारे दिल मे इतना दुख क्यो है? मुझे दूसरी न समझना। यदि बुरा न मानो तो कहूँ कि वीरेन्द्रसिह की बेटी क्या '

'उस बात के अब क्या माने है? वह एक सपना था, टूट चुका है।'

फिर दोनो चुप रहे।

अचानक ही राजकुमार काँप उठे। उनके हाथो पर गर्म आँसू की बूँदें गिरी। राजकुमार ने चौक कर देखा, आयशा रो रही थी।

'आयशा! तुम रो रही हो?'

'युवराज ! मैने सोचा न था कि आज तुमसे इस तरह बिदा होऊँगी। मै बहुत कुछ सह सकती हूँ। लेकिन कैदखाने मे तुम्हे अकेला यह मानसिक पीडा भुगतने के लिए छोड कर जाते मुझसे नही बनता। जगतसिंह, तुम मेरे साथ बाहर चलो। अस्तबल से तुम्हे घोडा दूँगी। इसी रात मे तुम अपने शिविर मे चले जाओ।'

उस समय यदि ईष्ट देवी भवानी भी साक्षात प्रकट हो कर वरदान देती तो भी जगतसिंह को इतना ताज्जुब न होता। एकाएक राजकुमार कुछ कह न सके। आयशा ने फिर कहा, 'राजकुमार, आओ मेरे साथ।'

'आयशा ! क्या तुम मुझे कारागार से बाहर भेज सकोगी ?'

'अभी, इसी समय।'

'अपने पिता को जानती हो तो ?'

'इसकी फिक्र मत करो। तुम जब अपने शिविर मे पहुँच जाओगे तब मै उन्हे सब बता दूँगी।'

'पहरेदार जाने देंगे ?'

अपने गले का रत्नहार तोड कर, दिखा कर आयशा ने कहा, 'इस इनाम की लालच मे यमदूत भी रास्ता छोड देंगे।'

'बात खुलने पर तुम्हारे पिता तुम्हे सजा देंगे।'

'देखा जायगा।'

'नही, आयशा, मै नही जाऊँगा।'

आयशा का चेहरा उतर गया। नाराज हो कर पूछा, 'क्यो ?'

'तुमने मेरी जान बचाई है। मै ऐसा कुछ न करूँगा कि तुम्हे सजा मिले।'

'तो तुम सचमुच न जाओगे ?'

'नही, तुम अकेली ही जाओ।'

आयशा फिर रोने लगी।

राजकुमार बोले, 'आयशा, रो क्यो रही हो ?'

आयशा चुप रही। राजकुमार बोले, 'आयशा ! मेरी बात मानो। रोने का कारण बता सको तो बताओ। मै जान दे कर भी रोने का कारण दूर करूँगा। मेरा कारागार मे रहना तुम्हारे रोने का कारण नही है। मुझ जैसे जाने कितने कैदी यहाँ यातना भोग चुके है।'

आयशा ने आँचल से आँसू पोछे। फिर बोली, 'राजकुमार ! अब मै नही रोऊँगी।'

तभी कमरे की दीवार पर किसी की छाया पडी। किसी ने उसे देखा नही। वह आदमी आ कर इन दोनो के पास खडा हो गया। फिर भी कोई जान न पाया।

तब आने वाले ने क्रोध से काँपती तेज आवाज मे कहा, 'नवाबजादी ! यह खूब रही !'

दोनो ने एक साथ देखा, ओसमान खाँ है ।

वापस गए पहरेदार से सब बातें सुन कर ओसमान खाँ आयशा को देखने आये थे । ओसमान को देख कर राजकुमार आयशा के लिए चिंतित हुए । ओसमान का क्रोध देख कर समझा कि ओसमान और कतलू खाँ द्वारा अब आयशा का अपमान अवश्य होगा । लेकिन ओसमान की आवाज सुन कर आयशा उसका मतलब समझ गई । क्षण भर को वह लाल हो उठी । अधीरता का चिन्ह न प्रकट कर के सयत स्वर मे पूछा, 'क्या खूब रही ओसमान ?'

ओसमान वैसे ही बोला, 'इस आधी रात को कैदी के साथ आपका अकेले रहना क्या मतलब रखता है ? रात मे कारागार मे कायदे के खिलाफ बन्दी से मिलने आना, क्या माने रखता है ?'

यह तिरस्कार आयशा के लिए असह्य हो उठा । ओसमान की ओर देख कर दर्प से कहा, 'आधी रात को कैदखाने मे आकर एक कैदी से बाते करने की मेरी इच्छा थी । मेरे काम की अच्छाई-बुराई से तुम्हे मतलब ?'

'मतलब है या नही, यह कल सबेरे नवाब साहब के मुँह से सुनना ।'

'नवाब साहब को मुझे जवाब देना पडेगा, तुम क्यो परेशान होते हो ?'

'अगर मै ही जवाब मांगूँ ?'

आयशा तमक कर खडी हो गई । एकटक ओसमान को देखती रही । क्रोध से उसकी बडी-बडी आँखे और भी बडी हो गईं । चेहरा तमतमा कर और खिल उठा ! भौरे सी काली अलको के साथ माथा एक ओर को हिला । बहुत ही साफ शब्दो मे आयशा ने कहा, 'ओसमान, तुम जवाब चाहते हो तो तुम्हारे लिए मेरा यही जवाब है कि यह कैदी मेरी जान का मालिक है, मेरा आशिक है ।'

उस समय अगर कमरे पर बिजली भी गिरती तो एक राजपूत और एक पठान इतना न चौकते । राजकुमार के मन मे जैसे घोर अंधकार मे किसी ने तेज रोशनी कर दी । वे तत्काल समझ गये कि आयशा क्यो रोई थी । ओसमान को भी पहले से थोडा-थोडा सदेह था, इसीलिए उसने आयशा का इस समय इतना तिरस्कार किया था । लेकिन इतनी बडी बात आयशा उसके मुँह पर इतना खोल कर कह देगी, इसकी उसने सपने मे भी आशा न की थी । ओसमान ने कुछ भी जवाब न दिया ।

आयशा फिर बोली, 'ओसमान, फिर से सुन लो कि यह कैदी मेरा शौहर है । अब इस जिन्दगी में कोई दूसरा मेरे दिल मे जगह नही पा सकता । अब कल अगर वध स्थल इनके खून से रग जाय · ' कहते-कहते आयशा काँपने लगी, 'तो भी देखना कि दिल मे यही बसा रहेगा, इसी को मै हमेशा देखूँगी । इस पल के बाद अगर फिर कभी भेंट न हो या कल अगर छुटकारा पाकर ये सैकडो औरतो से घिर कर आयशा को

भूल जायँ तो भी इनके मोहब्बत की याद मे मै जिन्दगी काट दूँगी। और भो सुन लो कि अभी तक अकेले मे मै इनसे क्या बातें कर रही थी ? मै कह रही थी कि बातो से और दौलत से मै पहरेदारो को बश मे कर लूँगी, अस्तबल से घोडा दूँगी ताकि कैदी भाग जाए। लेकिन यह कैदी ऐसा है कि भागने को तैयार ही नही होता। नही तो तुम्हे अब तक इनकी छाया भी न मिलती।'

आयशा ने आँसू पोछ लिए। फिर थोडा चुप लगा कर, थोडी देर बाद स्वर को सयत कर के कहा, 'ओसमान, ये बातें कह कर मैंने तुम्हे तकलीफ दी है, माफ करना। हम तुम एक दूसरे को स्नेह करते है, हमारा झगडना बुरा है। लेकिन तुमने आज आयशा पर अविश्वास दिखाया। लेकिन आयशा और चाहे जो कुछ हो पर अविश्वासिनी नही है। जो कुछ करती है उसे छिपाती नही। इस समय तो तुम्हारे सामने कहा है। कल जरूरत होगी तो नवाब साहब के सामने भी कहूँगी।'

फिर आयशा ने जगतसिंह की ओर मुड कर कहा, 'राजकुमार तुम भी माफ करना। अगर आज ओसमान मुझे इतनी दिमागी तकलीफ न देते तो आग से तपते इस दिल का यह रहस्य कभी तुम्हारे सामने भी प्रकट न होता। कभी शायद किसी को कानोकान खबर भो न होती।'

राजकुमार चुप खडे रहे। उनका अन्त करण सताप से दहक उठा।

ओसमान कुछ न बोला। आयशा ने फिर कहा, 'ओसमान फिर कहती हूँ कि तुम्हे तकलीफ हुई हो तो माफ करना। पहले की तरह ही मै तुम्हारी बहन हूँ। बहन के नाते तुम भी मेरे लिए मुहब्बत कम मत करना। किस्मत की मार से इस समुद्र मे कूद पडी हूँ। भाई के प्रेम से वचित करके मुझे गहरे पानी मे मत डुबाना।'

सुन्दरी आयशा इतना कह कर, दासी के आने का इन्तजार न करके अकेली ही बाहर निकल गई।

ओसमान भी कुछ देर काठ मारा सा खडा रह कर वापस चला गया।

| १६ |

दासी का प्रेम

उस रात कतलू खाँ के विलास-गृह मे नाच हो रहा था। लेकिन वहाँ न तो कोई नाचने वाली थी न कोई दरबारी। जन्मदिन के उत्सव पर मुगल सम्राट जिस तरह सभी के साथ मिल कर खुशियाँ मनाते थे, वैसा कतलू खाँ का नियम न था। कतलू खाँ

स्वभाव से अकेले और आत्मसुख-रत तथा इन्द्रिय-सुख का इच्छुक था। रात के उत्सव के स्थान पर वह आज अपने हरम की औरतो से घिरे रह कर उन्मत्त हो रहा था। खोजा पहरेदारो के अलावा कोई पुरुष वहाँ नही जा सकता था। औरतो मे ही कोई नाच रही थी, कोई गा रही थी, कोई बजा रही थी। बाकी सब कतलू खाँ को घेर कर आमोद-प्रमोद मे व्यस्त थी।

आमोद-प्रमोद की चीजे वहाँ कम न थी। सुगधित जल से तर कमरा सुवासित था। कीमती शमादानो से कमरा जगमगा रहा था। फूलो से कमरा भरा था। खूब खुशबू! फूलो की खुशबू! सुगधित जल की खुशबू! दीपो की खुशबू! औरतो की खुशबू!

कोई कतलू खाँ की बगल मे बैठी सुरा ढाल रही थी। किसी की लावण्यमयी देह को कतलू खाँ अपनी आँखो से पी रहा था। दूर खडी विमला भी अपनी अनोखी व धारवती कटाक्ष से कतलू खाँ का कलेजा छलनी कर रही थी।

एक क्षण बाद। विमला कतलू खाँ की बगल मे बैठी सुरा ढाल रही थी। अजीब तरह से हँस रही थी। करलू खाँ भी कामुक निगाहो से देख कर तडप रहा था। कतलू खाँ के शरीर मे जैसे आग लग गई। यह रमणी! यह शराब! यह कटाक्ष!

अधे कतलू खाँ से कौन कहे—इस कटाक्ष की छुरी का वार तो झेल जाओगे, पर एक छुरी और है विमला के पास। उसका वार न झेल सकोगे।

कतलू खाँ उन्मत्त हो उठा। विमला को पुकार कर कहा, 'मेरी जान! तुम कहाँ हो?'

विमला ने कतलू खाँ के गले मे बाँहे डाल कर उससे चिपटते हुए कहा, 'यहाँ रही यह गुलाम!'

विमला के एक हाथ मे छुरी चमकी।

उसी समय बेतरह चीख कर कतलू खाँ ने विमला को झटके से दूर फेक दिया और खुद भी बेदम हो कर लडखडा गया। विमला ने उसकी छाती मे मूठ तक छुरी भोक दी थी।

कतलू खाँ चिल्ला पडा, 'शैतान की औलाद!'

'शैतान की औलाद नहीं। वीरेन्द्र सिंह की बेवा।' कहती हुई विमला भी उस कमरे से भाग गई।

धीरे-धीरे कतलू खाँ की बोलने की शक्ति जाती रही, फिर भी वह चिल्लाने की कोशिश कर रहा था। सभी औरतें हाय-तोबा करने लगी। विमला चिल्ला कर भागी। एक कमरे में देखा, पहरेदार और खोजे थे। शोर सुन कर विमला की डरी शक्ल देख कर एक ने पूछा, 'क्या हुआ?'

'सब चौपट हो गया। जल्दी जाओ। कमरे मे मुगल घुस आये है। शायद नवाब साहब का खून कर डाला है ?'

पहरेदार और खोजे उसी तरफ दौडे।

विमला अन्त पुर की ओर भागी। द्वार पर पहरेदार गहरी नीद मे था। विमला बेरोक भीतर चली गई।

बाहर फाटक पर पहरेदार जाग रहे थे। एक ने पूछा, 'कौन हो तुम ? कहाँ जाती हो ?'

उधर अन्त पुर मे भयानक कोलाहल मचा था। सभी उसी तरफ दौडते जा रहे थे। विमला ने डॉट कर कहा, 'बैठे-बैठे क्या देख रहे हो ? यह शोर नही सुनते हो ?'

'यह कैसा शोर है ?'

'भीतर सत्यानाश हो गया। नवाब साहब का कत्ल हो गया है।'

पहरेवाले फाटक छोड कर उधर ही भागे। विमला बेखटके बाहर चली गई।

फाटक से कुछ आगे जाने पर विमला ने देखा कि एक आदमी एक पेड के नीचे खडा है। विमला तत्काल पहचान गई। वे अभिराम स्वामी थे। पास जाते ही विमला से पूछा, 'मै बहुत परेशान हो रहा था, किले मे यह शोर क्यो है ?'

'मै ही अपने वैधव्य-दुख का बदला चुका कर आ रही हूँ। यहाँ ज्यादा मत रुकिये। जल्दी आश्रम मे चलिए। बाद मे सब हाल बताऊँगी। तिलोत्तमा पहुँची या नही ?'

'तिलोत्तमा आगे-आगे आसमानी के साथ जा रही है। वही भेंट होगी।'

दोनो जल्दी-जल्दी आगे बढे। कुटी मे पहुँच कर देखा कि आयशा की कृपा से आसमानी के साथ तिलोत्तमा वहाँ पहुँच चुकी थी। तिलोत्तमा अभिराम स्वामी के पैरो मे गिर कर रोने लगी। उसे शान्त करते हुए स्वामी जी बोले, 'प्रभू की कृपा से तुम दोनो को मुक्ति मिल गई। अब इस क्षेत्र मे एक पल भी ठहरना उचित नही है। यवनो को पता लगे गा तो वे हमारी जान लेकर ही नवाब की मृत्यु का बदला लेंगे।'

|१७|

अतिम समय

विमला के भागने के थोडी ही देर बाद घबराहट मे एक कर्मचारी ने कारागार मे आकर जगतसिह से कहा, 'युवराज ! नवाब साहब का अन्तिम समय है। उन्होने आपको याद किया है।'

चौक कर युवराज ने पूछा, 'यह क्या ?'

'अन्त पुर मे शत्रु घुस आए थे। नवाब साहब का कत्ल करके भाग गये। अभी थोडी जान बाकी है। जल्दी चलिए, नही तो मुलाकात न होगी।'

'तो इस समय मुझसे क्या जरूरत है ?'

'मै यह नही जानता।'

युवराज वहाँ गये। कतलू खाँ की जान खत्म होने वाली थी। उसके चारो ओर, उसे घेर कर ओसमान, आयशा, नाबालिग लडके, बेगम, उप-पत्नियाँ, दास-दासियाँ खडे थे। कोई-कोई तो जोर-जोर से रो भी रहे थे। बच्चे कुछ समझे बिना ही चीख रहे थे। आयशा की आँखो से आँसुओ की धारा बह रही थी। जगतसिंह ने देखा—आयशा स्थिर, गंभीर और अचल है।

युवराज के वहाँ पहुँचते ही ख्वाजा ईसा उनका हाथ पकड कर उन्हे खीचता हुआ मरनासन्न कतलू खाँ के पास ले गया। उसने जोर से कहा, 'जगतसिंह युवराज आये है।'

कतलू खाँ ने बहुत कोशिश करके क्षीण आवाज मे कहा, 'मै दुश्मन हूँ, मर रहा हूँ। अब दुश्मनी छोडो।'

जगतसिंह ने कहा, 'इस समय छोड दिया।'

'तो अनुरोध स्वीकार है ?'

'कैसा अनुरोध ?'

'सब लडके है, लडाई है, बडी प्यास ·· '

आयशा ने नवाब के मुँह मे शरबत डाला।

'लडाई नही, सुलह '

कतलू खाँ आगे नही बोल सका। जगतसिंह भी चुप रहे।

कतलू खाँ ने कातर निगाहो से जगतसिंह की ओर ताका। उत्तर न पाकर रुक-रुक कर बोला, 'तो नही मानते ?'

'पठान लोग दिल्ली के बादशाह को स्वामी मान लें तो मै सुलह करा दूँ।'

'उडीसा ·····'

'आपके बेटे के हाथ से उडीसा न जायेगा।'

मृत्यु के अति निकट कतलू खाँ का चेहरा चमक उठा।

जगतसिंह जाने को हुए। आयशा ने नवाब से कुछ कहा। कतलू खाँ ने युवराज की ओर देखा, कहा, 'आप छोड·· दिए···गए खुदा···आप से और···बाते · है।'

राजकुमार रुक गये।

कतलू खाँ ने कहा, 'कान·· '

समझ कर राजकुमार ने झुक कर नवाब के मुँह के पास कान लगाया। कतलू खाँ ने कहा, 'वीर वीरेन्द्रसिंह प्यास ।'

आयशा ने फिर शरबत पिलाया।

'वीरेन्द्रसिंह की बेटी '

राजकुमार को जैसे बिच्छू ने डक मारा हो। चौक कर सीधे खडे हुए, थोडा पीछे हटे। नवाब बोले, 'बिना बाप की मै पापी प्यास।'

आयशा बार-बार उसका गला तर करने लगी। लेकिन बोल अब कठिनाई से भी न निकले। साँस तोडते हुए नवाब ने कहा, 'वह सती है तुम देखना '

'क्या ?' युवराज गरज उठे।

'मेरी इस बेटी की तरह ही पवित्र है तुम आह बडी प्यास आयशा मै चला • आयशा •'

फिर बोल बन्द हो गए। इतनी बातें करने मे ही शक्ति समाप्त हो गई। फिर नवाब का निर्जीव शरीर जमीन पर लुढक गया। बेटी का नाम लेकर बाप ने साँस तोड दी।

|१८|

प्रतियोगिता

पठानो की कैद से मुक्त हो कर जगतसिंह अपने पिता के पास गए। फिर जैसा वचन दे आये थे, उसी के अनुसार पठानो व मुगलो मे सुलह करा दी। दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली पठानो ने। लेकिन उडीसा के अधिकारी उन्हे मुगल-सम्राट ने बनाए रखा।

सुलह करके दोनो पक्ष कुछ दिनो तक अपनी-अपनी जगह शातिपूर्वक रहे। नई दोस्ती को स्थायी बनाने के लिए कतलू खाँ के मत्री ख्वाजा ईसा कतलू खाँ की लडकी को लेकर ओसमान खाँ के साथ महाराजा मानसिंह के शिविर मे गये। डेढ सौ हाथी और दूसरी बहुत-सी•बहुमूल्य चीजे उपहार-स्वरूप दे कर महाराजा को प्रसन्न किया। राजा ने भी उनका बहुत तरह से सम्मान करके सबको खिलत देकर प्रेमपूर्वक विदा किया।

सुलह की शर्तें पूरी करने तथा शिविर समेटने मे स्वाभाविक रूप से कुछ दिन लग गये। फिर राजपूत सेना के पटना लौटते समय एक दिन पिछले पहर जगतसिंह पठानो से विदा लेने उनके किले मे गये। कारागार मे उस दिन आयशा के सामने

मिलने के बाद से फिर किसी भी दिन ओसमान ने युवराज के प्रति सौहार्द्र प्रकट नही किया। आज भी जगतसिंह साधारण बातचीत करके साधारण शिष्टाचार दिखा कर विदा हुए।

ओसमान से ऊपरी मन से विदा ले कर जगतसिंह ख्वाजा ईसा से विदा लेने गये। फिर वहाँ से आयशा के पास गये। अन्त पुर के एक सेवक से आयशा के पास खबर भेजी। उससे कहलाया, 'कहना कि नवाब साहब की मौत के बाद फिर नवाबजादी से भेट नही हो सकी और अब मै पटना वापस जा रहा हूँ। फिर कभी भेंट न हो सकेगी, ऐसी आशा कम ही है। इसलिए उन्हे सलाम करके जाना चाहता हूँ।'

उस सेवक ने थोडी देर मे लौट कर कहा, 'नवाबजादी का कहना है कि अफसोस है कि युवराज से भेंट न कर सकेंगी। युवराज इसके लिए माफ करे।'

राजकुमार दुखी हो कर शिविर मे लौट आये। आते समय किले के दरवाजे पर देखा कि ओसमान खॉ इन्तजार कर रहे है।

ओसमान को देख कर जगतसिंह ने फिर एक बार नमस्कार किया और आगे बढ गये। ओसमान भी पीछे-पीछे हो लिए। उन्हे पीछे आता देख कर राजकुमार ने कहा, 'सेनापतिजी ! अगर कोइ सेवा हो तो कहिये। मै सौभाग्य मानूँगा।'

ओसमान बोले, 'युवराज ! आपसे कुछ कहना है। लेकिन बात ऐसी है कि सब के सामने नही कह सकूँगा। मेरे साथ अकेले आइये।'

राजकुमार नि सकोच भाव से घोडे पर सवार हो ओसमान के साथ एक ओर को चल पडे। कुछ दूर जाकर दोनो घोडे से उतरे और एक शाल वन मे जाकर बैठे। बन के बीच मे एक खण्डहर था। पुरानी हबेली का अवशेष। घोडो को पेडो से बाँधकर ओसमान राजकुमार को उस खण्डहर मे लिवा ले गया। वहाँ चतुर्दिक सन्नाटा था। बीच मे बडा सा टूटा आँगन था। उसमे एक ओर एक ताजी खुदी कब्र थी। लेकिन वहाँ कोई शव न था। दूसरी ओर एक चिता सजाई गई थी पर वहाँ भी कोई लाश न थी।

आँगन मे आ कर राजकुमार ने पूछा, 'सेनापति ! यह सब क्या है ?,

'यह सब मेरे ही आदेश से हुआ है। अगर आज मै मर जाऊँ तो आप मुझे इसी कब्र मे दफन कर दीजिएगा, और अगर आपकी मृत्यु होगी तो इस चिता पर ब्राह्मण द्वारा आप का दाह करा दूँगा। किसी को मालूम भी न होगा।'

आश्चर्य से भरे युवराज ने पूछा, 'मतलब ?'

'युवराज ! हम पठान है। दिल मे जब आग लगी होती है तो हम उचित अनुचित का ध्यान नही रखते। इस धरती पर आयशा के दो प्रेमी एक साथ नही रह सकते। आज एक को यही रह जाना पडेगा।'

अव कुल बाते समझ कर राजकुमार बहुत क्षुब्ध हुए। पूछा, 'आपका मतलब क्या है ?'

'मतलब साफ है। हथियार उठाओ और लडो। ताकत हो तो मुझे मार कर अपना रास्ता साफ कर लो। नही तो मेरे हाथो मर कर मेरा रास्ता साफ करो।' कह कर ओसमान ने तलवार उठा कर युवराज पर वार किया। विवश युवराज ने भी म्यान से तत्काल तलवार खीच कर वार रोका। ओसमान राजकुमार की जान लेने पर तुला था। लेकिन राजकुमार केवल अपना बचाव करते रहे। शस्त्र चलाने मे दोनो ही प्रवीण थे। देर तक लडाई होने पर भी कोई किसी को परास्त न कर सका। ओसमान के आक्रमण से युवराज घायल हो गये। उनके शरीर से कई जगह खून बहने लगा। लेकिन इतने पर भी उन्होने ओसमान पर एक भी चोट न की, न ओसमान घायल ही हुआ। खून बहने से जगतसिंह को कमजोरी लगने लगी। इस तरह लडने मे अपनी मृत्यु निश्चित समझ कर युवराज ने कहा, 'ओसमान, ठहर जाओ। मै हार मानता हूँ।'

ओसमान बोला, 'मुझे मालूम न था कि राजपूत वीर मरने से डरते है। मुकाबला करो। मै तुम्हे माफ नही करूँगा, मारूँगा। तुम जीते रहोगे तो आयशा कभी मेरी नही हो सकेगी।'

'लेकिन मै आयशा को नही चाहता।'

'पर आयशा तो तुम्हे चाहती है।'

जगतसिंह ने तलवार फेक दी। बोले, 'मै नही लडूँगा। तुमने दुर्दिन मे मेरा उपकार किया है। तुमसे नही लड सकता।'

ओसमान ने तलवार रोक दी और युवराज को एक लात मार कर कहा, 'जो वीर लडने से भागता है, उससे यो लडाता हूँ।'

इस अपमान को राजकुमार सह न सके। धैर्य ने भी उसका साथ छोड दिया। उन्होने लपक कर अपनी तलवार उठाई और एक छलॉग लगा कर ओसमान पर हमला किया। उस प्रहार को ओसमान झेल न सका। युवराज के शक्तिशाली धक्के से ओसमान लडखडा कर गिर पडा। उसकी छाती पर सवार हो कर युवराज ने तलवार छीन ली और उसके गले पर अपनी तलवार रख कर कहा, 'अब बोलो, लडने का हौसला पूरा हुआ या नही ?'

'जान रहते नही होगा।'

'जान तो अभी खत्म कर सकता हूँ।'

'कर दो, नही तो तुम्हारा जानी दुश्मन जीता रहेगा।'

'जीता रहे तो भी मै नही डरता। मै अभी तुम्हारी जान ले सकता हूँ। पर तुमने एक बार मेरी जान बचाई थी, इसलिए छोडे देता हूँ '

फिर ओसमान के सभी अस्त्र छीन कर कहा, 'अब अपने घर जाओ। यवन

होकर तुमने राजपूत को लात मारी थी, इसलिए तुम्हारी यह दशा की। नही तो उपकार करने वाले पर मै हाथ नही उठाता।'

ओसमान सिर झुकाए घोडे पर चढकर चुपचाप किले की ओर चला गया।

युवराज ने पानी मे कपडा भिगो कर अपने घाव पोछे। फिर वे घोडे पर सवार हुए। सवार होने के बाद देखा कि घोडे की लगाम से एक पत्र बंधा है। पत्र खोल कर देखा, वह लम्बे बालो से बंधा था और उसके ऊपर लिखा था—'इस पत्र को दो दिनो तक मत खोलिएगा।'

थोडा सोच कर युवराज ने वही करना निश्चय किया। पत्र कवच मे रख कर, घोडा दौडाते शिविर की ओर चले गये।

फिर दूसरे दिन राजकुमार को आयशा का एक पत्र मिला।

|१९|

आयशा का पत्र

आयशा कलम लेकर पत्र लिखने बैठी। उसका चेहरा अत्यन्त गम्भीर था। जगतसिह को पत्र लिख रही थी। पहले लिखा—'प्राण प्यारे' फिर काट कर लिखा—'राजकुमार।' यह काटते-लिखते आयशा के आँसू बह चले। आयशा ने वह कागज फाड डाला। दूसरे कागज पर लिखना शुरू किया। पर दो तीन शब्द लिखते-लिखते उसके आँसुओ से कागज भीग गया। वह कागज भी फाड डाला। फिर सयत होकर पत्र पूरा किया। किसी तरह पत्र बन्द करके दूत को दिया। पत्र ले कर दूत जगतसिह के शिविर की ओर चला गया। आयशा पलग पर लेट कर रोने लगी।

पत्र पाकर जगतसिह ने पढा, लिखा था—

'राजकुमार,

मै तुमसे सिर्फ इसलिए नही मिली कि मुझे अपने आप पर अब विश्वास नही रहा। यह मत सोचना कि आयशा उतावली है। ओसमान ने अपने दिल मे भयानक आग लगा ली है। तुमसे मिलती तो उसे जरूर क्लेश होता, इसीलिए नही मिली। न मिलने पर तुम दुखी होगे—ऐसा भरोसा भी न था। मैंने अपना सुख-दुख सब खुदा पर छोड दिया है। तुम्हे अपने सामने विदा करती तो, उस क्लेश को सह लेती। तुमसे भेट नही हुई, इस क्लेश को भी दिल पर पत्थर रख कर सह रही हूँ।

मैं एक भीख के लिए यह पत्र लिखा रही हूँ कि यदि तुमने सुना हो कि मै तुमसे

प्रेम करती हूँ तो यह भूल जाना। सोचा था कि इस जिन्दगी मे कभी यह बात खुलने न दूँगी, लेकिन खुदा की इच्छा कि बात खुल गई। खैर अब भूल जाना।

मै नही चाहती कि तुम मुझसे प्रेम करो। मुझे जो कुछ देना था वह मै दे चुकी हूँ। तुमसे मै बदला नही चाहती। मेरा स्नेह इतना गहरा है कि तुम्हारा स्नेह पाये बिना भी मै सुखी हूँ। लेकिन इस बात के अब मतलब क्या है ?

तुम्हे मैने दुखी देखा था। कभी सुखी होना तो आयशा को याद करना और खबर देना। न चाहना तो न देना। लेकिन अगर कभी क्लेश पाओ तो क्या आयशा को याद करोगे ?

तुम्हे मै यदि भविष्य मे पत्र लिखूँ तो लोग निन्दा करेंगे। लेकिन मै तो निर्दोष हूँ। इसलिए मुझसे किसी तरह के नुकसान की कल्पना मत करना, जब इच्छा हो तब पत्र लिखना।

तुम इस देश को छोड कर जा रहे हो ? पर ये पठान शान्त नही है। इसलिए सभव है तुम फिर देश मे आओ। लेकिन अब मुझसे भेंट न होगी। दिल मे बार-बार सोचकर यह निश्चय किया है। स्त्री के हृदय से बहुत हिम्मत की आशा नही करनी चाहिए।

तुमसे मिलने की एक बार और इच्छा है। अगर तुम इस देश मे विवाह करना तो खबर देना। मै तब हाजिर रह कर अपने सामने तुम्हारा ब्याह कराऊँगी। जो तुम्हारी रानी बनेगी, उसके लिए मैने कुछ गहने इकट्ठा कर रखे है। समय आया तो उन्हे अपने हाथो पहनाऊँगी।

एक बात और है। जब तुम्हे आयशा की मौत की खबर मिले तो एक बार इधर जरूर आना, तुम्हारे लिए सदूक मे जो कुछ रख छोडा है, वह ले लेना, प्रार्थना है।

और क्या लिखूँ। बहुत सी बातें लिखने का मन होता है। लेकिन इसकी जरूरत नही। भगवान तुम्हे सुखी रखें। आयशा को याद करके कभी दुखी न होना।'

पत्र पढने के बाद, पत्र को हाथ मे ले कर युवराज टहलने लगे। फिर अचानक, झपट कर कागज ले कर एक पत्र लिखा और दूत को दे दिया।

पत्र मे लिखा था—

'आयशा,

तुम नारी-रत्न हो। आदमी को मानसिक कष्ट देना ही विधाता का काम है। मै तुम्हे उचित जवाब नही दे सका। लेकिन पत्र से मै बहुत दुखी हुआ हूँ। इस पत्र का सही उत्तर मै अभी नही दे सका। लेकिन मुझे भूलना मत। अगर जीवित रहूँगा तो एक वर्ष के बाद इसका उत्तर दूँगा।'

यही उत्तर ले कर दूत आयशा के पास लौट आया।

|२०|

बुझता दीपक

आयशा से बिदा होकर जब से आसमानी के साथ तिलोत्तमा आई थी, तब से किसी को भी उसकी खबर न थी। तिलोत्तमा, विमला, आसमानी और अभिराम स्वामी, किसी का भी कोई पता नही। पठानो और मुगलो मे सुलह हो जाने के बाद जब दोनो पक्षो को वीरेन्द्र सिह के परिवार वालो के कष्टो का पूरा हाल मिला तो दोनो पक्ष इस बात के लिए तैयार हो गये कि वीरेन्द्रसिंह की बेटी को खोज कर के उसे ही गढ मन्दारन का अधिकार सौप दिया जाय। इसलिए ओसमान खाँ, ख्वाजा ईसा और महाराजा मानसिह आदि ने तिलोत्तमा का पता लगाने का अथक प्रयत्न किया। लेकिन इसमे आगे वे कुछ भी पता न लगा सके कि आयशा के पास से तिलोत्तमा आसमानी के साथ गई थी। बाद मे पूरी तरह निराश हो कर महाराजा मानसिंह ने अपने एक विश्वासपात्र अनुचर को गढ-मन्दारन मे बैठाया और आदेश दिया, 'तुम वहाँ रह कर स्वर्गीय जागीरदार वीरेन्द्रसिंह की बेटी का बराबर पता लगाते रहो और पता लगने पर उन्हे ही किले का अधिकार सौप कर तुम वापस आ जाना। उसके लिए तुम्हे समुचित पुरस्कार और जागीर मिलेगी।'

यही निश्चय करके तथा यही व्यवस्था करके महाराजा मानसिह पटना वापस जाने की तैयारी करने लगे।

मरते समय कतलू खाँ ने जो कुछ कहा था उसे सुन कर युवराज जगतसिंह के मन का भाव बदला या नही यह नही कहा जा सकता।

महाराजा मानसिंह के आदेश से उनकी सेना भी शिविर समेटने लगी। अगले दिन सबेरे सेना भी चली जायगी। चलने के एक दिन पहले जगतसिह ने देखा कि अब घोडे की लगाम से बँधा पत्र पढने का समय आ गया है। उन्होने पत्र को खोल कर पढा। उसमे बस इतना ही लिखा था—'यदि तुम्हे धर्म का भय हो, ब्रह्मशाप का भय हो, तो यह पत्र पढते ही यहाँ अकेले आ जाना—अहब्रह्मण।'

पत्र पढ कर राजकुमार का विस्मित होना स्वाभाविक था। एक बार सोचा, शायद किसी शत्रु की चालाकी हो। जाना उचित होगा या नही ? एक निष्ठावान राजपूत के लिए ब्रह्मशाप वाले भय के सिवा और कोई दूसरा भय महत्वपूर्ण न था। इसलिए उन्होने जाने का ही निश्चय किया। अत जाने से पहले अपने अनुचरो मे कहा कि अगर कूच करने के समय हम पहुँच न सके तो सेना मेरी प्रतीक्षा न करके कार्यक्रम के अनुसार आगे बढे। हम वर्दमान या राजमहल मे आ कर मिलेंगे।—यही बात कह कर जगतसिंह उसी शालवन की ओर चल पडे।

उसी दिन वाले टूटे खण्डहर के दरवाजे पर पहुँच कर जगतसिंह ने एक पेड से घोडे को बाँध दिया। फिर इधर-उधर देखा, पर कोई भी दिखाई न पडा। फिर वे सतर्कतापूर्वक खण्डहर के भीतर गये। देखा कि आँगन मे पहले की तरह ही एक ओर एक कब्र खुदी है और एक ओर एक चिता सजी हुई है। चिता पर चढ कर एक ब्राह्मण देवता बैठे हुए है। वे बैठे मुँह झुकाए रो रहे है।

राजकुमार ने पूछा, 'महाराज, यहाँ आपने ही मुझे बुलाया है?'

ब्राह्मण ने चेहरा ऊपर उठाया। पूछने पर राजकुमार जान सका कि बे ही अभिराम स्वामी है।

अभिराम स्वामी को देख कर जगतसिंह के मन मे विस्मय, कौतूहल और प्रसन्नता के, तीनो भाव एक साथ जाग उठे। प्रणाम करके आदरपूर्वक पर व्यग्रता से पूछा, 'आप के दर्शन पाने के लिए मैने कितना प्रयत्न किया है, अब कैसे कहूँ? आप यहाँ यो क्यो बैठे है?'

'अब मै यही रहता हूँ।'

'तो मुझे आप ने किसलिए याद किया है? आप इस तरह रो क्यो रहे हे?'

रोने का जो कारण है, वही कारण आपको बुलाने का भी है। तिलोत्तमा का अतिम समय, मृत्युकाल आ गया है।'

सुन कर धीरे-धीरे, भीतर ही भीतर तिल-तिल करके राजपूत वीर टूटता हुआ जमीन पर बैठ गया। तिलोत्तना के सबध मे प्रारम्भ से अन्त तक की सभी घटनाये एक-एक करके याद आने लगी। एक-एक घटना की स्मृति से हृदय मे तेज छुरी चुभने लगी।—मदिर मे प्रथम-दर्शन, शैलेश्वर की प्रतिमा के सामने प्रतिज्ञा। कमरे मे प्रथम भेट के समय दोनो के उमड़े आँसू, उस कालरात्रि के दृश्य, तिलोत्तमा का मूर्छित चेहरा, यवनगृह मे तिलोत्तमा को यातना, कारागार मे निर्मम व्यवहार। फिर बनवास और अब यह मृत्यु की सूचना ये सभी बाते एक-एक करके राजकुमार के दिल पर तूफान की तरह उठ कर भयानक आघात करने लगी। दिल मे पहले से जलती आग अब प्रचण्ड ज्वाला की तरह जल उठी।

राजकुमार देर तक जड बने चुपचाप बठे रहे।

अभिराम स्वामी ने कहा, 'जिस दिन विमला ने यवन नवाब की हत्या करके अपने वैधव्य का बदला लिया, उसी दिन से मै अपनी बेटी और नतिनी को ले कर यवनो के अत्याचार के डर से जगह-जगह छिपता फिरा। तब से ही तिलोत्तमा बीमार है। वह क्यो बीमार हुई यह तुम्हे खूब अच्छी तरह मालूम है।'

जगतसिह के दिल मे जैसे कुछ खूब गहरे तक छिद गया।

स्वामी जी कहते गये, 'उस दिन से जगह-जगह सुरक्षित रख कर मै उसकी तरह-तरह की चिकित्सा करता रहा। मै खुद चिकित्सक हूँ और चिकित्सा-शास्त्र का मैने

अध्ययन भी किया है। मै ऐसी बहुत-सी दवाइयाँ जानता हूँ जो दूसरे चिकित्सक नही जानते। लेकिन हृदय मे गहरे छिपे रोग की चिकित्सा करना किसी भी चिकित्सक के लिए सभव नही है। अब इसी स्थान को निर्जन और सुरक्षित जान कर हमलोग पाँच दिनो से इस खण्डहर के ही एक कोने मे छिप कर रह रहे है। दैवयोग से उस दिन तुम्हे यहाँ आया देख कर तुम्हारे घोडे की लगाम मे पत्र बाँध दिया था। पहले से ही निश्चय कर रखा था कि यदि अपने उद्योग से तिलोत्तमा को बचा न सकूँगा तो उसका अतिम समय निकट आने पर उसकी एक बार तुमसे भेंट करा कर उसके धधकते अन्त करण को थोडी तृप्ति दे सकूँगा! बस इसी प्रयोजन से तुम्हे यहाँ बुलाया है। उस समय भी मै तिलोत्तमा को ठीक कर लूँगा, ऐसी आशा बाँधे था, पर अब निराश हो गया हूँ। यह समझ मे आ गया था कि दो दिनो मे अगर वह नहीं सम्हली तो उसका अतिम समय निकट आ जायगा। इसी से दो दिनो बाद पत्र पढने को लिखा था। मुझे जो डर था वही अब सच होने जा रहा है। तिलोत्तमा के जीवन की अब मुझे तनिक भी आशा नही है। जीवन का दीप अब बुझने ही वाला है।'

कहते-कहते अभिराम स्वामी रोने लगे।

सब सुनते-सुनते जगतसिंह भी रो पडे।

अभिराम स्वामी ने फिर कहा, 'तुम एक ब एक तिलोत्तमा के सामने मत चले जाना। यह ठीक न होगा। क्या पता, शायद इस हीनावस्था मे वह तुम्हे अचानक देख कर प्रसन्नता के आधिक्य को सम्हाल न पावे! मैने पहले ही कह रखा है कि तुम्हे बुलवाया गया है। अब जा कर खबर दे आऊँ कि तुम आ गये हो। फिर तुम जाना।'

इतना कह कर उस खण्डहर के एक कोने मे स्वयं ही बनाए अन्त पुर की ओर स्वामी जी चले गये। फिर थोडी देर बाद लौट कर राजकुमार से बोले, 'अब आओ।'

स्वामी जी के पीछे पीछे राजकुमार अन्त पुर की ओर गये। उधर जा कर देखा कि एक कमरा टूटते-टूटते किसी प्रकार बच गया है। उसी पर एक टूटी पुरानी खाट पर बीमारी से अत्यन्त दुर्बल हो चुकी, रूपराशि खो कर तिलोत्तमा लेटी है। इतना होने पर भी पहले से रूप-लावण्य की फीकी चमक अभी भी उसे घेरे हुए है। सबेरे के प्रभात-नक्षत्र के बुझने के पहले जैसी आभा है। पास बैठी एक स्त्री विधवा का रूप धरे, बैठी उसके शरीर पर अपना हाथ फेर रही है। वह विधवा विमला है। दीन, मलिन, आभूषण विहीन। पहली बार मे जगतसिंह उसे पहचान ही न सके। पहचानते भी कैसे? जो सौंदर्य की प्रतिमा थी, स्थिर-यौवना थी, वह अब बुढिया हो गई थी।

जब जगतसिंह आ कर तिलोत्तमा को खाट के पास खडे हुए तब वह आँखे बन्द किए लेटी थी।

अभिराम स्वामी ने पुकार कर कहा, 'तिलोत्तमा आँखें खोलो! राजकुमार जगतसिंह आये हुए है।'

सुन कर तिलोत्तमा ने धीरे-धीरे आँखे खोली और राजकुमार की ओर देखा।

तिलोत्तमा को वह दृष्टि ! सूनी, भावहीन, कोमल, स्नेह-व्यजक, तिरस्कार या अभिलाषा से शून्य, किसी भी इच्छा के चिन्हमात्र से भी रहित। एक बार भर नजर जगतसिंह को देख कर तिलोत्तमा ने आँखे झुका ली। पल भर बाद उन्ही सूनी आँखो मे एक अजीब सी भगिमा आई और आँसुओ का धारा बह चली।

अब राजकुमार सह न सके, खडे भी न रह सके, एकाएक उनके मन से लाज का भाव गायब हो गया और तिलोत्तमा के पैरो के पास आवेश के झटके से बैठ कर उन्होने अपने आसुओ से उसकी देहराशि को गीली कर दिया।

|२१|

अनाथ बालिका तिलोत्तमा क्षीण-काया ले कर रोगशय्या पर पडी थी। शय्या के पास ही राजकुमार जगतसिंह बैठे थे।

दिन जाता है, रात आती है, फिर रात जाती है, दिन आता है, फिर रात आती है। राजपूत कुल-भूषण रोगिणी की टूटी खाट की बगल मे बैठे रोगिणी की सेवा—सुश्रुमा मे व्यस्त है। रोगिणी की एकमात्र सहचरी, उस दीन, हीन, शब्दहीन विधवा के अथक परिश्रम मे और कार्य मे यथासम्भव सहयोग व मदद कर रहे है। थकान से चूर क्षीणकाया, दुखियारी विधवा की आँखे उसे खोजती है या नही, उसके चमकदार चेहरे के निष्प्रभ अवशेष पर पहले की सी हँसी आती है या नही, यही जानने की जिज्ञासा से वे बार-बार उसके चेहरे को देखने का प्रयत्न कर रहे है।

कहाँ रहा शिविर ? कहाँ गई सेना ?—शिविर तो बिखर गया। उठकर सेना भी पटना चली गई है। कहा है सब अनुचर ? वे तो शायद दारूकेश्वर के किनारे अपने युवराज के आने की प्रतीक्षा कर रहे होगे। लेकिन कहा है उनके युवराज ! वे तो एक खण्डहर के टूटे कमरे मे भयानक लू और गरमी से सूख गई, मुरझा गई, एक सुकुमार कली को अपने आँसुओ से सींच कर फिर से खिलाने के प्रयत्न मे व्यस्त है।

सेवा और स्नेह का सबल पा कर वह कुसुम-कली फिर से धीरे-धीरे उत्फुल्ल होने लगी। इस ससार मे स्नेह से बढ कर और कौन सा जादू है ! रोग-व्यधि के शमन के लिए सब मे प्रभावकारी प्रधान ओषधि है—प्रणय। नही तो हृदय रोग की और कौन क्या चिकित्सा कर सकता है ?

जैसे बुझने को तत्पर दीपक तेल की एक बूँद के सहारे फिर धीरे-धीरे प्रज्वलित

होकर हँसने लगता है, जैसे भीषण गरमी से सूखी और झुलसी लता आषाढ की नई वर्षा का पानी पा कर फिर धीरे-धीरे विकसित, हरी होने लगती है वैसे ही जगतसिंह का स्नेह-अमृत-जल पा कर तिलोत्तमा की समाप्तप्राय देहराशि फिर से दिन-दिन पुनर्जीवन पाने लगी।

अब तिलोत्तमा मे थोडी सी शक्ति का भी सचार हुआ है। वह स्वय प्रयत्न कर के उठ कर खाट पर बैठने लगी है। विमला के वहाँ न रहने पर एकात पा कर दोनो पास-पास बैठ कर बहुत दिनो की अपने-अपने मन की बातें खोल कर कहते-सुनते है। बहुत दिनो की सचित बहुत सी बातें है। कितने ही मानस-अपराध अभियोग कहे और क्षमा किये गये। कितने नए-नए विश्वास व भरोसे मन मे उठ कर विलीन हो गये थे, उन सब की पुनरावृत्ति हुई। जागते और सोते जिसने भी जो महमोहक सपने देखे, वे सभी कहे-सुने गये।

बीमारी की दशा मे बेहोशी मे, तिलोत्तमा ने एक सपना देखा था। एक दिन कहा—

'नए बसन्त की शोभा से परिपूर्ण एक छोटी सी पहाडी पर मै तुम्हारे सङ्ग पुष्पक्रीडा मे व्यस्त थी। बहुत से बसन्ती फूलो को इकट्ठा कर के मैने तम्हारे लिए मालाएँ तैयार की। एक तुम्हे पहनायी, एक स्वयं पहनी। तुम्हारी कमर की तलवार की मूठ से फँस कर माला टूट गई। तब मैने कहा, 'अब तुम्हें माला न पहनाऊँगी। पैरो मे बेडी डाल कर बाँधूँगी।' कह कर मैने फूलो की बेडी बनाई। तुम्हारे पैरो मे फूल-बेडी बाँधने चली तो तुम पीछे हट गए। मै तुम्हारे पीछे दौडी। तुम तीव्र वेग से पहाडी से नीचे उतरने लगे। रास्ते मे एक क्षीण निर्झरिणी थी। तुम एक ही छलाँग मे कूद कर उसे पार कर गये। लेकिन मै ठहरी स्त्री, प्रयत्न करके भी कूद कर पार न कर सकी। आगे जहाँ निर्झरिणी खूब सकरी थी, वहाँ से पार करने की आशा से मै निर्झरिनी के किनारे-किनारे दौडती हुई पहाडी से उतरने लगी। लेकिन हुआ क्या ? निर्झरिणी का सकरा होना तो दूर रहा, मैं जितना ही उसके किनारे बढती जाती उसका विस्तार उतना ही बढता जाता। वह निर्झरिणी जल्दी ही एक छोटी सीं नदी बन गई। फिर वह छोटी नदी, बडी नदी बन गई। फिर तुम भी दूर जा कर मेरी आँखो से ओझल हो गए। किनारे भी खूब ऊँचे और ऊबड-खाबड दिखे। फिर मेरे पैर नही उठे। थोडी देर के बाद मेरे पैरो के नीचे कगारे तीव्र धमाके के साथ टूट-टूट कर पानी मे गिरने लगे। नीचे प्रचण्ड वेग से चक्कर खाती भँवरो को भी देखने की हिम्मत ही नही पडती थी। नदी मे डूबने के डर से बचने के लिए मैं फिर पहाडी पर चढने लगी। रास्ता बीहड, पैर नही उठते। मैं जोर-जोर से रोने लगी। अक्समात देखा कि कालमूर्ति कतलूखाँ फिर जी उठा है और आ कर उसने मेरा रास्ता रोका है। मेरे गले मे पडी फूलो की माला अचानक लोहे की वजनदार जंजीर बन गई। पुष्प बेडी हाथो से छूट कर पैरो पर जा गिरी, वह भी लोहे

की बेडी बन गई और मेरे पैरो से लिपट गई। एकाएक मेरे सभी अङ्ग जकड गये। तब कतलू खाँ ने मेरा गला पकडा और उठा कर घुमा कर मुझे नदी के बहाव मे झोक दिया।'

स्वप्न सुना कर तिलोत्तमा ने गीली आँखो को पोछ कर कहा, 'युवराज, यह केवल मेरा स्वप्न ही न था तुम्हारे लिये फूलो की जो बेडी बनाई थी, जान पडता है वह सचमुच ही मेरे पैरो मे लोहे की बेडी बन कर पडी है। जो फूलो की माला पहनाई थी, वह तलवार की मूठ से लग कर टूट गई।'

सुन कर युवराज हँस पडे। अपने कमर मे लटकती तलवार निकाल कर तिलोत्तमा के पैरो पर रख दी। बोले, 'लो तिलोत्तमा, मैने यह तलवार तुम्हारे चरणो मे रख दी। अब फिर से माला पहना कर देखो तो। कहो तो मै तलवार को अभी ही तुम्हारे सामने दो टुकडे कर दूं।'

तिलोत्तमा चुप रही तो राजकुमार ने कहा, "तिलोत्तमा! मै सच कह रहा हूँ हँसी नही कर रहा।'

तिलोत्तमा ने लजा कर सिर झुका लिया।

उसी दिन की बात है। शाम बीतने के बाद अभिराम स्वामी दूसरे कमरे मे दिया जला कर पोथी पढ रहे थे। राजकुमार ने जाकर विनीत भाव से कहा, 'महाराज जी, मेरा एक आग्रह है। अब तिलोत्तमा इतनी तो स्वस्थ हो ही गई है कि यहाँ से किसी दूसरी जगह जाने का कष्ट सहन कर सकेगी। इसलिए अब इस खण्डहर के इस टूटे कमरे मे कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? कल का दिन यदि ठीक हो तो सब को गढ मन्दारन ले चलिए। और अगर आप को सम्बन्ध मजूर हो तो अम्बर के बश मे अपनी नतिनी को दे कर मुझे कृतार्थ कीजिए।'

अभिराम स्वामी पोथी बन्द कर के उठे। भावना व आवेश मे आ कर उन्होने जगतसिंह को अपनी बाँहो मे भर लिया। उन्हे इतना भी होश न था कि वे उस समय पोथी पर पैर रख कर खडे थे।

राजकुमार जब अभिराम स्वामी के पास आये थे, तब कुछ मतलब ताड कर विमला और आसमानी भी राजकुमार के पीछे-पीछे वहाँ तक आई थी। उन्होने बाहर खडी हो कर सब बातें ध्यान से सुनी थी।

राजकुमार जब बाहर निकले तो देखा कि विमला मे फिर वही पहले वाला भाव लौट आया है। लगातार पहले की तरह हँस रही है और आसमानी के बाल खीच खीच कर उसे घूँसे मार रही है। आसमानी भी घूँसो की कुछ भी परवाह न कर के विमला के सम्मुख नृत्य की परीक्षा दे रही है।

मुस्करा कर राजकुमार एक ओर बढ़ गये।

|२२|

समाप्ति

फूल खिला। अभिराम स्वामी सब के साथ गढ मन्दारन चले गये। उन्होने बडी धूमधाम से अपनी नतिनी तिलोत्तमा का ब्याह जगतसिंह के साथ कर दिया।

उत्सव आदि के लिए जगतसिह ने अपने बहुत से अनुचरो को न्योता भेज कर जहानाबाद से बुलवा लिया था। वीरेन्द्रसिंह के मित्रो मे भी बहुत से लोग बुलाने पर आए थे। उन्होने आ कर इस मागलिक कार्य मे आनन्द की मात्रा बढाई।

आयशा की इच्छा के अनुसार ही जगतसिंह ने न्योता भेज कर उसे भी बुलाया। आयशा अपने छोटे भाई और अन्य संगी-माथियो के साथ आई भी थी।

यवन हो कर भी आयशा जगतसिंह और तिलोत्तमा से अत्यधिक स्नेह-भाव रखती थी। अत उसकी सहचरियो के साथ उसे भी अन्त पुर मे ही ठहराया गया था। सम्भव है कि तप्त हृदय के कारण आयशा विवाह के अवसर पर पूरा आनन्द न मना सकी हो। लेकिन वास्तविकता ऐसी न थी। आयशा अपने चित्त की प्रसन्नता प्रकट कर के सब को प्रसन्न रख रही थी। उसकी निश्चल हँसी से सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बिखरा था।

रात को विवाह हुआ। आयशा अपने दलबल के साथ वापस जाने को तैयार हुई। हँस कर विमला से विदा ली। विमला उसका कुछ भेद नही जानती थी। हँस कर बोली, 'नवाबजादी साहबा, अब हमे आपके माँगलिक कार्य मे आने का न्योता कब मिलेगा ?'

उत्तर न दे कर मुस्कराती हुई आयशा विमला से विदा हो कर तिलोत्तमा के पास गई और उसे बुला कर एक एकान्त कमरे मे ले गई। वहाँ तिलोत्तमा का हाथ पकड कर बोली, 'बहन, अब मै चली। मन और कण्ठ से खूब आशीर्वाद देकर जा रही हूँ। तुम सदा सुखी रहो।'

तिलोत्तमा ने पूछा, 'अब कब फिर आपके दर्शन होगे ?'

'यह निश्चय रूप से कैसे कहूँ ?'

तिलोत्तमा का चेहरा मुरझा गया।

दोनो चुप रही।

थोडी देर बाद आयशा बोली, 'भेट हो या न हो। तुम तो आयशा को नही भूलोगी न ?'

'आयशा को भूल जाऊँ तो युवराज मेरा मुँह फिर कभी न देखेगे।'

'इतनी बात से मै संतुष्ट नही हो सकती। एक वायदा करो कि तुम मेरी चर्चा कभी युवराज के आगे नही करोगी ?'

आयशा ममझती थी कि जगतसिंह के लिए मैंने अपने सुखो को जो तिलाजलि इस जन्म मे दी है, उसे सोच कर जगतसिंह के दिल पर छुरियाँ चलती होगी। मेरी थोडी सी चर्चा भी उन्हे विचलित कर दे सकती है।

तिलोत्तमा ने बात मान ली। आयशा ने फिर कहा, 'लेकिन भूल मत जाना। यादगार के रूप मे जो निशानी देती हूँ, उमे कभी मत त्यागना।'

उसी समय आयशा ने पुकार कर दासी को हुक्म दिया। दासी ने हुक्म पा कर, हाथी-दाँत की बनी सदूकची मे भरे रत्नाभूषण ला कर रखे। दासी को फिर बाहर भेज कर आयशा अपने हाथो तिलोत्तमा को वे सब गहने पहनाने लगी।

धनी व सम्पन्न जमीदार की बेटी हो कर भी तिलोत्तमा उन गहनो की अद्भुत रचना और उनमे जडे बेशकीमती हीरो और रत्नो की अभूतपूर्व चमक देख कर चौक उठी। आयशा ने नवाब के दिये अपने आभूषणो को तुडवा कर तिलोत्तमा के लिये नये-नये ढंग के रत्नाभूषण बनवाये थे। तिलोत्तमा उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। तब आयशा ने कहा, 'बहन, इनकी इतनी तारीफ मत करो। तुमने आज जो रत्न अपने हृदय मे धारण किया है, उसकी पैरो की धूल के बराबर भी ये नही है।' कहते-कहते आयशा की आँखो मे आँसू छलछला आये, जिन्हे गिरने से उसने बडी कठिनाई से रोका। तिलोत्तमा न यह देख पाई न इस सम्बन्ध मे कुछ जान ही सकी।

कुल गहने पहना चुकने के बाद आयशा ने तिलोत्तमा के दोनो हाथ पकड कर उसके मुँह को ऊपर उठाया और देर तक देखती रही। सोचती रही कि यह मनमोहिनी, सरल, प्रेम प्रतिमा का हँसमुँख चेहरा देख कर तो लगता है कि जगतसिंह को शायद कभी कोई मानसिक क्लेश न होगा। यदि खुदा ने कुछ उल्टा न किया तो यही आरजू है कि इसके जरिये जगतसिंह हमेशा खुश रहे। फिर वह तिलोत्तमा से बोली, 'बहन! अब मै चलती हूँ। तुम्हारे पति को तो बहुत काम है। वे व्यस्त होगे, अत उनसे बिदा माँगने जा कर उनका समय बरबाद नही करूँगी। मैने ये जो थोडे से गहने महज चिह्न के रूप मे दिए है, इन्हे पहनना। और मेरे—अपने कीमती रत्न को हमेशा दिल म रखना।'

यह कहते कहते आयशा का गला फिर भर आया। तिलोत्तमा इस बार देख पाई की आयशा की पलकें आँसुओ से भर कर काँप रही है।

समदु खिनी की भाँति बडे स्नेह से तिलोत्तमा ने पूछा, 'तो फिर रो क्यो रही हो?'

इतना सुनना था कि आयशा की आँखो से आँसुओ की झडी लग गई। लेकिन फिर आयशा वहाँ अधिक न रुकी। वहाँ से झटपट बाहर निकल कर वह तामजान मे जा बैठी।

आयशा जब अपने घर पहुँची तब खूब रात हो गई थी। कपडे बदल कर ठण्डी

हवा की लालच से वह कमरे के झरोखे पर जा कर खडी हो गई। आकाश मे अनगिन्त तारे झिलमिला रहे थे। मंद-मद बहती हवा के झोको से अधेरे मे पेडो के पत्ते मर्मर आवाज कर रहे थे। किले की दीवार पर बैठा उल्लू चीख रहा था। सामने किले की दीवार के नीचे, जहाँ आयशा खडी थी, उसी के नीचे पानी से भरी खाई आकाश की परछाईं से भरी थी।

झरोखे पर खडी आयशा बडी देर तक जाने क्या सोचती रही। उसने अपनी उँगली से एक अँगूठी उतारी। उसमे जहर था। सोचा, इससे अपने दिल की कुल प्यास क्यो न बुझा लूँ ? फिर सोचा, क्या मै यही फर्ज पूरा करने को इस दुनिया मे आई हूँ ? यदि यह झटका मै न सह सकूँ तो नारी-जन्म पाया ही क्यो ? भला सुनेंगे तो जगतसिह क्या कहेगे ?

आगे और कुछ न सोच, आयशा ने अँगूठी को किले की खाई मे फेक दिया।

• • •

कपालकुण्डला

□

[रचनाकाल · सन् १८६६]

□

'कपालकुण्डला' बकिमचन्द्र की प्रकाश मे आने वाली दूसरी कथाकृति है।

'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रकाशन के एक साल के भीतर ही 'कपालकुण्डला' का प्रकाशन हुआ और समस्त बगला-साहित्य ससार बकिमचन्द्र की औपन्यासिक-प्रतिभा से चौंक उठा। बकिमचन्द्र ने यह कृति भी अपने मँझले-बडे भ्राता श्री सजीवचन्द्र चट्टोपाध्याय को समर्पित की थी।

'कपालकुण्डला' की कथा के जन्म के सबध में श्री पूर्णचन्द्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है

'जब बकिमचन्द्र नेगुँया मे राजकीय पदाधिकारी थे, तब वही एक सन्यासी कापालिक से उनकी भेट हुई। वे समुद्र के किनारे चाँदपुर रगालय मे रहते थे। चाँदपुर से कुछ दूरी पर समुद्र तट पर बडा भारी जगल था। वह सन्यासी वही जगल मे रहता था। उसी सन्यासी से कुछ घटनाओ का वर्णन सुन कर बकिमचन्द्र ने इस कथा को गढा और उसी सन्यासी को कथा का प्रमुख पात्र भी बनाया।... इस कथा को बकिमचन्द्र ने खुलना आने पर लिखा।'*

यह सन्यासी कापालिक बकिमचन्द्र के मन में बहुत दिनो तक बसा रहा। खुलना आने पर एक दिन बकिमचन्द्र ने दीनबन्धु मित्र से प्रश्न किया, 'यदि शिशुकाल से तरुणाई तक कोई लडकी समुद्र-तीर पर, जगल मे, किसी कापालिक द्वारा पाली जा कर रहे, और इस आयु तक कापालिक के सिवा और किसी मनुष्य के सम्पर्क मे न आवे, समाज के बारे मे कुछ न जाने, केवल समुद्र तट पर जंगलो में घूमती रहे, फिर घटना-चक्र से कोई उससे विवाह कर के उसे समाज में ला कर खडी कर दे, तो समाज के अनुरूप उसमे कितना परिवर्तन हो सकेगा, तथा वह किस हद तक कापालिक के प्रभाव से मुक्त हो सकेगी?'

यह प्रश्न जब किया गया तब वहाँ श्री सजीवचन्द्र चट्टोपाध्याय उपस्थित थे। प्रश्न सुन कर उन्होने व्यग्य करते हुए कहा, 'कुछ दिनो तो सन्यासी का प्रभाव रहेगा ही। फिर जब पति के प्रति स्नेह उत्पन्न होगा तो वह समाज की प्राणी बन जायगी।'

---

* बंकिम-प्रसंग।

दीनबन्धु मित्र ने कोई मत प्रकाशित नही किया।

लेकिन अपनी जिज्ञासा के समाधान हेतु दो वर्षो तक हृदय-मथन के बाद बंकिमचन्द्र ने 'कपालकुण्डला' की रचना की। उन्होने कापालिक-पालिता, समुद्र तट-विहारिणी, वनचारिणी, अपूर्व-मधुर-प्रकृति मोहिनी एक काल्पनिक कन्या को सजीव पात्री बनाया।

'कपालकुण्डला' मे पहले बत्तीस परिच्छेद थे। बाद मे बंकिमचन्द्र ने स्वय ही कुछ परिच्छेद निकाल दिए और वर्तमान रूप मे कथा को पूगी किया।

'कपालकुण्डला' का साहित्य-ससार मे विशेष समादर हुआ।

बंकिम-गोष्ठी के अन्यतम प्रधान श्री अक्षयचन्द्र सरकार का कहना है, 'इस उपन्यास के आते ही बंकिम बाबू का यश चतुर्दिक फैल गया और श्रेष्ठ बंगला कथाकार के रूप मे उन्हे प्रसिद्धि मिली। उनके उपन्यासो को उत्कृष्टतम रचना के रूप मे स्वीकार किया गया।'

Literary History of India (London, 1898) नामक ग्रथ मे इस उपन्यास की प्रशंसा मे लिखा गया है

'Outside in 'Mariage de Loti' there is nothing comparable to the 'Kopala Kundala' in the history of Western fiction.'

'कपालकुण्डला' का विभिन्न भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है। अंग्रेजी मे तो इसके एकाधिक अनुवाद है। जर्मन मे प्रोफेसर क्लेम ने इसे अनूदित किया। पंडित हरिचरण विद्यारत्न ने इसका सस्कृत मे अनुवाद किया। हिन्दी, गुजराती, तमिल, तेलेगु मे भी इस कथा के अनुवाद बंकिमचन्द्र के जीवनकाल मे ही हुए थे। प्रसिद्ध नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष ने 'कपालकुण्डला' का नाट्य-रूपान्तर भी किया था।

●

पहला भाग

|१|

सागर-संगम्में

'Floatıng straıght obedıent to the stream'

—Comedy of Errors

प्राय ढाई सौ वर्ष पहले, एक दिन, माघ महीने की रात बीतते-बीतते यात्रियो से भरी एक नाव गगासागर से वापस आ रही थी। पुर्तगाली और दूसरे जल दस्युओ के भय के कारण नावो का दल बना कर आना-जाना ही उस समय की प्रथा थी। लेकिन इस नाव के यात्री सगीहीन थे। क्योकि रात खतम होते-होते चारो ओर गहरा कुहरा छा गया था और मल्लाह दिशा का ठीक अन्दाज न पाने के कारण अपने गोल से बिछुड कर दूर निकल आये थे। अब वे किस दिशा मे किधर जा रहे है, इसका उन्हे ठीक अदाज न था। नाव के अधिकाश यात्री नीद मे डूबे थे। एक वृद्ध एव एक युवा पुरुष, मात्र यही दो जन जाग रहे थे। वृद्ध युवक से बात कर रहा था। बीच मे एकबार बात को रोक कर वृद्ध ने मल्लाहो से पूछा, 'माझी, आज कितनी दूर जा सकोगे ?' माझी ने कुछ टाल-टूल के स्वर मे कह, 'कुछ नही कह सकता।'

सुन कर वृद्ध नाराज हो उठे और मल्लाह को तिरस्कृत करने को खरी-खोटी सुनाने लगे। युवक ने समझाया, 'महाशय' जो भगवान की मरजी है उसे तो पडित भी नही बता सकते, भला यह मूर्ख क्या बताएगा ? आप परेशान न हो।'

तब वृद्ध ने उग्र-भाव से कहा, 'परेशान न होऊँ ? तुम कहते क्या हो ? बदमाश बीस-पच्चीस बीघे का धान काट ले गये, अब साल भर लडके-बच्चे भला खाएँगे क्या ?'

गगासागर पहुँचने के बाद वृद्ध सज्जन को अपने पोछे आने वाले यात्रियो से यह खबर मिली थी। युवक ने कहा, 'मैं तो पहले ही कहता था महाशय, कि आपके घर पर कोई दूसरा देखने-सुनने वाला नही है, आप का आना ठीक नही हुआ।'

वृद्ध ने पूर्ववत् उग्रता-भरे स्वर मे कहा, 'आऊँगा नही ? तीन पन बीत गए, अब चौथे पन मे पडा हूँ । परलोक के लिए अभी मे नही चेतूँगा तो भला और कब चेतूँगा ?'

युवक ने कहा, 'यदि मैने शास्त्र को ठीक समझा है तो तीर्थ-दर्शन से परलोक की जैसी व्यवस्था होती है, वह तो घर बैठे भी हो ही सकता है ।'

वृद्ध ने पूछा, 'तो तुम क्यो आये भला ?'

युवक ने उत्तर दिया, 'मै तो पहले ही बता चुका हूँ न, कि मेरी समुद्र देखने की बडी लालसा थी । बस इसीलिए आया ।' फिर अपने स्वर को और भी कोमल बना कर बोला, 'अहा ! क्या देखा ! जन्म-जन्मातर तक भूल न सकूँगा ।'

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलक रेखा ।।'

वृद्ध ने कविता की ओर जैसे कान ही न दिए । वे तो एकाग्रचित्त हो कर, आपस मे बाते करते मल्लाहो की बातो को ही सुनने मे लगे थे ।

एक मल्लाह दूसरे से कह रहा था, 'अरे भाई ! यह तो बहुत ही खराब काम हुआ । इस समय हम बाहर-दरिया मे आ पडे है या किसी दूसरे देश मे आ गए है, कुछ भी समझ मे नही आ रहा है ।'

कहने वाले का स्वर अत्यन्त भय-कातर था । वृद्ध ने समझा, अवश्य ही कोई विपत्ति आने वाली है । बहुत शकालु हो कर पूछा, 'माझी, क्या बात है ?' मल्लाह ने कोई जवाब न दिया । तभी युवक उत्तर की प्रतीक्षा न करके बाहर निकल आया । बाहर आ कर देखा, लगभग सबेरा हो गया । चारो ओर छाया गहरा कुहरा । आकाश, नक्षत्र, चाँद, उपकूल, किसी ओर कुछ भी नही दिखता । मन मे समझा कि मल्लाहो को दिशा-भ्रम हुआ है । अब किस ओर जा रहे है, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता । कही अनजान सागर मे पड कर अकूल मे मारे जायँ, इसी डर से मन मे आशका उपजी ।

ओस से बचाव के लिए सामने एक परदा लटकाया गया था, इसीलिए नाव के भीतर के यात्री यह सब देख-समझ नही सके थे । लेकिन जब युवक ने सविस्तार सारी स्थिति से वृद्ध को परिचित कराया तो नाव मे बडा कोलाहल मचा । नाव मे जितनी औरतें थी उनमे से शायद कोई बातचीत सुन कर जाग गई । सुनते ही वह आर्तनाद कर उठी । घबरा कर वृद्ध ने कहा, 'किनारे लगाओ, किनारे, किनारे !'

युवक ने जरा मुस्करा कर कहा, 'किनारा कहाँ है ? यही मालूम होता तो भला यह विपत्ति क्यो आती ?'

युवक की बात सुन कर नाव के यात्रियो का कोलाहल और बढ गया । किसी तरह उन लोगो को शांत कर के युवक ने मल्लाहो से कहा, 'अब डर की कोई बात नही है । सबेरा हो गया है । बस, थोड़ी ही देर मे सूरज भी उग आए गा । और अब इतनी

देर मे नाव के लिए कोई खतरा भी नही हो सकता। अब तुम लोग इस समय डाँड चलाना बन्द कर दो। नाव अपने आप बहाव मे जहाँ चाहे जाय, बाद मे धूप निकलने पर सलाह की जायगी।'

मल्लाह लोग सलाह मान कर वैसा ही करने लगे।

बहुत देर तक मल्लाह लोग निश्चेष्ट रहे। भय के कारण यात्रियो के प्राण कण्ठ तक आ गए थे। हवा का तो जैसे नामोनिशान भी न था। इसी कारण न तो तरंगो के झकोरे थे, न कम्पन। सबो ने मन मे यही माना कि मौत अब पास ही है। पुरुष लोग मन ही मन भगवान के नाम जपने लगे। और स्त्रियाँ तरह-तरह की आवाजो मे रोने लगी। एक स्त्री गङ्गासागर मे समुद्र को अपना लडका भेंट कर आई थी। लडके को पानी मे उतार कर फिर निकाल न सकी थी, सिर्फ वही नही रोई।

इसी तरह प्रतीक्षा करते-करते लगभग एक पहर बीत गया, दिन भी चढ़ आया। तभी अचानक नाव के मल्लाह लोग नदी के पाँचपीर का नाम ले ले कर महाकोलाहल कर उठे। यात्रियो मे सब के सब एक स्वर मे पूछ उठे, 'क्या हुआ, माझी, क्या हुआ? क्या बात है?' मल्लाह लोग भी उसी तरह के कोलाहलमय स्वर मे कहने लगे—'धूप निकली! धूप निकली! किनारा! किनारा! किनारा!'

सुनते ही सभी यात्री भाग कर बाहर आ गए और कहाँ आए है, क्या माजरा है, कहाँ किनारा है, देखने लगे। सबो ने देखा, सूरज निकल आया है। कुहरे का अँधेरा आकाश मे चारो ओर कही नही बचा। दिन भी पहर भर से ज्यादा ही चढ गया है। नाव जहाँ पहुँच गई थी वह असल मे महासमुद्र नही, नदी का मुहाना था लेकिन वहाँ नदी का जैसा पाट था वैसा और कही नही देखा। नदी का एक किनारा नाव के काफी पास था जरूर, यहाँ तक कि पचास हाथ से कम ही दूर था, लेकिन दूसरे किनारे का कही नामनिशान भी न था। जिस ओर भी आँखें उठती, अनन्त जलराशि चचल सूर्य-रश्मियो से प्रदीप्त हो कर आकाश से मिल रही थी। पास का पानी भी प्राय. गंदला, नदी के पानी की तरह ही था। लेकिन दूर की जलराशि नीली थी। यात्रियो ने मन ही मन सोचा कि वे अवश्य ही महासमुद्र मे आ फँसे थे, पर सौभाग्य से अब किनारा पास ही है। अब डर की कोई बात नही। सूरज की ओर देख कर चारो दिशाओ का अंदाज किया। सामने जो उपकूल देख रहे थे, वह समुद्र का पश्चिमी तट है, यह सहज ही समझ गए। तट के बीच, नाव से कुछ ही दूर एक दूसरी नदी का मुँह मंथर व मदगति प्रवाह की तरह आकर मिल रहा था। उस सगम-स्थल के दाहिनी ओर बालू के एक बडे भाग मे टिटिहरी आदि अनेक चिडियाँ क्रीडा कर रही थी।

इस नदी का नाम अब 'रसूलपुर की नदी' पड़ा है।

|२|

उपकूलमें

"Ingratitude ! Thow marble-hearted fiend !—"

—King Lear

यात्रियो की उत्साह भरी बातो के समाप्त होने के बाद जब वे थोडा शान्त हुए तब मल्लाहो ने प्रस्ताव किया कि ज्वार के आने मे अभी भी कुछ देर है, इस बीच जो समय है, उसी मे यात्रीगण सामने की रेती पर भोजन आदि बना कर निवृत्त हो लें, बाद मे जलोच्छ्वास के शुरू मे ही अपने गन्तव्य के लिए यात्रा शुरू कर सकेंगे।

मल्लाहो ने नाव को किनारे लगाया। यात्रीगण प्रसन्नता से निर्भय हो कर उतरे और तत्काल ही प्रात कृत्य तथा स्नानादि करने मे व्यस्त हो गए।

यात्रियो के स्नान कर लेने के बाद, जब वे खाना पकाने का उद्योग करने लगे तब एक नई मुसीबत सामने आई। नाव पर जलावन के लिए लकडी नही थी। रेती के ऊपर लकडी की खोज मे जाने की किसी की हिम्मत न पडी क्योकि उधर बाघ का डर था। जलवान जुटने का कोई प्रबन्ध न देख अन्त मे सबो ने उपवास की ठानी, तब वृद्ध ने उसी युवक को सम्बोधित करके कहा, 'बेटा नवकुमार ! यदि तुम भी इसका कोई उपाय या प्रबन्ध न करोगे तो हम सब, इतने लोग भूखो मर जाएँगे।'

कुछ देर सोच विचार के बाद नवकुमार ने कहा, 'अच्छा, तो ठीक है, मै ही जाऊँगा। मुझे कुल्हाडी दो, और हँसिया ले कर एक आदमी मेरे साथ-साथ चले।'

लेकिन नवकुमार के साथ जाने को किसी ने उत्साह न दिखाया। तब नवकुमार ने कहा, 'अच्छा तो भोजन के समय समझूँगा।' कह कर नवकुमार कमर कस कर अकेले ही कुल्हाडी कधे पर रख कर लकडी लाने चल पडा।

किनारे पर आगे बढ कर नवकुमार ने देखा, जहाँ तक भी निगाह जाती थी, वहाँ तक कही भी बस्ती का कोई नाम-निशान नही दिखा। आबादी का कोई लक्षण न दिखा। हर ओर केवल जंगल ही था। लेकिन बडे पेडो वाला जगल न था। केवल जगह-जगह किसी-किसी भूखण्ड को घेर कर छोटी-छोटी झाडियाँ मण्डलाकार बिछी थी। उनमें कही भी नवकुमार को जलावन लायक लकडी दिखाई न पडी। इसलिए उपयोग लायक पेड या लकडी की खोज मे उसे किनारे से काफी दूर जाना पडा। काफी चलने के बाद, अत मे काटने लायक एक पेड मिला। उससे काट कर उसने जरूरत के अदाज से लकडी जुटाई। लेकिन इतनी दूर इतनी लकडी ढो कर लाना भी एक श्रमसाध्य काम था। नवकुमार किसी गरीब की सतान न था, न ही उसे विषम कामो का अभ्यास ही

था, अच्छी तरह सोचे-समझे बिना ही वह उत्साह से भर कर लकडी लेने चला आया था। इसीलिए अब लकडी का बोझ बडा कष्टदायक सिद्ध हो रहा था। जो भी हो, किसी काम को उठा लेने के बाद, जरा से कष्ट के कारण उससे मुँह मोडना नवकुमार का स्वभाव न था। काफी दूर तक वह बोझ लाद लाने के बाद बैठ कर थोडा विश्राम करता, फिर ढोता, फिर रुकता, इसी प्रकार वापस आने लगा।

यही कारण था कि नवकुमार के लौटने मे देरी होने लगी। इधर-घाट पर प्रतीक्षा में बैठे उसके सहयात्री विलम्ब होते देख कर उद्विग्न होने लगे। उनके मन मे यही आशका उठी की अवश्य ही नवकुमार को बाघ पकड ले गया होगा। लौटने का सभावित समय बीत जाने पर यह आशका उनके हृदय मे विश्वास बनने लगी फिर भी किसी की इतनी हिम्मत न पडी कि कोई किनारे से आगे बढ कर या कुछ दूर ऊपर चढ कर नवकुमार की खोज करे।

नाव के यात्रीगण इसी तरह की आशका-कल्पना में व्यस्त थे, इसी बीच एकाएक जलराशि मे भैरव कल्लोल उठ खडा हुआ। मल्लाहो को समझते देर न लगी कि ज्वार आ गया। मल्लाहो को अच्छी तरह मालूम था कि इन जगहो पर ज्वार के समय लहरो के ऐसे भयानक थपेडे लगते है कि किनारे की नाव चकनाचूर हो जाती है। इसीलिए जल्दी-जल्दी कर के वे सब नाव की रस्सी खोल कर उसे नदी के बीच मे लाने का प्रयत्न करने लगे।

हुआ यह कि मल्लाहो की तमाम जल्दबाजी व नाव को खोलने के प्रयत्न के बीच ही सामने की समस्त रेती पानी मे डूब गई। त्रस्त व निराश भाव से सभी यात्री कूद-कूद कर नाव पर चढने में व्यस्त हो गए। खाना पकाने के लिए चावल आदि जो भी खाद्य-सामग्री उन्होने किनारे पर बिछा रखी थी, वह सब बह गई। एक दुर्भाग्य और था कि मल्लाह लोग भी बहुत निपुण या अनुभवी न थे। वे इस ज्वार के वेग में नाव को सम्हाल नही सके। जल के प्रबल प्रवाह से नाव रसूलपुर की नदी मे दिशाहीन बहने लगी। एक यात्री ने कहा, 'अरे, नवकुमार तो रह ही गया।'

दूसरे यात्री ने कहा, 'अब नवकुमार भला कहाँ है? उसे बाघ उठा ले गया होगा या सियार चाट गए होगे।'

पानी का निर्मम वेग नाव को तिनके की तरह रसूलपुर की नदी के भीतर घसीटे लिए जा रहा था। बह जाने पर लौटने मे बडी दिक्कत होगी, इसलिए मल्लाह प्राणप्रण से नाव को उस बहाव से बाहर लाने का प्रयत्न कर रहे थे। यहाँ तक कि माघ महीने की उस ठण्डक मे भी उनके माथे से पसीने की बूँदे टपकने लगी। उनके असाध्य श्रम से रसूलपुर की नदी के भीतर से नाव बाहर तो आने लगी, और जैसे ही नाव उस वेगवती धारा से बाहर आई कि वहाँ के पहले से भी अधिक प्रबल स्रोत से उत्तर दिशा

की ओर तीर की तरह बह चली। मल्लाहो के तमाम परिश्रम के बाद भी उस बहाव मे कोई रुकावट न डाली जा सकी। और फिर नाव लौट न सकी।

काफी अरसे के बाद जब बहाव का प्रकोप मन्द हुआ कि नाव की गति को संयत किया जा सके तब तक यात्रीगण रसूलपुर का मुहाना पार कर बहुत दूर आ चुके थे। अब नवकुमार को लेने के लिए उतनी दूर फिर लौटना होगा या नही, इस विषय मे विवाद करना आवश्यक हो गया। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस नाव पर के सभी यात्री नवकुमार के पडोसी थे, उनमे उसका आत्मीय कोई भी न था। बहुत विचार के बाद तय पाया कि जहाँ वे सब आ गए थे, वहाँ से लौटने के लिए एक और भाटा की आवश्यकता है। फिर रात हो जायगी और रात मे नाव चलाना सभव न हो सकेगा, और फिर दूसरे दिन के ज्वार की प्रतीक्षा करनी पडेगी। और उस समय तक सबो को भूखा ही रहना होगा। दो दिनो तक बिना कुछ खाए सबो के प्राणो पर आ बनेगी। इसीलिए यात्रीगण फिर वापस लौटने को उत्सुक न थे। वे किसी प्रकार भी वापस लौटने के किसी भी तर्क को मानने को तैयार न थे। अपने पक्ष को और सशक्त करने को वे बार-बार यही कहते थे कि नवकुमार को अवश्य ही बाघ पकड ले गया है। ऐसा होना निश्चित है। फिर क्यो व्यर्थ मे इतनी झझट उठाई जाय।

इस प्रकार काफी देर सोच-विचार कर यात्रियो ने नवकुमार के बिना ही स्वदेश लौटना उचित ठहराया। इस प्रकार नवकुमार उस भीषण समुद्र के किनारे निर्जन मे बनवास के लिए विवश हुआ।

इस बात को सुन कर यदि कोई यह प्रतिज्ञा करे कि फिर कभी किसी दूसरे का उपवास तोडवाने के लिए लकडी लेने नही जाएँगे, तो वे पामर है, इन यात्रियो की ही भाँति पामर है। अपना उपकार करने वाले को वन मे छोड देना जिनकी प्रकृति ही है, वे तो सदा ही उपकार करने वाले को बनवास देंगे ही, फिर भी वे चाहे जितनी दफे भो बनवास दे, दूसरे के लिए, जिसका लकडी लाना स्वभाव ही है, वह फिर-फिर दूसरे के लिए लकडी लाने जाएगा ही। यदि तुम अधम हो, इसीलिए क्या हम भी उत्तम, नही होगे ?

|३|

विजन में

'—Like a veil,
Which if withdrawn, Would but disclorse the frown
Of one who hates us, so the night was shown
And grimly darkled o'er their faces pale
And hopeless eyes'

—Don Juan

जिस स्थान पर नवकुमार को छोड कर यात्रीगण चले गए थे, वहाँ से थोडी दूर पर दौलतपुर और दरियापुर नाम के दो गाँव आजकल बसे हुए हैं। लेकिन जिस समय का हम वर्णन कर रहे है उस समय वहाँ मनुष्य और बस्ती का कही कोई चिह्न भी न था। केवल जंगल ही था। लेकिन बगाल देश मे अन्यत्र भूमि जिस तरह सहज उर्वरा है, इस प्रदेश की वैसी नही। रसूलपुर के मुहाने से सुवर्ण रेखा तक अबाध रूप से कई योजन तक का मार्ग एक प्रकार के बालुका-स्तूपो से भरा है। यदि ये स्तूप और थोडे ऊँचे होते तो इन्हे बालू की पर्वत-श्रेणी भी कहा जा सकता था। इस समय लोग इसे बालियाडी कहते है। इन सभी बालियाडी की धवल शिखर-माला दोपहर की सूर्य किरणो मे दूर से अपूर्व प्रभावशालिनी दीख पडती है। इसके ऊपर ऊँचे वृक्ष पैदा नही होते। स्तूप के निम्न भाग मे साधारण छोटे-छोटे वन बनते है। लेकिन बीच के भाग मे या शिरोभाग मे प्राय छायाहीन धवल शोभा उपस्थित रहती है। निचले भाग को गोलाई से घेर कर उगने वाले पेडो मे सरपत, जगली झाऊ और जगली फूल ही अधिक है।

इस तरह की मनहूस जगह पर नवकुमार का साथियो द्वारा परित्याग हुआ। जब वह पहले लकडी का बोझ लादे हुए नदी किनारे आया तो उसे वहाँ नौका न दिखी, तब अवश्य ही उसे बहुत डर लगा, लेकिन साथी उसे सचमुच बिल्कुल ही छोड कर चले गए है, ऐसा उसे नही लगा। विचार कर के उसने सोचा कि ज्वार के कारण रेती के डूब जाने से पास ही किसी दूसरी जगह उन्होने रक्षा के लिए नाव लगा दी होगी। जल्दी ही वह उन्हे खोज लेगा। यही आशा लगा कर वह वही बैठ कर प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन नौका न आई। कोई सहयात्री भी दिखाई न पडा। नवकुमार खूब भूख लगने से व्याकुल हो उठा था। और प्रतीक्षा करना असम्भव हो गया तो वह नदी के किनारे-किनारे बढ कर नाव को खोजने लगा। लेकिन कही भी नाव का निशान भी न मिला। तब वह लौट कर पूर्व स्थान पर आ गया। अब भी नौका को न पा कर मन

ही मन विचार किया कि हो सकता है कि ज्वार के वेग के कारण नाव बह गई होगी। अब उल्टी धारा मे लौटने में साथियो को विलम्ब तो होगा ही। लेकिन अब तो ज्वार भी समाप्त हो गया था। तब सोचा, उल्टी धारा मे तेज वेग के कारण ज्वार मे नौका शायद लौट नही सकी। अब भाटे मे नाव अवश्य ही लौट आएगी। लेकिन भाटे का वेग भी बढा, धीरे-धीरे दिन भी ढल गया, सूर्यास्त भी हो गया। यदि नौका लौटने वाली होती तो अब तक अवश्य लौट आती।

तब नवकुमार को विश्वास हो गया कि ज्वार की भीषणता के कारण तरंगो के थपेडे खा कर नाव पानी मे डूब गई है या साथीगण उसे उस विजन मे छोड कर ही चले गए है।

नवकुमार ने चारो ओर देखा, गाँव नही, आश्रय नही, कोई आदमी नहीं, खाने को भी कुछ नही, पीने को नही, नदी का जल भीषण नमकीन। अब भूख की तेजी के कारण उसका हृदय बुरी तरह व्याकुल हो उठा। दूर तक कही भी शीत से बचने के लिए कही कोई आश्रय नही, शरीर पर कपडे भी पूरे नही। इस बर्फीली-शीतल-वायु के वेग से भरा हुआ नदी का किनारा, बर्फ बरसाने वाला आकाश। निराश्रय, निरावरण ही रात काटनी होगी। रात मे बाघ और भालू के आने की भी सम्भावना है। अब तो मृत्यु निश्चित है।

मन की चचलता के कारण नवकुमार एक जगह पर अधिक देर बैठे नही रह सके। अब किनारा छोड कर वह ऊपर की ओर चला। इधर-उधर टहलने लगा। धीरे-धीरे अधेरा हो गया। शिशिर के आकाश मे नक्षत्र-मण्डली चुपचाप विकसित होने लगी। उसी तरह जैसे नवकुमार के स्वदेश मे विकसित होती है। अन्धकार मे चतुर्दिक सन्नाटा, जन-हीन, आकाश, प्रान्त, समुद्र, सब ओर नीरवता, केवल अविरल कल्लोलित समुद्र-गर्जन और कदाचित जगली जानवरो की चीख सुन पडती। फिर भी नवकुमार उसी अधकार मे, वर्फ बरसाने वाले आकाश के नीचे के बालुका स्तूप के चारो ओर भ्रमण करता रहा। चलते-चलते पग-पग पर हिंस्र पशुओ के आक्रमण की सम्भावना। लेकिन किसी एक स्थान पर बैठे रहने पर भी यह डर तो है ही।

घूमते-घूमते नवकुमार थक गया। पूरा दिन अनाहार, इसलिए इस समय और भी अवसन्न हो गया। एक जगह वह बालियाडी के किनारे पीठ टिका कर बैठ गया। घर की आरामदेह शैय्या याद आई। शारीरिक व मानसिक कष्ट के थकान मे जब चिन्ता आती है, तब कभी-कभी निद्रा भी साथ-साथ आ जाती है। नवकुमार भी चिन्ता करते-करते तन्द्राभिभूत हो गया। लगता है कि यदि प्रकृति का ऐसा नियम न होता, तो सासारिक क्लेश का अपतिहत वेग सब समय सहा भी न जा सकता।

|४|

स्तूप-शिखर पर

'—सविस्मये देखिला अदूरे
भीषण-दर्शन मूर्ति ।'

—मेघनादवध

जब नवकुमार की नीद टूटी तब रात गहरी थी । अभी तक उसकी बाघ ने हत्या नही की, इस पर उसे आश्चर्य ही हुआ । इधर-उधर निगाह दौडा कर वह देखने लगा, बाघ आ रहा है या नही । अक्समात सामने की ओर, काफी दूर पर, प्रकाश दिखाई पडा । लगा कि शायद यह भ्रम हो, अत नवकुमार बहुत गौर से उधर ही देखने लगा । प्रकाश की परिधि धीरे-धीरे बढने लगी और अधिक रोशनी होने लगी—उसे विश्वास हो गया कि यह आग की रोशनी है । इस विश्वास ही से नवकुमार को जीवन के प्रति फिर से आशा होने लगी । मनुष्य के हुये बिना यह प्रकाश उत्पन्न होना सभव नही, क्योकि यह दावानल का भी समय न था । नवकुमार उठा और जिधर प्रकाश था उसी ओर बढने लगा । एक बार मन मे सोचा, 'यह प्रकाश भूतो का है क्या ?—हो भी सकता है । लेकिन शका न करने से भी भला जान कहाँ बचती है ?' यही सोच कर निर्भीक मन से वह प्रकाश की ओर बढने लगा । वृक्ष, लता, बालुका-स्तूप पग-पग पर उसका रास्ता रोकने लगे । पौधो को पावो से रौदता हुआ, बालुका-स्तूप लाँघता हुआ नवकुमार चलता गया । प्रकाश के पास पहुँच कर देखा, बालू के एक बहुत ऊँचे स्तूप के ऊँचे शिखर पर आग जल रही है । उसी की रोशनी मे शिखर पर बैठे मनुष्य की मूर्ति आकाश-पट के चित्र की तरह दिख रही थी । नवकुमार शिखर पर बैठे मनुष्य के पास जाए गा ही, ऐसा निश्चित संकल्प करके, दृढ मन से वह आगे बढा । फिर वह स्तूप पर चढ़ने लगा । अब कुछ शंका होने लगी । फिर भी अकपित कदमो से वह स्तूप पर चढता ही चला गया । वहाँ बैठे हुए व्यक्ति के सामने पहुँच कर उसने जो-जो भी देखा, उससे उसे रोमाच हो आया । वहाँ वह ठहरे गा अथवा वापस आएगा, यह वह उस क्षण निश्चय न कर सका ।

शिखर पर बैठा व्यक्ति आँखें मूँदे ध्यान मे लीन था—वह नवकुमार को पहले देख न सका । नवकुमार ने देखा, उसकी उम्र प्राय पचास वर्ष की होगी । उसके शरीर पर कपास का कोई वस्त्र है या नही, यह वह ठीक से देख न सका । कमर से जांघ तक का भाग बाघम्बर से ढँका था । गले मे रुद्राक्ष की माला । आयत मुखमण्डल दाढ़ी, मूँछ और जटाओ से घिरा था । सामने लकडी की आग जल रही थी—इसी अग्नि के प्रकाश को देख कर नवकुमार यहाँ तक आ सका था । तब तक नवकुमार को एक प्रकार की विकट दुर्गन्ध मिलने लगी । उसके आसन की ओर देखते ही उस दुर्गन्ध का कारण वह समझ

गया। जटाधारी एक छिन्न-मस्तक गले हुए शव के ऊपर बैठा था। फिर तो भयातुर होकर उसने और भी देखा—सामने एक नर कपाल रखा था जिसमे रक्त वर्ण द्रवपदार्थ रखा था। चारो ओर जगह-जगह पर हड्डियाँ बिखरी पडी थी—यहाँ तक कि, योगासन लगा कर बैठे व्यक्ति के गले मे पडी रुद्राक्ष की माला के बीच-बीच मे हड्डी के टुकडे पिरोये हुए थे। नवकुमार मन्त्रमुग्ध सा ताकता रहा। आगे बढे या यहाँ से चला जाय, यह वह समझ न पाया। उसने कापालिको की कथाएँ सुन रखी थी। समझ गया, यह व्यक्ति कापालिक है।

जब नवकुमार ऊपर आया था, तब कापालिक मंत्र-साधन या जप या ध्यान मे मग्न था, नवकुमार को देख कर जैसे उसने तनिक भी परवाह न की। काफी देरी के बाद पूछा, 'कस्त्वम् ?'

नवकुमार ने कहा, 'ब्राह्मण।'

कापालिक ने कहा, 'तिष्ठ।' इतना ही कह कर वह पहले की तरह अपने काम मे लग गया। नवकुमार खडा रहा।

इसी तरह आधा पहर बीत गया। इसके बाद कापालिक उठा और एक ओर चलते हुए उसने नवकुमार से पहले की तरह ही सस्कृत मे कहा, 'ममानुसर।'

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि और कोई समय होता तो नवकुमार कदापि उसका साथी न बनता। लेकिन इस समय तो भूख व प्यास से प्राण गले तक आ गया था। अतएव कहा, 'प्रभू की जैसी आज्ञा। लेकिन मै तो भूख-प्यास से बहुत विकल हूँ, कहाँ जाने से खाने-पीने की चीजे मिलेंगी, सो बताइए।'

कापालिक ने कहा, 'तुम भैरवी के भेजे हुए हो, ममानुसर, मेरे साथ आओ, भोजन प्राप्त होगा।'

नवकुमार कापालिक के पीछे-पीछे चलने लगा। दोनो ने लम्बा रास्ता पार किया—रास्ते मे किसी ने कोई बात न की। अन्त मे एक पर्णकुटी मिली, पहले कापालिक भीतर गया फिर नवकुमार को भीतर प्रवेश करने की आज्ञा दी, और नवकुमार ने देखा कि न जाने किस उपाय से एक चैले मे उसने आग जलाई। उसी के उजाले मे नवकुमार ने देखा कि कुटी चारो ओर से केवडे के पत्तो से छाई है। उसके भीतर कई बाघ्र-चर्म है। एक घडा जल और थोडा सा फल-मूल भी है।

कापालिक ने आग जलाकर कहा, 'फल-मूल यहाँ जो भी है उसे खा जाओ। पत्ते का दोना बना कर घडे का पानी पी लेना। बाघ्र-चर्म है, जब मन हो सो जाना। कोइ विघ्न नही है, रहो, बाघ का भय मत करना। बाद मे मुझसे भेंट होगी। अभी की भेंट पर्याप्त नही है, जब तक फिर भेंट न हो तब तक यह कुटी छोडना मत।'

यह कह कर कापालिक चला गया। नवकुमार ने वही सब फल-मूल खाया और कडुआ पानी पी कर परम संतोष का अनुभव किया। इसके बाद बाघ्र-चर्म पर लेट कर सो गया। पूरे दिन की थकान के कारण जल्दी ही उसे गहरी नीद भी आ गई।

| ५ |

समुद्र-तट पर

' •• योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते।
विभर्षि चाकारमनिर्वृताना मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥'—रघुवंश

सबेरे उठ कर नवकुमार सहज ही घर जाने का उपाय करने मे व्यस्त हो गया। विशेष कर यहाँ कापालिक का साथ किसी प्रकार भी उसे श्रेयस्कर न लगा। लेकिन अभी इस पथहीन वन के बीच से किस प्रकार निकलना हो सकेगा ? किस प्रकार रास्ता पहचान कर घर भी जा सकेगा ? कापालिक अवश्य ही रास्ता जानता होगा, पूछने से, क्या बता न देगा ? खास कर, अभी तक तो यही देखा है कि कापालिक ने उसके प्रति शकासूचक व्यवहार नही किया—तब भी जाने क्यो वह डर रहा है ? इधर कापालिक ने दूसरी बार भेंट न होने तक कुटी छोडने को मना कर दिया है। उसके आदेश के विरुद्ध आचरण करने से सभव है वह नाराज हो। नवकुमार ने सुन रखा था कि कापालिक लोग मत्र-बल से असाध्य-साधन कर सकते है। इसलिए उनके क्रोध का कारण बनना अनुचित है। यही सब सोच-विचार करके नवकुमार ने अत मे कुटी मे बने रहने का ही निश्चय किया।

लेकिन क्रमश दिन ढलने लगा। अभी तक कापालिक नही लौटा। पहले दिन का उपवास, आज भी पूरी तरह अनशन, इस समय भी भूख प्रबल हो उठी थी। कुटी मे जो थोडा सा फल मूल था, उसे तो पहली रात मे ही खा लिया था—अब इस समय कुटी छोड कर यदि फल-मूल की खोज न करेगा तो भूख से जान निकल जाएगी। अभी भी थोडा दिन बाकी था, इसलिए भूख से बेहाल हो नवकुमार फल की खोज मे बाहर निकला।

नवकुमार फल की खोज मे बालुका-स्तूप के चारो ओर परिक्रमा करने लगे। बालू में उगने वाले दो-एक पौधो के फलो को चख कर देखा, एक पेड का फल जो देखने मे बादाम की तरह था, अति स्वादिष्ट था। उसे ही खा कर उसने इस समय भूख मिटाई।

बालुका-स्तूप-श्रेणी की चौडाई कम थी। अत नवकुमार थोडा चलने के बाद ही उसे पार कर गया। उसके बाद बालुकाहीन निविड वन मे जा पडा। जो लोग अनजाने रास्तो के वन मे थोडे समय के लिए भी यात्रा कर चुके है, वे जानते हैं कि पथ-विहीन वन मे क्षण भर मे पथ-भ्राति हो जाती है। नवकुमार के साथ भी वैसा ही हुआ। थोडी दूर आगे बढने के बाद यह निश्चय वह नही कर सका कि आश्रम किस

ओर है। गम्भीर जल-कल्लोल सुनाई पडा। नवकुमार ने समझा कि आवाज समुद्र-गर्जन की है। थोडी देर बाद वन से बाहर निकला तो अक्समात ही सामने समुद्र दिखाई पडा। अनन्त विस्तार मे फैला नीला जल देख कर मन प्रसन्न हो उठा। वह जा कर बालू पर किनारे पर बैठ गया। नीला फेनिल अनन्त समुद्र। दोनो ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, दूर तक तरगो से मिली फेन की रेखा, लाखो फूलो की माला की तरह उज्ज्वल फेन रेखा सोने की बालू पर पडी थी। नील जल के भीतर हजारो स्थान पर फेनो के साथ तरगें टूट टूट रही थी। यदि कभी ऐसी प्रचण्ड आँधी का चलना सम्भव हो कि उसके वेग से हजारो तारे अपनी जगह छोड कर नीले आकाश मे डोलने लगें तो यही दृश्य दिखाई पडेगा। इस समय डूबते हुए सूरज की मुलायम किरणो से नीले जल का एक अश द्रवीभूत सोने की तरह जल रहा था। बहुत दूरी पर किसी यूरोपीय व्यापारी का समुद्री जहाज सफेद पर फैलाए, बडे आकार के पक्षी की तरह समुद्र के हृदय मे उड रहा था।

कितनी देर तक किनारे पर बैठा नवकुमार एकाग्र मन से समुद्र की शोभा देखता रहा, इसका उसे उस समय ज्ञान न रहा। बाद मे प्रदोष अधकार एकाएक आकर पानी पर छा गया। तब नवकुमार को होश हुआ कि उसे आश्रम की खोज कर लेनी चाहिये। लबी साँस ले कर वह उठा। इस लम्बी साँस का कारण हम नही बता सकते, कि उस समय उसके मन मे किस बीती बात को याद करके सुख का अनुभव हो रहा था। उठ कर उसने समुद्र की ओर पीठ फेरी। लेकिन घूमते ही उसने एक अपूर्व मूर्ति देखी। उस प्रचण्ड शोर करने वाले समुद्र के किनारे, बालू के बीच शाम की धुँधली रोशनी मे एक युवती खडी थी। खुली वेणी-जैसे साँप से लहराते बाल, एडी तक लम्बे, और बालो के बीच देह, जैसे परदे पर कोई चित्र हो। बालो की सघनता के कारण चेहरा पूरी तरह नही दिख रहा था, फिर बादलो के छँट जाने से निकली चाँद की किरणो सा दिख रहा था। विशाल आँखो मे कटाक्ष, बहुत स्थिर व स्निग्ध, बहुत गम्भीर, खूब चमकदार। वे कटाक्ष भी इस समुद्र के हृदय पर तैरने वाली चन्द्र-किरण की तरह चमकदार। बालो ने दोनो कधों और बाँहो को ढंक लिया था। कधे बिल्कुल नही दिखते, बाँहो की छटा कुछ-कुछ दिखती थी। युवती बिल्कुल वस्त्रहीना थी। उस छवि मे जो मोहिनी शक्ति थी उसका वर्णन नही किया जा सकता। अर्द्धचन्द्र से निकलते कमल का रग, घने काले बाल, एक दूसरे के मिलाप से जो कान्ति फूट रही थी, उसे प्रचण्ड शोर करने वाले समुद्र के किनारे संध्या का दृश्य न देखने से समझ मे नही आ सकता। न ही उसके मोहिनी रूप का अंदाज लग सकता है।

ऐसी बीहड जगह पर ऐसी देवी-मूर्ति को अक्समात ही देख कर नवकुमार तो जैसे संज्ञाहीन सा खडा रह गया। उसकी आवाज जैसे खो गई। स्तब्ध सा वह बस देखता ही रह गया। युवती भी अचल। उसकी विशाल आँखें नवकुमार के चेहरे पर ही

जमी थी। दोनो की दृष्टि में मात्र इतना ही अन्तर था कि नवकुमार चकित था और उस युवती की दृष्टि मे उद्वेग था।

इस प्रकार समुद्र के एकात तट पर दोनो देर तक इसी तरह एक दूसरे को देखते रहे। बहुत देर बाद युवती का स्वर सुनाई पडा, बडे ही मधुर स्वर मे उसने पूछा, 'पथिक, क्या तुम रास्ता भटक गए हो ?'

उस स्वर को सुनते ही नवकुमार के हृदय मे वीणा सी बज उठी। कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य के हृदय की तन्त्रियाँ ऐसी लयहीन रहती है कि प्रयत्न करने पर भी एक दूसरे से नही मिलती लेकिन इस समय युवती के स्वर को सुनते ही सब लययुक्त हो उठी। नवकुमार के कानो मे उसी तरह लययुक्त तन्त्रियाँ बज उठी।

नवकुमार के कानो ने सुना—'पथिक, क्या तुम रास्ता भटक गए हो ?' क्या उत्तर देना चाहिए, कुछ भी समझ मे न आया। ध्वनि जैसे हर्ष से काँप उठी, हवा मे वही ध्वनि बहने लगी, पेड के पत्तो मे वही ध्वनि भटकने लगी, समुद्र के गरजन मे जैसे वही ध्वनि गूँजने लगी। पृथ्वी सुन्दर है, युवती सुन्दर है, ध्वनि भी सुन्दर है। हृदय मे सौदर्य भरी लय उठने लगी।

नवकुमार से कोई उत्तर न पा कर युवती ने कहा, 'आओ।'

इतना कह कर युवती एक ओर बढ चली। उसके पावो की दिशा दिखाई न पडी। बसन्त मे धीमी हवा से चलने वाले बादलो की तरह ही दिशाहीन कदमो से वह चल पडी। नवकुमार कल के पुरजे की तरह पीछे-पीछे चलने लगा। आगे छोटा सा जगल। जंगल के भीतर जाने पर फिर युवती न दिखी। नवकुमार जगल ने का चक्कर लगाया, देखा, सामने ही कुटी थी।

|६|

कापालिक के साथ

'कथं निगऽसयतासि। द्रुतम् नयामि भवतीमित'—रत्नावली

नवकुमार कुटी मे जा कर, दरवाजा बन्द कर के हथेली पर सिर रख कर बैठ गया। फिर देर तक सिर उठा न सका।

नवकुमार संज्ञाहीन हो कर सोचता रहा कि यह देवी है या मानवी, या मात्र कापालिक की माया है। वह कुछ भी समझ न पाया।

नवकुमार अन्यमनस्क थे, इसी से वहाँ वह और कुछ न देख सके। कुटी में उसके आने के पहले ही एक चैला जल रहा था। रात को काफी देर होने पर जब उसे याद आया कि अभी सायकृत्य बाकी है, तब चिन्ता से मुक्त हो कर पानी की खोज करने पर इस ओर ध्यान दे सका। केवल आग ही नहो, चावल आदि, खाना पकाने की कुछ कुछ चीजें भी थी। नवकुमार को विस्मय न हुआ, सोचा, यह सब कापालिक का ही काम है। इसमे विस्मय की कोई बात नही।

सायंकृत्य समाप्त कर के नवकुमार कुटी मे आए और वही एक मिट्टी का पात्र पा कर उसी मे चावल उबाल कर खाया।

दूसरे दिन सबैरे चर्म-शय्या से उठ कर तत्काल ही समुद्र किनारे गया नवकुमार। पहले दिन आने-जाने के कारण थोडी तकलीफ के बाद ही रास्ता खोज पाया। प्रात.कृत्य से छुट्टी पा कर वह प्रतीक्षा करने लगा। किसकी प्रतीक्षा ? पहले दिन दिखाई पडी मायाविनी फिर इसी जगह आएगी, यह आशा नबकुमार के हृदय मे कितनी थी, हम नही जानते, पर वह उस जगह से हिल न सका। लेकिन काफी दिन चढ आने पर भी वहाँ कोई न आया। तब नवकुमार उसी स्थान के आस-पास चक्कर लगाने लगा। लेकिन यह खोज बेकार थी। किसी मनुष्य के आने का चिन्ह तक न दिखा। फिर वापस आकर वह उसी जगह बैठ गया। सूरज डूब गया। अंधेरा भी होने लगा। तब निराश हो कर नवकुमार कुटी मे लौट आया। लौट कर नवकुमार ने देखा कि कुटी के भीतर कापालिका चुपचाप वैठा है। नवकुमार ने पहले ही स्वागत सम्बो-धन किया, लेकिन कापालिका ने कोई उत्तर न दिया।

तब नवकुमार ने कहा, 'अभी तक मै प्रभू के दर्शनो से क्यो बचित रहा ?'

कापालिक ने कहा, 'अपने व्रत मे लगा था।'

नवकुमार ने घर जाने की इच्छा व्यक्त की। कहा, 'रास्ता नही मालूम— रास्ते के लिए भी कोई प्रबन्ध नही। अब तो सब कुछ प्रभू के दर्शनो से ही होगा, इसी भरोसे मे हूँ।'

कापालिक ने कहा, 'मेरे साथ आओ।' कह कर उदासीन सा उठ कर खडा हुआ। शायद घर जाने का ही कोई उपाय होगा, इसी आशा से नवकुमार उसके पीछे-पीछे चला।

तब तक शाम का प्रकाश समाप्त नही हुआ था। कापालिक आगे-आगे और नवकुमार पीछे-पीछे चले जा रहे थे। अचानक नवकुमार की पीठ पर किसी के कोमल हाथ का स्पर्श हुआ। घूम कर जो कुछ देखा उससे वह शून्य सा रह गया। वही एडी तक लम्बे घने बालो वाली, वन की वही देवी-मूर्ति। पहले की तरह ही नि शब्द, नि स्पन्द। यह मूर्ति कहाँ से एकाएक आ गई ? नवकुमार ने देखा—युवती मुँह पर उँगली रखे है। समझ गया कि वह बोलने को मना कर रही है। इस मनाही की ऐसी

विशेष आवश्यक्ता भी नही थी। नवकुमार वहाँ भला बात भी क्या करता। बस वह चकित हो खडा रह गया। कापालिक यह सब कुछ देख न पाया। वह आगे बढता गया। उसके कुछ दूर निकल जाने पर जहाँ उसे आवाज सुनाई न पडे, युवती ने कहा, 'कहाँ जा रहे हो ? मत जाओ। लौट जाओ, भाग जाओ।'

इतना कह कर युवती खिसक गई, जवाब सुनने को भी न ठहरी। नवकुमार कुछ देर तक अभिभूत सा खडा रहा। पीछे लौटने की सोचने लगा। लेकिन युवती किस ओर चली गई, इसका अन्दाज न पा कर मन ही मन कहा, 'यह किसी की माया है या मेरा ही यह भ्रम है ? जो बात सुनी उससे तो आशका होती है, लेकिन किस बात की आशका ? तान्त्रिक लोग सब कर सकते है। तो क्या भागूँ ? पर कहाँ है, भागने की जगह ?'

नवकुमार यही सोच रहे थे, तभी देखा, कापालिक उसे साथ आता न देख कर वापस आ रहा है। कापालिक ने कहा, 'देरी क्यो कर रहे हो ?'

जब आदमी अपने कर्तव्य का निश्चय नही कर पाता तो वह जिस ओर प्रेरित किया जाता है, उसी ओर जाता है। कापालिक के फिर पुकारने पर बिना कुछ कहे-सुने नवकुमार उसके पीछे चल पडा।

कुछ दूर जाने पर मिट्टी की दीवाल से घिरी एक कुटी दिखाई पडी। उसे छोटा सा घर भी कह सकते हैं। उसके पीछे ही बालू भरा समुद्र का किनारा है। घर के बगल से कापालिक नवकुमार को उसी बालू पर से ले चला। ठीक इसी समय तेज तीर की गति से वह युवती उसके बगल से निकल गई। जाते-जाते उसके कान मे कह गई, 'अब भी भाग जाओ। नर-मास के बिना तान्त्रिक की पूजा नही होती। तुम क्या यह नही जानते ?'

नवकुमार के माथे पर पसीना हो आया। दुर्भाग्य से युवती की यह बात कापालिक ने सुन ली। उसने कहा, 'कपालकुण्डले !'

नवकुमार के कानो को यह स्वर मेघ-गर्जन सा लगा। लेकिन कपालकुण्डला ने कोई उत्तर न दिया।

अब कापालिक नवकुमार का हाथ पकड कर लिवा ले जाने लगा। मनुष्य घाती के इस स्पर्श से नवकुमार के नसो मे खून सौगुना अधिक वेग से बहने लगा। उसका खो चुका साहस फिर लौट आया। बोला, 'हाथ छोडिए।'

कापालिक ने जवाब न दिया। नवकुमार ने फिर कहा, 'मुझे कहाँ ले जा रहे हैं ?'

कापालिक बोला, 'पूजा के स्थान पर।'

नवकुमार ने पूछा, 'क्यो ?'

कापालिक ने कहा, 'वध करने को।'

बडी तेजी से नवकुमार ने अपना हाथ खींचा। जिस शक्ति से उसने हाथ खीचा था, उससे, कोई साधारण आदमी यदि उसका हाथ पकडे होता तो हाथ छुडाना तो दूर, वह जमीन पर गिर पडता। लेकिन कापालिक का अंग हिला भी नही। नवकुमार की कलाई उसकी मुट्ठी मे ही रही। नवकुमार के शरीर के भीतर हड्डियो के सभी जोड जैसे अलग हो गए। नवकुमार समझ गया—शक्ति से काम न चलेगा। कौशल की अवश्यकता है। 'ठीक है, देखा जाएगा।' ऐसा सोच कर नवकुमार कापालिक के साथ-साथ चल पडा।

बालू के मैदान के बीच मे पहुँच कर नवकुमार ने देखा कि पहले दिन की तरह ही वहाँ एक बडे से लक्कड मे आग जल रही थी। चारो ओर तान्त्रिक पूजा की व्यवस्था। वहाँ नर-कपाल मे आसव भरा था, लेकिन कोई शव नही। अनुमान किया, उसे ही शव होना पडेगा।

वहाँ कुछ सूखे और मजबूत लता-गुल्म पहले से इकट्ठा किए गए थे। कापालिक उनसे ही नवकुमार को कस कर बाधने लगा। नवकुमार ने भी भरसक पूरा जोर लगाया। लेकिन कोई फल न निकला। उसने अनुमान लगाया कि इस उम्र मे भी कापालिक मे मतवाले हाथी का बल है। नवकुमार को जोर लगाते देख कर कापालिक ने कहा, 'मूर्ख! किसलिए शक्ति-प्रदर्शन करते हो? तेरा जन्म आज सार्थक हुआ। भैरवी की पूजा मे तेरा यह मासपिण्ड अर्पित होगा। इससे अधिक तेरे जैसे मनुष्य का और क्या सौभाग्य हो सकता है?'

नवकुमार को अच्छी तरह बाँध कर कापालिक ने उसे बालू पर डाल दिया और वध-प्रारम्भिक-पूजा मे तत्पर हुआ।

सूखी लता खूब मजबूत थी और बधन भी खूब दृढ। अब मृत्यु निकट है। नवकुमार ने इष्ट देवता के चरणो मे ध्यान लगाया। एक बार उसे अपनी जन्मभूमि की याद आई, अपना सुख का घर याद आया, एक बार बहुत दिन पहले का पिता व माता का चेहरा याद आया, दो एक बूँद आँसू गिर कर बालू मे ही सूख गए। बध की प्रारभिक क्रिया समाप्त कर कापालिक वध के लिए खडग लेने को आसन छोड कर उठा। लेकिन जहाँ खडग रखा था, वहाँ वह न था। आश्चर्य! कापालिका को आश्चर्य हुआ। तीसरे पहर जहाँ खडग ला कर उसने रखा था वहाँ से हटाया नही, फिर खडग् गया कहाँ? कापालिक ने इधर-उधर खोजा। लेकिन खडग् कही न मिला। तब उसने पहले तो कुटी की ओर मुँह कर के कपालकुण्डला को आवाज दी लेकिन जब बार-बार बुलाने पर भी कपालकुण्डला ने कोई उत्तर न दिया तो कापालिक की आँखे लाल और भवें कुञ्चित हुई। वह घर की ओर चला। अवसर देख कर नवकुमार ने एक बार फिर बन्धन-मुक्त होने का प्रयत्न किया, परन्तु वह प्रयत्न भी बेकार गया।

इसी समय पास ही बालू पर फिर वही कोमल पदध्वनि सुनाई पडी। यह

पदध्वनि कापालिक की नही। नवकुमार ने सिर घुमा कर देखा—वही मोहिनी-मूर्ति—कपालकुण्डला थी। उसके हाथ मे खडग् झूल रहा था।

कपालकुण्डला ने कहा, 'चुप, आवाज न हो। खडग् मेरे ही पास है। चुरा रखा था।'

इतना कह कर कपालकुण्डला जल्दी-जल्दी नवकुमार के लता-बन्धन को उसी खडग् से काटने लगी। क्षण-भर मे ही उसे मुक्त कर दिया। फिर बोली, 'भागो, मेरे पीछे-पीछे आओ। रास्ता बता देती हूँ।'

कह कर कपालकुण्डला तीर की गति से रास्ता दिखाती हुई चली। नवकुमार उछल कर उसके पीछे दौडा।

|७|

अन्वेषण

'And the great Lord of Luna
Fell at that deadly Stroke,
As falls on mount Alvernus
A thunder—Smitten oak—'

—Lays of Ancient Rome

इधर कापालिक घर मे कोना-कोना खोज कर और वहाँ खडग और कपालकुण्डला को न पा कर शकित मन से बालू के मैदान मे लौट आया। वहाँ आ कर देखा कि नवकुमार वहाँ न था। इससे उसे बडा विस्मय हुआ। कुछ देर बाद ही कटे लता बन्धन पर दृष्टि गई। तब सब समझ कर, कापालिक नवकुमार की खोज मे दौडा। लेकिन भागने वाले किस ओर, किस रास्ते गए है, इसका निश्चय करना कठिन था। अंधेरे के कारण उसे कुछ न दिखा। इसलिये आहट को लक्ष्य कर वह देर तक इधर-उधर भागता रहा। लेकिन आहट भी बराबर न मिली। अतएव विशेष रूप से समझने के लिए वह बालू के एक ऊँचे शिखर पर चढ गया। कापालिक जिस ओर से चढा उसके दूसरी ओर वर्षा के कारण स्तूप नीचे से कट गया था, उसे यह मालूम न था। शिखर पर चढते ही, कापालिक के शरीर के भार से वह जर्जर स्तूप प्रचण्ड आवाज के साथ धराशायी हो गया। स्तूप के धराशायी होते समय पर्वत के शिखर से गिरे भैंस की तरह कापलिक भी उसके साथ ही नीचे आ गिरा।

| ८ |

आश्रय

And that very night—
Shall Romeo bear thee to Mantua. —Romeo and Juliet

अमावस की उस अंधेरी रात मे दोनो दम साधे वन के भीतर घुसे। जंगली रास्ते नवकुमार के पहचाने न थे। साथ चलने वाली तरुणी के पीछे-पीछे उसके कदम पर कदम रख कर चलने के सिवा उसके पास उपाय ही क्या था ? लेकिन जगल के घोर अंधकार के कारण वह तरुणी भी हर समय दिखाई नही पड रही थी। अक्सर ऐसा होता कि तरुणी एक ओर बढती तो नवकुमार दूसरी ओर बढ जाता। तब युवती ने कहा, 'मेरा आँचल पकडो।'

नवकुमार तरुणी का आँचल पकड़ कर चलने लगा। धीरे-धीरे उन लोगो की गति कम होने लगी। अधेरे मे कुछ भी नजर नही आ रहा था। मात्र कभी किसी नक्षत्र के प्रकाश से कोई बालू-स्तूप का शिखर दिख जाता या कही जुगनुओ से घिरे वृक्ष के आकार का आभास मिल जाता।

नवकुमार को साथ लिए कपालकुण्डला जगल के गहरे भाग मे पहुँची। तब रात का दूसरा पहर था। तभी अधेरे मे ही सामने जगल के भीतर एक बहुत ऊँचे मन्दिर का शिखर दिखाई पडा। उसके पास ही ईंटो की चारदोवारी से घिरा एक घर भी दीख पडा। कपालकुण्डला चारदीवारी के दरवाजे के पास जाकर उस पर थपकियाँ देने लगी। काफी देर तक बार-बार खटखटाने के बाद एक व्यक्ति ने भोतर से कहा, 'कौन है ? कपालकुण्डला है क्या ?'

कपालकुण्डला ने कहा, 'दरवाजा तो खोलो।'

दरवाजा खुला। जिस आदमी ने दरवाजा खोला, वही मन्दिर की देवी का सेवक तथा अधिकारी था। आयु उसकी पचास के ऊपर ही थी। कपालकुण्डला ने उसके केश-हीन सिर को हाथो से पकड कर झुकाया और उसके कानो के पास अपना मुँह ले जा कर अति सक्षेप मे अपने साथी के बारे मे बताया।

पुजारी बहुत देर तक सिर पर हाथ रखे कुछ सोचते रहे। फिर कहा, 'यह बडा खतरनाक काम है। महापुरुष जो चाहे सो कर सकते है। लेकिन और चाहे जो हो पर माँ की कृपा से तुम्हारा अमगल कदापि न होगा। अच्छा तो वह आदमी कहाँ है ?'

'इधर आओ।' कह कर कपालकुण्डला ने नवकुमार को पुकारा। नवकुमार आड

मे ही खडा था, बुलाए जाने पर भीनर गया। पुजारी ने उससे कहा 'आज तुम यही छिपे रहो। कल सवेरे तुम्हे मेदिनीपुर के रास्ते पर छोड आऊँगा।'

पुजारी यह भाँप गया कि नवकुमार ने अभी तक कुछ खाया नही है। अत. वह नवकुमार के लिए भोजन-व्यवस्था मे व्यस्त हो गया। नवकुमार ने मना किया कि उसकी खाने को तनिक भी इच्छा नही है। वह सिर्फ आराम करना चाहता है। तब पुजारी ने अपनी रसोई मे ही नवकुमार के लिये बिस्तर बिछा दिया। नवकुमार के लेट जाने के बाद कपालकुण्डला समुद्र के किनारे वापस जाने की सोचने लगी। तब उसकी ओर ममता व स्नेह से देख कर पुजारी ने कहा, 'अभी जाना मत। थोडी देर ठहरो।.. .. एक भीख माँगता हूँ।'

'क्या ?' कपालकुण्डला ने तनिक विस्मय से पूछा।

'जब से तुम्हें देखा है तुम्हें माँ कहता हूँ। देवी के चरणो की शपथ ले कर कहता हूँ कि तुम्हे माता से अधिक स्नेह करता हूँ। मेरी भीख की तुम अवहेलना तो न करोगा ?'

'नही, बोलो न!'

'मै यही भीख माँगता हूँ कि अब तुम लौट कर वहाँ कभी मत जाना।'

'क्यो ?'

'वहाँ जाने पर अब तुम्हारी रक्षा न हो सकेगी।'

'यह तो मै भी समझती हूँ।'

'तो फिर वापस जाने को क्यो कहती हो!'

'वहाँ वापस न जाकर मै और कहाँ जा सकती हूँ ?'

'इसी आदमी के साथ दूसरे देश मे चला जाओ।'

कपालकुण्डला स्तब्ध रह गई। तब पुजारी ने पूछा, 'माँ क्या सोच रही हो ?'

'जब तुम्हारा शिष्य आया था तब तुमने कहा था कि युवती का इस तरह युवा पुरुष के साथ जाना ठीक नही है। अब जाने के लिए क्यो कहते हो।'

'तब तुम्हारे जीवन के लिए शका नही थी, अब है। आओ, चल कर माँ से आज्ञा ले आयें।' यह कह कर दीपक हाथ मे ले कर पुजारी ने मन्दिर का द्वार खोला। कपाल-कुण्डला चुपचाप उसके पीछे-पीछे गई। मन्दिर मे आदमकद कराल काली मूर्ति स्थापित थी। दोनो ने भक्ति-भाव से प्रणाम किया। आचमन करके पुजारी ने एक विल्वपत्र उठाया और मत्र पढ कर उसे मूर्ति के पावो मे रख कर उसकी ओर एकटक निहारने लगा। थोडी देर बाद पुजारी ने कपालकुण्डला से कहा, 'माँ, देखो, देवी ने अर्घ्य ग्रहण कर लिया। विल्वपत्र गिरा नही, जिस कामना से अर्घ्य दिया था उसमे अब मगल ही मगल है। तुम इस आदमी के साथ निश्चिन्त हो कर जाओ। मै विषयी मनुष्यो की रीतियो और चरित्र को खूब जानता हूँ। तुम अगर इसके गले पड कर इसके साथ जाओगी तो यह व्यक्ति

अपरिचित युवती को साथ ले जाने मे सकोच करेगा। लोग भी तुमसे घृणा करेंगे। तुम कहती हो कि यह व्यक्ति ब्राह्मण है, मै भी इसके गले मे यज्ञोपवीत देख रहा हूँ। यदि यह तुम्हे ब्याह कर ले जाये तो सब प्रकार से शुभ होगा। नही तो मै भी तुम्हें इसके साथ जाने को न कहूँगा।'

'ब्या . .. ह .।' कपालकुण्डला बहुत धीरे से बोली, 'ब्याह का नाम मैने तुम लोगो के ही मुख से सुना है, लेकिन ब्याह क्या होता है, मै नही जानती। ब्याह के लिये क्या करना होता है ?'

पुजारी मुस्करा उठा। बोला, 'स्त्रियो के लिए ब्याह ही धर्म की एकमात्र सीढी है। स्त्री को पति की सहधर्मिणी कहते है। जगतमाता भी तो शिवजी की ब्याहता है।'

पुजारी ने समझा कि इतना कह कर उसने सब कुछ समझा दिया। कपाल-कुण्डला ने भी सोचा कि सब कुछ समझ गई। बोली, 'तो ठीक है, लेकिन उन्हे छोड कर जाने को मन नही कहता। इतने दिनो तक उन्होने मेरा पालन-पोषण किया है।'

'पालन-पोषण क्यो किया है, यह तुम्हें नही मालूम। स्त्री का सतीत्व नष्ट किये बिना कोई तान्त्रिक सिद्ध नही होता। तुम्हें शायद यह बात नही मालूम। मैने भी मन्त्र पढा है। माता जगतमाता संसार की माता है। वे सतीत्व नाशवाली पूजा कभी ग्रहण नही करती। इसीलिये मैं उस महापुरुष की इच्छा के विरुद्ध काम कर रहा हूँ। उसकी छाया से भाग कर तुम कभी बुरा न करोगी। अभी तक उसकी साधना की सिद्धि का समय नही आया था इसीलिए तुम अभी तक बची हुई हो। आज तुमने जो काम किया है इससे तुम्हारे प्राण जाने का डर है। इसीलिए तुमसे भाग जाने को कह रहा हूँ। भवानी की भी यही आज्ञा है। इसलिए तुम जाओ। अगर मेरे पास तुम्हे रख पाने का उपाय होता तो जरूर रखता। लेकिन यह भरोसा नही है यह तो तुम जानती ही हो।'

फिर दोनो मन्दिर के बाहर आये। कपालकुण्डला को एक जगह बैठा कर पुजारी नवकुमार के पास गया। वह जाकर नवकुमार के सिरहाने बैठ गया। पूछा, 'महाशय, क्या आप नीद मे है ?'

नवकुमार की स्थिति नीद मे सोने की न थी। वह चुपचाप पडा अपनी दशा पर ही सोच रहा था। बोला, 'नही तो।'

पुजारी ने कहा, 'महाशय, मै आप का पूरा परिचय जानना चाहता हूँ। क्या आप ब्राह्मण है ?'

'जी हाँ।'

'किस श्रेणी के ?'

'राढीय।'

'हम लोग भी राढीय ब्राह्मण है, वश मे कुलाचार्य है, लेकिन इस समय माता के चरणो की सेवा मे है। महाशय का नाम ?'

'नवकुमार शर्मा ।'
'निवास ?'
'सप्तग्राम ।'
'आपलोग किस घराने के है ?'
'बन्द्योपाध्याय ।'
'अब तक कितनी शादियाँ की है ?'
'सिर्फ एक ।'

नवकुमार ने कह तो दिया पर वास्तव मे उसकी शादी नही हुई थी। रामगोविन्द घोषाल की पुत्री पद्मावती से उसका विवाह अवश्य हुआ था पर उसे विवाह नही कहा जा सकता। विवाह के बाद कुछ दिनो तक पद्मावती नैहर मे रही फिर ससुराल आयी। तब उसकी आयु तेरह वर्ष की थी। रामगोविन्द सपरिवार जगन्नाथ जी के दर्शन के लिए गये। इस समय पठान बगाल से निकाले जाकर उडीसा मे डेरा डाले हुए थे। उनके दमन के लिए अकबर शाह पूरा प्रयत्न कर रहे थे। जब रामगोविन्द घोषाल उडीसा से वापस आ रहे थे तब मुगलो और पठानो मे खूब लडाई चल रही थी। वापस आते समय रास्ते मे वे पठान सेना के हाथ मे पडे। पठान उस समय धन के लिए पथिको को सताते थे। रामगोविन्द उग्र स्वभाव के थे। पठानो से उलझ गए, पठानो ने उन्हे सपरिवार कैद कर लिया। अन्त में जातीय धर्म छोड कर सपरिवार मुसलमान धर्म स्वीकार करने पर ही उन्हें छुटकारा मिला।

रामगोविन्द घोषाल किसी तरह जान बचा कर सपरिवार घर वापस आये, लेकिन मुसलमान धर्म स्वीकार कर चुके थे इसलिए वे समाज व जाति से बहिष्कृत हो गए। तब नवकुमार के पिता जीवित थे। उन्हें जातिभ्रष्ट समधी के साथ जातिभ्रष्टा बहू का भी परित्याग करना पडा। फिर नवकुमार की उसकी पत्नी से कभी भेंट न हो सकी।

जाति से च्युत और समाज से बहिष्कृत होकर रामगोविन्द घोषाल ने गाँव का परित्याग कर दिया। जाति व धर्म का त्याग हो जाने पर राजदरबार से ऊँचा पद पाने की लालसा से वे अपने परिवार के साथ राजधानी—राजमहल मे जाकर रहने लगे। अब उन्होने सपरिवार मुसलमान नाम भी धारण कर लिया। राजमहल जाने के बाद श्वसुर और पत्नी की क्या दशा हुई, इसे मालूम करने का नवकुमार के पास कोई उपाय व साधन न था और वे कुछ भी मालूम न कर सके। पर वैराग्य के कारण नवकुमार ने दूसरी शादी न की।

पुजारी यह सब बाते न जानते थे। उन्होने मन मे सोचा कि कुलीन ब्राह्मण के दो विवाह भी हो तो कोई बुराई नही। फिर कहा, 'आप से एक बात पूछने आया था। जिस कन्या ने आप के प्राणो की रक्षा की है, उसके ही प्राण अब खतरे मे है। जिस

महापुरुष के आश्रम मे वह रहती है वे बडे भीषण व भयंकर स्वभाव के हैं। आप की जो दशा हो गई थी, वापस लौटने से वही दशा इसकी भी होगी। क्या उसकी रक्षा का आप कोई उपाय नही सोच सकते ?'

नवकुमार उठ कर बैठ गया। बोला, 'उसकी सुरक्षा की मुझे भी आशंका है। आप तो सब कुछ जानते है, आप ही कोई उपाय बताइए। मेरे प्राण देने से भी यदि उसकी रक्षा हो सके तो मै तैयार हूँ। मै सोचता हूँ कि यदि मै उस नरघातक के पास लौट जाकर आत्म-समर्पण कर दूँ तो इसकी रक्षा अवश्य हो जायगी।'

पुजारी हँस पडा, बोला, 'तुम पागल हो। भला इससे क्या लाभ होगा ? तुम्हारे प्राण तो जाएँगे ही और उस बेचारी पर भी महापुरुष का क्रोध बना रहेगा। बस एक ही उपाय है।'

'कौन-सा उपाय है ? बतलाइये।'

'यह आपके साथ ही चली जाय। मेरे यहाँ रही तो दो-एक दिनो मे ही पकड ली जायेगी क्योकि वह बडा दुर्घट है। महापुरुष इस मदिर मे बराबर आते हैं। इसीलिए मैं कपालकुण्डला के भाग्य मे स्पष्ट अमगल देख रहा हूँ।'

नवकुमार ने साग्रह पूछा, 'मेरे साथ जाने मे उसकी रक्षा हो सकेगी ? ऐसा कैसे सम्भव है ?'

'यह किसकी कन्या है, किस कुल की है, यह सब आप कुछ भी नही जानते। इसका चरित्र कैसा है, यह भी आप नही जानते। फिर भी क्या आप इसे जीवनसगिनी बनाएँगे ? ब्याह करके लिवा ले जाने पर क्या इसे अपने घर मे जगह देंगे ?'

थोडी देर सोच कर नवकुमार बोला, 'अपने प्राण बचाने वाली के लिए मै कुछ भी कर सकता हूँ। ये मेरे परिवार मे मिल कर रहेगी।'

'पर जब आपके आत्मीयजन पूछेंगे कि यह किसकी स्त्री है तो आप क्या जवाब देंगे ?'

'आप ही इसका जवाब बता दीजिए, मै वही कहूँगा।'

'अच्छी बात है। लेकिन एक पखवारे से अधिक का यह रास्ता आप दोनो बिना किसी अन्य की सहायता के काटेंगे कैसे ? देख कर लोग भी क्या कहेगे ? स्वजनो को क्या समझाओ गे ? फिर मैने भी इस कन्या को सदा माँ कहा है। मै भी किस तरह उसे किसी अपरिचित के साथ अकेला ही दूर देश भेज दूँ ?'

'तो आप भी साथ चलिए।'

'मै चलूँगा तो माता की सेवा कौन करेगा ?'

नवकुमार ने तनिक क्षुब्ध हो कर कहा, 'तो आप भी कोई उपाय नही बता सकते ?'

'उपाय तो एक है और बहुत ही अच्छा, लेकिन वह आप की उदारता की प्रतीक्षा में है।'

'वह क्या है ? मैं किसी काम से भी मुँह नही मोडता । आप बताइए, क्या उपाय है ?'

'सुनिए, वह ब्राह्मण-कन्या है । मुझे ठीक मालूम है । बचपन मे इसे क्रिस्तान-तस्करो ने चुरा लिया था, बाद मे समुद्र-तट पर इसे छोड गये । बाद मे इसे पाकर हमारे कापालिक ने योग-सिद्धि की कामना से इसे पाला । अब वह जल्द ही अपने प्रयोजन की सिद्धि करने वाले हैं । यह अभी तक कुमारी ही है । चरित्र परम पवित्र है । आप इससे विवाह करके अपने साथ ले जाइए । तब कोई कुछ न कहेगा । मै विधिवत् विवाह करा दूँगा ।'

नवकुमार उठ कर खडा हो गया । वह बेचैन सा इधर-उधर टहलने लगा । कुछ देर बाद पुजारी ने कहा, 'अब इस समय आप सो जाइए । अब कल सुबह निर्णय करूँगा । इच्छा हो तो आप अकेले चले जाइए गा । आप को मेदिनीपुर का मै रास्ता बता दूँगा ।'

|९|

देव-निकेतन में

'कराव—अलं रुदितेन, स्थिरा भव, इत. पन्थानमालोकय ।' —शकुन्तला

सबेरे पुजारी नवकुमार के पास आये । देखा, तब तक शायद नवकुमार सोया नही था । पूछा, 'क्या निर्णय किया ?'

नवकुमार ने जवाब दिया, 'आज से कपालकुण्डला मेरी धर्मपत्नी है । उसके लिए यदि मुझे संसार भी छोडना पडेगा तो वह भी करूँगा । लेकिन कन्या-सम्प्रदान कौन करेंगे ?'

पुजारी का चेहरा खुशी से खिल उठा । मन मे सोचा—शायद इतने दिनो बाद माता जगदम्बा की कृपा से मेरी कपालिनी की गति हुई । फिर बोले, 'मै ही सम्प्रदान करूँगा ।'

पुजारी अपने कमरे मे गये । वहाँ एक बस्ते मे बहुत ही जीर्ण अवस्था मे पुराने ताड-पत्र रखे थे । उनमे तिथि-नक्षत्रादि का लेखा था । उसी मे से पढ कर और सब समझ कर वापस आये और बोले, 'आज यद्यपि विवाह की लग्न नही है, फिर भी कोई बाधा नही है । आज ही गोधूलि लग्न मे कन्या-सम्प्रदान करूँगा । तुम आज उपवास

करोगे । अपने कुल के अन्य आचरण घर जा कर पूरे करना । यहाँ ऐसी जगह है जहाँ तुम्हे एक दिन के लिए छिपा कर रख सकता हूँ । अगर आज वे आवेगे तो तुम दोनो की टोह भी उन्हे न मिलेगी । बाद मे शादी हो जाने के बाद दोनो प्राणी सबेरे अपने घर चले जाना ।'

नवकुमार ने सहमति प्रकट की । स्थिति को देखते हुए जहाँ तक संभव था, सब काम शास्त्रानुकूल हुआ । गोधूलि लग्न मे ही नवकुमार के साथ उस कापालिक-पालिता कपालकुण्डला का विवाह हो गया ।

उस दिन कापालिक की कोई खबर न मिली । दूसरे दिन सबेरे ही तीनो जन यात्रा की तैयारी करने लगे । पुजारी उन्हे छोडने मेदिनीपुर के रास्ते तक जाएँगे ।

चलते समय कपालकुण्डला काली जी के दर्शन करने गई । भक्ति भाव से देवी को प्रणाम कर एक विल्वपत्र मूर्ति के चरणो पर रख कर एकटक मूर्ति को देखने लगी । विल्वपत्र नीचे गिर गया ।

कपालकुण्डला पूरी भक्तिन थी । मूर्ति के चरणो से विल्वपत्र गिर गया, देख कर डर गई । इसकी सूचना उसने पुजारी को भी दी । पुजारी भी उदास हो गये । बोले, 'अब तो कोई उपाय नही है । अब तो पति ही तुम्हारा धर्म है । पति अगर श्मशान जाए तो तुम्हे भी साथ ही जाना होगा । सो अब चुपचाप चल ही पडो ।'

सभी चुपचाप चल पडे । काफी दिन चढने के बाद मेदिनीपुर वाले रास्ते पर आये । वहाँ से पुजारी वापस हुए । कपालकुण्डला रो पडी । उसका इस ससार मे जो एकमात्र सुहृद था, वह विदा हो रहा था ।

पुजारी भी रो पडे । फिर आँखो के आँसू पोछ कर कपालकुण्डला के कानो मे धीरे से कहा, 'माँ, तू जानती ही है कि माता की कृपा से मुझे अर्थाभाव नही है । तेरी साडी में जो कुछ बाँध दिया है उसे अपने पति को दे कर कहना कि एक पालकी किराए पर कर लेगा ।'

यह कह कर पुजारी रोते हुए वापस हुए । कपालकुण्डला भी रोती हुई आगे बढी ।

दूसरा भाग

।१।

राजपथ में

'There—now lean on me,
Place your foot here—' —Manfred

कपालकुण्डला के जीवन का एक सर्ग इस प्रकार समाप्त हुआ।

मेदिनीपुर आ कर नवकुमार ने पुजारी के दिये हुए धन से कपालकुण्डला के लिए एक दासी, एक रक्षक और पालकी-कहार कर दिया। धनाभाव के कारण खुद पैदल चला। पिछले दिन के परिश्रम के कारण वह काफी थक गया था। दोपहर के भोजन के बाद कहार पालकी ले कर काफी आगे बढ गये। शाम हुई तो जाड़े के बादलो से आकाश ढँक गया। जब रात आई तब तक सारी पृथ्वी अंधकार मे डूब गई थी। धीरे-धीरे वर्षा शुरू हुई। कपालकुण्डला के पास पहुँचने के लिए नवकुमार जल्दी जल्दी चलने लगा। मन मे यही आशा थी कि पहली सराय मे उससे भेंट होगी। लेकिन सराय मे वह न मिली। रात काफी बीत चुकी थी। नवकुमार जल्दी-जल्दी पाँव बढा कर चला। अकस्मात किसी कठोर चीज पर उनका पाँव पडा। पाँव के नीचे वह कडी चीज चर-चरा कर टूट गई। नवकुमार रुक गया। फिर सम्हल कर आगे बढा। पाँव मे लगी चीज को हाथ मे उठाया। देखा, टूटा तख्ता सा था।

अँधेरे मे भी वह देख सका कि एक बडी चीज सामने पडी है। टटोल कर समझा—एक बडी पालकी थी। उसके मन मे तत्काल कपालकुण्डला के सम्बन्ध मे विपत्ति की शंका हुई। तभी उसके पॉव से कुछ टकराया। लगा जैसे किसी आदमी का शरीर हो। टटोल कर देखा—किसी की देह ही थी। बहुत ठण्डा स्पर्श। नब्ज देखी, गतिहीन थी। जान निकल चुकी है। फिर प्रयत्न करके अच्छी तरह देखा—जैसे साँस चलने की आहट मिली। साँस मिली पर नब्ज नदारद, ऐसा क्यो ? नाक पर हाथ रख

कर देखा—साँस नही चल रही है। फिर यह भ्रम क्यो ? शायद आस-पास कोई जीवित मनुष्य हो। पुकार कर पूछा, 'यहाँ कोई है ?'

मृदु स्वर मे उत्तर मिला, 'है।'

'तुम कौन हो ?'

स्त्री-कण्ठ से उत्तर के स्थान पर प्रश्न आया, 'तुम कौन हो ?'

'क्या तुम कपालकुण्डला हो ?'

'कौन कपालकुण्डला ? मै नही जानती। मै पथिक हूँ। डाकुओ के हाथो लूटी गई हूँ।'

'क्या हुआ है ?'

'डाकुओ ने मेरी पालकी तोड दी, मेरे एक कहार को मार डाला, बाकी सब डर कर भाग गये। डाकू मेरे शरीर के गहने छीन कर मुझे पालकी से बाँध गये है।'

बढ कर नवकुमार ने देखा कि सचमुच एक स्त्री पालकी के साथ कपडे से कस कर बँधी है। नवकुमार ने शीघ्रता से उसे खोला और पूछा, 'क्या तुम उठ सकती हो ?'

'मुझ पर भी एक लाठी पडी है। पैर मे बडा दर्द है। मदद पा कर उठ सकती हूँ।'

नवकुमार ने सहायता के लिए हाथ बढा दिया। उसे पकड कर स्त्री उठी। नवकुमार ने पूछा, 'क्या चल सको गी ?'

'आपके पीछे कोई यात्री आ रहा था, आपने देखा है ?'

'नही।'

'चट्टी कितनी दूर होगी ?'

'कह नही सकता पर लगता है, पास ही है।'

'अकेले अधेरे मैदान मे बैठ कर क्या करूँगी। आप के साथ चट्टी तक जाना ही ठीक होगा। कोई सहारा दे तो चल सकती हूँ।'

'विपत्ति के समय सकोच करना मूर्खता है। मेरे ही कंधे का सहारा ले कर चलो।'

नवकुमार के कधे पर भार दे कर स्त्री आगे बढी।

चट्टो सचमुच पास ही थी। उन दिनो चट्टी के इतने निकट भी लूटपाट करने मे डाकू हिचकते न थे। नवकुमार उस स्त्री के साथ चट्टी मे आया।

नवकुमार ने देखा कि उसी चट्टी मे कपालकुण्डला ठहरी थी। नौकरो ने एक कमरा ठीक कर दिया था। उसके बगल वाला कमरा नवकुमार ने अपनी सगिनी के लिए ठीक कर दिया। चट्टी का एक आदमी वहाँ दीपक रख गया। दीपक के प्रकाश मे नवकुमार ने सगिनी को देखा, वह अनुपम सुन्दरी थी।

|२|

मार्ग-अश्राय में

'क्वैषा योषित् प्रकृतिचपला ।'

—उद्धवदूत ।

रमणी अनुपम सुन्दरी थी, पर सर्वाङ्ग सुन्दरी नही। उसका कद मझोले से कुछ ही ऊँचा था, होठ कुछ दबे हुए, और सही अर्थो मे उसके रग को गोरा नही कहा जा सकता। बरसात मे लता जिस प्रकार अपनी पत्तियो से लहराती रहती है, उसकी देह भी अपनी सम्पूर्णता के कारण टलमल कर रही थी। लम्बाई भी शरीर के सौदर्य को बढाती थी। रग गोरा न होने पर भी नये सोने सा आकर्षक व चमकदार है। दोनो आँखें दूसरो के मन तक उतर कर देखती हैं। इन कारणो से जब वह रमणी अपनी लम्बी गरदन टेढी कर के खडी होती तो यह सहज ही मालूम होता कि वह सुन्दरियो की रानी है।

रमणी की आयु सत्ताइस वर्ष है।—भादो की भरी नदी। भादो के महीने की नदी के जल की तरह उसकी रूपराशि टलमल कर रही थी। रग से, आँखो से, सब से उसके सौदर्य के भराव का ही बोध होता था। पूरी जवानी के भार से उसकी देहराशि सदा चपल रहती। वैसी ही चपल, जैसे वर्षा के बाद नदी। वह चपलता जैसे प्रतिक्षण नई-नई शोभा धारण कर रही हो। नवकुमार एकटक उस शोभा का रसास्वादन करता रहा।

नवकुमार की पलके नही गिर रही है, देख कर उस सुन्दरी ने ही पूछा, 'आप क्या देख रहे है ? क्या मेरा रूप ?'

नवकुमार भला आदमी है। घबरा कर उसने सिर झुका लिया, बोला कुछ नही। तब सुन्दरी हँस कर बोली, 'आपने क्या कभी कोई स्त्री नही देखी ? या आप समझते है कि मै बहुत सुन्दरी हूँ ?'

यही बात यदि सहज-भाव से कही जाती तो तिरस्कार जैसी लगती, लेकिन उस रमणी ने यह बात जिस प्रकार मधुर बना कर कही थी वह व्यंग्य के अलावा और कुछ नही लगी। नवकुमार जान गया कि वह रमणी बहुत मुखर है। तो ऐसी मुखरा की बात का जवाब भी क्यो न दिया जाय ? उसने कहा, 'मैने स्त्रियो को देखा है, पर ऐसी सुन्दरी नही देखी।'

रमणी ने सगर्व पूछा, 'क्या एक भी नही?'

अचानक ही नवकुमार के मन मे कपालकुण्डला का रूप सजीव हो उठा। उसने भी सगर्व ही उत्तर दिया, 'एक भी नही, ऐसा नही कह सकता।'

जैसे पत्थर पर लोहे की चोट पडी। उस रमणी ने कहा, 'यह तो बहुत अच्छा है। वह क्या आपकी गृहणी है ?'

'क्यो, गृहणी ही क्यो समझ बैठी ?'

बगाली अपनी गृहणी को ही सब से अधिक सुन्दरी समझते है।'

'मै बगाली हूँ। आप क्या बगाली नही है ? बगाली जैसी ही बातचीत तो आप कर रही है। फिर आप किस देश की है ?'

रमणी ने एक बार अपने पहनावे की ओर नजर डाली और फिर बोली, 'यह अभागिन बगालिन नही है, पश्चिम की मुसलमानिन है।'

नवकुमार ने बहुत गौर कर के देखा, पहनावा सचमुच पछाँह की मुसलमानिन जैसा ही है, लेकिन बोल-चाल तो ठेठ बंगालिन जैसा ही है। शुद्ध बंगाली उच्चारण !

थोडी देर के बाद रमणी ने कहा, 'महाशय, चतुराई से बात-बात मे आप ने तो मेरा परिचय पूछ लिया, अब अपना परिचय भी देने की कृपा कीजिए। जिस घर मे वह अद्वितीया रूपवती गृहिणी निवास करती है, वह घर कहाँ है ?'

'मै सप्तग्राम मे रहता हूँ।'

सुन कर रमणी चुप रह गई, बोली नही। एकाएक मुँह नीचा कर के वह दिये की बत्ती जगाने लगी। थोडी देर की खामोशी के बाद बिना मुँह ऊपर उठाए ही उसने कहा, 'खादिमा का नाम मोती है। जनाब का इस्मशरीफ ?'

'मुझे नवकुमार शर्मा कहते है।'

फिर दिया बुझ गया।

|३|

सुन्दरी दर्शन

'—धरो देवि मोहन मूरति
देहो आज्ञा, साजाइ ओ वरवपू आनि
नाना आभरण।' —मेघनादवध

चट्टी के मालिक को बुला कर नवकुमार ने दूसरा दिया लाने के लिए कहा। दूसरा दिया आने से पहले उसने अंधेरे मे एक लम्बी साँस सुनी। दिया आ जाने के कुछ

देर बाद मुसलमान-सा दिखने वाला एक नौकर आया। उसे देख कर रमणी ने कहा, 'यह क्या, तुम लोगो को इतनी देरी क्यो लगी ? और सब कहाँ है ?'

नौकर ने उत्तर दिया, 'कहार सब दारू पी कर मतवाले हो रहे थे। उन्हे ही इकट्ठा करके लाने मे हम पालकी के पीछे छूट गये थे। बाद मे टूटी हुई पालकी पडी देख कर और वहाँ आपको न पाकर हमारे तो होश ही उड गये थे। कुछ वही खडे है, कुछ आप की खोज मे इधर-उधर गये है। मै भी यहाँ आप को ढूँढने ही आया था।'

'उन सब को लिवा लाओ।'

नौकर सलाम कर के चला गया। रमणी काफी देर तक हथेली पर गाल धरे बैठी रही।

नवकुमार ने विदा माँगी, तब मोती जेसे स्वप्न से जागी और हडबडा कर खडी हो कर पहले के भाव से बोली, 'आप कहाँ रहेगे ?'

'इसी के बगल वाले कमरे मे।'

'इस कमरे के पास एक पालकी देखी थी। क्या आपके साथ कोई है ?'

'हाँ, मेरी स्त्री साथ है।'

मोती बीबी को जैसे फिर व्यग्य का अवसर मिला, पूछा, 'वही क्या अपरूप सुन्दरी है ?'

'वह तो देख कर ही जानिएगा।'

'क्या देख सकती हूँ ?'

'हर्ज क्या है ?'

'तो फिर कृपा कीजिए। अद्वितीया रूपवती को देखने के लिए बडा कौतूहल हो रहा है। आगरे जाकर कह सकूँगी। पर अभी नही, अभी आप जाइये। थोडी देर बाद मैं आप को खबर भेजूँगी।'

फिर नवकुमार चला गया।

कुछ देर बाद बहुत से आदमी, नौकर-चाकर, दासियाँ, कहार सदूक आदि सामान लिए हुए आ उपस्थित हुए। एक पालकी भी आई, उसमे एक नौकरानी थी। थोडे समय बाद नवकुमार के पास खबर आई कि बीबी ने आप को सलाम कहा है।

फौरन ही नवकुमार मोती बीबी के पास आया। देखा, वहाँ तो इस बार दूसरा ही रंग है। पहले वाली पोशाक उतार कर बीबी ने मोती और सोने के तरह-तरह के कामवाले जेवरात और कपडे पहन रखे है। सारा शरीर जेवरो से भरा था। जैसे जहाँ जो कुछ अटा—कुन्तल मे, कबरी मे, कपाल मे, कोरो मे, कानो मे, गले मे, सीने पर, बाँहो मे, सभी जगह सोने के बीच हीरे आदि रत्न जगमगा रहे है। नवकुमार की आँखे चौंधिया गईं। उसका अनुभव था कि अधिकाश स्त्रियाँ सोने के अधिक गहने पहनने पर अक्सर कुछ बदसूरत दिखने लगती है, लेकिन मोती बीबी इसके विपरीत दिखी। अनगिनत

तारो की माला से लदे आकाश की तरह देह पर लदे गहनो की अधिकता और भी सौदर्य बढाने लगा। सुन्दरता की प्रभा दुगुनी हो उठी थी।

मोती बीबी ने ही नवकुमार से कहा, 'चलिए महाशय, आप की सुन्दरी पत्नी से परिचय प्राप्त कर लूँ।'

नवकुमार बोला, 'पर इसके लिए इतने गहने पहनने की जरूरत न थी, मेरी स्त्री के पास तो एक भी गहना नही है।'

'समझ लीजिए कि दिखाने के लिए ही गहने पहने है। स्त्रियो के पास गहने रहे तो उनसे बिना दिखाए नही रहा जाता। ख़ैर, चलिए अब।'

नवकुमार मोती बीबी को साथ ले कर चला। पालकी पर आने वाली नौकरानी भी साथ चली। उसका नाम पेशमन है।

उस समय कपालकुण्डला सराय वाले कमरे के गीले फर्श पर अकेली ही बैठी थी। मात्र एक दिया टिमटिमाता सा जल रहा था। खुले केश पीछे अधेरा किए हुए थे। मोती बीबी ने जब उसे पहले-पहल देखा तो होठो और कोरो मे जरा मुस्कराहट खिली। फिर अच्छी तरह देख सकने के उद्देश्य से मोती बीबी दिया उठा कर कपाल-कुण्डला के चेहरे के पास ले गई। तब वह मुस्कराहट वाला भाव दूर हो गया। मोती बीबी का चेहरा एकाएक गभीर हो उठा। वह बस एकटक देखती रही। किसी के मुँह से कोई बात नही निकली। मोती बीबी मुग्ध थी और कपालकुण्डला विस्मित।

कुछ देर के बाद मोती बीबी चुपचाप अपने शरीर से गहने उतारने लगी। अपने अग-अग से गहने उतार-उतार कर मोती बीबी कपालकुण्डला को पहनाने लगी। कपालकुण्डला कुछ बोल न सकी। नवकुमार ही को बोलना पडा, 'यह क्या हो रहा है?'

मोती बीबी ने कोई जवाब न दिया।

सभी गहने पहनाये जा चुकने पर, मोती बीबी ने नवकुमार से कहा, 'आप ने सच ही कहा था। ऐसा खूबसूरत फूल तो राजाओ की फुलवाडी मे भी नही खिलता। अफसोस यह है कि यह खूबसूरती मै राजधानी मे नही दिखा सकी। ये गहने इन्ही अगो के लायक है, इसीलिए इन्हे ही पहना दिया। आप भी कभी-कभी पहना कर इस मुखरा परदेसिन को याद किया कीजिएगा।'

नवकुमार चकित, बोला, 'यह सब क्या ? ये तो बहुत कीमती है! और मै यह सब लूँगा भी क्यो कर ?'

'ईश्वर के दिए, मेरे पास और भी है। मै नगी नही रह जाऊँगी। इन्हे पहना कर अगर मै सुखी होती हूँ तो आप बाधा क्यो डालते है ?' कहते हुए मोती बीबी घूम कर दासी के साथ चली गई।

अकेला होने पर पेशमन ने मोती बीबी से पूछा, 'बीबी जान, यह आदमी

कौन था ?'

मुसलमान सुन्दरी ने धीरे से कहा, 'मेरा शौहर।'

|४|

पालकी में

'··· खुलिनु सत्वरे,
कंकण, वलय, हार, सीथि, कण्ठमाला,
कुण्डल, नूपुर, काञ्ची।' —मेघनादवध

गहने की क्या दशा हुई सो सुनिये। मोती बीबी ने गहने रखने के लिए एक चाँदी मढी हाथीदाँत की सँदूकची भेज दी। डाकू उसका थोडा सा ही सामान लूट सके थे। उसके पास जो कुछ था, उसके अलावा और कुछ नही मिला।

दो थान गहने कपालकुण्डला के शरीर पर छोड कर बाकी सब नवकुमार ने उसी सन्दूकची मे रख दिया। दूसरे दिन मोती बीबी सबेरे ही वर्दमान की ओर और नवकुमार पत्नी के साथ सप्तग्राम की ओर चल पडे। कपालकुण्डला को पालकी पर बैठा कर नवकुमार ने गहनो की सन्दूकची भी साथ ही रख दी। कहार सहज ही नवकुमार को पीछे छोड कर पालकी लेकर आगे बढ गये। बीच-बीच मे पालकी का दरवाजा खोल कर चारो ओर देखती हुई कपालकुण्डला चली जा रही थी। उसे देख कर एक भिखारी भीख माँगता हुआ पालकी के साथ-साथ चला।

कपालकुण्डला ने कहा, 'मेरे पास तो तुम्हे देने लायक कुछ भी नही है।'

कपालकुण्डला की देह पर जो दो थान गहने थे, उनकी ओर उँगली उठा कर भिखारी ने कहा, 'यह क्या कहती हो माँ ? तुम्हारे पास इतने हीरे-मोती है, और कहती हो कि कुछ नही है ?'

कपालकुण्डला ने पूछा, 'गहने पाकर तुम सतुष्ठ होगे ?'

भिखारी थोडा विस्मित हुआ। भिखारी की आशा अपरिमित। क्षण भर चुप रह कर बोला, 'होऊँगा क्यो नही ?'

अकपट मन से कपालकुण्डला ने गहनो की संदूकची भिखारी के हाथो मे रख दी। देह पर लदे गहने भी उतार कर दे दिये।

भिखारी कुछ देर तक विह्वल रहा। दास-दासियो को कुछ भी मालूम न हो सका। भिखारी की विह्वलता क्षणिक थी। उसी क्षण इधर-उधर देख कर उसने ऊँची

साँस खीची और गहने ले कर भाग खडा हुआ ।

कपालकुण्डला कुछ समझ न सकी । मन ही मन पूछा, 'भिखारी भागा क्यो ?'

|५|

स्वदेश में

शब्दारण्ये यदपि किल ते य सखीना पुरस्तात् ।
कर्णे लोलं कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥ —मेघदूत

कपालकुण्डला को साथ ले कर नवकुमार अपने देश पहुँचा । नवकुमार था पितृहीन । घर में थी विधवा माँ और दो बहनें । बडी बहन तो विधवा थी ही और दूसरी बहन श्यामासुन्दरी सधवा हो कर भी विधवा ही थी । वह कुलीन की पत्नी थी ।

यदि किसी अन्य परिस्थिति मे नवकुमार अज्ञात कुलशीलवाली किसी तपस्विनी कन्या को ब्याह कर घर ले आता तो उसके आत्मीय-स्वजन कितना खुश होते, कहना कठिन है, पर इस स्थिति मे उसे वास्तव मे किसी प्रकार की भी उलझन नही हुई । उसके वापस आने के संबध मे सभी निराश हो चुके थे । क्योकि उसके साथियो ने लौट कर यही घोषित किया था कि नवकुमार को रास्ते से बाघ पकड ले गया । ऐसा लोगो ने अपनी धारणा और विश्वास के अनुसार ही कहा था और अपनी कल्पना-शक्ति की सच्चाई के लिए कभी इस घटना की चर्चा करते हुए वे बाघ की बडाई करते हुए कहते, 'बाघ आठ हाथ का रहा होगा ।' कोई कहता, 'नही, चौदह हाथ से कम नही ।' एक ने कहा, 'कुछ भी हो, मै तो खूब बचा । पहले तो बाघ मेरी ओर ही झपटा था, लेकिन मै भाग कर बच गया । नवकुमार मे उतनी हिम्मत नही थी, वह भाग नही पाया ।'

शुरू मे जब यह चर्चा नवकुमार की माँ आदि सुनती तब घर के भीतर इतनी भीषण रुलाई शुरू होती कि उसे शात होने मे कई दिन लगते । एक मात्र पुत्र की मृत्यु के दु सवाद से नवकुमार की माँ तो एकबारगी मरणासन्न हो गई थी । इसलिए अब जब नवकुमार पत्नी साहित अपने वर वापस आया तब उससे भला यह कौन पूछता कि तुम्हारी पत्नी किस जाति या कुल की है, या किसकी लडकी है ? उसके वापस आने की खुशी मे ही सब अंधे हो रहे थे । नवकुमार की माँ बडे आदरपूर्वक स्वागत कर के बहू को घर मे ले गई ।

जब नवकुमार ने यह देखा कि कपालकुण्डला उसके घर मे आदरपूर्वक स्वीकार कर ली गई तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा । अनादर के भय के कारण कपाल-

कुण्डला को पा कर भी किसी तरह का आह्लाद या प्रणय-लक्षण वह प्रकट न कर पा रहा था, यद्यपि उसके हृदय का आकाश कपालकुण्डला की मूर्ति से ही व्याप्त था। इसी आशंका से वह पहले कपालकुण्डला से विवाह करने के प्रस्ताव पर हाँ नही कह सका था। इसी आशंका से कपालकुण्डला को पत्नी बना कर घर लाने के बाद भी वह उसके साथ प्रेम-सम्भाषण नही कर सका था। उमडते हुए अनुराग के सागर मे एक भी तरग विक्षिप्त नही होने दी थी। अब जब आशका दूर हुई तब, पानी के बहाव मे गतिरोध उत्पन्न करने वाले पत्थरो को दूर करने के बाद जैसी तरगो मे अदम्य गति पैदा होती है, वैसी ही अबाध-गति से नवकुमार का प्रेम सागर भी तरगें लेने लगा।

प्रेम का यह अविर्भाव मात्र बातो से ही व्यक्त नही होता था, बल्कि कपालकुण्डला को देखते ही नवकुमार सजल नेत्रो से उसकी ओर एकटक देखता रहता जैसे वह उसी से प्रकाश पाता हो और बिना जरूरत ही कपालकुण्डला को निकट रखने का प्रयास करता और बिना कारण व प्रसंग ही कपालकुण्डला के पास जाता, और बिना प्रसग ही जिस तरह वह कपालकुण्डला की चर्चा करता और उसके हर समय अनमना रहने से उसके मनोभाव का पता लगता था। धीरे-धीरे जैसे उसका स्वभाव ही बदलने लगा। जहाँ चंचलता थी वहाँ अब गभीरता आ गई, जहाँ अवसाद था वहाँ प्रसन्नता आ गई, और नवकुमार का चेहरा हर समय खिला रहने लगा। अपने हृदय के स्नेह को एक आधार मिल जाने के कारण दूसरो के लिए भी स्नेह की अधिकता उत्पन्न हुई। पहले जिनसे उसे नफरत थी, उनसे भी स्नेह हो गया। अब उसके लिए हर आदमी प्रेम का पात्र बन गया। अब उसे लगने लगा कि दुनिया मात्र सत्कर्म के लिए ही बनी है। सारा ससार उसे सौंदर्यमय दिखने लगा। प्रणय का असर ऐसा ही होता है। प्रणय कर्कश को मधुर और असत् को सत् करता है और पापी को पुण्यात्मा बनाता तथा अधेरे को उजाले मे बदल देता है।

और कपालकुण्डला? उसके क्या भाव है?

|६|

अवरोध

'किमित्यपास्याभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥' —कुमारसम्भव

यह तोसर्वविदित है कि सप्तग्राम पहले बडा समृद्धशाली नगर था। एक समय

नवद्वीप से रोम तक सभी देशो के व्यापारी वाणिज्य के लिए इसी महानगर मे आ कर मिलते थे। लेकिन सोलहवी-सत्रहवी सदी से सप्तग्राम का प्राचीन गौरव घटने लगा। इसका मुख्य कारण था कि उस नगर के प्रान्त-भाग को धोती हुई जो नदी बहती थी, वह धीरे-धीरे सकीर्ण-देह और क्षीण-धारा होने लगी। इसलिए बडे-बडे जहाजो को उस नगर तक जाने मे रुकावट आने लगी। इसीलिए व्यापार का विस्तार क्रमश॰ लुप्त होने लगा। व्यापारी गौरव वाले नगरो का जब व्यापार नष्ट होने लगता है तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। सप्तग्राम का भी सब कुछ नष्ट हो गया। सत्रहवी सदी मे हुगली नये शृंगार करके सप्तग्राम की प्रतियोगिनी बनी। पुर्तगालवासियो ने नए व्यापार का सूत्रपात करके सप्तग्राम की धनलक्ष्मी को आकर्षित कर लिया। लेकिन तब भी सप्तग्राम बिल्कुल ही श्री-हीन नही हो गया। वहाँ अब भी फौजदार आदि प्रमुख राज-पुरुषो का वास था। हाँ, नगर का अधिकाश भाग श्री-हीन और वीरान हो कर गाँव का रूप धारण कर चुका था।

सप्तग्राम के एक निर्जन उपनगर वाले भाग मे नवकुमार रहता था। सप्तग्राम की उजडी दशा के कारण इस समय वहाँ प्रायः मनुष्यो का अधिक आना-जाना न था। बडे-बडे रास्ते भी झाडियो-काँटो से भर गये थे। नवकुमार के घर के पीछे ही एक चौडा घना जंगल था। मकान के सामने लगभग एक मील दूर पर एक नहर बहती थी। वह नहर एक छोटे से भू-भाग को घेर कर घर के पीछे वाले जंगल मे चली गई थी। घर ईंटो का बना था। देश-काल की दृष्टि से उसे बहुत छोटा घर नही कह सकते थे। घर दुमजिला था, पर बहुत ऊँचा नही। आजकल तो वैसी ऊँचाई एकमजिले घरो की होती है।

इस समय, इसी मकान की खुली छत पर दो कम-उम्र स्त्रियाँ खडी हुई चारो ओर देख रही थी। सध्या उतर आयी थी। इस समय चारो ओर जो कुछ भी दिखाई पडता था वह आँखो को अच्छा ही लग रहा था। पास ही एक ओर घना जगल था। उस जंगल मे असख्य चिडियाँ कलरव कर रही थी। दूसरी ओर छोटी व पतली सी नहर चाँदी के तार की तरह पडी थी। दूर महासागर नये वासन्ती पवन के स्पर्श से परिपूर्ण हो रहा था। दूसरी ओर बहुत दूर पर भागीरथी के विशाल वक्ष पर संध्या का अधकार धीरे-धीरे गहरा होता जा रहा था।

छत पर खडी दोनो स्त्रियो मे एक चन्द्रमा की ज्योत्सना जैसी थी, खुले केशो से करीब-करीब आधी ढँकी हुई। दूसरी भी कृशागी, सुमुखी षोडशी थी। उसका छोटा सा चेहरा उसकी घुँघराली लटो से आधा घिरा था। जैसे नीलकमल के दल कमल के बीच वाले भाग को घेरे रहते हैं। दोनो आँखें खूब बडी, कोमल, श्वेतवर्ण मछलियाँ जैसी। छोटी-छोटी उँगलियाँ सगिनी के बालो मे उलझ कर खेल रही थी। चन्द्र-ज्योत्सना की शोभा वाली तरुणी कपालकुडण्ला थी और कृशागी उसकी ननद श्यामासुन्दरी थी।

श्यामासुन्दरी अपनी भौजाई कपालकुण्डला को कभी 'बहू', कभी 'बहन' और

कभी आदर व स्नेह से 'मृणो' कह कर पुकारती। कपालकुण्डला नाम जरा विकट था, इसलिए घरवालो ने उसका नाम 'मृण्मयी' रख लिया था, उसी का यह लघु-संबोधन था—मृणो।

श्यामासुन्दरी बचपन मे याद की गई एक कविता गा रही थी—

'बले—पद्मरानी, बदनखानि, रेते राखे ढेके।
फुटाय कलि छुटाव अलि, प्राणपति के देखे॥
आबार—बनेक लता छडिये पाता गाछेर दिके धाय।
नदीर जल नामले ढल, सागरेते जाय॥
छि छि—सरम टुटे कुमुद फुटे चाँदेर आलो पेले।
बियेर कने राखते नारि फूलशय्या गेले॥
मारि-ए कि ज्वाला बिधिर खेला, हरिषे विषाद।
परपरशे सबाइ रसे भाङ्गे लाजेर बाँध॥'[1]

गाना रोक कर एकाएक श्यामासुन्दरी ने पूछा, 'क्योरी, क्या तू सदा तपस्विनी ही रहेगी?'

मृण्मयी ने जवाब दिया, 'क्यो, कौन सी तपस्या कर रही हूँ?'

श्यामासुन्दरी ने दोनो हाथो से मृण्मयी की केशराशि को उठा कर कहा, 'अपनी यह केशराशि, यह घटा, कभी बाँधेगी नही क्या?'

मृण्मयी कोई उत्तर न दे कर मात्र हँसी और श्यामासुन्दरी के हाथो से अपने बालो को खीच कर मुक्त किया।

श्यामासुन्दरी ने फिर कहा, 'अच्छा, तो मेरी यह साध भी पूरी कर दो। एक बार हमारी, गृहस्थ की बहू को तरह सजो तो। कितने दिनो इस तरह योगिनी बनी रहोगी?'

'जब तक तुम्हारे भाई से भेंट नही हुई थी तब नक तो मै योगिनी ही थी।'

'लेकिन अब और नही रह सकोगी।'

---

१ कहा है, पद्मरानी रात को अपना मुँह ढँक कर रखती है। कली खिलती है, अलि दौडता है, प्राणपति को देखती है (कली)। फिर वन की लता-पत्रादि छोड कर पेड की ओर दौडती है। नदी का जल उतरने पर ढालू समुद्र में चला जाता है। छि छि, लाज तोड कर कुमुदिनी खिलती है चाँद का आलोक मिलने पर। ब्याही हुई लडकी को नही रखा जा सकता, जब वह फूलशय्या पर जा चुकती है। मरती हूँ—यह कैसी जलन है, विधाता का खेल है, हर्ष मे भी विषाद है। दूसरे के स्पर्श से सभी रस्मे लज्जा का बन्धन तोड देती है।

'क्यो नही रह सकूँगी ?'

'क्यो ? देखोगी ? तुम्हारा योग मै तोड दूँ ? जानती हो, पारस पत्थर किसे कहते है ?'

'नही, नही जानती ।'

'पारस एक ऐसा पत्थर है जिसके छू जाने से लोहा भी सोना हो जाता है ।'

'तो उससे क्या हुआ ?'

'स्त्री के लिए भी एक पारस पत्थर है ।'

'वह क्या है ?'

'वह पारस है पुरुष । पुरुष का स्पर्श मिलने से योगिनी भी गृहस्थ बन जाती है । तू ने भी वही पारस पत्थर छू लिया है, अब देखना

बाँधिब चुलेर राश, पराब चिकन बास,
खोपाय दोलाब तोर फूल ।
कपाले सीथिर धार, काकलेते चन्द्रहार,
काने तोर दिब जोडा दूल ।
कुकुम चन्दन चुआ, बाटा भरे पान गुआ,
रागा मुख रागा हबे रागे ।
सोनार पुत्तलि छेले, कोले तोर दिब फेले,
देखि भाल लागे कि न लागे ।।'[1]

मृण्मयी बोली, 'ठीक, अच्छी बात है, समझी । पारस पत्थर भी छू लिया, सोना भी हो गई, बाल बाँधे, अच्छी साडी पहनी, जूडे मे फूल लगा लिया, कमर मे करधनी पहनी, कानो मे झुमके पहने, कुँकुम, चोआ-चन्दन, पान-सुपारी भी और सोने का पुतला तक मिला । सोचो कि सब कुछ हुआ । पर यह सब होने पर भी क्या सुख है ?'

'अच्छा, तुम्ही बताओ कि फूल खिलने का क्या सुख है ?'

'देखने वाले आदमियो को सुख है । फूल को क्या ?'

श्यामासुन्दरी का चेहरा एकबारगी गंभीर हो गया । नीले कमल जैसी बडी-बडी आँखें जैसे सुबह मे डोली । उसने कहा, 'फूल को क्या है, यह तो सचमुच नही कह सकती । कभी फूल बन कर खिली भी नही, लेकिन अगर तुम्हारी जैसे दशा की कली होती मै, तो खिल कर मुझे सुख ही होता ।'

---

१. तेरे बालो की राशि बाँधूँगी, चिकनी साडी पहनाऊँगी, तेरे जूडे मे फूल झुला दूँगी । ललाट पर माँग की रेखा, कमर मे करधनी, तेरे कानो मे एक जोडी झूमके पहनाऊँगी । कूँकुम, चोआ-चन्दन और डब्बे भरे पान-सुपारी, लाल मुँह रंग से और लाल हो जायगा । सोने का पुतला, लड़का तेरी गोद मे डाल दूँगी, देखूँ, तुझे तब अच्छा लगता है या नही ।

श्यामासुन्दरी कुलीन-पत्नी है।

मृण्मयी वन मे रह कर यह सब कभी ठीक से जान न सकी, अत उसने श्यामासुन्दरी की बात का कोई उत्तर न दिया। वह नही जानती कि कली के खिलने में ही सुख है। पुष्पगध और रस बाँटने मे ही उसकी सार्थकता है। आदान प्रदान ही पृथ्वी के सुख का मूल है, कोई अन्य मूल नही।

मृण्मयी को चुप देख कर श्यामासुन्दरी ने कहा, 'अच्छा, अगर ऐसा नही है तो जरा मै भी तो सुनूँ कि तुम्हारा सुख किसमे है ?'

थोडी देर तक सोच कर मृण्मयी ने कहा, 'मै नही जानती, न कह ही सकती हूँ। लेकिन जान पडता है कि यदि समुद्र के किनारे उन्ही जगलो मे भटकूँ तो मुझे सुख हो।'

सुनकर श्यामासुन्दरी को विस्मय हुआ। उन लोगो की खातिर से मृण्मयी को उपकार नही पहुँचा, इससे वह कुछ क्षुब्ध हुई। कुछ नाराज भी हुई। पूछा, 'अब लौट जाने का उपाय ?'

मृण्मयी बोली, 'उपाय नही ?'

'तो क्या करोगी ?'

'अधिकारी कहते थे, 'यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि।'

श्यामासुन्दरी ओठो पर साडी लगा कर हँसती हुई बोली, 'जी हाँ, पडित जी, क्या हुआ ?'

मृण्मयी ने लम्बी सास छोड कर कहा, 'जो कुछ ईश्वर करायें, वही करूँगी। जो कुछ भाग्य मे है, वही होगा।'

'क्यो, भाग्य मे भला और क्या हो सकता है ? भाग्य मे सुख है। तुम लम्बी-लम्बी साँस क्यो छोडती हो ?'

मृण्मयी बोली, 'सुनो ! मैं जिस दिन स्वामी के साथ चली, चलने के समय मै भवानी के चरणो मे त्रिपत्र रखने गई। माँ के चरणो पर त्रिपत्र रखे बिना मैं कोई काम नही करती थी। यदि काम मे सुख सफलता मिलने को होता था तो माँ विल्वपत्र ग्रहण कर लेती थी और यदि अशुभ, अमगल होने की सभावना होती थी, तब विल्पपत्र गिर पडता था। अनजाने व्यक्ति के साथ अनजाने देश मे आने की शका होने लगी। अत अपना अविष्य और भला-बुरा जानने के लिए माँ के पास गई। लेकिन माँ ने विल्पवत्र ग्रहण नही किया। अतएव भाग्य मे क्या लिखा है, नही जानती।'

मृण्मयी चुप हो गई।

श्यामासुन्दरी सिहर उठी।

तीसरा भाग

|१|

पूर्वकथा

'कष्टोऽयं खलु भृत्यभाव ।'

—रत्नावली

जब नवकुमार चट्टी से कपालकुण्डला के साथ सप्तग्राम के लिए रवाना हुए तब मोती बीबी दूसरे रास्ते से बर्दवान गई ।

मोती का चरित्र महादोष से कलुषित है । लेकिन उसमे महत् गुण भी है । जब उसके पिता ने मुसलमान धर्म स्वीकार किया था तभी उसका हिन्दू नाम बदल कर नया नाम रखा गया था—लुत्फ-उन्निसा । मोती बीबी उसका असली नाम किसी समय भी न था । सिर्फ गुप्त-वेश मे कभी-कभी देश-विदेश विचरन के समय वह यही नाम चलाती थी । उसके पिता ढाका आये और वही राजकार्य मे नियुक्त हुए । लेकिन वहाँ भी उनके अपने देश के बहुत से जन थे । देश के समाज मे गिर कर रहना सभी लोग स्वीकार नही करते । अत कुछ दिनो बाद सूबेदार से तरक्की पा कर उसके दोस्त, कितने ही उमरा के नाम पत्र व परिचय लेकर आगरा सपरिवार चले गये । शाह अकबर से किसी का गुण छिपा न रहता था । वे जल्दी ही उनके गुणो से परिचित हो गये । लुत्फ-उन्निसा के पिता जल्दी ही उच्चपद प्राप्त करके आगरे के बडे उमाराओ मे गिने जाने लगे । इधर धीरे-धीरे लुत्फ-उन्निसा की उम्र भी बढने लगी । आगरा आने पर वह फारसी, संस्कृत के ज्ञान तथा नृत्य-गान आदि मे शिक्षित हुई । राजधानी की अनगिनत रूपवती और गुणवती स्त्रियो मे उनका ऊँचा स्थान बन गया । मात्र दुर्भाग्य यह था कि विद्या की दिशा मे उनकी जैसे शिक्षा हुई, नीति की दिशा मे उस अनुपात से कुछ भी न हो सका । लुत्फ-उन्निसा की उम्र बढते-बढते यह स्पष्ट होने लगा कि उसकी मनोवृत्तियाँ बडी वेगवती है । इद्रिय-सयम की उसमे तनिक भी शक्ति नही ।

संभवत· इच्छा भी नही। भले व बुरे पर एक जैसी ही प्रवृत्ति। कोई काम ठीक है या नही, इसका विचार कर के वह कोई काम नही करती। जो कुछ मन को अच्छा लगता, करती। जब अच्छे काम से जी प्रसन्न होता तब वह अच्छा काम करती और जब बुरे काम के लिये जी करता तो बुरे काम करती। अत लुत्फ-उन्निसा मे वे सभी दोष अपने आप पैदा हो गए जो जवानी मे मनोवृत्तियो के दुर्दम होने पर होते हैं। उसकी पहले शादी हो गई है और पहला पति भी जीवित है, इसलिए कोई भी उमरा उससे ब्याह करने को राजी न हुआ। लुत्फ-उन्निसा भी विवाह के लिए उतनी लालायित नही हुई। मन ही मन निश्चय किया कि फूल फूल पर बैठने वाली मक्खी के पर क्यो नोचूँ। फलस्वरूप पहले तो कानोकान विभिन्न प्रकार की खबरें उडती रही, फिर कलक का टीका लगा। उसके पिता ने बदनामी से डर कर उसे घर से निकाल दिया।

लुत्फ-उन्निसा एकात के अन्तरग क्षणो मे जिन भाग्यशालियो पर कृपा करती थी, उनमे शाहजादा सलीम भी एक था। एक अमीर से कुल को कलक लगने पर पक्षपात-रहित पिता के क्रोध का शिकार होना पडता इसी आशका से सलीम अब तक लुत्फ-उन्निसा को अपनी हरम की बेगम न बना सका। अब सुयोग मिला। श्रेष्ठ-राजपूत मानसिह की बहन शाहजादा की बेगम थी। अवसर का लाभ उठा कर शाहजादे ने लुत्फ-उन्निसा को उनकी प्रधान सहचरी बना दिया। लुत्फ-उन्निसा बेगम की सखी बनी और आँख-ओट शाहजादे की कृपापात्री।

लुत्फ-उन्निसा जैसी होशियार, विदुषी, सुन्दरी थोडे ही दिनो मे शाहजादे के हृदय पर अधिकार कर लेगी, यह बात सहज ही स्वीकार की जा सकती है। शाहजादा सलीम के चित्त पर लुत्फ-उन्निसा का प्रभुत्व ऐसा हो गया कि उसे किसी प्रतिद्वद्वी का डर न रह गया। यही नही, बल्कि लुत्फ उन्निसा ने मन ही मन यह प्रतिज्ञा की कि समय आने पर वह शाहजादे को पटरानी बन कर रहेगी। और ऐसी बात भी नही कि यह प्रतिज्ञा मात्र लुत्फ उन्निसा की ही हो, बल्कि सभी आगरावासियो को भी यह होना सभव दिखाई पडने लगा। ऐसे ही आशा भरे सपने देखती हुई लुत्फ-उन्निसा अपने जीवन के दिन बिता रही थी, ठीक ऐसे ही अवसर पर उसकी नीद टूट गई।

शाह अकबर के खजाची ख्वाजा गयास एतमादउद्दौला की बेटी मेहरुन्निसा तब मुसलमान-कुल की सबसे सुन्दरी थी। एक दिन ख्वाजा गयास ने शाहजादा सलीम और नगर के दूसरे बडे-बडे अमीर उमराओ को दावत देकर अपने घर बुलाया। उसी दिन पहली बार सलीम और मेहरुन्निसा मे भेंट हुई और उसी दिन पहली बार देख कर सलीम मेहरुन्निसा पर निछावर हो गया और अपना दिल दे बैठा। लेकिन शेर अफगन नाम के एक बहुत बडे सैन्य अधिकारी के साथ खजाञ्ची गयास ख्वाजा की बेटी का सम्बन्ध पहले ही निश्चित हो चुका था। सलीम ने प्रेम की शक्ति से अंधे होकर पिता से यह सम्बन्ध तोड देने की प्रार्थना की। लेकिन निष्पक्ष पिता उत्तर मे सिर्फ तिरस्कार

भर दे सके। फलस्वरूप सलीम को उस समय निरस्त होना पडा। वह निरस्त तो जरूर हुआ, लेकिन उसने न तो हिम्मत छोडी, न ही आशा छोडी। शेर अफगन से मेहरुन्निसा की शादी भी हो गई। इतने पर भी सलीम निराश न हुआ। मेहरुन्निसा सारी स्थिति को समझती और जानती थी कि शेर अफगन चाहे जितना भी शक्तिशाली हो लेकिन शाह अकबर की मृत्यु के बाद उसकी भी जान नही बचेगी। तब मेहरुन्निसा अवश्य ही सलीम की पटरानी बनेगी। मेहरुन्निसा ने सिंहासन की आशा भी छोड दी।

फिर सम्राट शाह अकबर की आयु समाप्त हो गई। तुरकिस्तान से लेकर ब्रह्मपुत्र तक जिस प्रचण्ड सूर्य की प्रभा का प्रकाश सदैव फैला रहता था, वही सूर्य अस्ताचल मे चला गया। इसी समय लुत्फ-उन्निसा ने अपने बडप्पन की रक्षा के लिए एक अत्यन्त दुस्साहसिक सकल्प किया।

राजपूत-श्रेष्ठ राजा मानसिंह की बहन सलीम की बडी बेगम थी। खुशरू उनका लडका। एक दिन उसके साथ शाह अकबर के पीडित शरीर के बारे मे लुत्फउन्निसा से बातचीत हुई। राजपूत कन्या अब बादशाह की बेगम होगी। इसलिए इस शुभ-अवसर पर लुत्फुन्निसा उनका अभिनन्दन कर रही थी। उत्तर मे बेगम ने कहा, 'यह सही है कि बादशाह की बेगम बनने से मनुष्य जन्म सार्थक होता है, लेकिन जो बादशाह की माता है, वे सबसे ऊपर है।'

उत्तर सुनते ही पहले से बिना सोचे ही लुत्फ-उन्निसा के मन मे एक बात उठी। उसने कहा, 'वैसा ही क्यो न हो। वह भी तो आपकी इच्छा पर ही है।'

'वह क्या ?

'चुपचाप पुत्र खुसरू को गद्दी पर बैठाइए तब।'

बेगम ने कोई जवाब न दिया। न ही उस दिन के बाद से कभी वह प्रसग ही उठा। लेकिन दोनो मे कोई भी यह बात न भूल सकी। बाप की जगह बेटा गद्दी पर बैठे यह बेगम की नियत कभी न थी। मेहरुन्निसा की ओर सलीम का अनुराग लुत्फ-उन्निसा के लिए जेसा हृदय का शूल था, बेगम के लिए भी ठीक वैसा ही था। मानसिंह की बहन एक नई तुर्क-लडकी की हीन दासी बन कर रहे, यह उन्हे क्यो कर अच्छा लगता ? उनके इस सकल्प मे सहचरी बनने का गहरा अभिप्राय ही तो था, लुत्फ-उन्निसा का।

दूसरे दिन फिर यह प्रसग उठा। दोनो का मत भी निश्चित हुआ।

सलीम को छोड कर अकबर का खुसरू को सिंहासन पर बैठाना किसी प्रकार असभव हो, ऐसा कोई कारण समझ मे नही आता। यह बात लुत्फ-उन्निसा ने बेगम के दिल मे अच्छी तरह जमा दी। उसने स्पष्ट शब्दो मे कहा, 'मुगलो का साम्राज्य राज पूतो की शक्ति के कारण ही टिका है। उस राजपूत जाति के श्रेष्ठ-पुरुष है राजा मान सिंह। वे खुसरू के मामा हैं। और मुसलमानो मे सबसे ऊँचे हैं खाँ आज़िम जो प्रधान मत्री है, जो खुसरू के ससुर है। यही दोनो जन यदि प्रयास करेंगे तो फिर कौन इनका

पथगामी न होगा ? और शाहजादा भी गद्दी किसके बल-बूते पर प्राप्त करेंगे ? राजा मानसिंह को इस काम मे तत्पर करने का काम आपका है। खाँ आजिम और दूसरे प्रमुख मुसलमान उमराओ को इधर लाने का काम मेरा। आपकी मेहरबानी से मै जरूर कामयाब होऊँगी, बस, एक ही शंका है कि कही गद्दी पर बैठ कर, खुसरू इस बदनाम औरत को शहर से बाहर न निकाल दें।'

बेगम अपनी सखी का मतलब समझ गई। हँस कर बोली, 'तुम इस आगरा शहर मे जिस भी अमीर का गृहिणी होना चाहोगी, वही तुमसे विवाह करेगा। यही नहीं, तुम्हारा शौहर पाँच हजारो मनएबदार होगा।'

लुत्फ-उन्निसा खुश हो गई। वह इतना ही तो चाहती थी। यदि राजधानी मे इज्जतदार गृहस्थ स्त्री की तरह रहना पडा तो हर फूल पर विचरनेवाले भँवरे के पख काटने से भला क्या सुख हुआ ? यदि आजादी ही गंवानी पडी तो लडकपन की सखी मेहरुन्निसा की चाकरी में क्या सुख हुआ ? इसके बदले मे किसी राजपुरुष की स्वामिनी या गृहिणी होना ही गौरव और शान की बात होगी।

मात्र इसी लोभ के लिए लुत्फ उन्निमा इस काम मे नही जुटी है। सलीम उसकी उपेक्षा करके मेहरुन्निसा के लिए इतने अधिक लालायित है, इसका बदला चुकाना भी उसका एक उद्देश्य था।

खाँ आजिम वगैरह दिल्ली के अमीर-उमरा लुत्फ-उन्निसा से बहुत दबते थे। खाँ आजिम अपने दामाद की भलाई के लिए प्रयत्नशील होंगे, इसमे आश्चर्य ही क्या है ? वे और अन्य दूसरे उमरा भी एकमत हुए। खाँ आजिम ने लुत्फ-उन्निसा से कहा, 'सोचो, कि यदि किसी दुर्भाग्य के कारण हमलोग अपने उद्देश्य मे असफल रहे तो फिर हमारी-तुम्हारी खैर नही। इसलिए जान बचाने के लिए भी एक रास्ता खुला रखना अच्छा होगा।'

लुत्फ-उन्निसा ने पूछा, 'तो आप की क्या राय है ?'

खाँ आजिम ने कहा, 'उडीसा के सिवा और दूसरा आश्रय कही नही। सिर्फ वही ऐसी जगह है जहाँ मुगलो का शासन उतना शक्तिशाली नही है। उडीसा की सेना हमारे हाथ मे रहे, यह बहुत जरूरी है। तुम्हारे भाई ही उडीसा के मनसबदार है। मैं कल ही प्रचारित करूँगा कि वे लडाई मे बहुत जख्मी हो गये है। तुम उन्हे देखने के बहाने कल ही उडीसा चली जाओ। फिर वहाँ जो कुछ करना है, करके जल्दी से वापस आ जाओ।'

लुत्फ-उन्निसा ने इस परामर्श पर सहमति दी।

जब वे उडीसा आ कर वहाँ से लौट रही थी तभी रास्ते मे डाकुओ वाली दुर्घटना हुई और नवकुमार से भेट हुई।

|२|

रास्ते में

'जे माटीते पडे लोके उठे ताइ धरे ।
बारेक निराश होये केबा कोथा भरे ।।
तूफाने पतित किन्तु छाडिब ना हाल ।
अजिके बिफल हलो, ह' ते पारे काल ।।'

—नवीन तपस्विनी

जिस दिन चट्टी से नवकुमार को बिदा करके मोती बीबी उर्फ लुत्फ-उन्निसा वर्दवान के लिए चली, उस दिन वह वर्दवान तक पहुँच नही सकी । आगे बढ कर वह एक दूसरी चट्टी मे ठहरी । शाम को एक जगह एकान्त मे बैठी वह पेशमन से बातें कर रही थी । बातचीत के बीच एक जगह एकाएक मोती बीबी ने पेशमन से पूछा, 'पेशमन ! मेरे शौहर को तुमने देखा, कैसा लगा ?'

पेशमन को आश्चर्य हुआ । बोली, 'देखा तो पर क्या देखती ?'

'आदमी खूबसूरत है या नही ?'

नवकुमार की ओर से पेशमन को स्वाभाविक रूप से विराग सा हो गया। कपालकुण्डला को मोती बीबी ने जो गहने दे दिये थे, उनके प्रति पेशमन को विशेष मोह था । मन मे वह आशा पाले थी कि एक न एक दिन मै ही माँग लूँगी । वही आशा सदा के लिए सूख गई थी, इसीलिये उसके मन मे कपालकुण्डला और नवकुमार के प्रति वितृष्णा हो गई थी । अत क्रुद्ध कर अपनी मालकिन के प्रश्न का उत्तर दिया, 'दरिद्र ब्राह्मण, भला उसके लिए खूबसूरती या बदसूरती क्या ?'

पेशमन के मन का भाव अच्छी तरह समझ कर हँसते हुए मोती बीबी ने कहा, 'दरिद्र ब्राह्मण यदि अमीर हो जाय तब तो खूबसूरत लगेगा न ?'

'इससे क्या होता है ?'

'क्यो, क्या तुझे मालूम नही कि बेगम ने जान लिया है कि अगर खुसरू बादशाह हो गये तो मेरे पहले शौहर भी अमीर होगे ।'

'यह तो जानती हूँ लेकिन आपके पहले शौहर अमीर क्यो कर होगे ?'

'फिर मेरा और कौन शौहर है ?'

'जो नये होगे ।'

मोती बीबी फिर हँसी । बोली, 'मेरी जेसी सती के अगर दो शौहर हुए तो यह बडी अन्याय की बात हो जायगी ।'

क्षण भर सन्नाटा रहा। फिर एकाएक मोती बीबी बोली, 'देखो, वह कौन जा रहा है ?'

पेशमन ने उसे पहचान लिया। वह आगरे के रहने वाले खाँ आज़िम का आदमी था। उसे देख कर दोनो ही परेशान व व्यस्त हो उठी। पेशमन ने उसे पास बुलाया। उस आदमी ने आगे बढ कर लुत्फ-उन्निसा को सलाम किया और एक पत्र दिया। बोला, 'पत्र लेकर उडीसा जा रहा था। बहुत जरूरी पत्र है।'

पत्र पढते ही मोती बीबी की सभी आशाओ और भरोसे पर पानी फिर गया। पत्र मे लिखा था—

'हमारी कोशिशे बेकार हो गईं। मृत्यु के समय भी शाह अकबर ने अपने बुद्धि-बल से हमे परास्त कर दिया है। वे तो खुदा को प्यारे हुए। उन्ही के हुक्म से शाहजादे सलीम अब जहाँगीरशाह हुए है। अब तुम खुसरू के लिए ज्यादा उलझन मे मत पडो। इस मामले मे कोई तुमसे दुश्मनी न कर सके, इसकी कोशिश के लिए तुम जल्दी से जल्दी आगरा लौट आओ।'

इनाम देकर चिट्ठी लाने वाले को विदा करके मोती बीबी ने पूरा पत्र पढ कर पेशमन को सुनाया।

सुन कर पेशमन ने पूछा, 'अब और उपाय ही क्या है ?

'हाँ, अब कोई उपाय नही है।'

'अच्छा तो है, क्या मुजायका, जैसी अब तक थी, वैसी तो रहेगी ही। मुगल बादशाह की बादी भी दूसरे राज्य की पटरानी से बडी है।'

मोती बीबी हँस पडी। बोली, 'वैसा अब नही हो सकता। अब मै आगरे मे और नही रह सकूँगी। जल्दी ही जहाँगीर का मेहरून्निसा से निकाह होगा। मेहरून्निसा को मै उसके बचपने से अच्छी तरह जानती हूँ। वह अगर एक बार बेगम हुई तो वही बादशाहत भी करेगी। जहाँगीर तो सिर्फ नाम के बादशाह होगे। मैंने उनका गद्दी पर बैठने का रास्ता रोका था, यह बात क्या उसमे छिपी रहेगी ? सोच न, तब मेरी क्या दशा होगी ?'

पेशमन प्राय रोने-रोने को हो गई। बोली, 'तो फिर अब क्या होगा ?'

मोती बीबी बोली, 'हाँ एक भरोसा है। मेहरून्निसा का मन जहाँगीर की ओर कैसा रहता है ? जैसा उसका स्वभाव है, जिद्दी, उससे अगर वह जहाँगीर की ओर आसक्त न हो कर अपने शौहर के प्रति मोहब्बत मे बँधी रही तब तो जहाँगीर की हार-ही हार है। शेर अफगान को कत्ल करके वह मेहरून्निसा को नही पा सकेंगे। और अगर मेहरून्निसा सचमुच जहाँगीर की ओर ज्यादा झुकाव रखेगी तो फिर कोई भरोसा नही है।'

'तो मेहरून्निसा का मन कैसे समझोगी आप ?'

मोती बीबी ने हँस कर कहा, 'लुत्फ-उन्निसा के लिये कुछ भी मुश्किल नही

है। मेहरून्निसा मेरी बचपन की सहेली है, कल ही बर्दवान जाकर उसके पास दो दिन ठहरूँगी।'

'लेकिन अगर मेहरून्निसा का झुकाव बादशाह की ओर न हुआ तब क्या करोगी ?'

'मेरे पिता कहा करते है—क्षेत्रे कर्म विधीयते।'

फिर काफी देर तक दोनो चुप रही। मन ही मन हँसने के कारण मोती बीबी के ओठ सिकुडने लगे। पेशमन ने पूछा, 'हँस क्यो रही है ?'

'मन मे एक नई बात पैदा हुई है।'

'कौन सी नई बात ?'

लेकिन मोती बीबी ने वह बात पेशमन से नही बताई।

|३|

प्रतियोगिनी के घर में

'श्यामादन्यो नहि नहि प्राणनाथो ममास्ति।'

—उद्धवदूत

इस समय शेर अफगान बंगाल के सूबेदार के मातहत बर्दवान मे एक महकमे के अधिकारी की हैसियत से रहते थे। मोती बीबी बर्दवान आ कर सीधे शेर अफगान के यहाँ पहुँची। शेर अफगान ने सपरिवार बडे आदर व समारोहपूर्वक उन्हें टिकाया। जब शेर अफगान और बीबी मेहरून्निसा आगरे मे रहते थे तब मोती बीबी उनकी विशेष परिचित थी। मेहरूनिसा से उसका विशेष स्नेह था। बाद मे घटना-चक्र के कारण वे दोनो ही दिल्ली की गद्दी के लिए प्रतियोगिनी बनी थी। अब फिर एक जगह मिलने पर मेहरून्निसा ने मन ही मन सोचा, 'हिन्दुस्तान का राजमुकुट ईश्वर ने किसके सिर पर लिखा है, यह तो ईश्वर ही जानते है, या सलीम जानते है। और अगर कोई और जानती है तो वह है सिर्फ लुत्फ-उन्निसा। देखूँ, क्या लुत्फ-उन्निसा कुछ भी जाहिर नही करेगी ?'

उन दिनो मेहरून्निसा की ऐसी ही ख्याति थी कि सारे हिन्दुस्तान मे वही सब से अधिक रूपवती और गुणवती है। ठीक भी है, ऐसी सुन्दरी स्त्रियाँ इस धरती पर कम ही पैदा हुई है। ऐतिहासिको ने मात्र खूबसूरती मे इतिहास-प्रसिद्ध सुन्दरियो मे

उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। लेकिन सच यह है कि किसी प्रकार की भी विद्या मे उस समय के पुरुषो मे थोडे भी उनसे ज्यादा जानकार शायद ही हुए हो। रूप और विद्या के अलावा नृत्य और गायन मे भी मेहरून्निसा अद्वितीय थी। उसका बात करने का सरस ढंग, उसकी खूबसूरती से भी बढ कर था। यो मोती बीबी भी इन गुणो मे किसी प्रकार भी घट कर न थी। आज संयोग ऐसा जुटा कि दोनो चमत्कारी स्त्रियाँ एक दूसरे का मन जानने को व्यग्र हो उठी।

अपने खास कमरे मे बैठी मेहरून्निसा तस्वीर बना रही थी। मोती बीबी भी मेहरून्निसा की पीठ के पास बैठी तस्वीर बनती देख रही थी और पान चबा रही थी। तभी मेहरून्निसा ने पूछा, 'तस्वीर कैसी बन रही है?'

'तुम्हारी तस्वीर जैसी आती है, वैसी ही, इस दुनिया मे तुम्हारी जोड का कोई दूसरा कलाकार नही है, यही अफसोस है।'

'यह बात अगर सच भी है तो इसमे अफसोस करने लायक क्या है?'

'तुम्हारे जोड का कोई दूसरा कलाकार होता तो तुम्हारे इस चेहरे का नमूना रख सकता था।'

'कब्र की मिट्टी मे इस चेहरे का नमूना रहेगा।'

'बहन, आज तुम्हारे मन मे ऐसी कल्पना क्यो?'

'कल्पना नही। तुम कल मुझे छोड कर चली जाओगी, यह बात मै कैसे भूलूँ? दो दिन और रुक कर तुम मुझे सेवा का अवसर क्या नही दे सकती?'

'किसे सुख अच्छा नही लगता, बहन? अपने वश मे अगर होता तो मै जरूर रुक जाती। लेकिन मै तो दूसरे पर आश्रित हूँ न! कैसे रह सकती हूँ?'

'मेरे लिए अब तुम्हारे मन मे पहले जैसा प्यार नही रहा। रहता तो जरूर रुक जाती। आई हो तब रुकने मे भला क्या आपत्ति हो सकती है?'

मैने तो बहन सब बाते कह दी है। तुम्हें मालूम ही है कि मेरे भाई मुगलो की फौज मे मनसबदार है। उडीसा मे पठानो से लडाई करते हुए वे बुरी तरह घायल हो कर सकटावस्था मे पडे थे। उन्ही की विपत्ति की खबर सुन कर बेगम से छुट्टी ले कर मै देखने आई थी। उडीसा मे ही बहुत ज्यादा समय रह गई। अब और देर करना ठीक नही। तुमसे भी बहुत दिनो से भेट नही हुई थी, इसी से तुम्हें भी देखने को दो दिनो के लिए चली आई।'

'बेगम से कितने दिनो मे लौटने को कह आई थी?'

मोती बीबी को लगा कि मेहरून्निसा व्यंग्य कर रही है। गहरे अर्थ से भरपूर व्यंग्य करने मे मेहरून्निसा जितनी निपुण है उतनी मोती बीबी नही। लेकिन वह इतने से ही मात खाने वाली भी नही। उसने भी जवाब दिया, 'दिन निश्चित करके तीन महीने का रास्ता पार करना क्या सम्भव है? लेकिन इतना जरूर जानती हूँ कि काफी

देर कर दी है और और अधिक देर करने से असन्तोष के लिए कारण बन सकता है।'

अपनी अत्यन्त मोहक हँसी हँस कर मेहरून्निसा ने कहा, 'किसके असन्तोष की आशंका कर रही हो ? शाहजादे के या उनकी बेगम के ?'

'मुझ बेशर्म को क्यो और बेहया बना रही हो ? असन्तोष तो दोनो को ही हो सकता है।'

'अच्छा, एक बात पूछती हूँ, बताओ ? तुम खुद ही यह 'बेगम' नाम अपने लिए धारण कर सकती हो ? सुना था कि शाहजादा सलीम तुमसे निकाह करके तुम्हे खास बेगम बनाने वाले थे। इस बारे मे कहाँ तक क्या हुआ ?'

'देखो, मै तो गुलाम हूँ। फिर भी जितनी भी आजादी है, उसे ही क्यो बरबाद करूँ ? बेगम की मेहरबानी है, इसीलिए जब चाहा उडीसा आ सकी। शाहजादा सलीम की बेगम होती तो क्या इस तरह जब चाहती आ सकती थी ?'

'जो दिल्ली के बादशाह की खास बेगम होगी उसे उडीसा तक आने की जरूरत ?'

'बादशाह की खास बेगम बनूँगी ऐसा सपना कभी नही देखा। क्या मै जानती नही कि इस देश हिन्दुस्तान मे अकेली मेहरून्निसा ही दिल्ली के बादशाह की खास बेगम होने लायक है।'

इस बार मेहरून्निसा ने मुँह नीचे कर लिया। फिर बहुत देर तक चुप रह कर बोली, 'मै यह तो नही सोच सकती, बहन, कि तुमने यह बात मेरा मन दुखाने के लिए कहा हे या मेरा मन समझने के लिए, लेकिन मै शेर अफगान की बीवी हूँ और तन-मन से उनकी ही गुलाम हूँ, यह भूल कर तुम इस बारे मे बातचीत मत करना, यह मैं तुमसे भीख माँगती हूँ।'

बेशर्म मोती बीबी ने इस तिरस्कार से भी हार नही मानी। बल्कि कहा जाय तो उसे और भी अवसर मिल गया। बोली 'हाँ, शौहर के साथ ही तुम्हारी जान है यह मैं खूब अच्छी तरह से जानती हूँ। इसीलिए जरा धोखा दे कर यह चर्चा तुम्हारे सामने उठाने की हिम्मत की है। सलीम शाहजादे अभी तक तुम्हारे हुस्न का मोह नही भूल सके हैं। बस यही बताना मेरा उद्देश्य था। बस अब तुम सावधान रहना।'

'अब समझी ! लेकिन किस बात की सावधानी ? तुम्हे किस बात का डर है ?'

'तुम्हारे बेवा हो जाने का डर।'

यह कह कर मोती बीबी बहुत तेज निगाहो से मेहरून्निसा की ओर देखने लगी। लेकिन मेहरून्निसा के चेहरे पर कही भी डर या खुशी का आभास न मिला।

मेहरून्निसा ने अपमान अनुभव करते हुए कहा, 'बेवा होने का डर ! लेकिन शेर-अफगान आत्मरक्षा मे पूरी तरह सक्षम है। खास कर अकबर बादशाह की सल्तनत मे उनका बेटा भी बिना कुसूर दूसरे की जान ले कर बच न सकेगा।'

'यह तो सही है, लेकिन आगरे से आने वाली ताजी खबर यह है कि बादशाह

अकबर अब इस दुनिया मे नही हैं। शाहजादा सलीम को गद्दी मिल गई है। अब दिल्ली के बादशाह को कौन सजा देगा ?'

मेहरून्निसा जैसे आगे और कुछ भी न सुन सकी। बस उसके शरीर के सारे अंग थरथराने लगे। उसने आँखें झुका ली। आँखो से आँसुओ की धारा बहती रही। मोती ने पूछा, 'तुम रोने क्यो लगी ?

मेहरून्निसा ने लम्बी साँस छोडकर कहा, 'सोचती हूँ कि आज सलीम हिन्दोस्तान के सिंहासन पर है और मै कहाँ हूँ।'

मोती की चाल सफल हुई, उसकी कामना सिद्ध हुई। बोली, 'हाय, तुम आज भी शाहजादे को बिल्कुल नही भूल सकी हो।'

मेहरून्निसा ने गीले पर गदगद स्वर मे कहा, 'कैसे भूल सकती हूँ। अपनी जिन्दगी भूल सकती हूँ पर शाहजादे को नही भूल सकती। लेकिन बहन, सुनो, एकाएक मेरे मन के दरवाजे जैसे खुल गये। इसलिए यह पोशीदा बात तुमने सुन ली। लेकिन तुम्हें मेरी जान की कसम है कि यह बात किसी और के कानो मे न जाने पावे।'

'यकीन रखो बहन, ऐसा ही होगा। लेकिन जब सलीम सुनेंगे कि मै बर्दवान आई थी, तब वे जरूर पूछेंगे कि मैं मेहरुन्निसा से मिली या नही, या क्या बातचीत हुई, तब भला मै क्या जवाब दूँगी ?'

थोडी देर सोच कर मेहरुन्निसा ने कहा, 'यही कहना कि…मेहरुन्निसा मन मे हमेशा उनके ही नाम की माला जपती है और कभी मौका पडने पर उनके लिए अपनी जान भी जरूर दे सकेगी। लेकिन अपने खानदान की इज्जत कभी न देगी। गुलाम का शौहर तब तक जिन्दा है, वह कभी बादशाह को अपना मुँह नही दिखावेगी। और अगर बादशाह उसके शौहर की जान लेंगे तो शौहर को कत्ल कराने वाले से इस जिन्दगी मे उसके लिए मिलना नामुमकिन है।'

कहते-कहते मेहरुन्निसा वहाँ से उठ कर चली गई। मोती बीबी विस्मित हुई। लेकिन जीत भी मोती बीबी की ही हुई। मेहरुन्निसा के मन के भीतर की बात को मोती बीबी ने समझ लिया था। लेकिन मोती बीबी के मन की बात मेहरुन्निसा नही जान सकी। यद्यपि बाद मे वही मेहरुन्निसा अपनी योग्यता के कारण दिल्ली के बादशाह की भी मालकिन बनी, लेकिन इस समय तो मोती बीबी से वह हार ही गईं।

आदमी के मन की विचित्र चाल को मोती बीबी अच्छी तरह समझती है। मेहरुन्निसा की बातो पर मनन कर के उसने मन मे जो नतीजे निकाले, समय आने पर वही सच निकले। वह समझ गई कि मेहरुन्निसा जहाँगीर को सचमुच दिल मे बैठाए हुए है। इस समय जरूर ही नारी-दर्प के कारण चाहे जो कहे पर समय आने पर और रास्ता साफ होने पर ये बाते मन की करवट को न रोक सकेंगी। बादशाह की इच्छा से अवश्य ही अपने मन का सपना पूरा करेगी।

इस नतीजे पर पहुँचते ही मोती बीबी की तमाम आशाएँ बेकार हो गई। लेकिन इससे क्या मोनी बीबी बहुत दुखी हुई ? नही। बल्कि उसे थोडी प्रसन्नता ही हुई। उसके मन मे ऐसी उलटी प्रतिक्रिया क्यो हुई, यह पहले तो मोती बीबी समझ न सकी। फिर वह आगरा के लिए चल पडी। रास्ते मे कुछ दिन लगे। उन्ही कुछ दिनो मे वह अपने मन के भाव का कारण समझ सकी।

|४|

राजमहल में

'पत्नीभावे आर तुमि भेबे ना आमारे।'
—वीरागना काव्य

मोती बीबी आगरा पहुँची।

अब मोती बीबी को इस नाम से नही जाना जा सकेगा। अब वह फिर लुत्फु उन्निसा हो गई है। इधर कुछ दिनो से उसके सोचने-विचारने की गति एकबारगी ही बदल गई है।

जहाँगीर से उसकी भेट हुई। जहाँगीर ने उसे पहले जेसा ही साम्मान व आदर देकर उसके भाई का हालचाल और रास्ते का हालचाल पूछा। लुत्फ-उन्निसा ने जो बात मेहरुन्निसा से कही थी, सामने आयी। दूसरी-दूसरी तमाम बातो के बाद बर्दवान का नाम सुनते ही जहाँगीर ने पूछा, 'क्या कहा ? कह रही हो न कि मेहरुन्निसा के पास दो दिनो रही हो, तो मेहरुन्निसा ने मेरे बारे मे क्या बातचीत की ? '

लुत्फु-उन्निसा ने मन मे बिना कोई कपट रखे जहाँगीर के प्रति मेहरुन्निसा के अनुराग की बात साफ-साफ कह दी। सुन कर बादशाह एकदम चुप लगा गये। पल भर बाद उनकी बडी-बडी आँखो से दो बूँद आँसू चू पडे।

लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'जहाँगीर ! इस गुलाम ने अच्छी खबर सुनाई है। बाँदी के लिए अभी तक किसी इनाम का हुक्म नही हुआ।'

हँसने की कोशिश करते हुए बादशाह ने कहा, 'तुम्हारी लालच की कोई सीमा नही है।'

'जहाँपनाह ! इसमे बाँदी का क्या कुसूर है ?'

'दिल्ली का बादशाह ही तुम्हारा गुलाम है, और क्या इनाम चाहती हो ?'

लुत्फ-उन्निसा ने हँस कर कहा, 'जहाँपनाह ! औरतो की बडी ख्वाहिशें होती है।'

'अब फिर कौन सी ख्वाहिश जागी है ?'

'पहले बादशाह का हुक्म हो कि बाँदी की अर्ज सुनी जायगी तब बताऊँगी।'

'अगर राजकाज मे बाधा न होती हो।'

'ऐसी बाँदी की ऐसी साध से दिल्ली के बादशाह के राजकाज में बाधा नही पड सकती।'

'तो मंजूर है, बोलो कौन सी साध है, जरा सुनूँ।'

'साध हुई है, एक विवाह करने की।'

बादशाह खुल कर हँसे। बोले, 'यह तुम्हारी ख्वाहिश नये ढग की जरूर है। कही सगाई पक्की हुई है ?'

'सो तो हो चुकी है, बस जहाँपनाह के हुक्म की देर है। बादशाह सलामत की मंजूरी मिले बगैर कोई भी सगाई पक्की नही है।'

'मेरी मंजूरी की क्या जरुरत है ? लेकिन यह तो बताओ कि किस खुशनसीब को इस सुख के समन्दर मे डुबाने की सोची है ?'

'बाँदी ने हुजूर की बहुत खिदमत की है, इसलिए कोई गलत काम न करेगी। बाँदी अपने शौहर से ही विवाह करने का हुक्म चाहती है।'

'अच्छा, तो इस पुराने आशिक की क्या हालत होगी ?'

'दिल्ली सलतनत की बेगम मेहरुन्निसा को दे जाऊँगी।'

'बेगम मेहरुन्निसा कौन ?'

'जो है।'

जहाँगीर ने मन ही मन मे तय कर लिया कि मेहरुन्निसा दिल्ली के बादशाह की बेगम होगी, यह बात लुत्फ-उन्निसा ने अच्छी तरह समझ लिया। इसीलिए, अपनी हार स्वीकार करते हुए दूसरे ढग से बदला लेना चाहा।

सब सोच कर जहाँगीर दुखी हो कर चुप हो गये। तब लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'बादशाह सलामत की इस बारे मे सहमति नही ?'

'मुझे एतराज नही। लेकिन अपने शौहर से ही फिर से विवाह करने की क्या जरूरत आन पडी ?'

'भाग्य ही ऐसा खोटा था कि पहले ब्याह के बाद शौहर ने बीवी के रूप मे स्वीकार ही नही किया। अब जहाँपनाह की बाँदी को ठुकरा न सकेंगे।'

रहस्यमयी हँसी हँस कर बादशाह चुप हो गये। बोले, 'माशूका, तुझे न देने लायक मेरे पास कुछ भी नही। तुम्हारी अगर ऐसी ही मरजी है तो वही करो। लेकिन मुझे क्यो छोड जाओगी ? एक ही आसमान मे क्या सूरज और चाँद दोनो नही रहते ?

या एक ही डाली पर क्या दो फूल नही खिलते ?'

आँखे फाड कर बादशाह की ओर देखते हुए लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'छोटे-छोटे फूल खिल सकते है लेकिन एक मृणाल[1] पर दो कमल नही खिलते। आपके रत्न-सिंहासन के नीचे काँटा बन कर क्यो रहूँगी ?'

लुत्फ-उन्निसा अपने कमरे मे चली गई। उसको यह इच्छा क्यो कर हुई यह बात उसने जहाँगीर के सामने जाहिर न की। साधारण रूप से अनुभव से जैसा समझ मे आता है, जहाँगीर वैसा ही समझ कर चुप रह गये। गहरे मे जो बात थी उसे नही समझ सके। लुत्फ-उन्निसा का दिल पत्थर का है। नारी-हृदय को जीतने वाली सलीम की राजकान्ति भी कभी उसका मन मोह सकने मे असमर्थ रही।

लेकिन इस बार पत्थर मे भी कीडा घुस गया था।

|५|

आत्म-मन्दिर में

'जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल।
से हो मधुर बोल स्त्रवनहि सूनल, स्तुतिपथ परस न भेल।।
कत मधु जामिनि रभस गमोआ, न बूझल कैसन केल।
लाख-लाख जुग हिय-हिय राखल, तइओ हिय जुडल न गेल।।
कत बिदगध जन रस अनुमोदइ, अनुभव काहू न पेख।
'विद्यापति' कहे प्रान जुडायेत लाखे न मिलल एक।''

—विद्यापति

अपने कमरे मे आकर प्रसन्न मन से लुत्फ-उन्निसा ने पेशमन को बुलाया और कपडे व गहने उतारे। सोना-मोती-हीरा के जडाऊ कपडे उतार कर पेशमन से कहा, 'यह पोशाक तुम ले लो।'

सुन कर पेशमन ताजुब से ठगी रह गई। पोशाक बहुत कीमती है। अभी-अभी तैयार की गई है। भेद लेने को पूछा, 'पोशाक मुझे क्यो ? आज क्या कोई खास खबर है ?'

---

१. कमलनाल—कमल जड

'हाँ एक अच्छी खबर है ।'

'यह तो समझ रही हूँ । मेहरुन्निसा का डर क्या खतम हो गया ?'

'हाँ, खतम हो गया । अब उस बारे म कोई फिक्र नही रही ।'

पेशमन ने अत्यधिक प्रसन्नता दिखाते हुए कहा, 'तो अब मै बेगम की बाँदी हुई न !'

'हाँ, यदि तुम बेगम की बाँदी बनना चाहो तो मै मेहरुन्निसा से कह दूँगी ।'

'क्या मतलव ? ऐसा क्या ? अभी तो आप ने फरमाया कि मेहरुन्निसा के लिए बादशाह की बेगम होने की कोई बात नही है ।'

'ऐसी बात तो मैने कभी नही कही । मैने इतना ही कहा है कि अब उस बारे मे कोई फिक्र नही रही ।'

'फिक्र क्यो नही ? आप अगर आगरे की अकेली मालकिन न हुईं तो सब बेकार हुआ ।'

'अब आगरे से कोई रिश्ता न रखूँगी ।'

'यह सब क्या कहती है ? मैं तो कुछ भी नही समझ रही हूँ। फिर आज की वह अच्छी खबर क्या है, जरा समझा कर तो कहिए ?'

'ले सुन ! अच्छी खबर यह है कि जिन्दगी के बाकी दिनों के लिए अब मैं आगरा छोड कर चली ।'

'तो कहाँ जाइएगा ?'

'जा कर बंगाल मे रहूँगी । हो सका तो किसी भले आदमी की बीवी हो जाऊँगी ।'

'हाँ, यह मजाक नया है जरूर, लेकिन सुनने से मन काँप उठता है ।'

'मैं मजाक नही कर रही । सचमुच ही मै आगरा छोड कर जा रही हूँ । बादशाह सलामत से विदा भी ले आई हूँ ।'

'ऐसा पागलपन आप को क्यो हुआ ?'

'पागलपन बिल्कुल नही । बहुत दिन आगरा मे रही, इतना घूमी, लेकिन नतीजा क्या निकला ! बचपन मे सुख की प्यास बहुत तेज थी । उसी प्यास को बुझाने के लिए बंगाल छोड कर यहाँ तक आई । इस रत्न को खरीदने के लिए मैने कौन सा धन नही दे डाला ? कौन सा ना करने वाला काम नही किया ? और जिस-जिस उद्देश्य से यहाँ तक किया, उसमे कौन-कौन सा हाथ मे नही आया । शान-शौकत, दौलत, धन, शोहरत, इज्जत, सब कुछ तो हद से ज्यादा ही भोगा । लेकिन इतना कर के भी क्या हुआ ? क्या मिला ? आज यहाँ बैठ कर सब दिनो का मन ही मन हिसाब लगा कर कह सकती हूँ कि एक दिन के लिए भी मै सुखी नही हुई । एक पल के लिए भी कभी सुख भोग नही किया । कभी पूरी तरह प्यास नही बुझी, वल्कि बढती ही

गई। थोडी और कोशिश करने पर और भी दौलत, और भी शान-शौकत जुटा सकती थी पर किस लिए ? इन सबो मे अगर थोडा भी सुख होता तो इतने दिनो मे एक दिन के लिए भी तो सुखी हुई होती ! सुख की यह प्यास पहाडी झरने की तरह पहले बहुत निर्मल होती है, पतली सी धारा वन-प्रदेश से निकलती है, बहुत दूर तक अपने ही गर्भ मे छिपी रहती है, जिसे कोई नही जानता। अपने आप कल-कल करती है, कोई नही सुनता। फिर क्रमश जितना ही चलती है, देह उतनी ही फैलती जाती है, उतना ही कीचड बढता है। यही नही, कभी हवा बहती है तो तरगे उठती है, मगर-घडियाल भी आ बसते है। फिर देह और भी बढती है, पानी और भी गंदला होता है, खारा होता है, जाने कितने रेगिस्तान नदी-हृदय मे बन जाते है, फिर गति मन्द होने लगती है, तब वह गंदी व दूषित नदी-देह अथाह समुद्र मे कहाँ छिप जाती है, कौन कह सकता है ?'

'मै तो इसका कुछ भी मतलब नही समझ सकी। इन चीजो से आपको सुख क्यो नही होता ?'

'क्यो नही होता ? इतने दिनो बाद यही तो समझी हूँ। तीन साल तक राजमहल की छाँह मे बैठे रह कर जो सुख नही पाया, वही सुख, उडीसा से लौटते समय रास्ते मे एक रात के लिए मिल गया था। इसी से यह समझ सकी।'

'क्या समझ सकी ?'

'मै इतने दिनो तक हिन्दुओ के देवता की मूर्ति की तरह थी। बाहर से सोना व रत्न से चमकदार और भीतर से कठोर पत्थर। इन्द्रिय-सुख की खोज मे आग के भीतर भी चली हूँ, पर कभी आग छू भी नही गई। अब एक बार जरा देखूँ, अगर पत्थर के भीतर खोज कर खून से तर एक हृदय पा सकूँ ?'

'यह भी मेरी समझ मे कुछ नही आया।'

'इस आगरे मे मैने कभी किसी को प्यार किया है ?'

'नही, किसी को नही।'

'तो मै पत्थर-दिल नही तो और क्या हूँ ?'

'सो अगर प्यार ही करने की तबियत हो तो प्यार क्यो नही करती ?'

'यही तो इच्छा जगी है अब। इसीलिये तो अब आगरा छोड कर दूर जा रही हूँ।'

'जाने की क्या जरूरत है ? आगरे मे क्या शरीफ आदमी नही जो गॅवार मूर्खो के देश जाओगी ? इस समय जो लोग आपको प्यार करते है, उन्हे ही क्यो नही प्यार करती ? रगरूप मे कहो, धन-दौलत मे कहो, शान-शौकत मे कहो, जिस तरह भी कहो दिल्ली के बादशाह से बडा इस धरती पर और कौन है ?'

'आकाश मे चाँद-सूरज के रहते पानी नीचे की ओर ही क्यो गिरता है ?'

'क्यो गिरता है ?'

'किस्मत की बात है !'
इसके आगे लुत्फ-उन्निसा ने सब बातें खोल कर नही कही।
पत्थर के भीतर आग घुस चुकी थी।
पत्थर पिघल चला था !

६

चरण के नीचे

'कायमन. प्राण आमि सँपिब तोमारे।
भुञ्ज आसि राजभोग दासीर आलये ॥'

—वीरागना काव्य

खेत मे बीज पडने से अंकुर अपने आप निकलता है। जब अकुर निकलता है तब कोई जान नही पाता, देख नही पाता। लेकिन एक दिन बीज रोपित होने पर, रोपणकारी चाहे जहाँ भी रहे, क्रमश अंकुर से पेड तक सर उठाता रहता है। आज पौधे की ऊँचाई सिर्फ अगुल भर है, कोई देख कर भी नही देख पाता। फिर पौधा बालिश्त भर का, हाथ भर का, दो हाथ भर का होता है। फिर भी अगर किसी की स्वार्थ-सिद्धि की संभावना न रही तो फिर कोई नही देखता, देख कर भी नही देख पाता। फिर दिन बीतते हैं, महीने बीतते है, साल बीतते है, तब क्रमश उसकी ओर आँखें उठती है। फिर देख कर न देखने वाली बात नही रहती—क्रमश पेड बडा होता है। उसकी छाँह मे दूसरे पेड कमजोर होने लगते हैं—यहाँ तक कि खेत मे दूसरा पौधा नही रह जाता।

लुत्फ-उन्निसा का प्रेम भी इसी तरह बढ़ा था। कभी बहुत पहले, एक दिन प्रणय भाजन से भेंट हुई थी। तब प्रणय-महत्व को वह ठीक से नही समझती थी। लेकिन बीज तो था ही। फिर उससे भेंट नही हुई। लेकिन आँख-और वही चेहरा बारम्बार याद आता रहा। स्मृति मे उसी चेहरे को चित्रित्र करके देखना कुछ-कुछ सुखकर मालूम होता था। बीज से अकुर फूटा। उस चेहरे के प्रति अनुराग पैदा हुआ। मन का ऐसा ही धर्म है कि जो मानसिक कर्म बार-बार किया जाए, उस कर्म के प्रति उतनी ही तीव्र प्रवृत्ति होती है, क्रमश. वही कर्म स्वाभाविक बन जाता है। लुत्फ-उन्निसा बराबर उसी

चेहरे का ध्यान करती। स्वाभाविक था उसके मन मे उसी चेहरे को देखने की उग्र इच्छा पैदा हुई। दिल्ली के सलतनत की लालसा भी उसके सामने हीन लगी। दिल्ली का सिंहासन जैसे काम के वाणो से तैयार हुआ और आग की लपटो से घिरा मालूम होने लगा। राज्य, राजधानी और राजसिंहासन सब का मोह छोड कर वह प्रिय के दर्शन के लिए लपकी। उसका वह प्रिय नवकुमार था।

इसलिए मेहरून्निसा की आशा को समाप्त करने वाली बात सुन कर भी लुत्फ-उन्निसा तनिक भी दुखी नही हुई। इसीलिए आगरा आकर भी उसने सम्पति की रक्षा के लिए कोई उपाय नही किया, इसीलिए जन्म भर के लिए उसने कृपालु बादशाह सलामत से बिदा ले ली।

लुत्फ-उन्निसा सीधे सप्तग्राम आई। राजपथ से कुछ दूरी पर नगर की एक अट्टालिका मे डेरा डाला। एक दिन राजपथ के पथिको ने आश्चर्य से देखा कि एकाएक वह अट्टालिका वैभव से सज्जित और दास-दासियो से पूर्ण हो गई है। प्रत्येक कमरे मे मनोहर सजावट सुगन्ध और व्यवस्था का स्पष्ट रूप था। सोने, चाँदी और हाथी दाँत से निर्मित चित्रित, यह घर चतुर्दिक शोभामय था। सर्वत्र प्रकाश भी था।

इसी तरह से पूरी तरह सजे एक कमरे मे लुत्फ उन्निसा सिर झुकाकर बैठी है। पास ही एक दूसरे आसान पर नवकुमार भी बैठे है। सप्तग्राम मे लुत्फ-उन्निसा से और भी दो बार भेंट हो चुकी है।

कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद नवकुमार बोले, 'तो अब मै चला। तुम मुझे अब और मत बुलाना।'

'अभी मत जाओ। कुछ देर और ठहरो। मुझे बहुत कुछ कहना है। मेरी बात अभी खतम नही हुई है।'

नवकुमार ने और थोडी देर तक प्रतीक्षा की लेकिन लुत्फउन्निसा ने कोई बात न कही। थोडी देर बाद नवकुमार ने ही पूछा, 'और क्या कहना है ?'

लुत्फ-उन्निसा ने फिर कोई जवाब न दिया। बस चुपचाप बनी रह कर रोती रही।

यह देख कर नवकुमार उठने लगा। लुत्फ-उन्निसा ने उसके कपडे के छोर को पकड लिया। तब नवकुमार ने विरक्ति से कहा, 'कुछ कहो भी तो !'

अब लुत्फ-उन्निसा बोली, 'तुम क्या चाहते हो ? ससार मे क्या कुछ भी माँगने को नही है ? धन, सम्पत्ति, मान, प्रणय, रूप, रहस्य इस धरती पर जिसे भी सुख कहते है, वह सब मैं दूँगी और अपने किसी किए का भी बदला नही चाहती। केवल तुम्हारी दासी होना चाहती हूँ। तुम्हारी पत्नी बनूँ, वह गौरव भी नही चाहती, सिर्फ दासी रहूँगी !'

नवकुमार बोला, 'मै दरिद्र ब्राह्मण हूँ। इस जन्म मे सदा ही दरिद्र रहूँगा। तुम्हारा धन सम्पति नही लूँगा।'

नवकुमार अभी तक नही समझ सका कि यह रमणी ही उसकी पत्नी है । नवकुमार ने लुत्फ-उन्निसा से कपड़े का छोर छुडा लिया और जाने को तैयार हुआ तो लुत्फ-उन्निसा ने फिर कहा, 'मै और कुछ नही चाहती । जब भी कभी तुम इस रास्ते से जाना तो दासी सोच कर ही कभी-कभी दर्शन दे देना, बस अपनी आँखो की प्यास बुझा लूँगी ।'

नवकुमार ने कहा, 'देखो तुम मुसलमान हो । दूसरे की स्त्री हो। तुमसे इस प्रकार एकात मे बातें करने मे भी दोष लगता है । तुमसे अब मेरी कभी भेंट न होगी ।'

थोडी देर खामोशी ! लुत्फ-उन्निसा के हृदय मे भयानक तूफान चल रहा था । वह भी अब पत्थर को मूर्ति की तरह स्पंदनहीन थी । उसने नवकुमार का कपडा छोड दिया । फिर दृढ हो कर बोली, 'जाओ !'

नवकुमार चल पडा । सिर्फ दो-चार कदम ही चला था कि आँधी मे उखडे पेड की तरह एकाएक लुत्फ-उन्निसा उसके पैरो पर आ गिरी । पूरी शक्ति से अपनी बाहो मे उसके दोनो पाँव बाँध कर अत्यन्त निरीह व कातर स्वर मे बोली, 'निर्दयी ! मै तेरे ही लिए आगरे का सिंहासन त्याग कर आई हूँ । तुम मुझे मत छोडो ।'

'तो फिर आगरा ही लौट जाओ और मेरी आशा छोड दो ।'

'इस जीवन मे तो नही ही ।' तीर की तरह खडी होकर लुत्फ-उन्निसा अभिमान से बोली, 'इस जन्म मे तो तुम्हारी आशा कभी न छोडेगे ।' फिर सिर उठा कर, गर्दन थोडी टेढी कर, नवकुमार के मुँह की ओर एकटक देखती वह खडी रही । हृदय की धधकती आग मे जो गर्व भुन गया था, फिर उसकी चमक पैदा हुई, प्रणय की दुर्बल देह मे वही शक्ति फिर पैदा हुई जो भारत के मुगल सलतनत के सामने नही झुकी थी । माथे की नसें फूल कर दिखने लगी, चमकदार आँखे झुलसने लगी, नथुने काँपने लगे । फण-कुचली नागिन जिस तरह फुँफकार कर फण काढ कर खडी होती है, वैसी ही उन्मादिनी बन कर वह सिर उठा कर खडी हुई और बोली, 'इस जन्म मे नही पर मेरे होकर ही रहोगे ।'

क्रोध से उन्मादिनी बनी उस नागिन मूर्ति की तरफ देखने मे नवकुमार को डर लगा । लुत्फ-उन्निसा का जो तेजमय रूप और महिमापूर्ण शरीर इस समय देखा, वैसा और कभी नही देखा था । उसे देख कर वह डरा । नवकुमार फिर चलने को उद्धत हुए तभी सहसा एक दूसरी तेजमय मूर्ति उसके मानस पट पर चमक उठी । एक दिन नवकुमार अपनी पहली पत्नी पद्मावती से नाराज हो कर उसे अपने कमरे से निकालने के लिए तत्पर हो उठे थे । बारह वर्ष बाद वह कन्या अभिमान से उसकी ओर घूम कर खडी हुई थी, तब इसी तरह उसकी आँखें आग फेंक रही थी, इसी तरह उसका भी सिर हिला था । बहुत दिनो तक वह शक्ल याद ही नही आई थी, अब आई है । दोनो

मूर्तियो मे उसे आत्मधिक समानता का भास हुआ। संशय मे डूबा नवकुमार संकुचित स्वर में पूछ बैठा, 'तुम कौन हो ?'

लुत्फ-उन्निसा की आँखो मे चमक आई। कहा, 'मै ही पद्मावती हूँ।'

उत्तर की प्रतिक्षा किए बिना ही लुत्फ-उन्निसा दूसरे कमरे मे चली गई। नवकुमार भी शका के समुद्र मे गोते लगाता, शकित मन से अपने घर वापस गया।

दूसरे कमरे में जाकर लुत्फ-उन्निसा ने भीतर से किवाड बन्द कर लिए। फिर दो दिनो तक उस कमरे से बाहर नही आई। इन दो दिनो मे ही हृदयमथन कर के उसने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया। निश्चय कर के दृढप्रतिज्ञा हुई। तब सूरज डूब रहा था। तब पेशमन की मदद मे लुत्फ-उन्निसा अपना शृगार कर रही थी। आश्चर्य मे डालनेवाले कपडे पहने। न पेशवान, न पाजामा, न ओढनी। नारी-भेष का कोई चिह्न नही। पूरी तरह पहन-ओढ कर उसने शीशे मे देख कर पेशमन से पूछा, 'क्यो पेशमन, क्या मुझे पहचाना जा सकता है ?'

पेशमन बोली, 'किसकी मजाल है कि पहचान ले !'

'ठीक है। तब मै चली अब। हाँ, मेरे साथ कोई दास-दासी न जाये।'

'अगर बाँदी का अपराध क्षमा करे तो एक बात पूछना चाहती हूँ ?'

'क्या ?'

'आप का आखिर मतलब क्या है ?'

'फिलहाल कपालकुण्डला से उसके पति का हमेशा के लिए अलगाव। बाद मे वे मेरे हो जायेंगे।

'बीबी, अच्छी तरह सोच लो। बडा घना जगल है। रात भी हो गई, है आप अकेली ही जा रही है।'

इस बात का कोई जवाब न देकर लुत्फ-उन्निसा घर से बाहर निकल गई। सप्तग्राम के एक छोर पर जहाँ नवकुमार का घर है, उधर ही चली। उस जगह पहुँचते पहुचते सचमुच रात हो गई। नवकुमार के घर के पास से ही घना जगल शुरू होता है। उसी ओर जा कर वह एक पेड के नीचे बैठ गई। कुछ देर तक बैठी रह कर जिस बडे उद्देश्य को लेकर आई है उसी के विषय मे विचार करने लगी।

लुत्फ उन्निसा जहाँ बैठी थी, वहाँ उसे मनुष्य-कण्ठ की आवाज सुन पडी। उठ कर खडी हो उसने चारो ओर नजरे दौडा कर देखा तो जंगल के भीतर उसे रोशनी दिखाई पडी। हिम्मत मे लुत्फ-उन्निसा पुरुषो से भी बढ कर है। वह बिना डरे, उधर ही गई, जहाँ आग जल रही थी। पहले तो पेड की ओट मे छिप कर देखती रही कि मामला क्या है। उसने स्पष्ट देखा कि जो आग जल रही थी वह होम की आग है। और उसे जो आवाज सुन पडी थी वह मत्र-पाठ का शब्द था। मन्त्र के बीच एक शब्द उसकी समझ मे आया। वह शब्द था एक व्यक्ति का नाम। वह नाम सुनते ही लुत्फ-उन्निसा होम करने वाले के पास आ कर बैठ गई।

चौथा भाग

|१|

जंगल में

"...Tender is the night
And happy the queen moon is on her throne
elustered around by all her Stary fays,
But here there is no light

—Keats

आगरा जाने और वहाँ से सप्तग्राम वापस आने मे लुत्फ-उन्निसा को लगभग एक साल लग गया। यहाँ कपालकुण्डला भी साल भर से अधिक हुए, नवकुमार की योग्य गृहिणी बन गई है। जिस समय पुरुष वेश मे लुत्फ-उन्निसा जगल मे गई थी, उस समय कपालकुण्डला अपने शयनकक्ष मे बैठी थी। अब कपालकुण्डला पहले वाली तपस्विनी नही है। श्यामासुन्दरी की भविष्यवाणी अक्षरश सत्य निकली है। पारस पत्थर छू कर तपस्विनी कपालकुण्डला अब सफल गृहिणी बन गई है। अब उसकी केशराशि पहले की तरह खुली-बिखरी नही रहती बल्कि अब गुँथी हुई मोटी वेणी झूलती है। उसके बनाव-शृगार में श्यामासुन्दरी का पूरा हाथ स्पष्ट दिखता है। फूलो की माला भी वेणी से लिपटी है। बालो का वह हिस्सा जो वेणी मे नही गुँथ सका है वह छोटी-छोटी घुँघराली लट बन कर हिल रही है। चेहरा भी बालो से नही ढँका है। दोनो कानो मे सोने के कर्णफूल झूल रहे है। गले मे सोने का हार। सफेद साडी पहने है। रंग भी चाँद सा उज्ज्वल है। कपालकुण्डला के पास उसकी ननद श्यामासुन्दरी भी बैठी है।

कपालकुण्डला ने पूछा, 'ननदोई जी कब तक रहेगे ?'

श्यामासुन्दरी बोली, 'कल तीसरे पहर चले जाएँगे। कहा, आज रात को यदि दवा ले रखती तो उन्हे वश मे करके स्त्री-जन्म सार्थक कर लेती। पर क्या कहूँ,

कल रात ही बाहर निकली थी, इसीलिए झाड़ू और लातो की मार खाई, अब आज भला कैसे निकल सकती हूँ ?'

'तो दिन को ही ले आती ?'

'दिन मे लाने से उसका फल नही होता। ठीक आधी रात को स्त्री को ही खुले बालो से लाना होता है। पर भाई, अब क्या हो सकता है! मन की साध मन मे ही रह गई।'

'अच्छा, तो एक काम करे। मै तो दिन मे वह पेड पहचान ही आई हूँ। जिस जंगल मे जहाँ है वह भी देख आई हूँ। अब आज तुम मत जाओ। मै ही अकेली जाकर दवा ले आऊँगी।'

'एक दिन जाने का परिणाम तो भोग लिया। अब इतनी रात को तुम भी बाहर मत जाना।'

'इसकी तुम चिन्ता मत करो। जानती तो हो कि रात मे अकेले घूमने की मेरी लडकपन से आदत है। सोच कर देखो न अगर मेरी वह आदत न होती तो '

'इस बात के लिए नही कह रही हूँ मै। लेकिन रात मे अकेले घने जगल मे घूमना क्या गृहस्थ की बहु-बेटी के लिए अच्छा है ? दो जने साथ गईं। तब तो इतना बडा काण्ड हो गया, अब तुम अकेली जाओगी तो जाने क्या हो ?'

'कोई चिन्ता नही है। तुमने क्या सोचा है कि मै रात को घर से बाहर पैर बढाऊँगी तो पथभ्रष्ट हो जाऊँगी, क्यो ?'

'मै यह सब नही सोचती, लेकिन बुरे लोग तो बुरी बाते ही कहते है न !'

'कहे, इसकी भी मै परवाह नही करती।'

'लेकिन तुम्हे कोई कुछ कहेगा तो मुझे तो कष्ट होगा न ?'

'ऐसा कष्ट बेमतलब है।'

'लेकिन इससे दादा का भी दिल दुखेगा।'

'अब इससे भी उनका दिल दुखे तो भला मै क्या कर सकती हूँ। अगर मै जानती कि औरत के लिए ब्याह करना दासता स्वीकार करना है तो मे कदापि विवाह न करती।'

थोडी देर बाद श्यामा उठ गई। कपालकुण्डला भी व्यस्त हो गई। फिर वह दवा की खोज मे घर से बाहर निकली। रात काफी हो चुकी थी। लकिन चाँदनी थी। नवकुमार बाहर बैठके मे बैठे थे। कपालकुण्डला बाहर निकली तो नवकुमार ने खिडकी से झाक कर देखा। वे भी पीछे-पीछे बाहर आये और आकर कपालकुण्डला का हाथ पकड़ लिया। कपालकुण्डला ने पूछा, 'क्या है ?'

नवकुमार ने पूछा, 'कहाँ जा रही हो ?'

'श्यामासुन्दरी अपने पति को वशीभूत करने को दवा चाहती है। मै उसी दवा की खोज मे जा रही हूँ।'

'दवा ही लेने तो कल गई थी न, आज अब फिर क्यों ?'

'कल नही मिली। आज फिर खोजूँगी।'

'लेकिन दिन मे खोजने से भी तो हो सकता है।'

'नही, दिन मे लाने से दवा का फल नही होता।'

'तो मुझे पेड का नाम बता दो, मै ला दूँगा।'

'मैं पेड देख कर पहचान सकती हूँ। पर नाम नही जानती। लेकिन तुम्हारे लाने से कोई फल भी न होगा। बाल खोल कर स्त्री ही ला सकती है। तुम मुझे लाने दो। दूसरे के उपकार मे बाधा मत बनो।'

नवकुमार चुप हो गया। थोडी देर बाद बोला, 'अच्छा चलो। मैं तुम्हारे साथ ही चलता हूँ।'

कपालकुण्डला ने अभिमान से कहा, 'जरूर आओ। अपनी आँखो देख लो कि मै कोई विश्वासघात तो नही करती।'

अब नवकुमार और कुछ न कह सका। चुपचाप कपालकुण्डला का हाथ छोड कर घर लौट आया। फिर कपालकुण्डला अकेली ही जगल मे घुसी।

सप्तग्राम का यह भाग बहुत ही घना है। कपालकुण्डला अकेली ही एक सकरी जंगली राह से दवा की खोज मे बढ गई। रात खूब खामोश है, कही से भी किसी तरह की आवाज नही आ रही। बसन्त की सुहावनी व ठडी रात मे चाँद चुपचाप सफेद बादलो को पार करता आगे बढ़ता जा रहा है। जमीन पर जंगली पेड व लताएँ भी चुपचाप चन्द्रकिरणो के साये मे विश्राम कर रहे हैं। पेड के पत्ते उन किरणो से प्रतिघात कर रहे हैं। चुपचाप लता-गुल्मो मे सफेद फूल विकसित हो रहे है। रह-रह कर कही-कही एक-आध बार के लिए आराम मे बाधा पडने से पक्षी-गणो के पंख फडफडाने की आवाज होती है, कही सूखे पत्तो के टूट कर गिरने का शब्द, कही-कही बहुत दूर कुत्तो के भूँकने की आवाज है। हलकी-हलकी हवा भी चल रही है। शरीर को आराम देने वाली बसन्ती हवा, मन्द और खामोश हवा, जिसके स्पर्श से पेडो के सब से ऊपर वाले फुनगी के पत्ते ही हिल रहे हैं। आकाश मे विचरण करने वाले छोटे-छोटे सफेद बादलो के टुकडे धीरे-धीरे एक ओर चले जा रहे हैं।

कपालकुण्डला की भी पुरानी स्मृतियाँ एक-एक कर के जाग रही हैं। बालू की शिखरो को छू कर, समुद्र से आती हवा उसकी लम्बी अलको को उडाती थी, उसे वह सब याद आया। नीले रग के अनन्त दूरी तक फैले आकाश की ओर देख कर उसे आकाश रूपी समुद्र याद आया। वह सब याद करके कपालकुण्डला जैसे अन्यमनस्क हो उठी।

अनमनी सी वह चुपचाप आगे बढती गई और कहाँ किस काम से वह जा रही है, यह उसे याद न रहा। जिस रास्ते मे वह बढती जा रही थी, वह मानो समाप्त होने का नाम ही न लेता था। जगल भी खूब अंधेरा व खामोश हो गया। पेडो की डाली के घनेपन

से सिर के ऊपर की चाँदनी भी जैसे छिप गई। अब और आगे रास्ता दिखाई नही देता। रास्ता जब न दिखा तो कपालकुण्डला चिन्ता से सचेत हुई। इधर-उधर निगाह दौडाई। एक ओर थोडी दूर पर प्रकाश दिखाई पडा। लुत्फ-उन्निसा ने भी वही प्रकाश देखा था। अपने पूर्व अभ्यास के कारण प्रकाश देख कर कपालकुण्डला डरी नही, बल्कि उसे कुतूहल ही हुआ। धीरे-धीरे वह उस प्रकाश की ओर ही बढी। देखा, जहाँ प्रकाश हो रहा था, वहाँ कोई न था। परन्तु उसके पास ही थोडी दूर पर एक टूटा-फूटा घर है जो जगल के अंधकार के कारण दूर से दिखाई नही पडता। बहुत छोटा, ईटो का बना घर, बहुत ही साधारण है। उसमे मात्र एक ही कमरा है। उसी घर के पास जाने पर उसने सुना, भीतर से दो आदमियो की बातचीत करने की आवाज आ रही थी। कपाल-कुण्डला का कुतूहल प्रतिपल बढता ही जा रहा था—वह चुपचाप घर की दीवाल के पास गई। सचमुच दो आदमियो की बहुत सतर्कता से बाते करने की आवाज आ रही थी। पहले तो प्रयत्न करने पर भी बातचीत का साराश उसकी समझ मे न आया। बाद मे बहुत कोशिश करने पर सुनाई पडा—

एक आदमी कह रहा था, 'मेरी इच्छा है, मृत्यु हो, इसमे तुम कुछ न कर सको तो मैं भी तुम्हारी सहायता नही कर सकूँगा। और तुम भी मेरी सहायता मत करना।'

दूसरा बोला, 'उसका हित मै भी नही चाहता। लेकिन जिन्दगी भर के लिए देशनिकाला हो, मै इससे सहमत हूँ। लेकिन हत्या का कोई उद्योग मुझसे न होगा, 'बल्कि मै उस सम्बन्ध मे किए गए प्रयास का विरोध ही करूँगा।'

पहले ने कहा, 'तुम निरे अबोध और नादान हो। तुम्हे मै कुछ ज्ञान दे रहा हूँ, जिसे ध्यान से सुनो। बडी गूढ बात है। चारो ओर जरा एक बार देख आओ। मुझे तो जैसे किसी आदमी के साँस की आहट मिल रही है।'

कपालकुण्डला बातो को अच्छी तरह सुन सकने के लिए दीवाल के बहुत पास खिसक कर खडी हो गई थी। शायद उसकी तेज साँस का ही भीतर वालो को आभास मिला था।

तभी एक व्यक्ति घर से बाहर आया। आते ही उसकी निगाह कपालकुण्डला पर पडी। चाँदनी के प्रकाश मे कपालकुण्डला ने भी आने वाले व्यक्ति का आकार साफ-साफ देखा। देख कर न तो वह डरी न खुश हुई। आने वाला व्यक्ति एक ब्राह्मण-वेशी था। मामूली धोती पहने, सारा बदन चादर से अच्छी तरह ढँका। देख कर लगा ब्राह्मण-कुमार कोमल-वयस्क है। चेहरे पर आयु का अन्दाज देने वाला कोई चिन्ह नही है। चेहरा खूब सुन्दर, सुन्दर स्त्री की चेहरे जैसा सुन्दर, लेकिन स्त्री के चेहरे पर ऐसा तेज व गर्व नही होता। बाल भी लम्बे, पुरुषो के बालो की तरह कटे न थे। माथा चौडा। दोनो आँखें खूब चमकदार। हाथ मे एक खुली हुई लम्बी तलवार। परन्तु इस मोहक रूपराशि

के भीतर एक भीषण भाव व्यक्त हो रहा था। उस पर जैसे कामना की कोई कराल छाया पडी थी। उसके कटाक्ष—अन्तस्थल को भेद कर सब कुछ जान लेने वाला कटाक्ष देखकर कपालकुण्डला डर गई।

दोनो काफी देर तक एक दूसरे को एकटक देखते रहे। फिर कपालकुण्डला ने ही पलकें गिराईं। तत्काल ही आगन्तुक ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

यदि एक साल पहले केवड के वन मे कपालकुण्डला से यह प्रश्न किया जाता तो वह उसी समय उसका उचित उत्तर देती। लेकिन अब तो कपालकुण्डला गृह-रमणी के स्वभाव वाली बन चुकी थी, इसीलिए शायद एकाएक जवाब न दे सकी। ब्राह्मण-वेशी ने कपालकुण्डला को चुप देख कर जरा जोर से कहा, 'कपालकुण्डला! तुम इस अधेरी रात मे, इस जगल मे किसलिए आई हो ?'

जगल मे, रात को, अचानक मिलने वाले एक अपरिचित पुरुष के मुँह से अपना नाम सुन कर कपालकुण्डला अत्यधिक चकित व विस्मित हुई। कुछ डर भी लगा। एकाएक कुछ उत्तर देने की सामर्थ उसमे न थी।

थोडा हिम्मत करने पर सहसा कपालकुण्डला की वाक-शक्ति फिर से लौट आई। उसने उत्तर न देकर प्रश्न किया, 'मै भी यही पूछती हूँ, इस अधेरे जगल मे, इतनी रात बीते, तुम दोनो आदमी कौन सा षडयंत्र कर रहे हो ?'

ब्राह्मण-वेशी चिन्तामग्न हो कुछ देर तक नितात चुप रहा। फिर जैसे किसी उद्देश्य की पूर्ति की आशा मन मे जागी और आगे बढ कर उसने एकाएक कपालकुण्डला का हाथ पकडा और टूटे घर से कुछ दूर खीच कर ले जाने लगा। कपालकुण्डला ने क्रोध प्रदर्शित करते हुए झटके से हाथ छुडा लिया। तब उस ब्राह्मण-वेशी ने बडे कोमल स्वर मे कपालकुण्डला के कान मे कहा, 'तुम्हे चिन्ता क्या है ? मैं पुरुष नही हूँ।'

कपालकुण्डला अब और चौंकी। इस बात पर उसे थोडा-थोडा विश्वास हुआ पर पूरा नही। वह चुपचाप ब्राह्मणवेशी के साथ-साथ एक ओर बढ गई। टूटे घर से दूर एक एकात जगह पर जा कर ब्राह्मणवेशी ने कपालकुण्डला से कान मे कहा, 'हमलोग जो षडयन्त्र कर रहे थे वह सुनोगी ? वह तुम्हारे ही सम्बन्ध मे है।'

कपालकुण्डला का भय और आग्रह एकाएक बहुत बढ़ गया। वह बोली, 'सुनूँगी।'

'तो जब तक मै लौट कर न आऊँ, तुम यही प्रतीक्षा करो।' कह कर ब्राह्मण-वेशी टूटे घर की ओर चला गया। कपालकुण्डला काफी देर तक वहाँ बैठी रही। अब तक उसने जो कुछ देखा था और सुना था उससे उसके मन मे बडा भय पैदा हो गया था। इस समय नितात अकेली, अंधेरे जंगल मे बैठने से और भी डर बढने लगा। खासकर वह यह न समझ सकी कि यह रहस्यमय ब्राह्मणवेशी व्यक्ति इस प्रकार क्यो बैठा गया है, किस अभिप्राय से, यह सोच कर वह और डरी। हो सकता है कि सुयोग समझ कर अपना बुरा अभिप्राय सिद्ध करने के लिए ही उसे वहाँ बैठ गया हो! इस प्रकार नाना

प्रकार की शंकाए मन में उठने के कारण कपालकुण्डला भय से बहुत परेशान हो उठी। इधर ब्राह्मणवेशी को गए भी काफी देर हो गई और उसके लौटने का चिन्ह् भी कही न दिखा। अब कपालकुण्डला और बैठी न रह सकी। उठ कर तेजी से कदम बढ़ाती वह घर की ओर चल पडी।

एकाएक आकाश मे घनघोर घटा छा गई। सारा आकाश काला हो उठा। जंगल मे नीचे जो थोडा सा हल्का प्रकाश था वह भी क्रमश गायब होने लगा। कपालकुण्डला अब क्षण भर भी की देरी नही करना चाहती थी। जल्दी जल्दी पाँव बढाती हुई वह जंगल के बाहर की ओर चली। आगे बढते हुए, गहरे हो रहे अधेरे मे उसे जैसे पीछे से आते किसी दूसरे व्यक्ति की आहट मिली। पर वह मुँह फेर कर अधेरे मे देखने का साहस न कर सकी। कपालकुण्डला ने सोचा कि अवश्य ही वही ब्राह्मणवेशी उसका पीछा कर रहा है। तीर की भाँति चलती हुई जगल से निकल कर वह वन-पथ पर चलने लगी। वहाँ उतना अधेरा नही, दृष्टि की पहुँच मे आदमी को देखा जा सकता है। तनिक घूम कर उसने देखा—कोई भी दिखाई न पडा। थोडा निश्चिन्त हो, उसने अपने चाल की गति धीमी की। तभी उसे पीछे से आती पदचाप की स्पष्ट ध्वनि फिर सुन पडी। आकाश का अधेरा पहले से अधिक हो गया। कपालकुण्डला के कदम और तेज उठने लगे। घर पास ही था। लेकिन घर पहुँचते-पहुँचते भयानक शोर के साथ प्रचण्ड वेग से आँधी व पानी का ताण्डव शुरू हो गया। कपालकुण्डला दौड पडी। पीछे-पीछे जिस आदमी के आने की आहट मिल रही थी, लगा वह भी दौडा। ऐसी आवाज का आभास मिला। घर दिखाई पडने के पहले ही आँधी और पानी का प्रचड वेग जैसे कपालकुण्डला के सिर पर टूट पडा। बारम्बार गम्भीर मेघ-गर्जन और बिजली कडकने की आवाज होने लगी। पानी भी मूसलाधार बरसने लगा। किसी तरह अपने को सम्हालती हुई कपालकुण्डला घर तक पहुँची। सहन पार कर कमरे की ओर बढी। उसके लिए कमरे का दरवाजा खुला था। दरवाजा बन्द करने के लिए घूम कर सहन की ओर मुँह किया अचानक लगा कि जैसे सहन मे एक लम्बा सा आदमी खडा है। ठीक उसी क्षण एक बार बिजली चमकी। बस, क्षण भर की उस बिजली की चमक मे ही कपालकुण्डला ने उसे पहचान लिया। वह समुद्र के किनारे वाला वही कापालिक था।

|२|

स्वप्न में

"I had a dream, which was not all a dream."

—Byron

भयातुर कपालकुण्डला ने धीरे-धीरे दरवाजा बन्द कर लिया। फिर धीरे-धीरे शयन-कक्ष मे गई, धीरे-धीरे ही पलंग पर लेटी। आदमी का मन अनन्त सागर है, उस पर जब पागल हवाएँ लडने लगती हैं, तब कौन उसकी तरंगो को गिन सकता है? कपालकुण्डला के हृदय-समुद्र मे जो तंरगे उठ रही थी उन्हे भी भला कौन गिनेगा?

नवकुमार भी मन के क्षोभ व वेदना के कारण उस रात अन्त पुर मे नही आये। शयन-कक्ष मे अकेली कपालकुण्डला ही लेटी। लेकिन उसकी आँख किसी तरह भी न लगी। तेज हवा के झोको से चोट खाया, तेज वर्षा के वेग से धुला और जटाजूट से घिरा उसका चेहरा अधेरे मे ही इधर-उधर दिखता रहा। फिर कपालकुण्डला मन ही मन अभी देखे सभी दृश्यो की विवेचना करने लगी। फिर वह शीघ्र ही अतीत की स्मृतियो मे खो गई। कापालिक के प्रति जैसा व्यवहार करके वह भाग आई थी, वह सब याद आने लगा। उसे याद आया—कापालिक घने वन मे जो पैशाचिक कार्य करता था। उसकी भैरवी-पूजा, नवकुमार का बन्धन, सब कुछ याद आने लगा। सब कुछ सोच कर एक बार कपालकुण्डला काँप उठी। आज की रात की भी सभी घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगी। श्यामा की दवा की इच्छा, नवकुमार द्वारा रोका जाना, उसके प्रति कपालकुण्डला की उपेक्षा व तिरस्कार, फिर जगल की यात्रा, घोर अधकार, जंगल मे मिला ब्राह्मणवेशी—सब याद आने लगा।

पूरब दिशा मे जब ऊषा की लालिमा छाने लगी तब कपालकुण्डला को कुछ झपकी आई। उसी हल्की नीद में कपालकुण्डला स्वप्न देखने लगी। देखा—वह जैसे समुद्र के वक्ष पर नाव पर बैठी चली जा रही है। नाव खूब सजी है। उस पर बसंती रंग की पताका उड रही है। नाविक भी गले मे फूलो की माला पहने नाव खे रहे हैं। वे राधा और कृष्ण के अनन्त प्रणय-सम्बन्धी रसमय गीत गा रहे हैं। पश्चिम के आकाश से सूर्य सोने की धारा बहा रहा है। और वह धारा पाकर समुद्र हँस रहा है। आकाश-मण्डल के बादल उस सोने की वर्षा मे दौड़-दौड़ कर नहा रहे हैं। अचानक रात आ गई। सूर्य न जाने कहाँ चला गया। सोने के मेघ न जाने कहाँ चले गये! निविड़ अंधकार मे सारा आकाश डूब गया। इस अधकार में, समुद्र मे, दिशा का आभास नही मिलता। नाविको ने नौका वापस लौटाई। अब कैसे नाव खेयें, यह तय नही कर पा

रहे। नाविको ने गाना बन्द कर दिया, गले की मालाये तोड डाली। बासंती रंग की पताका अपने आप खुल कर पानी मे गिर पडी। तेज तूफान उठा, पेड की ऊँचाई तक ऊँची तरगें उठने लगी। उन तरगो के भीतर से जटाजूटधारी, बडे आकार का एक पुरुष आकर कपालकुण्डला की नाव बायें हाथ मे उठा कर समुद्र के बीचोबीच फेंकने को तत्पर हुआ। ठीक ऐसे ही समय वह सुदर्शन ब्राह्मणवेशी आकर नाव को पकड लेता है। वह कपालकुण्डला से पूछता है, 'तुम्हे रक्खूँ या डुबो दूँ ?' अचानक कपालकुण्डला के मुँह से निकला, 'डुबो दो।' तब ब्राह्मणवेशी ने नाव छोड दी। तब नाम भी बोल उठी—'मै यह भार अब और नही ढो सकती। मै पाताल मे प्रवेश कर रही हूँ।' इतना कह कर नाव उसे पानी मे फेंक कर जल्दी से पाताल मे प्रवेश कर गई।

इसी क्षण हडबडा कर कपालकुण्डला की नीद टूटी। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो रहा था। आँखें खोल कर चारो ओर देखा, सबेरा हो गया है। कमरे की खिडकियाँ खुली हुई है। उनसे बासती हवा की लहरे आ रही है। पेडो की डालें धीरे-धीरे हिल रही है और उन पर बैठी चिडियाँ चहक रही है। उन खिडकियो पर कुछ जंगली लताएँ, फूलो से लदी, हिल रही है। नारी-सुलभ स्वभाव से प्रेरित हो कपालकुण्डला उठी और उन लताओ को करीने से बाँधने-समेटने लगा। तभी उसे लताओ के बीच खोसी हुई एक चिट्ठी मिली। कपालकुण्डला पढना जानती थी। पत्र मे लिखा था—

'आज शाम के बाद कल रात वाले ब्राह्मणकुमार मे भेट करना। अपने सम्बन्ध मे हुए षडयत्र की बात सुनना।

—ब्राह्मणवेशी।'

| ३ |

निर्णय के क्षण

"I will have grounds
More relative than this"

—Hamlet

उस दिन शाम तक कपालकुण्डला चिन्तित रही। ब्राह्मणवेशी से उसका मिलना उचित होगा या नही, बस यही एक विचार उसके मन को मथता रहा। यह वह जानती थी कि एक प्रतिव्रता स्त्री का रात मे, एकान्त मे किसी अपरिचित पुरुष से मिलना अनु-

चित है, लेकिन इस विचार से उसके मन मे तनिक भी संकोच न हुआ क्योंकि इस सम्बन्ध मे उसकी दृढ व निश्चित धारणा थी कि किसी से भी मिलने का उद्देश्य यदि बुरा नही है तो मिलना भी किसी प्रकार का दोष नही हो सकता। पुरुष-पुरुष या नारी-नारी को जिस तरह नि संकोच आपस मे मिलने का अधिकार है, उसी तरह पुरुष स्त्री व स्त्री-पुरुष को भी मिलने का अधिकार है। उसका विचार है, इस समय उपस्थित समस्या तो और भी आसान है क्योंकि मिलने वाला ब्राह्मणवेशी पुरुष है या नही, इसमे भी सदेह है। फिर यह सकोच निरर्थक है, लेकिन इस मुलाकात से भला होगा या बुरा यह निश्चय बिना मिले नही किया जा सकता—मात्र इसीलिए कपालकुण्डला के मन मे थोडा सा संकोच है। पहले ब्राह्मणवेशी से हुई बातचीत, उसे जगल मे अकेली बैठ कर उसका गायब हो जाना फिर कापालिक को अपने घर में देखना, फिर वह अजीब सा स्वप्न देखना, इन सब बातो को ले कर कपालकुण्डला के मन मे अपने लिए एक अजीब-सा डर वा सशय पैदा हो रहा था। रह-रह कर उसके मन का यह सदेह सबल होता जा रहा था कि उसका अमगल निकट ही है। कापालिक के अचानक प्रकट होने के साथ यह सशय और अमगल मिला हुआ है ऐसा सदेह बिनामतलब नही कहा जा सकता। वह ब्राह्मणवेशी भी उसी कापालिक का ही सगी-साथी मालूम होता है, अत उससे मिलने से वह आशकित अमगल मे अपने आप गिर सकती है। उसने तो बडे दर्प से स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि कपालकुण्डला के ही सम्बन्ध मे वे दोनो षडयंत्र कर रहे थे। फिर ऐसा भी हो सकता है कि मिलने से उसके निराकरण की भी सूचना होगी। ब्राह्मणवेशी भीतर एक दूसरे व्यक्ति के साथ मिल कर षडयन्त्र-रचना कर रहा था, तो हो सकता है कि भीतर वाला वह व्यक्ति कापालिक भी हो। उनकी बातचीत मे किसी की हत्या या मृत्यु की बात हो रही थी, कम से कम सदा के लिए देश-निर्वासन की बात। लेकिन यह सब किसके लिए? ब्राह्मणवेशी ने तो स्पष्ट ही बता दिया है कि कपाल-कुण्डला के सम्बन्ध में ही षडयन्त्र हो रहा था। तो क्या उसी की हत्या-मृत्यु या निर्वासन का संकल्प हो रहा था? तो जब इस भयानक षडयंत्र मे ब्राह्मणवेशी ही सहयोगी है तब उससे मिलने रात मे अकेले जगल में जाना अवश्य ही विपत्ति का कारण हो सकता है। परन्तु कल रात को जो सपना देखा था? उस सपने का क्या अर्थ हो सकता है? सपने मे तो महाविपत्ति के क्षण मे ब्राह्मणवेशी ने ही आकर तो उसकी रक्षा करनी चाही थी। शायद मिल कर वह उसकी रक्षा का ही उपाय कहना चाहता हो या मिल कर इस सम्बन्ध मे सब बातें ही बताना चाहता हो। कपालकुण्डला ने सपने मे कहा था—'डूबो दो', अब भी क्या वैसा ही कहेगी? क्या फिर ब्राह्मणवेशी की सहायता को ठुकरा कर विपत्ति के समुद्र मे डूबेगी? नही—नही—भक्त की रक्षा के लिए भवानी ने स्वप्न द्वारा उसकी रक्षा का ही सकेत किया है। ब्राह्मणवेशी आकर उसका उद्धार करना चाहता है। उसकी सहायता छोडने पर वह अवश्य डूबेगी। अत. खूब

सोच-विचार के उपरान्त कपालकुण्डला ने उससे मिलने का ही निचश्य किया। अन्य कोई बुद्धिमान व्यक्ति ऐसी स्थिति मे क्या निर्णय लेता, यह कहना कठिन है। कपाल-कुण्डला किसी भी प्रकार बहुत बुद्धिमान नही है इसोलिए अपनी बुद्धि के अनुसार उसने निश्चय कर लिया। उस सुदर्शन, सुन्दर युवक से मिलने का उसने निश्चय कर लिया।

सध्या के पश्चात घर का कामकाज पूरा कर लेने के बाद कपालकुण्डला अपने निश्चय के अनुसार जगल के लिए चल पडी। चलते समय शयनकक्ष का दिया भी तेज करती गई। लेकिन वह जैसे ही कमरे से बाहर निकली कि कमरे का दिया बुझ गया।

चलते समय जल्दी मे कपालकुण्डाला एक बात भूल गई। ब्राह्मणवेशी के पत्र मे यह देखना भूल गई कि उसने किस स्थान पर मिलने के लिए लिखा था। अत एक बार फिर पत्र पढना आवश्यक हो गया। वह तत्काल घर वापस आई। कमरे मे जिस जगह पर उसने चिट्ठी रखी थी, वहाँ देखा कि वह चिट्ठी नही है। याद आया कि बाल बाँधते समय उस चिट्ठी को अपने पास ही रखने के इरादे से कवरी मे खोस ली थी। कवरी मे उँगलियाँ गडा-गडा कर खोजा। लेकिन वहाँ भी चिट्ठी न मिली। तब उसने वेणी खोल दी, फिर भी चिट्ठी न मिली। तब कमरे मे दूसरी जगहो मे भी खोजा। कही भी चिट्ठी न मिली। तब मन मे आया कि कही और रख दी होगी और इस समय याद नही आ रहा, अत यही निश्चय करके चल पडी कि कल वाली जगह पर ही मुलाकात होगी। जल्दी मे वह सिर के फैले बालो को फिर से बाँधना भी भूल गई। अत आज कपालकुण्डला शादी के पूर्व वाली बालिका की तरह ही सिर के बालो को उडाती हुई चल पडी।

|४|

घर के दरवाजे पर

"Stand you awhile apart,
Confine yourself but in a patient list."
—Othello

शाम के पूर्व जब कपालकुण्डला घर के कामकाज मे व्यस्त थी तब चिट्ठी जूडे से खुल कर नीचे जमीन पर आ गिरी थी। कपालकुण्डला को इसका आभास मिल न

पाया था। नवकुमार ने चिट्ठी गिरते देखी थी। जूडे से चिट्ठी खुनकर गिरती देख कर नवकुमार का विस्मित होना स्वाभाविक ही था। कपालकुण्डला जब दूसरी ओर चली गई तब चिट्ठी उठा कर बाहर ले जाकर नवकुमार ने पढी थी। उस पत्र में सिर्फ एक ही बात लिखी थी—'अपने सबध मे हुए षडयत्र की बात सुनना।'

यह षडयत्र क्या है ? क्या प्रणय संबंधी कोई षडयत्र ? तो क्या यह ब्राह्मणवेशी व्यक्ति कपालकुण्डला का उपपति है ? जो भी आदमी कल की घटनाओ को नही जानता उसका यह पत्र पढ कर यही सब सोचना स्वाभाविक है।

पति के साथ सहगमन के समय अथवा दूसरे किसी अन्य कारण से जब कोई पतिव्रता स्त्री जीते जी चिता पर चढ़ कर चिता मे आग लगाती है तो पहले धुआँ उठ कर उसे चारो ओर से घेरता है। उसको फिर कुछ दिखाई नही पडता, सर्वत्र अन्धेरा छा जाता है, फिर क्रमश लकडियाँ जलना शुरू होती है तो पहले नीचे से साँप की लपलपाती जीभ की तरह दो अग्नि शिखाएँ आकर अङ्गो मे जगह-जगह काटती है, बाद मे चिटकने का शब्द करती हुई आग की लपटें चारो ओर से आकर घेर लेती है और अङ्ग-प्रत्यंग को व्याप्त करती रहती है। अन्त मे प्रचण्ड आवाज के साथ अग्नि की ऊँची-ऊँची लपटे उठने लगती है, आकाशमडल को आलोकित करने लगती है।

चिट्ठी पढ कर नवकुमार को भी ऐसा ही, चिता मे जलने जैसा अनुभव हुआ। पहले तो कुछ अधिक वह समझ न सका। बाद मे संशय, फिर निश्चय और अन्त मे जलन का अनुभव हुआ। आदमी का मन एक साथ ही क्लेश और सुख का अतिरेक ग्रहण नही कर सकता, धीरे-धीरे करता है। नवकुमार को भी पहले धुएँ ने घेरा, फिर आग की लपटें हृदय को जलाने लगी। अन्त मे अग्नि-ताप से हृदय भस्म होने लगा। इधर कुछ दिनो से नवकुमार अनुभव कर रहा था कि कपालकुण्डला किसी-किसी विषय मे उसका अधिकार स्वीकार नहीं करती। विशेषकर उसके मना करने पर भी वह जब जहाँ इच्छा होती थी अकेली चली जाती थी। हर एक के साथ अपनी ही इच्छानुसार आचरण करती थी। अभी कल की ही बात है, उसकी बात की परवाह न कर के आधी रात में अकेली सूने व अन्धेरे जंगल में चली गई। और कोई होता तो संदेह की आग मे जलने लगता, लेकिन नवकुमार के हृदय मे कपालकुण्डला के लिए सन्देह उठने पर बिच्छू के डक मारने जैसी जलन होती इसलिए उसने एक क्षण के लिए भी अपने मन में कभी सन्देह को टिकने न दिया। आज भी सन्देह को महत्व न देता, लेकिन आज सन्देह नही, वास्तविकता आकर सामने खडी हो गई है।

सन्देह की जलन की पहली लहर घटने पर नवकुमार चुतचाप बैठ कर बडी देर तक पश्चाताप के आँसू बहाता रहा। रोकर अपना जी कुछ हल्का किया। निश्चय किया कि आज वह कपालकुण्डला से कुछ कहे गा नही, शाम को जव कपालकुण्डला जगल मे जाएगी तब वह छिप कर उसके पीछे-पीछे जायेगा। कपालकुण्डला का महापाप अपनी आँखो से

ही देखेगा। उसके बाद अपने प्राणो का अन्त कर लेगा। बस, कपालकुण्डला से कुछ न बोलेगा, सिर्फ अपनी जान दे देगा। और जान न दे कर करे गा भी क्या? इन व्यथित प्राणो का भारी बोझ ढोने की उसमे शक्ति कहाँ है?

मन मे यही निश्चय करके नवकुमार कपालकुडण्ला के बाहर निकलने की प्रतीक्षा मे खिडकी के पास बैठ कर दरवाजे की तरफ देखता रहा।

कपालकुण्डला के बाहर निकल कर थोडी दूर बढ जाने के बाद वह भी निकला। इसी समय कपालकुण्डला चिट्ठी के लिए वापस आई। देख कर नवकुमार एक ओर हट गया। अन्त मे कपालकुण्डला के दुबारा बाहर निकलने पर और कुछ दूर चले जाने पर नवकुमार फिर उसके पीछे-पीछे चले, तभी उन्होने देखा कि दरवाजे को घेर कर एक विशालकाय पुरुष खडा है।

लेकिन, वह कौन है और वहाँ क्यो खडा है, यह जानने की नवकुमार की इस समय तनिक भी इच्छा नही हुई। उसने उसकी ओर ठीक से देखना भी न चाहा। केवल वह उतावले मन से कपालकुण्डला को ओर ही नजर रखने मे व्यस्त था। इसीलिए अपने लिए रास्ता बनाने के लिए उसने आगन्तुक की छाती पर हाथ रख कर उसे एक बगल टालना चाहा, परन्तु उसे वह हटा न सका। तब नवकुमार ने पूछा, 'तुम कौन हो? दूर हटो, मेरा रास्ता छोडो।'

आगन्तुक बोला, 'मै कौन हूँ? क्या तुम मुझे नही पहचानते?'

समुद्र-गर्जन की भाँति शब्द गूँज उठे। नवकुमार ने आँखें उठा कर गौर से देखा। वह वही पूर्व परिचित जटाजूटधारी कापालिक ही था।

कापालिक को यो अप्रत्याशित रूप मे देख कर नवकुमार चौका जरूर पर डरा नही। एकाएक उसके चेहरे पर प्रफुल्लता छा गई और वह पूछ बैठा, 'कपालकुण्डला क्या तुम्ही से मिलने जा रही है?'

कापालिक गरजा, 'नही।'

अभी-अभी नवकुमार के मन मे आशा का जो दीपक जला था अचानक ही बुझ गया। नवकुमार के चेहरे पर एकाएक काले बादल सा अन्धेरा छा गया। बोला, 'तब तुम मेरा रास्ता छोड दो।'

'रास्ता तो छोड दे रहा हूँ। पर तुमसे मुझे कुछ बाते करनी है। पहले उसे सुन लो।'

'तुम्हारे साथ मेरी भला कौन सी बात हो सकती है? क्या तुम फिर मेरे प्राण-नाश के लिए ही आ गए हो? अब तुम मेरे प्राण ले सकते हो, अब मै कोई रुकावट नही डालूँगा। अभी तुम थोडी प्रतीक्षा कर लो, मै अभी वापस आता हूँ। मैने तब देव-तुष्टि के लिए अपना शरीर नही दिया, अब उसका फल भोग लिया है। जिसने मुझे

बचाया था, उसी ने मुझे मारा भी है । कापालिक अब तुम मुझ पर पूरा भरोसा करो । मै अभी आ कर अपने को तुम्हारे हाथो मे सौप दूँगा ।'

'लेकिन मै तुम्हारी जान लेने नही आया हूँ । भवानी की ऐसी इच्छा नही है । मै जो कुछ करने के लिए यहाँ आया हूँ, वही तुमसे बताना है । तुम घर के भीतर चलो, मै जो कुछ कहता हूँ, ध्यान से सुनो ।'

'लेकिन अभी नही । फिर दूसरे समय वह सब सुनूँगा । तुम अभी प्रतीक्षा करो । मैं विशेष रूप से अभी व्यस्त हूँ । फुरसत पाकर लौटता हूँ ।'

'बेटा ! मैं सब कुछ जानता हूँ । तुम उस पापिनी के पीछे-पीछे जाओगे । लेकिन वह कहाँ जाएगी, मै जानता हूँ । मैं तुझे अपने साथ उसी जगह ले चलूँगा । जो कुछ तुम देखना चाहते हो, वह सब दिखाऊँगा । पर अभी तुम्हे मेरी बात सुननी होगी । तुम डरो मत ।'

'नही, अब मुझे तुमसे कोई डर नही है । आओ भीतर ।' कह कर नवकुमार कापालिक को घर के भीतर लिवा ले गया । बैठाया और खुद भी बैठ कर बोला, 'अब कहो ।'

|५|

बातचीत

'तद्गच्छ सिद्ध्यै कुरु देवकार्यम ।'

—कुमारसम्भव

जम कर बैठते हुए कापालिक ने अपनी दोनो बाँहे नवकुमार को दिखाईं । नवकुमार ने चकित हो कर देखा, दोनों बाँहे टूटी हुई थी ।

जिस रात कपालकुण्डला के साथ नवकुमार समुद्र-तट से भागा था, उस रात मे उसकी खोज करते हुए कापालिक बालू के ऊँचे शिखर पर से गिर पडा था । गिरते समय दोनो हाथो से जमीन पकड़ कर उसने अपने को बचाने की कोशिश की थी । इससे शरीर तो उसका बच गया था पर दोनो बाँहे टूट गई थी । यह सब हाल कापालिक ने संक्षेप मे नवकुमार को बताया । बोला, 'इन बाँहो के न रहने से नित्यक्रिया के निर्वाह मे कोई विशेष विघ्न नही पड़ता । लेकिन इनमे शक्ति तनिक भी नही रह गई है । यहाँ तक कि इनसे लकडियाँ बटोरने मे भी तकलीफ होती है ।'

फिर थोडी देर रुक कर उसने आगे कहा, 'उस समय गिरते ही मै समझ गया था कि मेरे दोनो हाथ टूट गये है। दूसरे अङ्ग ठीक है, ऐसा भी नही, गिरने के साथ ही मै मूर्छित हो गया था। पहले तो बिल्कुल ही बेहोश था। फिर होश आया, फिर बेहोश हो गया। कितने दिनो तक मेरी यही दशा बनी रही, मै कह नही सकता। लगता है कि शायद दो रात और एक दिन इसी स्थिति मे रहा। फिर मुझे सुबह पूरी तरह होश आया था। होश आने के थोडा पहले मै एक सपना देखने लगा। जैसे भवानी।' कहते-कहते कापालिक का सारा शरीर रोमाचित हो उठा। 'लगा कि जैसे प्रत्यक्ष भवानी आकर मेरे सामने प्रकट हुई है। भौहे चढा कर मुझे फटकार रही है। कह रही हैं, अरे दुराचारी! तेरे चित्त की अशुद्धि के कारण ही मेरी पूजा मे यह विघ्न पडा है। इन्द्रिय की लालसा मे बँध कर तूने इस कुमारी के रक्त से अब तक मेरी पूजा नही की। अतएव इस कुमारी से ही तेरे पहले के किए सब फल नष्ट हुए है। अब मै कभी तुझसे पूजा ग्रहण नही करूँगी। तब रोता हुआ मै माता के पैरो पर लोटने लगा। काफी देर बाद प्रसन्न हो कर वे बोली, भद्र! अब तुझे प्रायश्चित करना होगा। और इसका एकमात्र प्रायश्चित यही है कि उस कपालकुण्डला की मुझ पर बलि चढा। जब तक उसकी बलि न दे सके, मेरी पूजा मत करना। फिर कब और कितने दिनो में मै अच्छा हुआ हूँ, इसके वर्णन की अभी कोई आवश्यकता नही है। फिर समय से अच्छा होकर मैने देवी का आदेश पालन करने की कोशिश शुरू की। लेकिन देखा कि इन बाँहो में तो एक शिशु की भी शक्ति नही बची। और बाहुबल के बिना आदेश का पालन भी नही हो सकता था, अत एक सहचर की मुझे आवश्यकता हुई। परन्तु आजकल मनुष्यो मे धर्म की मति कम है, विशेष कर कलि के प्राबल्य मे यवन राजा है। पापात्मक राज-शासन के भय से कोई भी ऐसे कार्य में सहचर नही बनता। बडी खोज व बड़े प्रयत्न से मैने इस पापिनी के वासस्थान का पता लगाया। लेकिन बाँहो मे शक्ति न रहने के कारण मैं अभी तक भवानी के आदेश का पालन न कर सका। मात्र मानस सिद्धि के लिए तान्त्रिक विधान के अनुसार क्रिया-कलाप करता रहता हूँ। कल रात को पास ही के जगल में होम कर रहा था, तभी अपनी आँखो से देखा कि कपालकुण्डला के साथ एक ब्राह्मण कुमार का मेल हुआ। आज भी वह उसी से मिलने के लिए जा रही है। यदि देखना चाहते हो तो मेरे साथ आओ, मै सब दिखा दूँगा। कपालकुण्डला वास्तव में वध के ही योग्य है। मै भवानी की आज्ञा के अनुसार उसका वध करूँगा। वह तुम्हारे सम्मुख भी विश्वासघातिनी ही है, तुम्हारे लिए भी वह वध के योग्य है। इसलिए तुम मुझे सहायता दो। इस पापिनी को पकड कर मेरे साथ यज्ञस्थान मे ले चलो। वही अपने हाथ से इसकी बलि चढ़ाना। इससे ईश्वर के सम्मुख तुमने जो भी अपराध किए है, उससे माफी मिलेगी। इस पवित्र-कार्य से अतुलनीय पुण्य-सचय होगा। पापिनी को दड मिलेगा।'

कह कर कापालिक चुप हो गया।

नवकुमार सोच में डूब गया। कोई उत्तर न दे सका। उसे चुप देख कर कापालिक फिर बोला, 'वत्स ! इस समय मैने जो कुछ दिखाने को कहा है, वह देखना चाहते हो तो चलो !'

पसीने से तर-बतर नवकुमार चुपचाप कापालिक के पीछे-पीछे चल पडे।

|६|

सौत से सम्भाषण

"Be at peace, it is your sister that addresses yow, Requite Lucretia's Love"

—Lucretia

घर से निकल कर कपालकुण्डला सीधे जगल मे गई। पहले उसी कल वाले टूटे घर मे गई। वहाँ ब्राह्मणकुमार को देखा। यदि दिन का समय होता तो वह स्पष्ट देख पाती कि उसके चेहरे की कान्ति अत्यधिक मलिन हो गई है। ब्राह्मणवेशी ने कपालकुण्डला से कहा, 'यहाँ कापालिक आ सकता है, यहाँ किसी तरह भी बातचीत करना उचित व सुरक्षित नही है। चलो, कही दूसरी जगह चलें।'

जगल मे एक कम चौड़ी जगह थी। उसके चारो ओर घने पेड थे। बीच मे साफ स्थान था। वहाँ से एक रास्ता बाहर की ओर चला गया। कपालकुण्डला को साथ ले कर ब्राह्मणवेशी वही गया। दोनो वहीं बैठे। तब ब्राह्मण ने कहा, 'उचित होगा कि पहले मैं अपना परिचय दे दूँ। मेरी बातें कहाँ तक विश्वास करने के योग्य है यह तुम खुद ही समझ लो गी। जब तुम अपने पति के साथ समुद्र-तट से वापस आ रही थी तब तुम्हे याद होगा कि रास्ते मे एक सराय मे रात को तुम्हारी एक यवन-कन्या से भेंट हुई थी। क्या तुम्हे वह सब याद है ?'

'क्या जिन्होने मुझे गहने दिये थे ?'

'हाँ, मै वही हूँ।'

सुन कर कपालकुण्डला को खूब ही आश्चर्यं हुआ। उसका विस्मय देख कर लुत्फ-उन्निसा ने कहा, 'विस्मय का एक और भी महान कारण होगा—मै तुम्हारी सौत हूँ !'

सचमुच आश्चर्यं से विचलित होती हुई कपालकुण्डला ने कहा, 'सो कैसे ?'

लुत्फ-उन्निसा ने तब बिल्कुल शुरू से अपना परिचय देना शुरू किया। विवाह

जातिनाश, पति-त्याग, ढाका, आगरा, जहाँगीर, मेहरउन्निसा, आगरा-त्याग, सप्तग्राम-वास, नवकुमार से भेंट, नवकुमार का व्यवहार, पिछले दिन वेश बदल कर जंगल मे आना, होम करने वाले से भेंट आदि सब बता दिया। तब कपालकुण्डला ने पूछा, 'किस मतलब से भेष बदल कर तुमने मेरे मकान मे आने की इच्छा की थी ?'

लुत्फ-उन्निसा बोली, 'तुम्हारे और तुम्हारे पति मे सदा के लिए विच्छेद उत्पन्न करने की इच्छा से।'

कपालकुण्डला कुछ सोचने लगी, फिर पूछा, 'अच्छा, बताओ, वह किस तरह करती ?'

'फिलहाल अभी तो,·· पहले तो तुम्हारे पति के मन मे तुम्हारे सतीत्व के प्रति शका उत्पन्न करती। लेकिन अब उसकी आवश्यकता नही है। वह विचार मैने बदल दिया और वह रास्ता भी छोड दिया। इस समय अगर तुम मेरी सलाह के अनुसार काम करो तो तुम्हारे माध्यम से ही मेरी कामना-सिद्ध हो जायगी। और साथ-साथ ही तुम्हारा भी अमंगल न होगा।'

'होम करने वाले के मुँह से तुमने किसका नाम सुना था ?'

'तुम्हारा ही नाम। वह तुम्हारे मगल या अमंगल की कामना से ही होम कर रहा है, यही जानने के लिए मै प्रणाम करके उसके पास जा बैठी। जब तक उसकी क्रिया पूरी नही हुई, मै वही बैठी रही। होम हो जाने पर, छल से मैने तुम्हारे नाम के साथ होम करने का अभिप्राय पूछा। काफी देर तक उससे बाते कर के मैने मालूम किया कि तुम्हारा अमगल ही उसके होम का प्रयोजन है। तब मैने उससे बता दिया कि मेरा भी यही प्रयोजन है। तब हम दोनो ही एक दूसरे की सहायता करने को वचन-वद्ध हुए। क्योकि हम दोनो का उद्देश्य एक ही था। फिर विशेष सलाह करने के लिए वह मुझे उस टूटे घर के भीतर लिवा ले गया। वहाँ अपने मन की बात खोल कर बताई। तुम्हारी मृत्यु भी उसे स्वीकार है। परन्तु मै यह कदापि नही चाहती। मैने तो इस जन्म मे पाप ही पाप किए है। लेकिन पाप के रास्ते पर चल कर भी मेरा इतना पतन नही हुआ कि मै अकारण ही एक निरपराध बालिका की मृत्यु की कामना करूँ। मैने उसे सहयोग देने की सम्मति नही दी। ठीक इसी समय तुम वहाँ पहुँच गईं। शायद है कि तुमने भी हमारी बातें सुनी हो ?'

'हाँ, मैने ऐसी ही बातचीत सुनी थी।'

'उस आदमी ने मुझे नासमझ और नादान समझ कर कुछ उपदेश देना चाहा। बातचीत का अन्त क्या होता है, यह ठीक से मालूम करके मैं तुम्हे खबर देना चाहती थी। इसीलिए तुम्हे जंगल मे छिपा कर बैठा गई थी।

'फिर लौटी क्यो नही ?'

'वह बहुत देर तक बातें करता रहा। बहुत-सी बाते कही। उन्हे ही सुनने मे बहुत देर हो गई। तुम उस आदमी को अच्छी तरह जानती हो। वह कौन है, क्या तुम्हारी समझ मे आ रहा है ?'

'मुझे पहले पालनेवाला कापालिक ?'

'हाँ, वही है। पहले समुद्र के किनारे तुम्हे पाना, फिर तुम्हारा पालन-पोषण करना, वहाँ नवकुमार का पहुँचना, उसके साथ तुम्हारा भागना, यह सब हाल विस्तार से कापालिक ने बताया। तुम लोगो के भागने के बाद वहाँ जो-जो कुछ भी हुआ, वह सब भी बताया। वे सब बाते शायद तुम्हे नही मालूम, इसलिए तुम्हारी जानकारी के लिए मे सब विस्तारपूर्वक बताती हूँ।'

यह कह कर लुत्फ-उन्निसा ने कापालिक का बालू के शिखर से गिरना, हाथो का टूटना, स्वप्न की बात, सब बताया। स्वप्न की बात सुनते ही कपालकुण्डला चौककर काँप उठी। मन मे बिजली की चचलता पैदा हुई। तब लुत्फ-उन्निसा कहने लगी, 'कापालिक की दृढ़ प्रतिज्ञा है कि वह भवानी के आदेश का पालन अवश्य करेगा। उसकी बाहे शक्तिहीन है, इसीलिए उसे दूसरे की मदद की आवश्यकता है। मुझे ब्रह्मणकुमार समझ कर मदद पाने की आशा से उसने समस्त वृत्तान्त कहा। लेकिन मैने उसे इस पाप-कार्य मे सहायक होने की सहमति नही दी। अपने चित्त के कभी भी खराब हो जाने की सम्भावना की मै बात नही करती पर विश्वास है कि कभी भी मै सहमति न दूँगी, बल्कि जहाँ तक सम्भव है, उसके इस सकल्प का विरोध ही करूँगी, अभी तक मेरा यही निश्चय है। इसी अभिप्राय से मैने तुमसे भेट की है। लेकिन यह भी सत्य है कि इस काम मे मैंने बिल्कुल नि:स्वार्थ भाव से हाथ नही लगाया। मैंने स्वार्थवश ही यह करने का निश्चय किया है। मैं तुम्हे प्राणो का दान दे रही हूँ। अब तुम भी मेरे लिए कुछ करो।'

'क्या करूँ, बताओ ?'

'मुझे भी प्राणदान दो, मेरे लिए अपने पति का त्याग करो।'

सुन कर थोड़ी देर तक तो कापालकुण्डला कुछ न बोली। फिर कहा, 'पति का त्याग करके मैं कहाँ जाऊँगी ?'

'तुम विदेश चली जाओ। यहाँ से बहुत दूर, वहाँ मै तुम्हे कोठी दूँगी, धन दूँगी, दास-दासियाँ दूँगी, वहाँ तुम रानी की तरह रहोगी।'

कपालकुण्डला फिर विचार मे डूब कर चिन्ता करने लगी। संसार मे चतुर्दिक उसने आँखें खोल कर देखा, पर कही किसी को भी नही देखा। अन्त करण मे झाँक कर देखा, लेकिन वहाँ नवकुमार न था। उसने सोचा कि फिर वह क्यो लुत्फ-उन्निसा का रास्ता रोके ? उसने लुत्फ-उन्निसा से कहा, 'तुमने मेरा उपकार किया है या नही, यह बात अभी तक मेरी समझ मे नही आई। मुझे कोठी, धन, दासियो की भी जरूरत नहीं

है। लेकिन मै तुम्हारे सुख का रास्ता भी क्यो रोकूँगी ? मै चाहूँगी कि तुम्हारी ही अभिलाषा पूरी हो। कल से इस विघ्नकारिणी की कोई खबर तुम्हे नही मिलेगी। मै जंगल की रही हूँ। फिर जगल की शरण मे चली जाऊँगी।'

लुत्फ-उन्निसा विस्मित हुई। कपालकुण्डला इतनी जल्द व इतनी आसानी से मान जाएगी। ऐसी आशा भी उसने नही की थी। अत बहुत ममतालु हो कर बोली, 'बहन, तुम्हे लबी आयु मिले। तुमने मुझे प्राणदान दिए है, लेकिन मै भी तुम्हे अनाथ व बेसहारा बन कर नही जाने दूँगी। कल सुबह मै तुम्हारे पास एक विश्वास करने योग्य चतुर दासी भेजूँगी, उसी के साथ तुम जाना। बर्दवान मे एक बहुत धनी स्त्री मेरी सहेली है। वह तुम्हारी कुल जरूरते पूरी कर देगी ?'

कपालकुण्डला और लुत्फ-उन्निसा बातो मे इस तरह डूबी हुई थी कि सामने खडे विघ्न की ओर उनकी आँखे ही नही उठी। जो जगली रास्ता उस स्थल से बाहर की ओर जाता था, उसी रास्ते के किनारे खडे होकर कापालिक और नवकुमार उन दोनो की ओर जिस प्रकार जहरीले साँप की आँखो से देख रहे थे, उन्हे इन दोनो ने एक बार भी न देखा।

दूर खडे नवकुमार और कापालिक कपालकुण्डला और ब्राह्मणवेशी को देख तो रहे थे पर दूरी के कारण उनकी बातो का एक शब्द भी वे सुन न सके।

नवकुमार ने देखा कि कपालकुण्डला के बाल खुले हुए है। फिर देखा कि बालो की राशि ब्राह्मणकुमार की पीठ पर पडी हुई उसके कधो को चूमते बालो से मिल रही थी। कपालकुण्डला के बाल इतने लम्बे थे, और बातचीत के कारण दोनो एक दूसरे से इतने निकट बैठी थी कि लुत्फ-उन्निसा की पीठ तक कपालकुण्डला के बाल फैल रहे थे। देख कर नवकुमार धीरे से जमीन पर बैठ गये।

नवकुमार की दशा देख कर कापालिक के कमर से बँधा एक नारियल निकाल कर कहा, 'वत्स ! शक्ति खो रहे हो ? यह लो महा-औषधि पी लो। यह भवानी का प्रसाद है। पी कर शक्ति पाओगे।'

कापालिक ने वह नारियल-पात्र नवकुमार के मुँह के पास कर दिया। बे-मन से पीकर भी नवकुमार ने प्यास बुझाई। नवकुमार नही जानते थे कि वह स्वादिस्ट पेय, कापालिक द्वारा अपने ही हाथो तैयार की गई प्रचण्ड तेजस्विनी सुरा थी। पीने के साथ ही साथ उसमे उत्तेजना और शक्ति का सचार हुआ।

उधर लुत्फ-उन्निसा भी पूर्ववत मधुर स्वर मे कपालकुण्डला से कह रही थी—'बहन ! तुमने जो काम किया है, उसका बदला चुका सकने की मुझमे शक्ति नही है। फिर भी, अगर तुम मुझे हमेशा याद रख सके तो वही मेरे लिए महान सुख होगा। जो गहने मैने तुम्हे दिए थे, सुना है वह सब तुमने किसी भिखारी को दे दिये। अब पास मे कुछ भी नही है। कल की अन्य आवश्यकता के लिए सोच कर एक अँगूठी ले आई थी। ईश्वर की कृपा से उस पाप-कृत्य की जरूरत नही पडी। अब यह अँगूठी लो, तुम

रख लो। कभी-कभी यह अँगूठी देख कर अपनी मुसलमान बहन को याद करना। आज अगर तुम्हारे पति पूछे कि यह अँगूठी कहाँ मिली तो कहना कि लुत्फ-उन्निसा ने दी है।' कह कर लुत्फ-उन्निसा ने बडी कीमत वाली अँगूठी अपनी उँगली से उतार कर कपालकुण्डला की उँगली मे डाल दी। नवकुमार ने यह सब भी देखा। कापालिक उसे पकडे था। उसे फिर काँपते देख कर उसने फिर एक बार उसे मदिरा पिलाई। नवकुमार के मस्तिष्क मे पहुँच कर मदिरा उसकी प्रकृति का नाश करने लगी, स्नेह का अंकुर तक जड से खोदने लगी।

थोडी देर बाद लुत्फ-उन्निसा से विदा ले कर कपालकुण्डला अपने घर की ओर चली। तब लुत्फ-उन्निसा की नजरे बचा-बचा कर नवकुमार और कापालिक कपालकुण्डला का ही अनुसरण करते रहे।

|७|

घर की ओर

"No spectre greets me—no vain shadow this"

—Wordsworth

कपालकुण्डला धीरे-धीरे सधे कदमो घर की ओर बढी। वह बहुत धीरे-धीरे, बहुत मृदु-मृदु चल रही थी। क्योकि वह इस क्षण बहुत ही गहरी चिन्ता मे डूबी हुई थी। लुत्फ-उन्निसा से बातचीत करके कपालकुण्डला के चित्त का एक साथ ही भाव बदल गया था। वह मन ही मन पूरी तरह आत्म-विसर्जन के लिए तैयार हो गई थी। आत्म-विसर्जन के लिए? लुत्फ-उन्निसा के लिए? अपनी सौत के लिए? नही, ऐसी बात नही।

जहाँ तक हृदय और अन्त करण का संबंध है, कपालकुण्डला तान्त्रिक-कन्या है। जिस तरह तान्त्रिक काली माई के प्रसाद के प्रयोजन हेतु दूसरे की जान लेने मे तनिक भी सकोच नही करते—उसी प्रयोजन हेतु कपालकुण्डला भी अपने जीवन की बलि देने मे वैसी ही समर्थ है। कपालकुण्डला भी कापालिक की तरह ही अनन्यचित्त होकर शक्ति के प्रसाद की इच्छुक हुई थी, ऐसी बात तो नही, लेकिन दिन-रात शक्ति की भक्ति सुनने, देखने और साधने से उसके मन मे काल के प्रति विशेष रूप से अनुराग पैदा हो गया था। भैरवी ही संसार व सृष्टि का शासन करने वाली तथा मुक्ति देने वाली हैं, यह

विश्वास विशेष रूप से उसके अन्तर्मन मे जड जमा चुका था। कालिका की पूजा-भूमि मनुष्य-रक्त से प्लावित होती है, यह बात दूसरे के दुख से कातर हुए उसके मन को ग्राह्य नही थी, अन्यथा दूसरे किसी काम मे भक्ति-प्रदर्शन मे कोई त्रुटि नही रहती है। अब संसार का शासन करने वाली, सुख और दुख का विधान करने वाली, कैवल्य देने वाली उन्ही भैरवी ने उसे जीवन-समर्पण करने की स्वप्न मे आज्ञा दी है। फिर भला कपालकुण्डला भैरवी के उस आदेश का पालन क्यो नही करेगी ?

कोई भी अकारण जान नही देना चाहता। अनुराग मे सभी कहते है कि यह संसार सुखमय है। सुख की आशा मे ही सभी लट्टू की तरह ससार भर मे नाचते रहते है—दु ख की आशा से नही। सभव है कि यदि मनुष्य के कर्मों के दोष से वह आशा पूरी नही होती तो उसे ही दुख का नाम दे कर मनुष्य ऊँचे स्वर मे कलरव करने लगता है। इस प्रकार दु ख नियम नही, सिद्धान्त हुआ, नियम का मात्र व्यतिक्रम। मनुष्य सभी जगह, सभी क्षेत्र मे सुख ही चाहता है। उसी सुख के ससार मे उसकी जड गडी हुई है। मनुष्य किसी प्रकार भी उसे छोडना नही चाहता। लेकिन इस ससार के बन्धन की प्रणय प्रधान रस्सी है। कपालकुण्डला के लिए वह बन्धन तथा, कोई भी ऐसा बन्धन न था। फिर भला कपालकुण्डला को कौन बाँध कर रख सकता है ?

जिसके लिए कोई बन्धन नही है, उसी का वेग अप्रतिहत है। पहाड की चोटी से जब झरना नीचे उतर आता है तब भला उसकी गति और वेग को कौन रोक सकता है ? एक बार हवा चलने पर कौन उसके बहाव को रोक सकता है ? कपालकुण्डला का चित्त चंचल होने पर फिर कौन उसे शान्त कर सकेगा ? नया हाथी जब मतवाला हो जाय तो उसे कौन स्थिर कर सकेगा ?

कपालकुण्डला ने अपने ही मन से पूछा, 'इस शरीर को क्यो न ईश्वर के चरणो मे समर्पित कर दूँ ? पंचभूत से लिपटे रह कर क्या होगा ?' वह मन ही मन प्रश्न कर रही थी पर कोई निश्चित उत्तर नही पा रही थी। सच तो यह है कि ससार मे कोई दूसरा बन्धन न रहने पर भी पचभूतो का एक बन्धन तो रहता ही है।

कपालकुण्डला सिर झुकाए ध्यानमग्न चलती जा रही थी। जब आदमी का मन किसी उत्कट भाव से घिर जाता है तब चिन्ता की एकाग्रता के कारण बाह्य सृष्टि की ओर निगाह नही जाती, तब अनैसर्गिक पदार्थ भी प्रत्यक्ष हुआ सा दिखाई पडने लगता है। कपालकुण्डला की भी इस समय यही स्थिति थी।

तभी अचानक उसके कानो मे ये शब्द पड़े—'वत्से ! मै रास्ता दिखा रही हूँ।' कपालकुण्डला चौकी। आँखें ऊपर उठाई। देखा, जैसे आकाश-मण्डल मे नये बादलो को निन्दित करने वाली मूर्ति हो। गले मे पडी नर-कपाल-माला से रक्त की बूँदें चू रही थी, कटिमण्डल को घेर कर नर-कर हिल रहे है, बाये हाथ मे एक नर-मुण्ड है, अगो मे रक्त की धारा, ललाट मे, विष से जलती ज्वालामयी आँखो मे बालचन्द्र चमक रहा है। भैरवी अपना दाहिना हाथ उठा कर कपालकुण्डला को बुला रही है।

कपालकुण्डला अब ऊर्ध्वमुखी होकर चली। और वह नई कादंबिनी जैसी मूर्ति आकाश मार्ग मे उसके आगे-आगे चली। कभी-कभी उसका स्वरूप बादलो मे छिप जाता था, कभी स्पष्ट हो जाता था। कपालकुण्डला उसे ही देखती हुई चली।

नवकुमार व कापालिक को वह सब कुछ भी न दिखा। सुरा के गरल की जलन से नवकुमार का हृदय फुँका जा रहा था। कपालकुण्डला की मन्द पडती चाल से ऊब कर नवकुमार ने अपने साथी से कहा, 'कापालिक

'क्या ?'

'पानीय् देहि मे।'

कापालिक ने नवकुमार को फिर मदिरा पिलाई।

नवकुमार ने पूछा, 'अब देरी क्या है ?'

कापालिक का उत्तर था, 'अब देरी क्या है ?'

तब नवकुमार ने अत्यन्त तीव्र ध्वनि मे पुकारा, 'कपालकुण्डले !'

कपालकुण्डला सुन कर चौक उठी। इधर उसे कोई कपालकुण्डला कह कर नही पुकारता था। वह मुँह फेर कर खड़ी हो गई। तब नवकुमार और कापालिक बढ़ कर उसके सामने आये। पहले तो जैसे कपालकुण्डला उन्हे पहचान ही न सकी। बोली, 'तुम लोग कौन हो ? क्या तुम्ही लोग यमदूत हो ?'

दूसरे ही क्षण जैसे पहचान गई और सम्हल कर बोली, 'नही, नही पिता, तुम क्या मुझे बलि देने के लिये आये हो ?'

आगे बढ कर दृढ़ मुट्ठी से नवकुमार ने कपालकुण्डला का हाथ पकड़ा। करुणा से भर कर आर्द्र और मधुर स्वर से कापालिक ने कहा, 'वत्से ! हमारे साथ आओ।' यह कह कर कापालिक रास्ता दिखाता हुआ श्मशान की ओर चला।

कपालकुण्डला ने आकाश की ओर आँखें उठाईं। उसने जहाँ गगन विहारिणी भयंकरी को देखा था, उसी तरह देखा कि वह रणरंगिणी खिल-खिल करके हँस रही है और हाथ मे एक दीर्घ त्रिशूल लेकर कापालिका द्वारा दिखाए गए रास्ते की ओर संकेत कर रही है। अदृष्ट से जैसे विमूढ़ हो गई हो, इस तरह बिना कुछ भी बोले कपाल-कुण्डला कापालिक के पीछे-पीछे चलती गई। नवकुमार पूर्ववत कसी मुट्ठी से उसका हाथ पकड़े चलता रहा।

८

प्रेत-भूमि में

'वपुषा करुणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत् ।
ननु तैलनिसेकबिन्दुना सह दोषार्च्चिरूपैति मेदिनीम् ॥'

—रघुवंश ।

चन्द्रमा भी अस्त हुआ । सारा विश्व ही अधकार से भर गया । जहाँ अपनी पूजा बनाई थी, वही कापालिक कपालकुण्डला को ले गया । वह स्थान गगा के किनारे एक वृहत् सैकत भूमि है । उसी के ठीक सामने एक और बडा दूसरा सिकतामय स्थान है । वही पर है श्मशान-भूमि । दोनो ही सैकतो मे ज्वार के समय थोडा-थोडा पानी रहता है, भाटा के समय वह भी नही । इस समय भी पानी वहाँ न था । श्मशान भूमि का वह भाग जो गगा की ओर है, बहुत ऊँचा है । कोई पानी मे उतरना चाहे तो एक बार ही में ऊँचे से अगाध जल मे गिरना पडता है । फिर इस पर लगातार चलती हवा से उठी तरगो के थपेडो से रेती का तट भाग कट गया है । कभी-कभी कगार से मिट्टी के खण्ड के खण्ड टूट कर गहरे पानी मे छपाक-छपाक गिरते थे । पूजा-स्यल पर लकडी का एक कुन्दा जल रहा था । उसकी अत्यन्त मद्धिम रोशनी मे श्मशान भूमि और भी भीषण और डरावनी दीख रही थी । पूजा, होम, बलि आदि का समस्त आयोजन था । तरगित नदी का विशाल हृदय अधेरे मे विस्तार के साथ फैला हुआ था । चैत की हवा अत्यधिक वेग से गगा के हृदय पर बह रही थी । इस प्रकार तरगो के थपेडो के वेग से उठा कल-कल शब्द आकाश में भी व्याप्त हो रहा था । श्मशान-भूमि मे निडर होकर घूमने वाले मुर्दा भक्षक जानवर बीच-बीच मे कर्कश स्वर मे चीख उठते थे ।

कपालकुण्डला और नवकुमार को यथास्थान कुशासन पर बैठा कर कापालिक तान्त्रिक विधान के अनुसार पूजा के समारम्भ का आयोजन करने लगा । बीच मे अचा-नक उसने नवकुमार को आदेश दिया, 'जाओ, कपालकुण्डला को नहला लाओ ।'

नवकुमार कपालकुण्डला का हाथ पकड कर उसे नहला लाने के लिए श्मशान भूमि के ऊपर से ले चला । वही फैले हड्डी के टुकडे उसके पावो मे गड़ने लगे । नवकुमार के पाँव झटकने से श्मशान का एक जल भरा कलश लुढक कर टूट गया । उसके पास ही एक लाश पडी थी । अभागे की किसी ने क्रिया भी नही की थी । उसी लाश से दोनो के, नवकुमार व कपालकुण्डला के पाँव छू गए । कपालकुण्डला उससे घूम कर गई और नवकुमार उसे पैरो मे दलमस कर गए । लाश खानेवाले जानवर चारो ओर घेरा बना कर घूम रहे थे । दो मनुष्यो को आया जान वे कर्कश स्वर मे चीखने लगे । कोई

काटने लपका, कोई पाँव झटक कर भागा। कपालकुण्डला ने अनुभव किया कि नवकुमार का हाथ काँप रहा है। लेकिन कपालकुण्डला खुद निर्भीख व बेधडक रही।

कपालकुण्डला ने पूछा, 'स्वामी, डर लग रहा है क्या ?'

नवकुमार पर छाया मदिरा का प्रभाव क्रमश: कम होता जा रहा था। बहुत गभीर स्वर मे नवकुमार ने उत्तर दिया, 'डर से, नही मृण्मयी ! डर से नही, ऐसा नही।'

'तो काँप क्यो रहे हो ?'

कपालकुण्डला ने यह प्रश्न जिस स्वर से किया था वह केवल स्त्री-कण्ठ से ही सम्भव था। जब कभी स्त्री दूसरे के दुख से पिघल जाती है तभी यह स्वर स्त्री-कण्ठ के लिए सम्भव होता है। कौन जानता था कि इस चरम-मुहूर्त मे श्मशान-भूमि मे आ कर कपालकुण्डला के कण्ठ से यह स्वर निकलेगा ?

नवकुमार ने कहा, 'नही, भय से नही, मृण्मयी ! रो नही पा रहा हूँ, इसी क्रोध से काँप रहा हूँ।'

'रोओगे क्यो भला ?

फिर वही नारी-सुलभ पिघला कण्ठ-स्वर।

नवकुमार बोला, 'रोऊँगा क्यो ? यह भला तुम कैसे समझ सकोगी, मृण्मयी ? तुम तो कभी रूप देख कर पागल नही हुई।' कहते-कहते नवकुमार का गला भी दर्द से, करुणा से भर आने लगा। बोला, 'तुम तो कभी अपना हृतपिण्ड अपने से काट कर श्मशान मे फेकने नही आई !' कहते-कहते एकाएक नवकुमार फूट-फूट कर रो पडा और दूसरे ही क्षण बिलखता हुआ कपालकुण्डला के पैरो पर पछाड़ खा कर गिर गया। बोला, 'मृण्मयी ! कपालकुण्डले ! मेरी रक्षा करो, मुझे बचा लो। मै तुम्हारे पैरो पड़ रहा हूँ। बस, एक बार कह दो कि तुम विश्वासघातिनी नही हो। बस, एक बार कह दो। मैं तुम्हे हृदय पर बैठा कर घर ले जाऊँगा।'

कपालकुण्डला ने शात भाव से हाथ पकड़ कर नवकुमार को उठाया, फिर मृदु स्वर मे कहा, 'तुमने तो कभी पूछा ही नही !'

जब यह बातें हुई तब वे दोनो पानी के किनारे आ कर खड़े हुए थे। कपाल-कुण्डला नदी की ओर पीठ किए आगे थी, उसके पीछे बस एक कदम बाद ही पानी था। अब ज्वार शुरू हो गया था। कपालकुण्डला एक टीले पर खड़ी थी। तभी उसने फिर कहा, 'तुमने तो कभी पूछा ही नही।'

नवकुमार ने उत्तेजना मे आ पागल की तरह कहा, 'होश खो चुका हूँ। क्यो पूछूँ ? कहो तो ? मृण्मयी कहो-कहो-कहो-मेरी रक्षा करो। मुझे बचालो बस, घर वापस चलो।'

कपालकुण्डला अत्यन्त सहज भाव से बोली, 'जो कुछ चाहो पूछो, कहूँगी ! आज

जिसे देखा है, वह पद्मावती है। मे विश्वासघातिनी कदापि नही हूँ। भवानी के चरणो मे अपना शरीर अर्पित करने आई हूँ। मेरी यह साध पूरी होने दो। स्वामी ! तुम घर लौट जाओ। मै अब मरूँगी। मेरे लिए रोओ मत।'

'नही, मृण्मयी ! नही ·· ··' इस प्रकार उच्च-स्वर मे कहते हुए नवकुमार ने कपालकुण्डला को हृदय से लगाने के लिए अपनी बाँहे फैला दी, लेकिन वह कपालकुण्डला को पा न सका। चैत्र की तेज हवा का एक झोका आ कर वही नीचे टकराया, जहाँ कपालकुण्डला खडी थी। साथ ही वह भूखण्ड कपालकुण्डला को साथ लिए प्रचण्ड हाहाकार के साथ टूट कर नदी-प्रवाह मे विलीन हो गया।

नवकुमार ने तट के कट कर टूटने की आवाज सुनी। कपालकुण्डला देखते ही देखते गायब हो गई। नवकुमार भी उसी के पीछे पानी मे कूदा। कुछ देर तक तैरते हुए कपालकुण्डला को खोजता रहा। लेकिन कपालकुण्डला फिर नही मिली। नवकुमार भी फिर किनारे पर नही चढा।

उस अनन्त गगाप्रवाह के मध्य, वसन्तवायुविक्षिप्त वीचिमाला मे आन्दोलित होते-होते कपालकुण्डला और नवकुमार कहाँ चले गये ?

• • •

जिसे ते
मे

हमें तो अपनों ने लूटा
गैरों में कहाँ दम था
मेरी किश्ती थी डूबी वहाँ
जहाँ पानी कम था।

कम पानी में कश्ती डूबी
ये क्या कम था
जमाने सँवारने का
मौका तो तेरे पास था
खैर जाना, तुझे तो तेरे
अपनों ने ही लूटा था
लूटने के लिए आबाद होना जरूरी है
अच्छे! क्या कभी भिखारी भी लुटा था।

मृणालिनी

□

[रचनाकाल सन् १८६९]

□

'मृणालिनी' से ही बंकिमचन्द्र की स्वदेशिकता सर्वप्रथम सूचित हुई। बख्तियार खिलजी मात्र सोलह सवारों को साथ लेकर बंग-विजय करने में सफल हुआ, यह इतिहास-उल्लिखित तथ्य, बंकिमचन्द्र का मन कभी मानने को तैयार न हो सका। उन्हें बंगाली जाति के शौर्य के प्रति गहरी आस्था थी। उक्त जातीय कलंक पर विश्वास न कर बंकिमचन्द्र ने 'मृणालिनी' की रचना करके इस दिशा में हस्तक्षेप किया।

'मृणालिनी' का प्रथम प्रकाशन सन् १८६९ में हुआ।

इसके लेखन में बंकिमचन्द्र को दस महीने लगे। पुस्तक की रचना पूरी करके, इसे मुद्रण में देकर बंकिमचन्द्र काशी चले गये। काशी से लौट कर जब वे आए तब तक मुद्रण कार्य समाप्त न हुआ था। जब बंकिमचन्द्र बरहमपुर गए तब 'मृणालिनी' प्रकाशित हुई। इस उपन्यास को बंकिमचन्द्र ने अभिन्न बन्धु दीनबन्धु मित्र को समर्पित किया था।

'मृणालिनी' के पूर्व प्रकाशित दोनों उपन्यासों की भांति इसके प्रकाशन के पश्चात भी बंगाल के समसामयिक शिक्षित समाज ने बंकिमचन्द्र का अभिनन्दन किया। प्रसिद्ध समालोचक, सुपण्डित राजेन्द्रलाल मित्र ने 'रहस्य-संदर्भ' में पुस्तक की विस्तृत समालोचना करते हुए प्रशंसा में लिखा

'....आज तक 'मृणालिनी' जैसी रोचक कृति नहीं छपी, यह मैं स्वीकार करता हूँ। ऐसी रम्य रचना के लिए ग्रंथकार विशेष प्रशंसा के अधिकारी हैं। साधारण रूप में यह एक संस्कार बन गया है कि अंग्रेजी के अनुराग से प्रेरित नव्य समुदाय स्वदेश-भाषा की रचनाओं की उपेक्षा करता है, इसलिए देश-भाषा की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। लेकिन श्रीमान बंकिमबाबू की रचना इस कुसंस्कार का एकबारगी ही उन्मूलन करने में समर्थ हुई है। बंकिमबाबू बाल्यकाल से अंग्रेजी भाषा के अनुरागी होते हुए भी, बंग-भाषा में ऐसी सशक्त रचना कर सके, यह बंग-भाषा के उन्नतिशील भविष्य का परिचायक है। बंकिमबाबू की गल्प-रचना की क्षमता पर जितना आश्चर्य होता है उससे अधिक गौरव का अनुभव होता है। '

'मृणालिनी' के प्रथम दो बंगला संस्करणों में 'ऐतिहासिक उपन्यास' के रूप में इसका उल्लेख किया गया है। लेकिन बाद में बंकिमचन्द्र की इच्छानुसार यह उल्लेख

निकाल दिया गया। क्योकि बकिमबाबू के मतानुसार बख्तियार खिलजी द्वारा बंग-विजय की कथा असत्य है, उसे ऐतिहासिक तथ्य वे नही मानते थे।

मृणालिनी उत्कृष्ट काव्यमय कथाकृति है। गिरिजाया और मृणालिनी के मुँह से पदावली संगीत ने भी अमरता पायी है।

'मृणालिनी' की कथा में बंगाल का लोकजीवन और लोकसगीत एक बार फिर से जी उठा है।

'मृणालिनी' का हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं मे भी अनुवाद हो चुका है, और नेशनल थियेटर ने इसका नाटक-रूप भी प्रस्तुत किया है।

●

पहला भाग

|१|

आचार्य

एक दिन तीर्थराज प्रयाग मे, गंगा-यमुना के सगम पर, सध्या समय, वर्षा ऋतु की अपूर्व शोभा प्रकट हो रही थी। वर्षा ऋतु है लेकिन मेघ नही। जो मेघ है भी, वे सुनहरे रग की तरगों की तरह पश्चिम मे ही सिमटे हुए है। सूरज डूब चुका है। बरसाती पानी की बाढ से गंगा-यमुना दोनो ही नदियाँ पूर्ण-शरीरा हो रही है। यौवन की परिपूर्णता से उन्मादिनी, दोनो सरिता बहनें खेल-खेल मे ही एक दूसरे का आलिगन कर रही है। चचल आँचल की तरह तरंगे हवा के धक्के से किनारे से टकरा रही है।

एक छोटी नाव पर दो जन हैं। बहुत ही साहस से नौका बढ़ी हुई यमुना की तरगो पर उछलती हुई प्रयाग के घाट पर आ लगी। एक आदमी नाव पर ही रहा और दूसरा नीचे उतरा। जो नीचे उतरा वह बलिष्ठ देह वाला, नई उम्र का, योद्धा जैसा लगता है। उसके माथे पर साफा, शरीर पर कवच, हाथ मे धनुष-बाण, पीठ पर तूणीर और पैरो मे जूते हैं। वीरो जैसा दिखने वाला वह पुरुष अत्यन्त सुन्दर दिखता है। घाट के ऊपर संसार के माया-मोह से विरक्त पुण्य-वासियो के लिए बहुत सी झोपड़ियाँ है। इन्ही मे से एक कुटी मे वह युवक घुस गया।

उस कुटी के भीतर कुशासन पर बैठे एक ब्राह्मण जप कर रहे है। ब्राह्मण बहुत ऊँचे कद का दीर्घाकार पुरुष है, शरीर सूखा है और चौड़े चेहरे पर सफेद बाल विराजित है। प्रशस्त ललाट, खुले बाल तथा गरदन मे हल्की विभूति का लेप खूब शोभा दे रहे है। ब्राह्मण की मुद्रा गंभीर है और उनके कटाक्ष कठिन है। देखने मे वे निर्दयी अथवा दयाविहीन तो नही लगते, फिर भी शका होती है। आगन्तुक को देखते ही उनके चेहरे का कठोर भाव गायब हो गया, चेहरे की गंभीरता की जगह प्रसन्नता दिखाई पड़ी।

ब्राह्मण को प्रणाम कर आगन्तुक युवक सामने ही खडा हो गया । ब्राह्मण ने आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बेटा हेमचन्द्र, मै कई दिनो से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।'

हेमचन्द्र ने विनीत भाव से कहा, 'क्षमा कीजिए, दिल्ली मे तो काम सिद्ध नही हुआ । बल्कि यवनो ने मेरा पीछा किया, इसीलिए बहुत सावधानी से आना पडा । इसीलिए देरी हुई ।'

ब्राह्मण बोले, 'दिल्ली का हाल तो मैने सुन लिया है । बख्तियार खिलजी को हाथी कुचल ही देता, तभी अच्छा होता । देवता का शत्रु पशु द्वारा ही मारा जाता । तुम क्यो उसके प्राण बचाने गये ?'

'ताकि युद्ध मे उसे अपने हाथो मार सकूँ । वह मेरे पिता का घोर शत्रु है, मेरे पिता का राजचोर है । वह मेरा ही वध्य है ।'

'तब जिस हाथी ने क्रोधित हो उस पर चोट किया, उस समय बख्तियार को न मार कर तुमने उस हाथी को क्यो मारा था ?'

'तो क्या मै चोर की तरह बिना युद्ध किए ही शत्रु को मारता ? मै मगधविजेता को जीत कर पिता के राज्य का उद्धार करूँगा । अन्यथा मेरा 'मगधराज-पुत्र' कहाना कलंक है ।'

कुछ चिढ कर ब्राह्मण ने कहा, 'ये सब बाते बहुत पुरानी हो गईं । इससे बहुत पहले तुम्हारे यहाँ आने की सम्भावना थी । तुमने इतनी देर क्यो की ? क्या तुम मथुरा गये थे ?'

हेमचन्द्र ने उत्तर मे सिर झुका लिया ।

तब ब्राह्मण ने कहा, 'समझ गया, तुम मथुरा गये थे । मेरे मना करने की तुमने अवज्ञा की । खैर, जिसे देखने मथुरा गये थे, क्या उससे भेंट हुई ?'

अब हेमचन्द्र का भाव थोडा रूखा हो गया, 'भेंट जो नही हुई, सो आप की ही दया से । मृणालिनी को आप ने कहाँ भेज दिया है ?'

'तुम यह निश्चित रूप से कैसे कह सकते हो कि उसे मैंने ही कही भेजा है ?'

'माधवाचार्य के सिवा यह और कौन सोच सकता है ? मुझे मृणालिनी की दासी से पता लगा कि मेरी अंगूठी देख कर मृणालिनी कही गई, फिर उसका पता न लगा । आपने तो मेरी अंगूठी रास्ते के लिए माँगी थी । मै अगूठी की जगह दूसरा कोई रत्न देना चाहता था लेकिन आप ने नही लिया । तभी मुझे शक हुआ था । मेरे पास मेरी ऐसी कोई चीज नही जो मै आप को न दे सकूँ । इसीलिए बिना कुछ कहे मैंने अंगूठी दे दी थी । लेकिन मेरे इस विश्वास का आपने अच्छा फल दिया !'

'अगर ऐसा ही है तो तुम मुझ पर नाराज मत हो । देवता का काम यदि तुम न साधोगे तो फिर और कौन साधेगा ? अगर तुम ही यवन को नही भगाओगे तो और कौन भगाएगा ? इस समय तो यवन-विनाश की ओर ही तुम्हारा ध्यान होना चाहिए ।

ऐसी परिस्थिति मे मृणालिनी तुम्हारे दिमाग पर क्यो छाये ? एक बार तुम मृणालिनी की आशा मे मथुरा गये थे, तब तुम्हारे पिता का राज्य चला गया, यवनो के आगमन के समय यदि तुम मथुरा मे न हो कर मगध मे होते तो मगध कैसे जीता जाता ? अब भी क्या उसी मृणालिनी के मोहपाश मे बँध कर चुपचाप बैठे रहोगे ? मेरे जीते जी ऐसा अनर्थ नही हो सकता। यहाँ रहने से तुम मृणालिनी को नही पा सकते। ऐसे ही स्थान मे मैने उसे रखा है।'

'अपने देवता के काम को आप ही पूरा करें। मुझसे न होगा।'

'यह तुम्हारी कुबुद्धि है। क्या यही तुम्हारी देवभक्ति है ? लेकिन जब तुम ऐसा कहते हो तो ठीक है, अपने काम के साधन के लिए देवता तुम जैसे आदमी से कुछ भी आशा नही करते। लेकिन यदि तुम का पुरुष नही हो तो शत्रु के शासन से कैसे अवसर पा सकते हो ? क्या यही तुम्हारी वीरता है, यही तुम्हारा धर्म है ? क्या यही तुम्हारी शिक्षा है ? एक राजवश मे जन्म ले कर तुम कैसे अपने को राज्योद्धार से विमुख रखना चाहते हो ?

'लेकिन अब तो धर्म, राज्य, शिक्षा सब पानी में डूब गया।'

'नराधम ! तुम्हारी माता ने तुम्हे दस महीने दस दिनो तक गर्भ मे धारण करके क्यो यन्त्रणा भोगी ? क्यो मैने ही पूरे बारह वर्षों तक देव-सेवा छोड कर तुम जैसे पाखण्डी को सारी विद्या सिखाई ?'

क्रोध मे इतना कह कर माधवाचार्य बड़ी देर तक हथेली पर सिर टेके चुपचाप बैठे रहे। क्रमश. हेमचन्द्र के चेहरे का रग दोपहर के सूर्य की तरह लाल होता जा रहा था। लेकिन ज्वालामुखी के शिखर की तरह वह स्थिर खड़ा रहा। फिर माधवाचार्य ने कहा, 'हेमचन्द्र ! तुम धैर्य रखो। मैं बताऊँगा कि मृणालिनी कहाँ है—मृणालिनी तुम्हारा ब्याह भी करा दूँगा। लेकिन इस समय तुम्हे मेरे कहेनुसार चलना पड़ेगा।'

'यदि आप यह नही बताते कि मृणालिनी कहाँ है तो मै यवनो के विरुद्ध अस्त्र ही नही छुऊँगा।'

'और अगर मृणालिनी मर गई हो तो ?'

सुन कर हेमचन्द्र की आँखो से अंगारे बरसने लगे। उसने कहा, 'तब यह काम भी आप का ही होगा।'

'मैं मानता हूँ कि मैंने देवकार्य के लिए वह बाधा दूर की है।'

हेमचन्द्र के चेहरे पर बरसने के लिए तत्पर मेघ जैसा भाव आया। काँपते हाथो से धनुष पर बाण चढ़ा कर बोला, 'जिसने मृणालिनी का बध किया है उसका बध भी मेरे हाथो होगा। मैं गुरु-हत्या और ब्रह्म-हत्या, दोनो पापो को अपनाऊँगा।'

'ब्रह्म-हत्या और गुरु-हत्या तथा नारी-हत्या मे अन्तर है। खैर तुम्हे अभी ब्रह्म-हत्या व गुरु-हत्या का भागी बनना न होगा। क्योकि मृणालिनी अभी जीवित है। हो सके तो

उसे खोज कर उससे मिलो। लेकिन इस समय तुम मेरे आश्रम से कही चले जाओ। अपनी उपस्थिति से मेरा आश्रम कलुषित मत करो। अपात्र पर मै अभी भार नही देना चाहता।' कह कर माधवाचार्य फिर पहले की तरह जप करने लगे।

हेमचन्द्र आश्रम से बाहर आये। घाट पर आ कर अपनी छोटी सी नाव पर सवार हो गये। नाव पर पहले से बैठे दूसरे आदमी से कहा, 'दिग्विजय, नाव खोल दो।'

दिग्विजय ने पूछा, 'कहाँ चलूँ ?'

हेमचन्द्र ने कहा, 'जहाँ मन हो चलो। न हो नरक मे चलो।'

दिग्विजय अपने स्वामी के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। उसने अस्फुट स्वर मे कहा, 'वहाँ जाना तो बहुत आसान है। वह स्थान बहुत निकट है।' कह कर उसने नाव छोड दी। नाव भी धारा के साथ बहने लगी।

हेमचन्द्र कुछ देर चुप रहा फिर बोला, 'बहुत दूर हो तो लौट चलो।'

दिग्विजय ने नाव लौटा ली और थोडी देर बाद नाव फिर प्रयाग के घाट पर आ लगी। कूद कर हेमचन्द्र किनारे पर आए और फिर माधवाचार्य के आश्रम की ओर चले।

उसे फिर वापस आया देख माधवाचार्य ने पूछा, 'फिर क्यो आये हो ?'

'आप जो कहेगे, मै वही मानूँगा। अब तो बता दीजिए, मृणालिनी कहाँ है ?'

'तुम सत्यवादी हो। तुमने मेरी बात मानना स्वीकार किया है, इसी से मै पूर्ण संतुष्ट हो गया। गौड नगर मे अपने एक शिष्य के घर मे मैने मृणालिनी को रखा है। तुम्हे भी उसी ओर जाना पडेगा लेकिन तुम उससे मिल न सकोगे। अपने शिष्य को मैने कठोर आज्ञा दे रखी है कि जब तक मृणालिनी उसके घर मे रहेगी, तब तक वह किसी पुरुष से मिलने न पाएगी।'

'भेंट न हो, न सही। आप ने जो कहा, मै उससे ही सन्तुष्ट हूँ। अब आप आज्ञा दीजिए। मुझे क्या काम करना है ?'

'तुम दिल्ली जा कर मुसलमानो का कुछ इरादा जान सके हो ?'

'यवन बगाल जीतने का प्रयत्न कर रहे है। बहुत जल्दी ही बख्तियार खिलजी सेना ले कर गौड की ओर आएगा।'

सुन कर माधवाचार्य का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। बोले, 'अब इतने दिनो बाद शायद विधाता इस देश के प्रति दयालु हुए है।'

हेमचन्द्र गौर से माधवाचार्य की ओर ताक कर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। माधवाचार्य बोले, 'कई महीनो से मै लगातार गणना मे लगा हुआ हूँ। गणना मे जो भविष्य निकला है, उसी के फलदायी होने की अब तैयारी है।'

'सो कैसे ?'

'गणना से मैंने देखा है कि यवन राज्य का विनाश बंगाल से प्रारंभ होगा।'

'यह हो सकता है, पर यह कितने दिनो मे और किसके हाथो हो सकेगा ?'

'यह भी मै गणना से जान गया हूँ । जब पश्चिम देश के वणिक् आकर बंगाल मे हथियार उठाऐंगे तब यवन राज का समूल विनाश होगा ।'

'तो फिर मेरे जयलाभ की सभाबना कहाँ है ? मै तो वणिक् नही हूँ ।'

'तुम्ही वणिक हो ! मथुरा मे जब तुम मृणालिनी के लोभ मे बहुत दिनो तक ठहरे रहे तब वहाँ तुम क्या रूप धर कर रहते थे ?'

'हाँ, उस समय मै मथुरा मे एक वणिक ही समझा जाता था ।'

'तब तुम पश्चिम देशीय वणिक हुए या नही ? अब गौड राज्य मे जा कर तुम्हारे हथियार उठाने से ही यवनो का विनाश होगा । मेरे सामने तुम प्रतिज्ञा करो कि कल सबेरे ही तुम गौड के लिए प्रस्थान करोगे । जब तक वहाँ तुम यवनो से युद्ध न कर लो तब तक तुम मृणालिनी से भेट न करोगे ।'

'आज्ञा शिरोधार्य है । लेकिन मै अकेला युद्ध कैसे करूँगा ?'

'गौड़ेश्वर के पास काफी सेना है ।'

'हो सकती है, यद्यपि इस विषय मे भी काफी सदेह है, फिर भी वे सब मेरे अधीन क्यो होगे ?'

'नही, तुम पहले वहाँ जाओ । फिर मुझसे वही भेट होगी । वहाँ पहुँच कर ही इसका समुचित प्रयत्न किया जायगा । गौड़ेश्वर से मेरा अच्छा परिचय है ।'

'ठीक है, जो आज्ञा,' कह कर हेमचन्द्र ने प्रणाम किया और विदा हुए । जब तक वह वीर मूर्ति पीछे से जाती दिखाई पडती रही, माधवाचार्य उसी ओर एकटक देखते रहे । और जब हेमचन्द्र अदृश्य हो गया माधवाचार्य ने अपने मन मे कहा, 'जाओ वत्स, कदम-कदम पर तुम्हे विजय प्राप्त हो । यदि ब्राह्मणकुल मे तुम जन्मते तो तुम्हारे पैरो मे कुशा भी न गड़ती । मृणालिनी ! उस आकर्षक चिड़िया को मैने तुम्हारे लिए ही पिंजड़े मे बन्द कर रखा है । कौन जाने, कही उसके कलरव से मुग्ध होकर तुम इस बडे काम के प्रति लापरवाह न हो जाओ, इसीलिए तुम्हारा परम शुभचिन्तक और मगला-कांक्षी यह ब्राह्मण तुम्हे थोड़े दिनो के लिए जानबूझ कर मानसिक कष्ट दे रहा है ।'

|२|

पिंजड़े की चिड़िया

लक्षणावती निवासी हृषिकेश दरिद्र ब्राह्मण न था, वह सम्पन्न था । उसके घर की बनावट सुन्दर और सुदृढ़ थी । अन्त:पुर मे दो तरुणी स्त्रियाँ मकान की दीवार

पर चित्र बना रही है। दोनो ही अपने कार्यों मे इतनी तन्मय है कि उनका मन किसी ओर नही जाता। हॉ, वे दोनो आपस मे बातें अवश्य करती जा रही है, लेकिन इससे उनके कार्यो मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नही होती।

एक तरुणी ने दूसरी से कहा, 'क्यो मृणालिनी, तुम मेरी बातो का उत्तर क्यो नही दे रही हो ? मुझे उस राज-पुत्र के संबंध मे सुनने मे अच्छा लगा रहा है।'

'सखी मणिमालिनी, तुम ही अपने सुख की बातें कहो, मै बडे आनन्द से सुनूँगी।'

'अपने सुख की बात कहते-कहते तो मै आप ही जल मरी हूँ। अब भला तुम्हे क्या सुनाऊँ ? अच्छा, छोडो यह सब ! बताओ कि यह कमल कैसा बना ?'

'अच्छा बना है, पर ठीक नही है। पानी से कमल बहुत दूर है, सरोवर मे ऐसा नही होता। कमल की डोडी पानी मे लगी रहती है, चित्र मे भी ऐसा ही दिखना चाहिए। बल्कि कमल के पत्ते और बनाओ, नही तो कमल की शोभा नही बढेगी। हो सके तो पास ही एक राजहंस भी बना दो।'

'राजहस का क्या काम है ?'

'तुम्हारे पति की तरह कमल के साथ बैठ कर बाते करेगा।

'दोनो ही सुकण्ठ है। किन्तु मै वहाँ राजहस नही बनाऊँगी। मै तो सुख की बातें सुनते-सुनते ही जल मरी हूँ।'

'अच्छा, तो एक खंजन बना दो।'

'खजन भी नही बनाऊँगी। खंजन तो कभी भी पंख फैला कर उड जाय गा। यह कोई मृणालिनी तो है नही, कि जिसे मै स्नेह के बंधन मे बॉध रखूँगी।'

'यदि खजन सचमुच इतना दुष्ट है तो उसे भी मृणालिनी की तरह पिंजड़े मे बंद कर दो।'

'हमने तो मृणालिनी को पिंजरे मे बद नही किया है। वह तो अपने आप ही आकर पिंजरे मे घुस गई है।'

'सो तो माधवाचार्य के कारण।'

'हाँ सखी, अच्छी याद दिलाई ! तुमने कई बार कहा है कि माधवाचार्य के उस निष्ठुर काम का हाल तुम बताओगी, कि तुम माधवाचार्य के कारण ही किस तरह घर छोड कर आई हो ?'

'नही, मै माधवाचार्य की बातो पर नही आई। माधवाचार्य को मै ठीक से पहचानती भी न थी। मै अपनी इच्छा से भी यहाँ नही आई। एक दिन शाम को मेरी दासी ने मुझे यह अँगूठी दी और कहा, 'जिन्होने अँगूठो दी है, वे बाग मे है।' मैने पहचान लिया, वह अंगूठी हेमचन्द्र की थी। उन्हे जब मिलने की इच्छा होती थी तब

वे यही अंगूठी भेज दिया करते थे। मेरे घर के पीछे ही बाग था। यमुना की ठण्डी हवा उस बाग मे हमेशा रहती थी। वही उनसे भेट होती थी।'

'इस बात को याद कर के मुझे बडा दुख होता है। तुम कुमारी हो कर भला कैसे एक पुरुष से छिप कर प्रणय करती थी?'

'दुख किस लिए सखी! वे तो मेरे पति है। सिवा उनके और कोई अन्य मेरा पति न होगा।'

'लेकिन अब तक तो वे पति नही बन सके! सखी बुरा मत मानना। तुम मेरी बहिन जैसी हो, इसीसे यह बात कह रही हूँ।'

मृणालिनी का सिर झुक गया। उसने अपनी आँखो के आँसू पोछे। बोली, 'बहन मणिमालिनी! इस विदेश मे मेरा अपना कोई नही है। ऐसा कोई नही जो मुझे कोई अच्छी बात सिखाये। कोई भरोसा नही कि जो लोग मुझसे स्नेह करते है, उनसे कभी फिर भेट होगी। मात्र तुम्ही मेरी सखी हो। यदि तुम भी मुझसे प्रेम न करो गी तो फिर कौन करेगा?'

'मै तुमसे प्रेम करती हूँ, और सदा करूँगी। लेकिन जब यह सब बाते याद आती है तो मन मे होता है कि ...'

मृणालिनी फिर रोने लगी। बोली, 'सखी, तुम्हारे मुँह से यह बात सुन कर मुझसे सही नही जाती। यदि तुम मेरे सामने कसम खाओ कि मै जो कुछ कहूँगी उसे तुम इस ससार मे किसी से नही कहोगी तो मै तुमसे सब बात खोल कर कह दूँगी। तब तुम मुझसे प्रेम करने लगोगी।'

'मैं कसम खाती हूँ।'

'तुम्हारी चोटी मे देवता का फूल है। उसे छू कर कसम खाओ?'

मणिमालिनी ने वैसा ही किया।

तब मृणालिनी सखी मणिमालिनी के कानो मे बहुत देर तक कुछ कहती रही। सुन कर मणिमालिनी का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा।

मणिमालिनी ने स्पष्ट-स्वर मे पूछा, 'इसके बाद माधवाचार्य के साथ तुम कैसे आई? जो बता रही हो वही बताओ।'

'मैं हेमचन्द्र की अगूठी देख कर उनसे मिलने की ललक ले कर बाग मे गई। वहाँ पहुँचने के बाद दासी ने कहा, 'वे राजपुत्र नाव पर है, नाव किनारे पर लगी है।' मैंने बहुत दिनो से हेमचन्द्र को देखा न था। मन बड़ा बेचैन था, इसी से विचार-शून्य हो गई। किनारे पर जा कर देखा कि सचमुच एक नाव लगी थी। उसके पास ही एक पुरुष खड़ा था। मैने समझा कि हेमचन्द्र खडे है। मैं नाव के पास गई। पास खडे व्यक्ति ने मेरा हाथ पकड कर मुझे नाव पर चढाया। ठीक उसी क्षण मल्लाहो ने नाव खोल दी। तब उस हाथ के स्पर्श से ही मै निश्चित समझ सकी कि वह व्यक्ति हेमचन्द्र नही है।'

'तो तुम चिल्लाई ?'

'नही, चिल्ला नही सकी। चिल्लाना चाहा पर गले से आवाज ही नही निकली।'

'मै होती तो पानी मे कूद पडती।'

'लेकिन हेमचन्द्र से बिना मिले मै क्यो मरती ?'

'फिर क्या हुआ ?'

पहले ही उस व्यक्ति ने मुझे माँ कहा। बोला, 'मै तुम्हे माँ कहता हूँ—मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मुझ पर किसी प्रकार का शक मत करना। मेरी ही नाम माधवाचार्य है। मै हेमचन्द्र का गुरू हूँ। भारत के अनेक राजाओ के साथ मेरा यही सम्बन्ध है। मै इस समय किसी देवकार्य मे सलग्न हूँ। उसमे हेमचन्द्र मेरा प्रधान सहायक है और तुम प्रधान बाधा ही।' मैने कहा, 'मै बाधा हूँ ?' माधवाचार्य ने कहा, 'हाँ। तुम ही बाधा हो, एकमात्र विघ्न! यवनो को पराजित करके फिर से हिन्दू राज्य की स्थापना कोई आसान काम नहीं है। सिवा हेमचन्द्र के यह और किसी के लिए सम्भव भी नही है। यदि हेमचन्द्र का मन बँटा रहेगा तो उससे भी यह कार्य सिद्ध न होगा। जब तक वह तुमसे मिलता रहेगा, उसके मन पर तुम ही छायी रहोगी, फिर यवनो को कौन मारेगा ?' मैने कहा, 'समझ गई, यवनो को मारने से पहले मुझे ही मारना जरूरी है। क्या आपके शिष्य ने आपके द्वारा अपनी अँगूठी भेज कर मुझे मारने की व्यवस्था की है ?'

मणिमालिनी ने पूछा, 'तुम इतनी कठोर बातें उस बूढे से कैसे कर सकी ?'

'मै बडी क्रोधित हो गई थी। बूढे की बाते सुन कर मेरी हड्डी-हड्डी जल उठी थी। फिर विपत्ति के समय लज्जा कैसी ? माधवाचार्य ने मुझे बहुत बाचाल समझ कर मुस्करा कर कहा, 'हेमचन्द्र को मालूम नही कि मै तुम्हे इस तरह बुला लूँगा।' तभी मैने मन ही मन निश्चय किया कि जिसे मै अपना यह जीवन समर्पित कर चुकी हूँ, उसकी आज्ञा के बिना जीवन का त्याग नही करूँगी। माधवाचार्य कहने लगे, 'तुम्हे प्राण-त्याग नही करना है। मात्र कुछ, थोडे दिनो के लिए हेमचन्द्र का त्याग करना पड़ेगा। इसमे ही उनका परम कल्याण है। क्या तुम्हारा भी यह कर्तव्य नही कि वह राजराजेश्वर हो और तुम्हे राजमहिषी बना सके ? तुम्हारे प्रणय-ताप से वह कापुरुष हो गया है, उसका यही भाव दूर करना परम आवश्यक है।' तब मैने कहा, 'यदि मुझसे मिलना वे अनुचित समझेंगे तो मुझसे खुद ही कभी भेंट न करेंगे।' तब माधवाचार्य बोले, 'बच्चा यही सोचता है कि बालक और वृद्ध की, दोनो की विचारशक्ति एक जैसी है, लेकिन यह बात सत्य नही है। हेमचन्द्र की अपेक्षा हमारी विचार-शक्ति अधिक प्रौढ है। इसमे तुम्हे भी शक नही होना चाहिए। तुम राजी हो या न हो, पर मैने जो निश्चय किया है वही करूँगा। तुम्हे मै कही दूर देश ले जाऊँगा। गौड देश मे एक बहुत ही शात स्वभाव के भले ब्राह्मण के घर तुम्हे छोड आऊँगा। वह अपनी बेटी की तरह तुम्हे स्नेह से रखेंगे। फिर एक वर्ष के बाद मै तुम्हे तुम्हारे पिता के पास पहुँचा दूँगा और

तब हेमचन्द्र से तुम्हारा विवाह करा दूँगा। इस पर तुम विश्वास करना।' सारी बातें सुन कर एक लाचारी समझ मै चुप रह गई। फिर यहाँ आई हूँ।'

|३|

भिखारिणी

जब दोनो सखियाँ इसी प्रकार बातें कर रही थी, ठीक उसी समय किसी कोमल कण्ठ से निकली सगीत-ध्वनि उनके कानो मे पहुँची—

'मथुरावासिनि मधुरहासिनि
श्यामविलासिनि रे।'

मृणालिनी बोली, 'यह कौन कहाँ गा रही है?'

मणिमालिनी ने बताया, 'बाहर गा रही है।'

तभी गाने वाली की सगीत लहरी गूँज उठी—

'कहँ लो नागरी गेह परिहरि
काहे विलासिनी रे।'

मृणालिनी ने पूछा, 'सखी, यह कौन गा रही है? क्या तुम जानती हो?'

मणि बोली, 'कोई भिखारिणी होगी।'

फिर गीत सुन पड़ा—

'वृन्दावन घन गोपिनी मोहन
काहे तू त्यागी रे!
देश-देश पर सो श्याम सुन्दर
फिरे तू या लागी रे।'

मृणालिनी एकाएक आवेश मे बोली, 'सखी, सखी! उसे भीतर बुलाओ न।'

मणि गाने वाली को बुलाने गई। तब तक वह फिर गाने लगी—

'विकच नलिने यमुना कुलिने
बहुत पियारी रे।
चन्द्रमाशालिनी या मधुमालिनी
ना मिटिलो आशा रे
सा निशा समरि······'

ठीक तभी मणि उसे साथ ले कर भीतर आई। वह भीतर आ कर पहले की तरह ही गाने लगी—

'सा निशा समरि कहो लो सुन्दरि,
कहाँ मिले देखा रे।
सुनियाउ ये चलि, बाजथि मुरली,
बने बने एका रे।'

मृणालिनी ने गाने वाली से कहा, 'तुम्हारा गला बहुत अच्छा है। जरा फिर तो गाओ।'

गाने वाली की उम्र होगी, यही सोलह साल। षोडसी, कृष्णागी। बल्कि उसे काली ही कहें। अगर उसके शरीर पर भौरा बैठे तो दिखाई न पड़े। या उसके किसी अग पर रोशनाई लगाई जाय तो लगेगा कि पानी लगा है। अपने घर के कृष्ण-वर्ण प्राणी को लोग श्यामवर्ण कहेगे, पराये घरवाले को काला या कृष्णवर्ण। फिर वर्ण चेहरा जैसा भी हो पर भिखारिनी स्वरूपा है, कुरूपा नही। उसके अग साफ, सुडौल, सुमार्जित और चमकदार है। 'चेहरा प्रसन्न, बडी-बडी चचल आँखें, हास्यमयी हैं। आँख के तारे खूब काले, पास ही एक तिल। छोटे-छोटे लाल ओठ, बहुत ही सफेद दाँत की पाँतें। सिर के बालो को लपेट कर उस पर जूही की माला बँधी है। यौवन-सचार के समय शरीर का गठन सुन्दर हो गया था, जैसे किसी शिल्पी ने काले-चिकने पत्थर की मूर्ति गढी हो। कपडे अति-साधारण पर साफ-सुथरे। उन पर धूल या कीचड का निशान नही। अग भी बिल्कुल आभूषणहीन नही, भिखारिणी के योग्य ही गहने थे। हाथ मे पीतल का कडा, गले मे लकडी की माला, नाक पर एक महीन तिलक की रेखा, भौंहो के बीच एक छोटी सी चदन की बिंदी। वह अनजान की तरह, पहले की तरह ही गाने लगी—

'मथुरावासिनि मधुरहासिनि,
श्याम विलासिनी रे।
कहे लो नागरि, गेह परिहरि,
काहे विलासिनी रे।
वृन्दावनघन, गोपिनी मोहन,
काहे तू त्यागी रे।
देश-देश पर, सो श्यामसुन्दर,
फिरे तू या लागी रे।
विकच नलिने, यमुना कुलिने,
बहुत पियारी रे।

चन्द्रमाशाल्निनी, या मधुमालिनी,
ना मिटिलो आशा रे ।
सा निशा समरि, कहो लो सुन्दरि,
का हाँ मिले देखा रे ।
सुनियाउ ये चलि, बाजथि मुरली,
बने बने एका रे ।'

गीत समाप्त हो गया। तब मृणालिनी बोली, 'तुम बहुत अच्छा गाती हो। सखी, मणि, इसे कुछ देना चाहिए। कुछ दो न।'

मणि उसके लिए कुछ लाने भीतर चली गई। इस अवसर का लाभ उठाकर मृणालिनी ने गाने वाली को पास बुला कर पूछा, 'सुनो, तुम्हारा नाम क्या है ?'

उसने कहा, 'मेरा नाम है गिरिजाया।'

'कहाँ रहती हो ?'

'इसी नगर मे।'

'क्या तुम गीत गा कर ही दिन बिताती हो ?'

'इनके अलावा और कुछ नही जानती।'

'यह सब गीत कहाँ सीखती हो ?'

'जहाँ जो सुन लिया, सीख लिया।'

'यह गाना तुमने कहाँ सीखा ?'

'एक बनिये ने सिखाया है।'

'बनिया ! कहाँ रहता है ?

'यही, इसी नगर मे।'

सुन कर प्रसन्नता से मृणालिनी का चेहरा चमक उठा। जैसे सबेरे की सूर्य-किरणो मे कमल खिले। उसने कहा, 'वह बनिया क्या करता है ?'

'जो सब का व्यवसाय है, वही उसका भी धंधा है।'

'कैसा धंधा ?'

'बातो का।'

'यह तो नया धधा है। इसमे नफा-नुकसान कैसा ?'

'इसमे लाभ है प्रेम और नुकसान है रोना।'

'तू भी व्यवसायी है ! इसका महाजन कौन है ?'

'जो महाजन है।'

'तुम इसमे क्या हो ?'

'नगद मुट्ठी।'

'अच्छा, अपना बोझ उतारो तो, देखूँ क्या-क्या चीजे है ?'

'मेरा सामान देखने का नही, सुनने का है।'

'अच्छा, तो सुनाओ।'

गिरिजाया फिर गाने लगी—

'यमुनार जले मोरकि निधि मिलिलो,
झाँप दिया पशिजले, यतने तुलिया गले,
परे छिन्न कुतूहले जे रतन •••••••
निद्रार आवेरो भोर, गृहेते पशिले चोर,
कठठेर काटिलो मोर, मणि हरे निलो।'

मृणालिनी ने डबडबाई आँखो और गद्गद् कण्ठ से फिर भी हँस कर 'यह किस चोर की बात है ?'

'बनिया कहता है कि चोरी का धन लेना ही उसका धंधा है।'

'उससे कहना कि चोरी के धधे से साधुओ की जान नही बचती।'

'शायद व्यापारी की भी नही।'

'क्यो, व्यापारी की क्या ?'

गिरिजाया ने गाया—

'घाट बाट तट माठ फिरि फिरिन्न बहु देश।
कहाँ मेरे कान्तवरण, कहाँ राजवेश॥
हिया पर रोचन्द्र पंकज, कैतु यतन आदि।
एपि पकज कहाँ भोर, कहाँ मृणाल हामारि॥'

सुन कर मृणालिनी ने कोमल स्वर मे बडे स्नेह से कहा, 'मृणाल कहाँ है, पता मै बताती हूँ। तुम याद रख सकोगी ?'

'हाँ, कहाँ है ? बताओ।'

मृणालिनी ने कहा, गा कर—

'कण्टके गढिलो विधि, मृणाल अन्धमे।
जल तारे डुबाइलो पडिया मरमे॥
राजहस देखि एक नयनरजन।
चरण बेड़िया तारे करिलो बंधन॥
बोले हसराज कोथा करिबे गमन।
हृदय कमले दिबो तोमार आसन॥
आसिया बसिलो हँस हृदय कमले।
कापिलो कण्टक सह मृणालिनी जले॥
हेनो काले कालोमेघ उठिलो आकाशे।
उडिलो मरालराज, मानस-विलासे॥

भाँगिलो हृदयपद्म तार बेग भरे।
डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे॥ ...

क्यो गिरिजाया गीत सीख सकोगी ?'

'हाँ, पर क्या आँखो के आँसू भी सीखूँ ?'

'नही, इस व्यवसाय मे मेरा वही लाभ है।'

मृणालिनी गिरिजाया को इस गीत का अभ्यास कराने लगी, इसी समय मणि के पैरो की आहट मिली। मणि उसकी स्नेहशालिनी सखी थी। फिर भी उसे ऐसा विश्वास न था कि मणि पितृ-प्रतिज्ञा के भग मे उसकी सहायता करेगी। अत. उसने इस बात को छिपाने की चेष्टा मे गिरिजाया से कहा, 'अब आज और कोई जरूरत नही है, बस बनिया से मुलाकात करना। अपना बोझ कल फिर ले आना। अगर मेरे लेने लायक कोई चीज होगी तो जरूर लूँगी।'

गिरिजाया चली गई। मृणालिनी ने उसे जो पुरस्कार देना चाहा था वह भूल ही गई।

गिरिजाया के थोड़ा आगे बढ जाने पर मणि ने कुछ चावल, दस केले, एक पुराना वस्त्र और कुछ कौडियाँ लाकर गिरिजाया को दी। मृणालिनी भी एक पुराना वस्त्र देना चाहती थी। देते समय उसके कान मे कहा, 'मुझमे इतना धैर्य नही है, कल तक आसरा न देख सकूँगी। तुम आज ही रात को एक पहर बीते आना और इस घर की उत्तरी दीवाल के पास ठहरना, वहाँ मुझसे भेंट होगी। अगर तुम्हारे बनिया भी साथ आवें तो लेती आना।'

'मैं समझ गई। मैं जरूर आऊँगी।' गिरिजाया ने कहा।

मृणालिनी के पास आ कर बैठने के बाद मणि ने कहा, 'सखी, उस भिखारिन के कानो मे क्या कह रही थी ?

उत्तर मे मृणलिनी गा उठी :—

'कि बोलिबो सखि—

सखि मनेर कथा सखि, मनेर कथा सखि—
काने-काने कि कथाटि बोले दिलि ओई।
सखी फिरे कोना सखी, सखी फिरे कोना सखी।
सखी कथा कोस कथा कबो, नहले करो नई।'

मणि ने हँस कर कहा, 'तुझे क्या हो गया है रे सखि ?'

मृणालिनी बोली, 'तुम्हारी सखी ही तो है!'

|४|

दूती

लक्ष्मणावती नगरी के एक भाग मे सर्वधन नामक वणिक के घर मे हेमचन्द्र रहते थे। वणिक के घर के द्वार पर अशोक का पेड था। दिन के तीसरे पहर उसी अशोक के पेड के नीचे बैठ कर हेमचन्द्र अशोक की शाखा को बिना किसी उद्देश्य ही टुकड़े, टुकडे कर रहे थे और बार-बार रास्ते की ओर देखते जाते थे। जैसे किसी की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रहे हो। शायद वे जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, वह तो नही आया। आया नौकर दिग्विजय। हेमचन्द्र ने दिग्विजय से कहा, 'दिग्विजय, भिखारिणी तो आज अभी तक नही आई। मेरा जी घबरा रहा है। तुम जरा उसकी खोज-खबर तो लो।'

'अब देखो!' कह कर तनिक कुढन के साथ दिग्विजय भिखारिणी गिरिजाया की खोज मे चला। शहर की एक बडी सडक पर गिरिजाया से उसकी भेंट हुई।

गिरिजाया ने ही पहले देख कर पुकारा, । 'कौन है ? दिग्विजय ?'

दिग्विजय ने चिढ कर कहा, 'हाँ कहो, मेरा नाम ही दिग्विजय है।'

'अच्छा, तो अब भला कौन सा दिक्जय करने निकले हो ?'

'तुम्हारा दिक्!'

'मै क्या एक दिक् हूँ ? तुम्हे दिग्विदिक् का भी ज्ञान नही ?'

'कैसे हो ? तुम अन्धकार हो, अब चलो, मालिक ने तुम्हे बुलाया है।'

'क्यो ?'

'शायद आज तेरे साथ मेरा ब्याह करेंगे।'

'क्यो, क्या तुम्हारे मुँह मे आग लगाने को कोई और नही मिली ?'

'नही यह काम तुम्हे ही करना होगा। अब जल्दी चलो।'

'ठीक है, मुझे तो दूसरो के लिए ही मरना है। अच्छा चलो।'

गिरिजाया दिग्विजय के साथ चली। दूर से उसे अशोक के नीचे बैठे हेमचन्द्र की ओर दिखा कर दिग्विजय कही और चला गया। उस समय न जाने किस सोच मे डूबे हेमचन्द्र धीरे-धीरे गा रहे थे।

'विकच नलिने, यमुना-पुलिने, बहुत पिपासा रे!'

गिरिजाया ने भी पीछे से गा कर कहा—

'चन्द्रमाशालिनी, या मधुयामिनी।
केमिटिलो आशा रे।'

गिरिजाया के देखते ही हेमचन्द्र प्रसन्न हो उठे, बोले, 'कौन गिरिजाया! आ गई ? क्या आशा मिटी ?'

'किसकी आशा ? आप की या मेरी ?'

'मेरी। मेरी आशा मिटेगी तो तुम्हारी भी मिटेगी।

'आप की आशा क्यो मिटेगी ? लोग कहते है कि राजे-रजवाडो की आशा किसी भी तरह नही मिटती।'

'मेरी आशा तो बहुत साधारण है।'

'यदि कभी मृणालिनी से भेंट होगी तो यह बात उन्ही से कहूँगी।'

एकाएक हेमचन्द्र उदास हो गये। बोले, 'तो क्या आज भी मृणालिनी से भेट नही हुई ? आज किस मुहल्ले मे गाने गई थी ?'

'बहुत से मुहल्लो मे गई। अब सबके नाम रोज-रोज आप को क्या बताऊँ ? और कुछ पूछिए।'

'समझ गया कि विधाता ही टेढे है। अच्छा, कल फिर खोज मे जाना।'

गिरिजाया ने कपट करके, जाने का उपक्रम किया। प्रणाम किया और जाने को घूमी। तब अचानक हेमचन्द्र बोल उठे, 'गिरजाया, तुम तो नही हँस रही हो, लेकिन तुम्हारी आँखें जरूर हँस रही है। तुम्हारा गाना सुन कर क्या आज किसी ने कुछ कहा ?'

'किसकी-किसकी बताऊँ ? एक औरत तो निकल कर मरने आई थी। बोली कि मथुरा वासिनी के लिए श्यामसुन्दर का सिर दुख रहा है।'

हेमचन्द्र ने लम्बी साँस छोड़ी और अपने आप ही बडबड़ाते हुए बोले, 'जब इतनी खोज के बाद भी पता नही चला, तब अब आशा बेकार है। क्यो नाहक दिन नष्ट कर के अपना काम भी बिगाड़ूँ ? गिरिजाया, अब मै कल तुम्हारे नगर से चला जाऊँ गा।'

'अच्छा।' कह कर गिरिजाया धीरे-धीरे गाने लगी—

'शुनि जाउये चलि, बजथि मुरली,
बने-बने एका रे ?'

हेमचन्द्र ने उतावलेपन से कहा, 'यह गाना बन्द करो। दूसरा गाओ।'

तब गिरिजाया ने फिर गाया,

'जे फूल फूटिलो सखी, गृहतरु शाखे,
केनो रे पवना उड़ालि ताके।'

हेमचन्द्र ने कहा, 'हवा जो फूल उड़ा ले गई, अब उसके लिए क्या दुख ? कोई अच्छा गाना गाओ।'

गिरिजाया ने फिर गाया,

'कण्टके गढिलो विधि, मृणाल अधमे,
जल तारे डुबाइलो चिडिया मरमे।'

हेमचन्द्र चौंक उठे। बोले, 'क्या ? मृणाल क्या ?'

गिरिजाया ने फिरगा या,

'कण्टके गढिलो विधि, मृणाल अधमे,
जले तारे डुबाइलो पिडिया मरमे।
राजहस देखे एक नयन रजन,
चरण बेडिया तारे करिलो बन्धन ।।'

फिर बोली, 'नही। यह नही। दूसरा गाना गाऊँ।'

हेमचन्द्र बेचैन हो कर बोले, 'नही, नही, यही। यही गाना गाओ, तुम पूरी राक्षसी हो।'

गिरिजाया गाने लगी—

'बोले हसराज कोथा करिबे गमन।
हृदय कमले दिबो तोमार आसन ।।
आसिया बसिलो हस हृदय कमले।
काँपिलो कटक सह मृणालिनी जले ।।'

हेमचन्द्र चीख पड़े, 'गिरिजाया, गिरिजाया, यह गाना तुम्हे किसने सिखाया ?'

हँस कर गिरिजाया ने फिर गाया,

'हेनोकाले कालो मेघ उठिलो आकाशे।
उडिलो मरालराज मानस-तिला से ।।
भागिलो हृदयपद्म तार वेग भरे।
डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे ।।'

हेमचन्द्र की आँखो मे आँसू भर आए। गद्गद् कठ से गिरिजाया से बोले, 'यह तो मेरी मृणालिनी है! बताओ, तुमने उसे कहाँ देखा।'

'देखा सरोवर मे। पवन के झकोरे से काँप रही है, मृणाल के ऊपर मृणालिनी।'

'अब यह मजाक छोडो। मेरी बात का ठीक-ठीक उत्तर दो। कहाँ है मृणालिनी ?

'इसी नगरी मे है।'

हेमचन्द्र उतावली के कारण चिढ गये। बोले, 'यह तो मै बहुत दिनो से जानता हूँ। लेकिन बताओ कि इस नगर मे कहाँ है ?'

'हृषीकेश शर्मा के घर।'

'कैसा सकट है ? यह बात तो मैने ही तुम्हे बता दिया था। लेकिन इतने दिनो मे तो तुम उसका पता लगा नही सकी। अब तुमने क्या पता लगाया ?'

'पता तो लगाया है।'

हेमचन्द्र ने आँखो के आँसू पोछे, बोले, 'यहाँ से कितनी दूर ?'

'काफी दूर है।'

'यहाँ से किधर जाना होता है ?'

'यहाँ से पहले दक्षिण, फिर पूरब, उसके बाद उत्तर, फिर पश्चिम—'

हेमचन्द्र ने व्यग्र हो कर कहा, 'इस समय मजाक छोडो। नही तो मै अपना सिर फोड़ लूँगा।'

'शान्त होइए। क्या रास्ता भर बता देने से ही पहचान लेंगे? फिर इतना पता ठिकाना पूछने से लाभ? आदेश हो तो मै अपने साथ ही ले चलूँ।'

जैसे बादल छँटे और सूरज निकले, हेमचन्द्र का चेहरा खिल उठा। बोले, 'तुम्हारा कल्याण हो, मृणालिनी ने क्या कहा?'

'बता तो दिया—डूबिया अतल जले मृणालिनी मरे।'

'कैसी है मृणालिनी?'

'देखने से शरीर मे तो कोई बीमारी नही दिखी।'

'लेकिन क्या समझा! सुख मे है या दुख मे?'

'शरीर पर गहने है। पहनने को अच्छे कपडे है। हृषीकेश ब्राह्मण की कन्या की वह सखी है।'

'तेरा सत्यानाश हो! उसके मन की कुछ बात समझी?'

'बरसात के कमल की तरह केवल मुँह पानी पर तैर रहा है।'

'उस घर मे किस प्रकार है?'

'इसी अशोक के फूल के गुच्छे की तरह। अपने गौरव से आप ही नम्र है।'

'गिरिजाया? तुम उम्र मे बालिका हो, लेकिन तुम जैसी दूसरी बालिका नही देखी।'

'अपना सिर फोडने वाला दूसरा पात्र भी न देखा होगा।'

'मेरी बेचैनी के काम पर ध्यान मत दो। बताओ, मृणालिनी ने और क्या कहा?'

'जिस दिन जानकी—'

'फिर वही!'

'जिस दिन जानकी ने रघुवीर को देखा—'

हेमचन्द्र ने आगे बढ कर गिरिजाया के बाल पकडे।

गिरिजाया चीख उठी, 'छोड़ो-छोडो, बताती हूँ।'

'कहो।' कह कर हेमचन्द्र ने बाल छोड दिया।

तब गिरिजाया ने विस्तार से मृणालिनी से हुई बाते बताई। फिर कहा, 'श्रीमान, यदि आप मृणालिनी को देखना चाहते है तो आज रात एक पहर बीते मेरे साथ चलिएगा।'

गिरिजाया की बात पूरी होने पर हेमचन्द्र बहुत देर तक अशोक के नीचे ही

टहलते रहे। बहुत देर बाद घर के भीतर चले गये और वापस आकर गिरिजाया को एक पत्र देते हुए कहा, 'मुझे मृणालिनी से मिलने का अभी अधिकार नही है। तुम निश्चय के अनुसार रात को उससे जरूर मिलना और मेरा यह पत्र उसे देना। कहना-देवता के प्रसन्न होने पर शीघ्र ही, इसी वर्ष भेट होगी। और उत्तर मे मृणालिनी जो कुछ कहे, वह तुम आज रात मे ही मुझसे कह जाना।'

गिरिजाया के चले जाने के बाद बहुत देर तक हेमचन्द्र अशोक के नीचे एक चटाई पर लेटे रहे। वे इस समय बहुत चिन्तित थे। वह बाँहो पर सिर रख कर जमीन की ओर मुँह करके सो गये। थोडी देर के बाद अचानक पीठ पर किसी कठोर हाथ के स्पर्श से जागे। मुँह घुमा कर देखा—वहाँ सामने माधवाचार्य खडे थे।

माधवाचार्य ने कहा, 'बेटा, उठो। मै तुमसे असतुष्ट भी हूँ, सतुष्ट भी हूँ। तुम मेरी ओर इतने विस्मय से क्या देख रहे हो ?'

'आप यहाँ कहाँ से आये ?'

माधवाचार्य ने इस बात का कोई उत्तर न दे कर कहा, 'तुमने अभी तक नवद्वीप न जा कर राह मे इतनी देर लगाई। इससे मै तुम पर असतुष्ट हुआ हूँ। और तुमने मृणालिनी का पता पा कर भी अपनी प्रतिज्ञा निभाई और उसके साथ मिलने का सुअवसर पा कर भी तुमने उपेक्षा की, इससे मै सतुष्ठ हुआ हूँ। मै तुम्हारा तिरस्कार न करूँगा। लेकिन अब तुम्हे यहाँ समय नष्ट करने की आवश्यकता नही है। मृणालिनी के पत्र के उत्तर के लिए भी प्रतीक्षा मत करो। इस वेगवान हृदय का कोई विश्वास नही। मैं आज ही नवद्वीप जाऊँगा। तुम्हे भी मेरे साथ ही चलना पडेगा। चलो, नाव तैयार है। जाओ, घर मे से अस्त्र-शस्त्र उठा लाओ। मेरे साथ ही चलो।'

हेमचन्द्र ने लबी सास छोड कर कहा—'कोई हानि नही, मैंने तो सब आशा भरोसा छोड ही दिया है, चलिए। किन्तु क्या आप अन्तर्यामी है ?'

यह कह कर हेमचन्द्र घर के भीतर गए। वणिक से विदा ली। और अपना सामान एक आदमी को लाने को देकर आचार्य के साथ चल पडे।

|५|

लुब्ध

मृणालिनी या गिरिजाया कोई भो अपने वचन न भूली। दोनो ही पूर्ण निश्चय के अनुसार एक पहर रात गए हृषीकेश ब्राह्मण के घर के पास मिली। मृणालिनी ने गिरिजाया को देख कर पूछा, 'हेमचन्द्र कहाँ है ?'

'वे तो नही आये ।'

क्षण भर को मृणालिनी स्तब्ध रह गई फिर पूछा, 'क्यो नही आये ?'

'यह तो मै नही जानती । हाँ, यह पत्र दिया है ।'

कह कर गिरिजाया ने पत्र उसके हाथो मे थमा दिया । फिर मृणालिनी ने कहा,' 'कैसे पढ़ूँ ? घर मे दिया जला कर पढने से मणि जान जाएगी ।'

'अधीर मत हो ! दिया, तेल, चकमक पत्थर, सब कुछ तो ले आई हूँ । अभी रोशनी कर देती हूँ ।'

गिरिजाया ने जल्दी से आग जला कर दिया जला दिया । लेकिन आग जलाने की आवाज एक पड़ोसी ने सुन ली, उसने दिए की रोशनी भी देखी ।

रोशनी जलने पर मन ही मन मृणालिनी ने यह पत्र पढा—

'मृणालिनी ! क्या कह कर मै तुम्हे पत्र लिखूँ ? मेरे कारण ही तुम्हारा घर छूटा । तुम दूसरे के घर मे कष्ट के दिन बिता रही हो । देवता की कृपा से तुम्हारा पता पा कर भी तुमसे भेंट नही हुई । इसके लिए तुम मुझे बुरा भी समझ सकती हो, दूसरी कोई होती, तो अवश्य समझती । पर शायद तुम ऐसा न सोचोगी । मै किसी विशेष सकल्प के लिए बँधा हूँ । यदि उधर से लापरवाही करूँ तो मै अधम समझा जाऊँगा । इसके लिए मैंने गुरू के सामने शपथ ली है । इसलिए यहाँ तुमसे भेंट न करूँगा । मुझे विश्वास है कि तुम भी कदापि न चाहोगी कि मै तुम्हारे कारण अपना सत्य नष्ट करूँ । अत अब किसी तरह एक साल का दिन बिता लो । बाद मे ईश्वर की कृपा रही तो जल्दी ही तुम्हे राज-पुत्रवधू बना कर अपने सुख को अमर करूँगा । इस कम उम्र की भिखारिन बालिका द्वारा उत्तर भेजना ।'

पत्र पढ़ कर मृणालिनी ने गिरिजाया से कहा, 'गिरिजाया । मेरे पास कागज-कलम कुछ भी वही है, कैसे जवाब लिखूँ ? तुम मेरा जवानी सदेश ही कह देना । तुम पर पूरा विश्वास है, मैं तुम्हे पुरस्कार के रूप मे अपने शरीर का यह आभूषण देती हूँ ।'

गिरिजाया बोली, 'जवाब किसके लिए लिखोगी ? उन्होने मुझे पत्र लेकर भेजते समय ही कहा था कि जवाब भी आज रात को ही ले आना । मैंने भी मान लिया था । आते समय यह ध्यान था कि सभवत तुम्हारे पास लिखने का सामान न होगा, अत सब जुटा कर साथ मे लाने के विचार से आने के पहले उनके पास गई पर उनसे भेंट नही हुई, सुना कि वे शाम को ही नवद्वीप चले गये ।'

'नवद्वीप ?'

'हाँ, नवद्वीप !'

'शाम को ही ?'

'हाँ, शाम को ही । सुना है कि उनके गुरू आकर उन्हे लिवा ले गये ।'

'माधवाचार्य ! माधवाचार्य ही मेरे लिए काल बन गया है।' कह कर मृणालिनी काफी देर तक चुप रही। कुछ सोचती रही, फिर बोली, 'गिरिजाया, अब तुम जाओ। अब मै अधिक देर तक घर के बाहर नही रह सकती।'

'ठीक है, मै जाती हूँ।' कह कर गिरिजाया वापस हुई। उसके मधुर-मधुर गीत को सुनती मृणालिनी घर के भीतर चली गई।

घर के भीतर जा कर जैसे ही मृणालिनी दरवाजा बन्द करने चली, वैसे ही किसी ने पीछे से आ कर इसका हाथ पकडा। वह चौक उठी। हाथ पकडने वाला बोला, 'भला सती साध्वी ! फँस गई न जाल मे ? क्या मै भी जान सकता हूँ कि वह भाग्य-शाली पुरुष कौन है ?'

क्रोध से काँपती हुई मृणालिनी बोली, 'व्योमकेश, तुम ब्राह्मण हो, कुल मे ही पाखण्ड ? छोडो मेरा हाथ।'

यह व्योमकेश, हृषीकेश ब्राह्मण का पुत्र है। वह व्यक्ति बडा ही मूर्ख और दुश्चरित्र भी है। वह मृणालिनी पर मोहित था और अपनी इच्छा को पूरी करने के लिए और कोई रास्ता न देख वह अब जबरदस्ती करने को तैयार था। लेकिन अधिकतर मृणालिनी सदा ही मणि के साथ रहती थी, इसीलिए व्योमकेश को अभी तक अवसर नहीं मिला था।

मृणालिनी की फटकार सुन कर व्योमकेश बोला, 'हाथ क्यो छोडूँ ? हाथ छोडने से होगा भी क्या ? हाथ छोडने छुडाने की जरूरत नही है भाई, जरा मेरे मन का दुख तो सुनो, क्या मै मनुष्य नही हूँ ? जब एक पर कृपा की है तक दूसरे का क्यो नही करोगी ?'

'कुलागार। यदि नही छोडोगे तब अभी मै शोर करके घर के सभी लोगो को जगा दूँगी।'

'जरूर जगाओ। मै कहूँगा न कि मैने अभिसारिका को पकडा है।'

'तेरा सत्यानाश हो।' कहते हुए जोर लगा कर मृणालिनी ने हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया। लेकिन उसे सफलता न मिली। तब व्योमकेश ने कहा, 'अधीर न हो, मेरा मनोरथ पूरा होने दो, तब मै तुम्हे छोड दूँगा। इस समय तुम्हारी सखी-बहन मणिमालिनी कहाँ है ?'

'मै भी तुम्हारी बहन हूँ।'

'नही, तुम मेरी प्राणो से बढ कर राधिका हो।' कहते हुए व्योमकेश ने मृणा-लिनी का हाथ पकड कर खीचना शुरू किया। जब माधवाचार्य ने मृणालिनी का हरण किया था तब मृणालिनी ने स्त्री-स्वभाव-सुलभ चीखने का बल नही दिखाया, इस समय भी वह कुछ न बोली।

किन्तु आज मृणालिनी के लिए यह असह्य हो उठा। उसने मन ही मन लाखो

ब्राह्मणो को प्रणाम करके जबरदस्ती व्योमकेश को शक्ति भर जोर लगा कर लात मारी। लात खाकर भी लज्जाहीन व्योमकेश ने कहा, 'वाह, वाह! मै धन्य हुआ। इन पावो के आघात से मै मोक्ष पाऊँगा। सुन्दरी! तुम हो मेरी द्रौपदी, और मै हूँ तुम्हारा अर्जुन।'

एकाएक भयानक कातर स्वर मे विकट चीख के रूप मे व्योमकेश चिल्ला उठा, 'राक्षसी! तेरे दाँत मे जहर है!' कह कर व्योमकेश ने मृणालिनी का हाथ छोड दिया और अपनी पीठ हाथ से सहलाने लगा। छूते ही पता लग गया कि उसकी पीठ से खूब खून बह रहा है।

हाथ छूट जाने पर भी मृणालिनी वहाँ से भागी नही। यद्यपि वह भी उस समय व्योमकेश की तरह ही घबरा उठी थी, क्योकि व्योमकेश की पीठ पर उसने तो काटा न था। यो भालू की तरह वह काट भी कैसे सकती है? लेकिन ठीक उसी समय उसे तारो की धुँधली रोशनी मे वही नारी-बालिका-भिखारिन सामने से जाती दिखाई दी। उसके कपड़ो का खीच कर, 'भाग जाओ,' कह कर वह खुद भागी थी।

लेकिन इस प्रकार भागना मृणालिनी के स्वभाव की बात नही है। वह भागी नही। आँगन मे खड़ा ही व्योमकेश चीख रहा था, यह देख कर अति मथर गति से चल कर धीरे-धीरे वह अपनी कोठरी मे चली गई। लेकिन तब तक व्योमकेश की चीख पुकार से घर के सब लोग जग गये थे। हृषीके श ने सामने पुत्र को छटपटाते देख कर पूछा, 'क्या हुआ है? इस तरह साँड़ की तरह क्यो हुँकड़ रहा है रे?'

आर्तनाद के साथ व्योमकेश ने कहा, 'मृणालिनी अभिसार करने गयी थी, मैने उसे पकड़ा, इसीलिए उसने इतनी जोर से मेरी पीठ पर काट लिया कि...'

हृषीकेश के अपने पुत्र के कुचरित्र के बारे मे मालूम न था। मृणालिनी को आँगन से जाते देख कर उन्हे पुत्र की बात का विश्वास हो गया। उस समय उन्होने मृणालिनी से कुछ नही कहा। चुपचाप मृणालिनी के पीछे-पीछे चल कर उसकी कोठरी मे आये।

| ६ |

हृषीकेश

मृणालिनी के पीछे-पीछे उसकी कोठरी मे जाकर हृषीकेश बोले, 'मृणालिनी! तुम्हारा क्या ऐसा ही चरित्र है?'

'कैसा चरित्र, मेरा ?'

,तुम किसकी कन्या हो, कैसा चरित्र है, मै कुछ नही जानता । मात्र गुरु के आदेश से तुम्हे मैने अपने घर मे रहने का स्थान दिया है । तुम मेरी बेटी मणिमालिनी के साथ एक ही बिछावन पर सोती हो । पर तुममे यह कुलटा-वृत्ति क्यो है ?'

'मुझे जो कुलटा कहे वह परम झूठा है ।'

'क्रोध से हृषीकेश के ओठ फडफडाने लगे । बोले, 'पापिनि ! मेरा अन्न खाये गी और मुझे ही गन्दी बातें कहेगी ? तू अभी मेरे घर से निकल जा, चली जा । बहुत होगा, माधवाचार्य नाराज हो जायँगे । लेकिन उनके डर से मै अपने घर मे काली नागिन नही पालूँगा ।'

'ठीक है, कल सबेरे आप मुझे यहाँ नही देखेंगे ।'

हृषीकेश सोचते थे कि उनके घर मे स्थान न पाने से मृणालिनी आश्रयहीन हो जायगी । तब ऐसा उत्तर वह कदापि न देती । लेकिन मृणालिनी के मन मे आश्रय-हीनता की आशंका का तनिक भी डर न देख कर वे समझे कि मृणालिनी ने अपने प्रेमी के घर मे आश्रय पाने के हौसले पर ऐसा उत्तर दिया है । यह सुन कर और ऐसा सोच कर हृषीकेश का कोप और क्रोध और बढ गया । बडी तेजी से उन्होने कहा, 'कल सबेरे क्यो, अभी ही निकल जा !'

'जैसी आज्ञा ! मै सखी मणिमालिनी से विदा ले कर इसी ससय चली जाती हूँ ।'

कह कर एक झटके से मृणालिनी उठ खडी हुई ।

तब हृषीकेश बोले, 'माणिमालिनी से तुम जैसी कुलटा क्यो मिलेगी ?'

अब मृणालिनी की आँखो से आँसू झरने लगे । बोली, 'तो ऐसा ही सही । मै कुछ ले कर नही आई थी, इसलिए कुछ ले कर भी नही जाऊँगी । यही जो पहने हूँ, उसे ही ले कर जा रही हूँ । आप को प्रणाम !'

कहती हुई मृणालिनी झटपट कोठरी से बाहर निकल गई ।

व्योमकेश की चीख-पुकार और आर्त्तनाद से घर के सब लोगो की तरह मणि-मालिनी भी जाग गई थी । मृणालिनी के पीछे-पीछे अपने पिता को उसकी कोठरी मे जाते देख कर वह रुक कर अपने भाई से बातें करने लगी थी और अपने भाई के कुचरित्र से परिचित होने के कारण उसे ही भला-बुरा कह कर धिक्कार रही थी । अब वह भाई को तिरस्कृत कर के लौटी तब आँगन से हो कर तेजी से बाहर जाती हुई मृणालिनी से उसकी भेट हुई । उसने पूछा, 'सखी, इतनी रात को इस तरह कहाँ चली जा रही हो ?'

'खसी मणि ! तुम चिरायु हो, लेकिन तुम मुझसे बाते मत करो । तुम्हारे पिता ने मना किया है ।'

'सखी ! यह सब क्या कह रही हो ? तुम रो क्यो रही हो ? सर्वनाश ! पता

नहीं, पिता जी ने क्या कहने की जगह क्या कह दिया ! सखी, लौट आओ, क्रोध मत करो।'

लेकिन मणिमालिनी मृणालिनी को नही लौटा सकी। पर्वत शिखर मे गिरे शिलाखण्ड की तरह दनदनाती अभिमानिनी साध्वी मृणालिनी चली गई। तब बहुत चिन्तित हो कर मणिमालिनी भाग कर पिता के पास आई।

मृणालिनी घर से बाहर आ चुकी थी। बाहर आ कर उसने देखा कि पहले के बताए स्थान पर गिरिजाया खड़ी है। उसे देख कर मृणालिनी ने कहा, 'तुम अभी तक क्यो खड़ी हो ?'

'मैने तुमसे भागने को कहा था। तुम्हारे लिए ही खडी हूँ।'

'क्या तुमने उस दुष्ट ब्राह्मण की पीठ पर काटा था ?'

'तो इसमे हानि क्या है ? एक लंपट ब्राह्मण ही तो है, गाय तो नही है ?'

'लेकिन मैने तो सुना था, तुम गाते हुए चली गई थी।'

'नही, जाते-जाते तुम लोगो की बातचीत सुन कर लौट आई थी। देखते ही पहचान गई कि एक दिन इसी दुष्ट ने मुझे भी 'काली चीटी' कह कर छेड-छाड़ की थी। उस दिन मैं डंक नही मार सकी थी। आज अवसर पा कर ब्राह्मण का ऋण चुका दिया। बोलो, अब तुम कहाँ जाओगी ?'

'क्या तुम्हारे घर-द्वार है ?'

'है, पत्तो की एक झोपड़ी।'

'वहाँ और कौन रहता है ?'

'सिर्फ एक बुढ़िया। मै उसे, आई कहती हूँ।'

'तो चलो, तुम्हारे ही घर चली चलूँगी।'

गिरिजाया के पीछे-पीछे मृणालिनी चल पड़ी। चलते-चलते गिरिजाया ने कहा, 'किन्तु वह तो झोपड़ी है, उसमे तुम कितने दिनो रह सकोगी ?'

'कल सबेरे कही और चली जाऊँगी।'

'कहाँ, मथुरा ?'

'मथुरा मे भी मेरे लिए जगह नही है।'

'तब फिर कहाँ ?'

'यमराज के यहाँ।'

इसके बाद थोड़ी देर तक दोनो ही चुप रही। तब मृणालिनी बोली, 'क्या तुम्हे भी इस बात पर विश्वास होता है ?'

'विश्वास क्यो न होगा ? वह स्थान तो है ही। जब इच्छा हो तभी जाया जा सकता है। लेकिन इस समय एक जगह क्यो नही जाती ?'

'कहाँ ?'

'नवद्वीप ।'

'गिरीजाया ! क्या तुम भिखारिन के रूप मे आई मायाविनी हो ? तुमसे मै कोई बात न छिपाऊँगी । क्योकि तुम मेरी हितैषिणी हो । मैने नवद्वीप जाने का ही निश्चय किया है ।'

'क्या अकेली जाओगी ?'

'नही तो साथी कहाँ पाऊँगी ?'

उत्तर मे गिरिजाया गाने लगी—

'मेघ दरशाने हाय, चातकिनी धाय रे ।
सग जानी के के तोरा आय आय रे ।।
मेघे ते बिजली हाँसी आमि बड़ो भालोवासी ।
जे जाबी से जाबी तोरा, गिरिजाया जाय रे ।।'

मृणालिनी ने समझ कर पूछा, 'यह कैसा रहस्य है गिरिजाया ।'

'मै चलूँगी ।'

'सचमुच ।'

'हाँ, सचमुच मै चलूँगी ।

'लेकिन क्यो ?'

'मेरे लिए सब जगह एक जेसी है । राजधानी मे भिक्षा अधिक मिलेगा ।'

दूसरा भाग

|१|

गौड़ेश्वर

खूब विस्तृत सभा-मण्डप मे नवद्वीपोज्ज्वलकारी राजाधिराज श्रीमान गौड़ेश्वर विराज रहे हैं। सफेद पत्थर की ऊँची वेदी पर रत्न-जडित सिंहासन पर रत्न-जड़ित छत्र के नीचे बूढ़े राजा बैठे हैं। सिर पर सोने के कुमकुमे तथा विचित्र बेल-बूटे से कढा सफेद चँदवा शोभा बढ़ा रहा है। एक ओर कुशासन पर होम की विभूति से विभूषित कई ब्राह्मण सभापण्डित को घेर कर बैठे है। जिस आसन पर एक दिन हलायुध बैठे थे, उस आसन पर इस समय एक चालाक का अधिकार है। दूसरी ओर महामत्य धर्माधिकार को आगे कर मुख्य-मुख्य राजपुरुष बैठे है। अन्य सामन्त आदि भी सभी यथास्थान बैठे है। प्रतिहार आवाज देकर सभा को असावधान होने से बचाए हुए है। सब से अलग एक आसन पर कुशासन मात्र बिछा कर पण्डित माधवाचार्य बैठे है।

राजसभा का नियमित कामकाज समाप्त होने पर सभाभंग की तैयारी हुई। तब माधवचार्य ने राजा को सम्बोधित करके कहा, 'महाराज! ब्राह्मण की वाचालता के लिए क्षमा कीजिएगा। आप राजनीति-प्रवीण है। इस समय भू-मडल मे जितने भी राजा है। उनमे आप ही सबसे अधिक बहुदर्शी, प्रजापालक और आजन्म राजा है। आप जानते ही है कि शत्रुहनन राजा का प्रथम और प्रधान कार्य है। आप ने प्रबल शत्रु के दमन का क्या उपाय किया है?'

वृद्ध राजा सब बाते सुन न सके। अत पूछा, 'आप क्या आज्ञा करते है?'

माधवाचार्य अपनी बात दुहराते इसके पहले ही धर्माधिकार पशुपति ने कहना शुरू किया, 'महाराजाधिराज! ये माधवाचार्य पूछना चाहते है कि राज-शत्रु के दमन के लिए क्या उपाय किया गया है? बंगेश्वर का कोई भी शत्रु अब तक नही बचा है, फिर भी अपना आशय आचार्य ने प्रकट नही किया, वह अच्छी तरह खोल कर कहे।'

तब माधवाचार्य ने बहुत ऊँचे स्वर मे कहा, 'महाराज, तुर्कों ने आर्यावर्त को लगभग पूरा ही अपने अधिकार मे कर लिया है। इस समय उन सबने मगध जीत कर गौड राज्य पर आक्रमण करने की तेयारी की है।'

इस बार राजा पूरी बात सुन सके। बोले, 'तुर्कों की बात कह रहे है! क्या तुर्क लोग आये है?'

'ईश्वर ही रक्षा कर रहे है। अभी तक वे यहाँ नही पहुँचे है। लेकिन उनके आने पर किस तरह आप उन्हे दूर करेंगे?'

'मै क्या करूँ? मै क्या करूँ? मेरा यह वृद्ध शरीर—मै अब युद्ध नही कर सकता। अब तो बस गगालाभ होना ही बाकी है। अगर तुर्क आते है तो आवे! मै क्या करूँ?'

राजा की बात सुन कर सभी चुप रह गये। केवल महासामन्त के म्यान की तलवार बिना कारण ही झकार कर उठी। सुनने वाले लोगो मे से अधिकाश पर किसी प्रकार का कोई भाव प्रकट नही हुआ। माधवाचार्य की आँखो से एक बूँद आँसू टपक पडा।

इस चुपी के बाद सभा-पण्डित दामोदर ही सबसे पहले बोले, 'आचार्य! आप क्या दुखी हो गये? जैसी राजाज्ञा हुई, वह शास्त्र-सगत है। शास्त्र मे यह ऋषिवाक्य लिखा है कि तुर्कों का इस देश पर अधिकार होगा। शास्त्र का लिखा अवश्य हो होकर रहेगा। किसमे इतनी शक्ति व सामर्थ्य है कि इसे टाल सके। फिर जो होना निश्चित है, इसके लिए युद्ध की तैयारी व्यर्थ है।'

माधवाचार्य बोले, 'अच्छा सभा-पण्डित महोदय, एक बात पूछता हूँ, आपने ऐसी उक्ति किस शास्त्र मे देखी है?'

दामोदर ने कहा, 'विष्णु पुराण मे है '

तो विष्णु पुराण लाने की आज्ञा दीजिए और दिखाइए कि यह कहाँ लिखा है?'

'मुझे क्या इतना भुलक्कड समझते है? अच्छा, याद कीजिए, मनु मे यही बात है या नही?'

'गौडेश्वर के सभा-पंडित क्या मानव—धर्म-शास्त्र मे भी प्रवीण नही है?'

'कैसी आफत है! आप ने मुझे परेशान कर दिया। आप के सामने तो सरस्वती भी भूलती है, मै भला क्या हूँ? आप को ग्रन्थ का नाम ही न याद आएगा, लेकिन कविताओ को तो याद कीजिए।'

'गौडेश्वर के सभा-पडित ने सभव है अनुष्टुप छद मे किसी कविता की रचना की होगी। लेकिन मे मुक्त-कठ से कहता हूँ—तुर्कों द्वारा जाति पर विजय की बातें कही भी किसी शास्त्र मे नही है।'

'क्या आप सर्वशास्त्रविद है ?'

'यदि आप से इसके विरुद्ध हो सके तो प्रणाम दीजिए।'

तभी सभा-पडित के एक पार्षद ने कहा, 'मै देता हूँ। शास्त्र मे आत्मश्लाघा वर्जित है। जो आत्मश्लाघा करता है वह यदि पडित है तो फिर मूर्ख कौन है ?'

'तीन प्रकार के जन मूर्ख होते है।—एक जो आत्मरक्षा न कर सके, दूसरा वह जो यत्नहीनता की दुहाई दे, तीसरा वह जो आत्मबुद्धि के अतीत विषय मे कुछ कहे—बस वही मूर्ख है। आप तो तीनो प्रकार के है।'

सभा-पडित के अन्य पार्षद-गण सिर झुका कर बैठ गये।

तब पशुपति बोले, 'यवनो के आने पर हम लोग युद्ध करेंगे।'

माधवाचार्य ने कहा, 'साधुवाद ! आप ने अपने यश के अनुकूल ही बात कही है। ईश्वर आप का कल्याण करें। मुझे सिर्फ यही पूछना है कि यदि युद्ध ही अन्तिम अभिप्राय है, तब फिर उसके लिए क्या प्रबन्ध किया गया ?'

'इस प्रकार की मन्त्रणा एकान्त मे होनी चाहिए, इस सभास्थल मे इस प्रकार प्रकट रूप मे नही। लेकिन जो घोड़े, पैदल और नाविक लोग संग्रह किये जा रहे है, उसे आप कुछ दिनो इस नगरी मे घूम-फिर कर समझ लेंगे।'

'बहुत कुछ तो जान गया हूँ।'

'तब ऐसा प्रस्ताव क्यो कर रहे हैं ?'

'प्रस्ताव का विशेष तात्पर्य यह है कि इस समय यहाँ एक वीर पुरुष आये हुए है। आप लोग मगध के युवराज हेमचन्द्र को वीरता की ख्याति सुन ही चुके होगे।'

'खूब सुना है। यह भी सुना है कि वे आप के प्रिय शिष्य है। क्या आप बता सकते हैं कि इतने वीर पुरुष के रहते मगधराज्य शत्रु के हाथो मे कैसे चला गया ?'

'इसलिए कि यवन-आक्रमण के समय युवराज विदेश मे थे।'

'क्या वे इस समय नवद्वीप मे आये है ?'

'हाँ आये है। उनका राज्य-हरण करने वाले यवन इस देश मे आ रहे है, अत. यही उनके साथ युद्ध कर के उन्हे दण्ड देने के लिए आये है। गौडराज उनके साथ संधि स्थापना कर के शत्रु-हनन का प्रबन्ध करेंगे तो दोनो का ही भला होगा।'

'तो राजदूत आज ही से उनसे चर्चा प्रारभ करेंगे, उनके निवास के लिए यथायोग्य प्रबध होगा, संधि के विषय मे चर्चा यथासमय होगी।'

तब राजाज्ञा से सभा भंग हुई।

|२|

कुसुम-निर्मिता

गगातट पर राजपुरुषो के निमित्त बनी एक अट्टालिका मे हेमचन्द्र का निवास निश्चित हुआ। माधवाचार्य के परामर्श से हेमचन्द्र ने उसी भव्य अट्टालिका मे डेरा डाला।

नवद्वीप मे जनार्दन नामक एक वृद्ध ब्राह्मण निवास करते थे। बुढ़ापे तथा कान से न सुनाई देने के कारण वे सब तरह से असमर्थ और नि सहाय थे। उनकी पत्नी भी वृद्धा और शक्तिहीना थी। कुछ दिन हुए, उनकी पर्णकुटी आँधी के प्रबल झोके में विनष्ट हो गई। तब से ही ये लोग आश्रय के अभाव मे उसी भव्य अट्टालिका के एक छोटे से अंश मे राजपुरुषो की अनुमति लेकर रहते थे।

अब यह सुन कर कि कोई राजपुत्र उस अट्टालिका मे आकर निवास करेंगे, वे लोग अपने आश्रय के लिए दूसरे स्थान की खोज करने लगे। यह सुन कर हेमचन्द्र क्षुब्ध हुए। सोचा कि इतने बडे भवन म एक ओर उनके रहने मे कोई हानि नही है। ब्राह्मण भला क्यो निराश्रय हो ? हेमचन्द्र ने दिग्विजय से कहा कि ब्राह्मण को वही रहने के लिए वह कहे। तब दिग्विजय ने मुस्करा कर कहा, 'मेरे जैसे नौकर से यह काम न होगा। ब्राह्मण देवता मेरी बात कान से नही सुनेंगे।'

सचमुच ब्राह्मण बहरे है और बहुतो की बाते नही सुन पाते। हेमचन्द्र ने समझा कि दिग्विजय के कहने का आशय है कि अभिमान के कारण ब्राह्मण नौकर की बात नही सुनेंगे। अत वे स्वय ही उनसे बातें करने गये। जाते ही उन्होने ब्राह्मण को प्रणाम किया।

जनार्दन ने आशीर्वाद दे कर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मै आप का सेवक हूँ।'

'क्या कहा ? तुम्हारा नाम रामकृष्ण है ?'

हेमचन्द्र समझ गये कि ब्राह्मण बहरा है। अत संभव ऊँचे स्वर मे बोले, 'मेरा नाम हेमचन्द्र है। मै ब्राह्मणो का दास हूँ।'

'अच्छा, अच्छा, पहले अच्छी तरह सुन नही सका था। तुम्हारा नाम हनुमान-दास है।'

हेमचन्द्र ने सोचा कि नाम की बात बेकार है, काम की बात ही हो जाय। बोले, 'यह महल नवद्वीप के राजा का है, उन्होने यह स्थान मुझे रहने को दिया है। सुना है कि मेरे यहाँ आने के कारण आप यह स्थान त्याग रहे है ?'

'नही, अभी गंगास्नान के लिए नही गया। अब नहाने ही जा रहा हूँ।'

'स्नान जब मन आये करिएगा। मै आप से यह अनुरोध करने आया हूँ कि आप यह घर न छोड़े।'

'क्या, घर मे भोजन न करूँ? तुम्हारे घर मे आज क्या है? आज श्राद्ध है?'

'अच्छा, खाने की व्यवस्था भी हो जायगी। अभी आप इस मकान मे जैसे हैं वैसे ही बने रहे।'

'अच्छा, अच्छा, ब्राह्मण भोजन के साथ दक्षिणा तो होगी ही। इसके कहने की क्या जरुरत है? तुम्हारा मकान कहाँ है?'

हेमचन्द्र हार कर लौट रहे थे, तभी पीछे से किसी ने उनका दुपट्टा खीचा। हेमचन्द्र ने घूम कर देखा। देखते ही लगा कि उनके सामने कोई कुसुम-निर्मिता देवी प्रतिमा खडी है। फिर लगा कि प्रतिमा सजीव है। फिर लगा कि वह प्रतिमा नही, विधाता के निर्माण-कौशल की सीमा-स्वरुपिणी एक पूर्ण-यौवना तरुणी है।

पहले तो उसे देख कर हेमचन्द्र ठीक से समझ न सके कि वह बालिका है या तरुणी।

वीणा के झकार जैसे शब्दो मे सुन्दरी ने कहा, 'तुम मेरे दादा से क्या कह रहे थे? तुम्हारी बाते भला उन्हे सुनाई क्यो पड़ने लगी?'

'हाँ, वे कुछ भी सुन नही सके। तुम कौन हो?'

'मैं मनोरमा हूँ।'

'ये तुम्हारे दादा है?'

'तुम दादा जी से क्या कह रहे थे?'

'सुना कि वे इस घर को छोड कर और कही जाने की तैयारी कर रहे है। वही मै मना करने आया था।'

'इस घर मे कोई राजपुत्र आये हैं। हम लोगो को क्यो रहने देंगे?'

'मै ही वह राजपुत्र हूँ। मै तुम लोगो से अनुरोध कर रहा हूँ कि तुम लोग यही रहो।'

'क्यो?'

'मेरे पास इस 'क्यो' का कोई उत्तर नही है।'

वह तरुणी चुप हो गई।

तब हेमचन्द्र बोले, 'समझ लो कि यदि तुम्हारा भाई इस मकान मे आकर रहता तो क्या तुम लोगो को हटा देता?'

'तो क्या तुम मेरे भाई हो?'

'अब समझो कि आज से ही तुम्हारा भाई हुआ।'

'समझी। लेकिन बहन समझ कर कभी मेरा तिरस्कार तो न करोगे?'

मनोरमा की बातो से हेमचन्द्र थोडा विस्मित हुए। सोचा कि यह अलौकिक

रूपराशि वाली बालिका कितनी सरल है ! या हो सकता है पागल हो ! बोले, 'मै क्यो तिरस्कार करूँगा ?'

'यदि मुझसे कोई दोष हो जाय ?'

'दोष देख कर कौन तिरस्कार न करेगा ?'

मनोरमा उदास हो चुपचाप खडी रही । बोली, 'मैने कभी भाई नही देखा । क्या भाई से भी लज्जा करनी चाहिए ?'

'नही ।'

'तो मै तुमसे लज्जा न करूँ ? तो क्या तुम मुझसे लज्जा करोगे ?'

हेमचन्द्र इस सरलता पर हँस पडे । कहा, 'मै अपनी बात तुम्हारे दादा को समझा तो न सका, इसका क्या उपाय है ?'

'मै कहे देती हूँ ।'

कह कर मनोरमा ने अत्यन्त मृदु व मीठे शब्दो मे जनार्दन से हेमचन्द्र की बात कही । हेमचन्द्र यह देख कर चकित हुए कि मनोरमा की अति कोमल व धीरे से कही बात भी बहरे ब्राह्मण की समझ मे पूरी आ गई ।

अति प्रसन्न हो कर जनार्दन ने राजपुत्र को आशीर्वाद दिया और कहा, 'मनोरमा, ब्राह्मणी से कहो कि राजपुत्र तुम्हारे पौत्र हुए, आशीर्वाद दो ।' कह कर जनार्दन स्वयं ही 'ब्राह्मणी ! ब्राह्मणी !' कह कर पुकारने लगे । उस समय ब्राह्मणी घर के दूसरी ओर कही काम मे लगी थी । ब्राह्मण की पुकार वह न सुन सकी । तब ब्राह्मण ने असतुष्ट हो कर कहा, 'ब्राह्मणी मे यही तो बडा भारी दोष है कि कान से कम सुनती है ?'

|३|

नौका में

हेमचन्द्र उसी विशाल अट्टालिका मे रहने लगे ।

और मृणालिनी ?

साध्य गगन की रक्तिम मेघमाला धीरे-धीरे कृष्णवर्णा हो गई । रात के गहरे अंधकार में गगा का विशाल हृदय भी छिप गया । आकाश मे तारे खिलने लगे । नदी के हृदय पर बहने वाली हवा ने तीव्रता ग्रहण की । बहुत से लोगो के सामूहिक कोलाहल की तरह लहरो का शोर बढने लगा । मल्लाह नाव किनारे लगा कर रात्रि-विश्राम का उप-

क्रम करने लगे। इसी समय अन्य नावो से अलग एक छोटी डोंगी एक ओर किनारे से लगी। उसके मल्लाह भोजनादि की व्यवस्था करने लगे।

छोटी डोंगी मे सवारी के नाम पर सिर्फ दो जन है। दोनो ही स्त्रियाँ। एक मृणालिनी और एक गिरिजाया।

गिरिजाया ने मृणालिनी से कहा, 'चलो, आज का दिन तो बीता।'

मृणालिनी ने गहरी साँस खीची। कोई उत्तर न दिया।

गिरिजाया ने फिर कहा, 'कल का दिन भी बीतेगा, परसो का दिन भी बीतेगा—क्यो बीतेगा ?'

मृणालिनी ने तब भी कोई उत्तर न दिया। केवल एक ठण्डी साँस ली।

गिरिजाया ने कहा, 'यह क्या ? दिन-रात चिन्ता करने से भला क्या होगा ? यदि हम लोगों ने नवद्वीप आकर उचित नही किया, तो चलो, अब भी वापस लौट चले।'

अब मृणालिनी बोली, 'फिर कहाँ, कहाँ जायें ?'

'चलो, हृषीकेश के घर वापस चले।'

'इससे अच्छा है कि गगा मे डूब मरूँ ?

'तब चलो, मथुरा चलें।'

'मै तुम्हे बता चुकी हूँ कि वहाँ मेरे लिए जगह नही है। एक कुल्टा की तरह जब रात मे बाप के घर से चली आई हूँ, अब उसी घर मे कौन सा मुँह ले कर जाऊँ गी ?'

'लेकिन तुम अपनी इच्छा से तो नही आईं, न किसी बुरे विचार से आई हो। तब फिर जाने मे भला क्या आपत्ति है ?'

'इस बात पर अब कौन विश्वास करेगा ? जिस बाप के घर मे मै प्यार की पुतली थी, वहाँ अब तिरस्कृत होकर कैसे रहूँगी ?'

अंधकार के कारण गिरिजाया यह न देख सकी कि मृणालिनी की आँखें बरस रही है। गिरिजाया ने पूछा, 'तब कहाँ चलोगी ?'

'जहाँ के लिए निकली हूँ।'

'यह तो सुख की यात्रा है। फिर तुम इतनी अनमनी क्यो हो रही हो ? जिसे देख कर प्रेम बढता है, उसे ही देखने जा रही हो, इससे बढ कर और क्या सुख हो सकता है ?'

'नदिया मे मुझसे हेमचन्द्र से भेंट न हो सकेगी।'

'क्यो, क्या वे वहाँ नही है ?'

'वही है। लेकिन तुम तो जानती ही हो कि उन्होने एक वर्ष मुझसे न मिलने का व्रत लिया है। मैं उनके सकल्प को क्यो तोड़ूँ ?'

गिरिजाया चुप हो रही। मृणालिनी ने फिर कहा, 'और फिर क्या कह कर उनके सामने खडी हो सकूँगी ! क्या कहूँगी कि हृषीकेश पर नाराज होकर आई हूँ या कहूँगी कि हृषीकेश ने मुझे कुलटा कह कर अपने घर से निकाल दिया है ?'

गिरिजाया कुछ देर चुपचाप सोचती रही। फिर पूछा, 'तब क्या नदिय ामें तुमसे और हेमचन्द्र से भेंट न हो सकेगी ?'

'नही।'

'तब फिर क्यो जाती हो ?'

'वे मुझे न देख सकेंगे पर मै तो उन्हे देख सकूँगी। उन्ही को देखने तो जा रही हूँ न !'

गिरिजाया प्रयत्न कर के भी हँसी न रोक सकी। उसने अपने को सम्हालने के लिए कहा, 'तब मै गीत गाऊँ—

चरण तले दिनु हे श्याम पराण-रतन।
दिबोना तुम्हारे नाथ मिछार यौवन ।।
ए रतन समतुल, इहा तुमी दिबे मूल।
दिवानिशि मोरे नाथ दिबे दरशन ।।

—तुम तो उन्हे देख कर जी उठो गी। मै तुम्हारी दासी बनी हूँ, इससे मेरा पेट तो भरेगा नही, मै क्या खाकर जिऊँगी ?'

मृणालिनी ने कहा, 'मैं थोडा बहुत शिल्प-कर्म जानती हूँ। माला गूँथना जानती हूँ, चित्र बनाना जानती हूँ, कपडे पर फूल काढना जानती हूँ, यही सब करूँगी और तुम वह सब बाजार मे बेच आना।'

'और मै घर-घर घूम-घूम कर गाना भी गाऊँगी ? 'मृणाल अधमे' गाऊँ ?'

मृणालिनी ने आधी हँसी और आधे क्रोध के भाव से गिरिजाया की ओर ताका।

गिरिजाया बोली, 'इस तरह ताकोगी तो मै गीत गाने लगूँगी।' कह कर उसने गाना शुरू किया—

'साधेर तरणी आमार के दिलो तरगे।
के आछे काण्डारी हेन के जाइबे सगे।'

मृणालिनी ने पूछा, ''इतना डर था तो अकेली क्यो आई ?'

गिरिजाया 'आगे न जाना' कह कर गाने लगी—

'भासल तरी सकाल बेला, भाविलाम ए जलखेला,
मधुर बहिबो वायु भेसे धाव रगे।
एखन-गगने गरजे धन, बहे खर समीरण,
कूल त्यजि एलाम केनो मरिते अतंके ?'

मृणालिनी बोली, 'तो किनारे लौट क्यो नही जाती ?'

गिरिजाया फिर गाने लगी—

'मने करि कूले फिरि, बाहि तरी धीरि, धीरि,
कुलेते कण्टक तरु वेष्टित भुजगे ।'

मृणालिनी ने कहा, 'तब डूब क्यो नही मरती ?'

'मर भी जाऊँ तो कोई हानि नही है, किन्तु—'कह कर वह फिर गाने लगी—

'याहारे काण्डारी करि, साजाइया दिनु तरी,
से कभूना दिल पद, तरणीर अगे ।'

मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया, यह किस अप्रेमी का गाना है ?'

'क्यो ?'

'मै होती तो नाव डुबा देती ।'

'शोक से ?'

'हाँ, शोक से ।'

'तब तुमने जरूर पानी के भीतर रत्न देखा है ।'

|४|

खिड़की पर

हेमचन्द्र ने कुछ दिन उस अट्टालिका मे निवास किया । जनार्दन से लगभग रोज ही भेंट होती थी । लेकिन ब्राह्मण के बहिरेपन के कारण सिर्फ इशारे से बातें होती । मनोरमा से भी बराबर भेंट होती, मनोरमा कभी दीनयाचिका की तरह उससे बाते करती, कभी बिना कुछ बोले दूसरी तरफ चली जाती । वास्तव मे वह अभी तक मनोरमा की प्रकृति समझ ही नही पाया, बल्कि वह क्रमश अधिक विसमयजनक जान पडने लगी । पहले तो उसकी उम्र का ठीक अदाज लगाना ही कठिन है, यो वह अभी बालिका ही जान पडती थी, पर कभी-कभी बहुत गंभीर भी दिखाई देती । क्या मनोरमा कुमारी है ?

एक दिन बातचीत के बीच बहाने से हेमचन्द्र ने पूछा, 'क्यो मनोरमा, तुम्हारी ससुराल कहाँ है ?'

मनोरमा बोली, 'मै कह नही सकती ।'

फिर एक दिन पूछा, 'मनोरमा, तुम कितने वर्षों की हुई ?'

मनोरमा ने फिर वही जवाब दिया, 'मै कह नही सकती ।'

माधवाचार्य हेमचन्द्र को उस अट्टालिका मे बसा कर देश-भ्रमण के लिए चले गये ।

उनका तात्पर्य था कि समय पर गौड देश के अधीन सभी राजे, अपनी-अपनी सेना के साथ इकट्ठे हो कर गौडेश्वर की सहायता करे । इसके लिए उनमे प्रेरणा भरी जाय। हेमचन्द्र नवद्वीप मे उनकी प्रतीक्षा करते रहे । लेकिन बिना किसी काम-काज के दिन बिताना उनके लिए कठिन हो रहा था । हेमचन्द्र व्याकुल हो उठे । बार-बार मन मे यही इच्छा होती कि दिग्विजय को घर मे रख कर स्वय घोडे पर एक बार गौड चले जायँ। लेकिन वहाँ मृणालिनी से भेंट होने पर उनकी प्रतिज्ञा भग हो जायगी । फिर मृणालिनी से मिले बिना गौड जाने का कोई प्रयोजन नही । यही सब सोच-विचार कर हेमचन्द्र ने गौड की यात्रा तो न की लेकिन दिन-रात मृणालिनी की ही चिन्ता मे दिल बेचैन रहता। एक दिन तीसरे पहर वे अपने कमरे मे पलँग पर लेटे मृणालिनी की ही चिन्ता मे व्यस्त थे । एक प्रकार से चिन्ता से भी हृदय को सुख मिल रहा था । खुली खिडकी की राह हेमचन्द्र प्रकृति की शोभा भी देख रहे थे । नवीन शरत् का उदय था । चाँदनी रात, निर्मल आसमान, खूब ढेर से तारे, कही-कही सफेद मेघो की थोडी सी झलक । खिडकी से ही, पास ही भागीरथी दीख पडती थी । भागीरथी का विस्तृत वक्ष, बहुत दूर तक सर्पिणी की भाँति टेढी-मेढी धारा, चाँदनी की छाया मे तेज तरगे, नए जल के आगमन से आल्हादिनी । नए जल का नव-कल्लोल भी सुनाई पडता था । खिडकी की राह से हवा आ रही थी । गंगा की तरंगो से उडते छीटो के स्पर्श से शीतल, रात के आगमन से खिले फूलो के स्पर्श से सुगधित, चाँदनी की चमक से वृक्षो के पत्तो को धोती हुई, नदी के किनारे खडे कास के फूलो को झकझोरती हुई हवा खिडकी की राह से घुस रही थी। यह सब देख कर हेमचन्द्र बडे प्रसन्न थे ।

अचानक खिडकी पर एक अधेरा धब्बा आया । चाँदनी की राह मे रूकावट पड़ी हेमचन्द्र ने खिडकी के पास किसी आदमी का सिर देखा । खिडकी जमीन से कुछ ऊँची थी । किसी के हाथ-पैर दिखाई न दिए । सिर्फ एक चेहरा दिखाई दिया । चेहरा भी मूँछ दाढी से खूब भरा हुआ । सिर पर पगडी । उस समय खुली खिड़की पर दाढीदार पगडी वाला आदमी का सिर देख कर हेमचन्द्र ने पलँग से झटपट उछल कर अपनी तेज तलवार हाथ मे उठा ली ।

तलवार उठा कर जब हेमचन्द्र ने फिर उधर देखा तो पाया कि अब खिडकी पर वह सिर न था ।

हेमचन्द्र तलवार हाथ मे लिये, दरवाजा खोल कर कमरे से बाहर आए। खिडकी के नीचे गए, पर वहाँ कोई न था ।

घर मे चारो ओर, गंगा किनारे, सब ओर हेमचन्द्र ने देखा पर कही कोई दिखाई न पडा ।

हेमचन्द्र वापस आये । कमरे मे आकर शरीर पर पिता के दिए योद्धा-वेश को सिर से पाँव तक पहन लिया । कुसमय मे उठे बादलो की तरह उनके चेहरे

पर अंधकार छा गया। फिर वह अकेले ही उस गम्भीर रात मे, शस्त्रो से सुसज्जित होकर बाहर निकले।

खिडकी पर आदमी का सिर देख कर वह समझ गये कि बंगाल मे तुर्क आ गये।

|५|

अंधेरे में

वीर राजपुत्र हेमचन्द्र मुसलमानो की खोज मे निकले। बाघ जैसे शिकार की छाया देखते ही तेजी से दौडता है, वैसे ही हेमचन्द्र भी तुर्क की छाया देख कर वेग से दौडे। लेकिन तुर्क से भेंट कहाँ हो, इसका कोई ठिकाना नही।

हेमचन्द्र ने एक ही तुर्क देखा था, या तुर्क की छाया देखी थी ? उनके मन मे हुआ कि शायद तुर्क-सेना नगर के पास पहुँच कर कही छिपी है और यह आदमी तुर्क सेना का गुप्तचर या पूर्वचर है। अगर तुर्क सेना ही आई है तो अकेले ही उससे युद्ध करना संभव नही। लेकिन जो भी हो, असली बात का पता लगाए बिना हेमचन्द्र चैन से बैठन वाले न थे। जिस महान् उद्देश्य के लिए उन्होने मृणालिनी को छोड़ रखा है, आज की रात सो कर, उस काम की उपेक्षा करना उनके लिए सभव नही। विशेषकर यवन वध मे हेमचन्द्र को आतरिक सुख मिलेगा। पगडी वाला सिर देख कर ही यह इच्छा प्रबल रूप से जाग उठी, तब उनके शात बैठने की संभावना कहाँ ? इस लिए जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हेमचन्द्र राजपथ पर चले।

अट्टालिका से राजपथ कुछ दूर है। जिस रास्ते से अट्टालिका से राजपथ जाना पड़ता है, वह थोडे से आदमियो के पैदल चलने का ग्रामपथ-मात्र है। तब हेमचन्द्र उसी राह से चले। उसी रास्ते के किनारे सीढ़ियो से सुशोभित एक खूब चौडी बावली थी। उस बावली के किनारे पर मौलश्री, शाल, अशोक, चम्पा, कदम्ब, पीपल, बट, आम, जामुन आदि के पेड थे। पेड योजना वद्ध, एक कतार मे न थे। [कई वृक्षो ने आपस में एक दूसरे की शाखाओ को उलझा कर बावली के किनारे घोर अधकार कर रखा था। दिन मे भी वहाँ अंधेरा ही रहता था। इसी लिए यह कहा जाता था कि यहाँ पर भूत निवास करते है। यह शक लोगो के मन मे इतना दृढ हो चुका था कि उधर कोई कभी जाता ही न था। अगर कभी कोई कार्यवश उधर जाता भी तो कभी अकेले न जाता। रात मे तो कोई हरगिज न जाता।

पौराणिक धर्म के एकाधिपत्य के समय हेमचन्द्र भूतयोनि के सबंध मे विश्वासी रहे होगे, इसमे सदेह नही। किन्तु प्रेत के सबध मे विश्वासी होने पर भी वे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उस रास्ते जाने मे हिचकें, वे ऐसे डरपोक नही थे। इसलिए वे नि संकोच तालाब के रास्ते चले गए। नि सकोच थे पर कौतूहल-शून्य नही। अत तालाब के चारो ओर उसके किनारे की ओर वे अच्छी तरह देखते हुए चले। वे सीढी वाले रास्ते के पास पहुचे। एकाएक चौक पड़े। लोगो के विश्वास पर उनका भी मन दृढ हुआ। उन्हो ने देखा कि सबसे नीचे की सीढी पर, पानी मे पेर लटकाए, सफेद कपडे पहने कोई बैठा है। दूर से वह स्त्री-मूर्ति जान पडी। सफेद कपडे, बिना चोटी बँधे खुले बाल, कधो व पीठ पर बालो की लट। दोनो बाँहो और मुखमण्डल को भी बालो से ढँके वह बैठी थी। उसे भी प्रेत समभ कर हेमचन्द्र चुप-चाप आगे बढते जा रहे थे। लेकिन बार-बार मन मे आता—शायद कोई मनुष्य ही है। लेकिन इतनी रात को यहाँ कौन आयेगा। शायद वह कोई तुर्क ही हो? इसी सदेह के कारण हेमचन्द्र वापस लौटे। निर्भय हो वे तालाब के किनारे उतरे, फिर सीढियो से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे। वह मूर्ति हेमचन्द्र की ओर घूमी। उसने अपने हाथो से चेहरे पर छाये बालो को हटाया। हेमचन्द्र ने उसका मुँह देखा। लेकिन वह प्रेतिनी नही, प्रेतिनी होती तो शायद हेमचन्द्र को इतना विस्मय न होता। पूछा, 'कौन मनोरमा? तुम इस समय यहाॅ कहाँ?'

मनोरमा बोली, 'मै तो यहाँ कई बार आती हूँ। पर तुम यहाँ कैसे आए?'

'आवश्यक काम है।'

'इतनी रात को कैसा काम?'

'सो फिर बताऊँगा गा, पर तुम इतनी रात को यहाँ कहाॅ?'

'तुम्हारा यह वेष कैसा? हाथ मे भाला, कमर मे तलवार, तलवार मे यह क्या चमक रहा है? क्या हीरा है? और माथे पर यह क्या है? इसमे भी चमक है? यह क्या है? क्या यही हीरा है? तुमने यह हीरा कहाँ पाया?'

'मेरे पास था।'

'फिर इतनी रात को इतने हीरे पहन कर तुम कहाँ जा रहे हो? चोर छीन लेंगे।'

'मुझसे चोर नही छीन सकते।'

'फिर भी, इतनी रात को इतने जेवरो की क्या जरूरत? क्या तुम विवाह करने जा रहे हो?

'तुम्हे क्या लग रहा है, मनोरमा?'

'लेकिन आदमी को मारने का हथियार ले कर भी कोई क्या विवाह करने जाता है? या क्या तुम युद्ध मे जा रहे हो?'

'किसके साथ युद्ध करूँगा ? तुम यहाँ क्या कर रही हो ?'

'स्नान किया और हवा मे बाल सुखा रही थी। यह देखो, बाल अभी भी गीले है।' कह कर मनोरमा ने गीले बालो को हेमचन्द्र के हाथ से छुलाया।

'इतनी रात को स्नान कैसा ?'

'मेरे शरीर मे ज्वाला होती है।'

'तो गगा-स्नान न करके यहाँ क्यो ?'

'यहाँ का पानी ज्यादा ठण्डा है।'

'तुम बराबर यहाँ आती हो ?'

'हाँ।'

'मै तुम्हारा सम्बन्ध ठहरा रहा हूँ। तुम्हारा विवाह हो गा। विवाह हो जाय गा तो इस तरह कैसे आओगी ?'

'पहले विवाह तो हो।'

हेमचन्द्र हँस पड़े, 'तुझे लज्जा नही, मुँहजली ?'

'तिरस्कार क्यो करते हो ? तुमने तो कहा था कि कभी तिरस्कार न करोगे!'

'इसके लिए क्षमा करना। हाँ, क्या तुमने इधर से किसी को जाते देखा है ?'

'हाँ देखा है।'

'वह किस वेश मे था।'

तुर्क के वेश मे।'

हेमचन्द्र चकित हुए। बोले, 'यह क्या ? तुमने तुर्क को कैसे पहचाना ?'

'मैने पहले भी तुर्क देखा है।'

'कहाँ, कैसे ?'

'कही देखा है। तुम क्या उसी तुर्क की खोज मे जा रहे हो।'

'हाँ, वह किधर गया ?'

'क्यो ?'

'मै उसे मारूँगा।'

'आदमी को मारने से क्या होगा ?'

'तुर्क हमारे शत्रु है।'

'तब एक के मारने से क्या तृप्ति होगी ?'

'मुझे जितने तुर्क दिखाई देगे, सब को मारूँगा।'

'मार सकोगे ?'

'हाँ, मार सकूँगा।'

'तब सावधान, मेरे साथ आओ।'

हेमचन्द्र इधर-उधर करने लगा। यवन के युद्ध मे वह बालिका पथ-प्रदर्शक!

मनोरमा उसके मन का भाव समझ गई। बोली, 'मुझे बालिका समझ कर विश्वास नही करते न ?'

हेमचन्द्र ने गौर से मनोरमा की ओर देखा।

उसने विस्मय से सोचा—'क्या मनोरमा मानुषी है ?'

|६|

पशुपति

गौड देश के धर्माधिकारी पशुपति एक असाधारण व्यक्ति थे। वे दूसरे गौडेश्वर थे। राजा अविक बूढे है। बुढापा की अधिकता की विवशता के कारण दूसरो पर आश्रित रहना उनके लिए आवश्यक था। अत प्रधान अमात्य और धर्माधिकारी के हाथ मे ही गौड राज्य का सारा भार अर्पित था। और अब तो धीरे-धीरे करके वैभव और ऐश्वर्य मे पशुपति गौडेश्वर की बराबरी के आदमी हो चले थे।

पशुपति की उम्र होगी, यही पैतिस साल। अति सुन्दर, दर्शनीय व्यक्तित्व। लम्बी देह, चौडी छाती, सभी अंग अनुपात से सुन्दर और सुगढ। वर्ण तपे सोने जैसा, ललाट बहुत विस्तृत। नासिका लम्बी और ऊँची, ऑख छोटी-छोटी पर असाधारण रूप से चमकदार। चेहरे पर ज्ञान की गभीरता विराजती और गुण के उत्तम भाव की दीप्ति रहती। राजसभा मे उनके जैसा सर्वाङ्ग-सुन्दर पुरुष और कोई न था। लोगो का कहना था कि गौड देश मे वैसा प्रखाण्ड पडित दूसरा नही।

पशुपति ब्राह्मण है, लेकिन कोई ठीक से नही जानता कि उनका जन्म-स्थान कहाँ है। बस इतना भर लोगो को मालूम है कि उनके पिता शास्त्र-व्यवसायी गरीब ब्राह्मण थे। पशुपति अपनी ही विद्या-बुद्धि के प्रभाव से गौड राज के इतने उच्च पद पर प्रतिष्ठित हुए थे।

अपनी युवावस्था मे काशी मे पिता के पास रह कर पशुपति शास्त्र का अध्ययन् करते थे। वही केशर नाम के एक बगाली ब्राह्मण भी रहते थे। केशर की एक आठ वर्ष की कन्या थी, नाम था हेमवती। उसी से पशुपति का ब्याह हुआ था। पर किसी दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव के कारण विवाह की रात ही केशर अपनी कन्या को लेकर कही गायब हो गये। फिर उनका पता न चला। इस प्रकार पशुपति पत्नी सहवास से वञ्चित ही रहे। उन्होने दूसरा विवाह भी नही किया। इस समय वे राजप्रसाद जैसी ऊँची अट्टा-

लिका मे रहते थे, पर स्त्री की आँखो की ज्योति के अभाव में वह ऊँची अट्टालिका आज तक अंधकारमय ही रही है।

उसी अपने ऊँचे महल के एकान्त कमरे मे रात को चिराग की रोशनी मे पशुपति अकेली ही बैठे थे। उस कमरे के पिछवाडे ही अमराई की ओर निकलने का एक गुप्त द्वार है। रात के सन्नाटे मे किसी ने आ कर उसी दरवाजे पर खटखटाया। घर के भीतर से पशुपति ने द्वार खोला। एक व्यक्ति भीतर आया। वह मुसलमान है। हेमचन्द्र ने उसे ही अपनी खिडकी पर देखा था। पशुपति ने आगन्तुक को अलग आसन पर बैठा कर विश्वस्त परिचय-पत्र देखना चाहा। मुसलमान ने वही परिचय पत्र दिखाया भी।

पशुपति ने सस्कृत मे कहा, 'समझा। आप तुर्क सेनापति के विश्वासपात्र है। क्या आप का नाम मुहम्मदअली है? अब आप सेनापति का सदेश कहिए।'

यवन ने भी सस्कृत मे ही उत्तर दिया, लेकिन उसकी संस्कृत मे भी तीन हिस्सा फारसी थी और एक हिस्सा सस्कृत। ऐसी संस्कृत भारत के किसी भाग के निवासी भी नही प्रयोग करते। वास्तव मे यह मुहम्मद अली की अपने लिए ही बनाई सस्कृत भाषा थी। पशुपति को बहुत परिश्रम के बाद उसकी बात का अर्थ समझ मे आया।

तुर्क ने कहा, 'खिलजी साहब का उद्देश्य आप को मालूम है। उनकी इच्छा है कि आप बिना लडाई लडे ही गौड देश पर अधिकार करे। आप यह राज्य उन्हे किस प्रकार समर्पित करेगे?'

पशुपति ने कहा, 'यह निश्चय रूप से मै नही कह सकता कि यह राज्य मै उन्हे समर्पित करूँगा या नही। देश-द्रोह महापाप है। मै ऐसा क्यो करूँ?'

'अच्छी बात है। तब मै चलता हूँ। लेकिन तब आपने खिलजी के पास दूत क्यो भेजा था?'

'यही जानने के लिए कि उनमे लड़ाई का कितना हौसला है।'

'वह तो मै ही आपको बताए जाता हूँ। उन्हे लड़ाई में ही आनन्द आता है।'

'मनुष्ययुद्धे पशुयुद्धे च? हाथी की लड़ाई मे भी कितना आनन्द है?'

तब मुहम्मदअली ने तनिक क्रोध के साथ कहा, 'गौड़ युद्ध के उद्देश्य से आना पशुयुद्ध मे आने के समान ही है। मै समझ गया, मजाक करने के लिए ही आपने सेनापति को दूत भेजने को कहा था। लेकिन हम लोग युद्ध करना जानते है, मजाक नही करते।'

यह कह कर मुहम्मदअली जाने को तैयार हुआ। तब पशुपति बोले 'जरा सा ठहरिये। और भी कुछ सुनते जाइये। मै यवनो के हाथो यह राज्य सौपने का पूर्ण विरोधी नही हूँ। इसके लिए पर्याप्त समर्थ भी हूँ। एक प्रकार से मै ही गौड देश

राजा हूँ। वह बूढा तो नाम मात्र का राजा है। लेकिन समुचित मूल्य न मिलने से मै अपना राज्य आप लोगो को क्यो दूँगा ?'

'आप क्या मूल्य चाहते हे ?'

'खिलजी क्या दे सकते हैं ?

'जो कुछ आप का है, सब आप का ही रहे गा। आप का जीवन, वैभव, ऐश्वर्य, पद सभी रहेगा।'

'तब मैने पाया क्या ? यह सब तो अभी ही है। फिर किस लालच से मै यह महापाप करूँ ?'

'हमसे मिल कर न रहने से यह सब कुछ न रहेगा। शायद लडाई करने से आप का जीवन, पद, ऐश्वर्य, कुछ न रह पायेगा।'

'यह तो लडाई लडे बिना नही कहा जा सकता। हम लोगो को युद्ध के लिए बिल्कुल ही अनिच्छुक मत समझिए। खास कर मगध मे विद्रोह की जो तैयारी हो रही है। गौड विजय की चेष्टा उन्हे अब कुछ दिनो के लिए छोड देनी पडेगी। यह सब मै जानता हूँ। मेरी माँगी कीमत मुझे मिले या न मिले, लेकिन युद्ध करना यदि निश्चित होता है तो हम लोगो की तैयारी के लिए यही ठीक समय है। जब बिहार मे विद्रोही सेना सज्जित होगी तब गौडेश्वर की सेना भी सज्जित होगी।'

'नुकसान क्या है ! चीटी के काटने के बाद मच्छर के काटे हाथी नही मरता। लेकिन मै कह जाना चाहता हूँ कि आप बतावे, आप क्या कीमत चाहते है ?'

'सुनिए ! मै ही इस समय वास्तविक गौडेश्वर हूँ। लेकिन अभी लोग मुझे गौडे-श्वर नही कहते। मै अपने को राजा कहवाना चाहता हूँ। चाहता हूँ कि सेनवश का लोप हो और पशुपति गौडेश्वर हो।'

'तब आप हमारा क्या उपकार करेंगे ? हम लोगो को क्या देंगे ?'

'राज-कर ! तुर्को के अधीन मै करदाता राजा होऊँगा।'

'अच्छा, अगर आप ही असली गौडेश्वर है, अगर राजा आप की मुट्ठी मे ही है, तब हमसे बातचीत करने की आप को भला क्या जरूरत है ? हम लोगो की मदद की भी आपको क्या जरूरत है ? आप हमे कर भी क्यो देंगे ?'

'यह बात मै बहुत साफ-साफ बता दूँगा। इसमे कोई कपट न करूँगा। पहले तो सेनराज हमारे प्रभू है, उम्र मे बहुत बूढे है। मुझ पर विश्वास व स्नेह रखते है। अगर मै अपनी शक्ति से उन्हे पदच्युत करूँ तो लोकनिन्दा बहुत होगी। आप लोग आ कर युद्ध किए बिना ही, मेरी मदद से राजधानी मे प्रवेश कर के उन्हे गद्दी से उतार कर मुझे बिठा देंगे, तो निन्दा का अवसर न आयेगा। दूसरे, अनिधकारी के हाथ मे राज्य आने पर विद्रोह की पूरी संभावना रहती है। तब आप लोगो की मदद से मै विद्रोह को बड़ी आसानी से दबा सकूँगा। तीसरे, मेरे खुद राजा बनने से, इस समय

सेनराज के साथ आप लोगो का जो भी सबंध है, वही मेरे साथ भी रहेगा। आप लोगों के साथ युद्ध की जो संभावना है, उसके लिए मै तैयार हूँ। लेकिन लडाई मे हार और जीत दोनो की ही सम्भावना रहती है। जीतने से भी मुझे कोई नया लाभ न होगा, लेकिन हार से तो हानि ही हानि है। फिर आप लोगो से मेल कर के राज्य पाने से वह भी आशका नही रहेगी। खासकर, हर समय लडाई की तैयारी मे ही व्यस्त रहने से नया राज्य ठीक से नही चलता।'

'आप ने यह सब एक राजनीतिक की तरह सोचा है। आपकी बात से मुझे पूरा विश्वास हुआ है। मै भी इसी तरह साफ साफ ढंग से खिलजी साहब का उद्देश्य आपको बताऊँगा। यह बात अपनी जगह पर सच है कि इस समय वे बहुत सी झंझटो मे फँसे है। लेकिन हिन्दुस्तान मे एकमात्र यवन राजा ही एकेश्वर होगे, दूसरे राजाओ का नाम भी हम रहने न देंगे। लेकिन हम आपको गौडराज्य का शासनकर्ता बना देंगे। जैसे दिल्ली मे मुहम्मद गोरी की ओर से शासनकर्ता और प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन है, जैसे पूर्व देश मे कुतुबुद्दीन के प्रतिनिधि बख्तियार खिलजी है, वैसे ही आप भी गौड़ मे बख्तियार के प्रतिनिधि होगे। आप सोच देखिए, आप इस पर राजी है या नही ?'

'मै इस पर राजी हूँ।'

'अच्छा, लेकिन मुझे एक बात और पूछनी है। आप जो कुछ स्वीकार कर रहे है, उसके साधन की क्षमता भी आप मे है ?'

'मेरी आज्ञा के बिना एक भी पैदल सैनिक युद्ध मे शामिल न होगा। राजकोष भी मेरे अनुचरो के ही हाथो मे है। मेरी आज्ञा बिना युद्ध की तैयारी के लिए एक पैसा भी खर्च न होगा। सिर्फ पाँच आदमियो को साथ ले कर खिजली को राजपुर मे प्रवेश करने को कहो। कोई पूछेगा भी नही कि तुम लोग कौन हो ?'

'अब एक बात और रही। इसी राज्य मे आज कल तुर्कों का परम-शत्रु हेमचन्द्र रहता है। आज रात को ही उसका सिर यवन-छावनी मे भेजना होगा।'

'तो आप लोग ही आ कर उसका सिर काटिएगा। मै एक शरणागत की हत्या का पाप अपने ऊपर कैसे ले लूँ ?'

'हम लोगो से यह न हो सकेगा। तुर्कों के आने की बात सुनते ही वह नगर छोड कर भाग जायेगा, यह लगभग निश्चित है। और आज वह भी निश्चित है, अत. आज ही आदमी भेज कर उसका सिर कटवा लीजिए।'

'अच्छा यह भी स्वीकार किया।'

'अब हम संतुष्ट हुए। अब मै आप का जवाब लेकर जाता हूँ।'

'जैसी इच्छा। लेकिन मुझे भी एक बात पूछनी है।'

'सो क्या ? कहिए।'

'मै तो यह राज्य आप लोगो को सौप ही दूँगा। लेकिन बाद मे अगर आप लोग मुझे निकाल बाहर करें ?'

'हमलोग आप की ही बात के सहारे और भरोसे पर थोडी सी सेना ले कर दूत का परिचय देते हुए नगर मे प्रवेश करेंगे। इस पर भी यदि मै अपने दिए गए वचन के अनुसार काम न करूँ, तो आप बडी आसानी से हम लोगो को निकाल दे सकते है।'

'और अगर आप ज्यादा सेना ले कर आये तब ?'

'तब लडाई कीजिएगा।'

इतना कह कर मुहम्मदअली बिदा हुआ।

|७|

गुप्तचर

मुहम्मदअली के बाहर जाते तथा उसके आँखो की ओट होते ही एक और आदमी ने गुप्त द्वार के पास पहुँच कर धीरे से पूछा, 'भीतर आऊँ ?'

पशुपति बोले, 'हाँ आ जाओ।'

एक गुप्तचर भीतर आया। उसने प्रणाम किया। पशुपति ने आशीर्वाद दे कर पूछा, 'कहो शान्तशील, कैसे हो ? सब समाचार ठीक है न ?'

'आप एक-एक करके पूछिए। मै सब समाचार बताता हूँ।'

'यवनो के रहने की जगह भी गये थे ?'

'वहाँ कोई जाने नही पाता।'

'क्यो ?'

'बहुत ही घना वन है, जाना कठिन है।'

'हाथ मे कुल्हाडी ले कर जगल काटते हुए क्यो नही गये ?'

'बाघ और भालू का डर है।'

'हथियार लेकर क्यो नही गये ?'

'जिन लकडहारो ने बाघ व भालू को मार कर वन मे प्रवेश किया, वे सब यवनो के हाथो मारे गये, कोई लौट कर नही आ सका।'

'बहुत होता तो तुम भी न आते ?'

'तब यहाँ आ कर आप को सब समाचार कौन बताता ?'

हँस कर पशुपति बोले, 'तुम्ही आते।'

'मै ही तो समाचार देने आया हूँ।'

'तो तुम वहाँ गये कैसे ?'

तब शान्तशील ने विस्तारपूर्वक बताना शुरू किया, 'सबसे पहले पगडी, तुर्की कपडे और हथियार जुटाये। उन्हे बॉध कर पीठ पर लादा। फिर कई लकडहारो के साथ वन मं घुसा। रास्ते म जब मुसलमानो ने लकडहारो को देखा तो मारने दौड़े। तब मैने भाग कर, पेड़ की ओट मे छिप कर अपना भेष बदला। और तब तुर्क बन कर तुर्कों की छावनी मे सब ओर घूमता रहा।'

'अच्छा, बहादुरी का काम किया। यवन सेना कितनी दिखी ?'

'उस घने जंगल मे जितने समा सकते है, शायद पचीस हजार के लगभग होगे।'

पशुपति चिन्तित मुद्रा मे कुछ देर सोचते रहे। थोडी देर बाद बोले, 'उनकी बातचीत क्या सुनी ?'

'सुना तो बहुत कुछ, पर आप से कुछ बता नही सकता।'

'क्यो ?'

'मै मुसलमानी भाषा मे प्रवीण नही हूँ। हाँ, मुहम्मदअली जो यहाँ आया था, उससे विपत्ति की आशका होती है।'

'क्यो ?'

'वह छिप कर नही आ सका। बहुतेरो को उसके आने का हाल मालूम हो गया है।'

'तुमने यह कैसे जाना ?'

'मैं जब श्रीमान की सेवा मे आ रहा था तब देखा कि एक आदमी एक पेड के पीछे छिपा हुआ है। वह युद्ध के कपड़े पहने हथियारों से लैस था। उससे बातचीत की तो पता लगा कि मुहम्मदअली को यहाँ आते उसने देखा है और उसी की प्रतीक्षा मे वहाँ छिपा खडा है। मैं अंधेरे के कारण उसे पहचान न सका।'

'फिर ?'

'फिर इस सेवक ने उसे चित्रगृह मे कैद कर दिया, तब यहाँ आया।'

प्रसन्न हो कर पशुपति ने कहा, 'बहुत अच्छा किया। अब कल सबेरे उठ कर उस आदमी का प्रबंध किया जायगा। आज की रात उसे कैद मे ही पडा रहने दो। हाँ, तुम्हे अब एक बात और करनी पड़ेगी। यवन सेनापति की इच्छा है कि आज रात मे ही वे मगध-राजपुत्र का कटा सिर देखें। उसे अभी काटने की व्यवस्था करो।'

'यह काम इतना आसान नही है। राजपुत्र कोई चीटी मच्छर तो नही कि—'

'मै तुम्हे अकेले ही इसके लिए जाने को नही कह रहा हूँ। कुछ और आदमियो के साथ ले जा कर तुम उस पर आक्रमण करो।'

'लोग क्या कहेगे ?'

'लोगो मे प्रसिद्ध कर दो कि डाकुओ ने उसे मारा है।'

'ठीक है, जैसी आज्ञा ! तो मै जाता हूँ।'

तब पशुपति ने शान्तशील को खूब इनाम दे कर विदा किया। फिर विभिन्न नक्काशी वाले उस मदिर मे गये जहाँ अष्टभुजा की मूर्ति स्थापित थी। वहाँ जा कर मूर्ति को उन्होने साष्टाग दण्डवत किया। फिर उठ कर प्रणाम कर के दोनो हाथ जोड कर भक्तिभाव से इष्ट देवी की स्तुति करते हुए कहा, 'माँ, विश्वपालिनी ! मै अगाध सागर मे कूद पडा हूँ। तुम्ही देखना और मेरा उद्धार करना। मै अपनी माँ-स्वरूपा जन्मभूमि को कभी भी देवद्वेषी यवनो के हाथ न बेचूँगा। यह मेरी मात्र अल्पकालीन सधि है ताकि मै अक्षम और वृद्ध राजा की जगह पर राजा बन सकूँ। जैसे एक काँटे को दूसरे काँटे से निकालने के बाद दोनो काँटे दूर फेक दिये जाते है, वैसे ही यवनो की मदद से राज्य पा कर, राज सहायता से मै यवनो का नाश करूँगा। इसमे क्या पाप है माँ ? यदि इसमे भी पाप हो तो मै सारा जीवन प्रायश्चित करूँगा। जगत-पालन-कर्त्री ! प्रसन्न हो कर मेरी कामना पूरी करो।'

इतना कह कर पशुपति ने फिर दण्डवत किया। फिर उठ कर अपने कमरे की ओर जाने लगे। तभी पलट कर देखा-अपूर्व सौंदर्य का शुभ दर्शन ! सामने ही दरवाजे को छेंक कर प्रतिमा रूपी, सौदर्य की देवी, एक तरुणी खडी है।

चौक कर पशुपति क्षण भर को काँप उठे फिर आनन्द से फूल गये। तभी तरुणी ने वीणा के झंकृत स्वर मे कहा, 'पशुपति !'

पशुपति पहचान गया। मनोरमा थी।

|८|

मोहिनी

रत्न-प्रदीप की रोशनी से चमकते मदिर के दरवाजे पर मनोरमा को देख कर पशुपति का मन समुद्र की लहरो की तरह उछलने लगा। मनोरमा अभी पूर्ण यौवना नारी नही है, बालिका सी दिखाई पडती है। शायद इसलिए कि उसके चेहरे की काति अत्यन्त कोमल है, अत्यन्त मधुर, बिल्कुल बालिका वयस सी। इसी से उस दिन उसे पहली बार देख कर हेमचन्द्र ने उसकी आयु का अंदाज किया था—पन्द्रह वर्ष। शायद मनोरमा की आयु पन्द्रह की ही होगी, या सोलह या उन्नीस। ठीक से नही कहा जा सकता।

मनोमरा की उम्र चाहे जितनी हो पर उसकी अतुलित रूप-राशि है। उस पर आँखे नही ठहरती, फिसल पडती है। बाल्य, कैशोर, यौवनकाल, हर काल मे वह रूप-राशि दुर्लभ है। चपई सुनहला रंग, लाल नागिनो की तरह बालो की फैली लटकती लटें। सरोवर के जल से भीग कर इस समय वही बाल आपस मे लिपट गए है। निर्मल उज्ज्वल ललाट, भंवरो से चंचल नयन, सुन्दर सुगठित नासिका, सबेरे के ओस से भीगे से ओठ, प्रात सूर्य की किरणो के स्पर्श से खिलने वाले कमल से स्तनयुगल, गालो पर गगाजल के विस्तार सी हँसी, हसिनी सी गर्दन—वेणी बाँधने के बाद भो गर्दन पर कुछ घुँघराले बाल हर समय खेल करते रहते। दोनो दतपक्तियाँ यदि फूलो सी कोमल होती, या चम्पा को गठन मिलता, या चन्द्रकिरण को शरीर मिलता तो सम्भवत वह मूर्ति बनाई जा सकती थी।

मनोरमा की रूपराशि अतुल है। केवल उसके सर्वांगीय सुकुमारता के कारण उसका सब कुछ सुकुमार है, उसका चेहरा सुकुमार, अधर सुकुमार, ललाट सुकुमार, कपोल और केश भी सुकुमार है। गर्दन घूमने मे भी एक सुकुमारता है। बाँहो की भगिमा मे सुकुमारता है, हृदय के उच्छ्वास मे सुकुमारता, चरण चालन मे सुकुमारता, बोली मे सुकुमारता, कटाक्ष मे भाव-भगिमा मे सुकुमारता। वही सुकुमारता की मूर्ति दरवाजे पर बेधडक खडी है। पशुपति का चेहरा देखने के लिए अपना मुँह थोडा उठाए, आँखो के तारे स्पंदित और सरोवर जल से सिंचे हुए, बालो की कुछ लटो को एक हाथ से पकड़े और एक पैर को थोड़ा सा आगे बढा कर मनोरमा जिस मनोरम भाव से खडी है, वह भाव भी सुकुमार है।

पशुपति उसकी ओर एकटक अतृप्त नयनो से देखने लगे।

|९|

मोहिता

पशुपति उसकी ओर एकटक अतृप्त नयनो से देखते रहे। बडी देर तक देखते-देखते उन्हे मनोरमा के अतुलित सौदर्य मे एक अपूर्व महिमा के दर्शन हुए। पशु-पति के देखते-देखते मनोरमा का सुकुमार मुख-मण्डल धीरे-धीरे गम्भीर होता गया। अब उस बालिका मे पहले जैसा सुकुमार भाव लुप्त हो गया। अजीब ज्योतिर्मय तेज के साथ अधेड उम्र मे भी दुर्लभ, गम्भीरता उस पर छा गई। सरलता को दबा कर

तेजोमय प्रतिभा जाग उठी। पशुपति बोले, 'मनोरमा, इतनी रात को अकेली क्यो आई हो ? यह क्या ? आज तुम्हारा ऐसा भाव कैसे ?'

मनोरमा ने उत्तेजना मे भी सहज बनते हुए पूछा, 'तुमने मेरा कौन सा भाव देखा है ?'

'तुम्हारी दो मूर्तियाँ है—एक मूर्ति सरल बालिका की। आज तुम्हारी वह मूर्ति नही। उसी रूप को देख कर मेरा मन शीतल होता है। पर तुम्हारी आज की गम्भीर, तेजस्विनी, प्रतिभामयी, प्रखर मूर्ति है। इस मूर्ति से मुझे डर लगता है। समझ जाता हूँ कि तुम्हारे मन मे कोई कठोर निश्चय है। आज तुम यह मूर्ति ले कर मुझे डर दिखाने क्यो आई हो ?'

'पशुपति ! तुम इतनी रात मे जाग कर क्या कर रहे हो ?'

'मै तो राज-काज में व्यस्त हूँ—लेकिन तुम—?'

'फिर वही बात, पशुपति ! राज-काज मे या अपने काम मे ?

'अपना काम ही समझो। राज-काज हो या अपना कार्य हो, मै भला कब व्यस्त नही रहता ? लेकिन तुम आज यह सब क्यो पूछ रही हो ?'

'मैने सब सुन लिया है।'

'क्या सुन लिया है ?'

'यवन के साथ पशुपति की सधि-वार्ता। शान्तशील के साथ चर्चा और उसे दिया गया आदेश। दरवाजे पर से मैने सब सुना है।'

'पशुपति के चेहरे पर एकाएक अँधेरा छा गया। बहुत देर तक चिंतित मुद्रा मे खडे रहने के बाद बोले, 'अच्छा ही हुआ ! मै यह सब बातें तो तुमसे कहता ही, बस इतना ही अतर हुआ कि तुमने सब पहले ही सुन लिया। बोलो, तुम कौन बात नही जानती ?'

'पशुपति ! तुम मेरा त्याग कर रहे हो ?'

'ऐसा क्यो मनोरमा ! तुम्हारे लिए ही तो मैने यह सब सलाह की है। अभी मै राजा का नौकर हूँ, अधीन हूँ, सब कुछ अपनी इच्छानुसार नही कर सकता। इस समय विधवा-विवाह करने से समाज से वहिष्कृत होना पडेगा। लेकिन जब मैं स्वय राजा हो जाऊँगा, तब भला कौन मुझे वहिष्कृत कर सकेगा ? जैसे बल्लालसेन ने कौलीन्य के लिए नई पद्धति चलाई थी, वैसे ही मै भी विधवा-विवाह करके एक नई पद्धति चलाऊँगा।'

'पशुपति ! यह सब मेरा मात्र-सपना है। तुम्हारे राजा बनने से मेरा वह सपना भी भंग हो जायगा। मैं कभी तुम्हारी रानी नही बन सकती।'

'ऐसा क्यो मनोरमा ?'

'क्यो क्या, जब तुम राज्यभार ग्रहण करोगे, तब भी मुझमे प्रेम करोगे ? तब तो राज्य ही तुम्हारे मन मे प्रधान स्थान पायेगा। तब तो मेरे प्रति तुम्हारा अनादर ही

होगा। जब तुम मुझसे प्रेम ही न करोगे, तब मै क्यो तुम्हारी पत्नीत्व के बन्धन में बँधूँगी ?'

'ऐसी बात तुम्हारे मन मे आई क्यो ? पहले तुम होगी। राज्य पीछे होगा।'

'राजा हो कर ऐसा न कर सकोगे। राज्य की अपेक्षा करके यदि रानी से ज्यादा प्रेम करोगे तो तुम राज्य ही न कर सकोगे। तब तुम्हे राज्यच्युत होना पडेगा। स्त्री-दास राजा का राज्य नही रहता।'

पशुपति प्रशंसा की दृष्टि से मनोरमा का चेहरा देखते रहे, फिर कहा, 'जिसके बाँये ऐसी सरस्वती रहे, उसे भला क्या आशंका ? न सही, ऐसा ही हो। मैं तुम्हारे लिए राज्य का भी त्याग कर दूँगा।'

'अब त्याग ही करना है तो राज्य ले ही क्यो रहे हो ? त्याग के लिए ग्रहण का क्या अर्थ है ?'

'तुमसे विवाह।'

'अब यह आशा छोड दो। तुम राज्य पाओगे तो कभी मुझे पत्नी रूप मे नही पा सकते।'

'क्यो मनोरमा, ऐसा मैने क्या अपराध किया है ?'

'तुम विश्वासघाती हो। एक विश्वासघाती की भक्ति मै कैसे करूँ ? किस तरह विश्वासघाती से प्रेम करूँ ?'

'क्यो मै विश्वासघाती कैसे हुआ ?'

'अपने प्रतिपालक को ही राज्य-च्युत करने की योजना बना रहे हो, शरणागत राजपुत्र का सिर काटने का आदेश दे रहे हो, क्या यह सब विश्वासघात के कार्य नही है ? जिसने अपने राजा के आगे अपना विश्वास भ्रष्ट किया, वह स्त्री के प्रति विश्वास-घाती क्यो न होगा ?'

पशुपति चुप हो गये। मनोरमा कहती रही, 'पशुपति ! मै तुमसे बिनती करती हूँ, यह कुमति छोड़ दो।'

पशुपति पहले की तरह ही सिर झुकाए खड़े रहे। उनकी दोनो ही आकाक्षाएँ—राज्यप्राप्ति की और मनोरमा को पाने की—दोनो ही बडी थी। राज्य पाने का यत्न करने से मनोरमा का प्रणय खोना पड़ेगा। उनका मन चचल हो उठा। सोचा, यदि मनो-रमा को पाऊँ तो भिक्षा भी अच्छी है, राज्य से क्या मिलेगा ? इसी तरह बार-बार मन मे अनेक विचार उठने लगे। फिर तत्काल ही विचार आया,—लेकिन इससे लोक-निन्दा होगी, समाज मे कलकित होना पडेगा, जाति-भ्रष्ट होगी, सब के सामने तिरस्कृत, घृणित होना पडेगा। यह सब कैसे सह सकूँगा ? पशुपति चुपचाप सब सोचते रहे।

पशुपति से कोई उत्तर न पा मनोरमा ने कहा, 'सुनो पशुपति ! तुमने मेरी बात का जवाब नही दिया। अब मै चली। लेकिन यह प्रतिज्ञा करके जाती हूँ कि विश्वासघाती के साथ इस जन्म मे मेरी भेंट न होगी।'

यह कह कर मनोरमा जाने के लिए घूमी। पशुपति रो उठे। तब मनोरमा ने लौट कर पशुपति का हाथ पकड लिया। पशुपति ने उसके मुँह की ओर ताका। पशुपति ने देखा कि तेजस्विनी, सिकुडी भौहो से तिरछे देखने वाली वह कठोर मूर्ति अब वहाँ न थी। प्रतिभा से उत्तेजित वह मूर्ति अब बिदा हो चुकी है और उसके स्थान पर फूल सी सुकुमारी वही बालिका मूर्ति उनका हाथ पकड़े रोने मे उनका साथ दे रही है।

अपने को सम्हाल कर मनोरमा ने पूछा, 'पशुपति! रोते क्यो हो?'

पशुपति ने आँसू पोछे और कहा, 'तुम्हारी बातो पर।'

'क्यो मैंने ऐसा क्या कहा है?'

'तुम मुझे त्याग कर, ठुकरा कर जा रही थी।'

'अब मै ऐसा न करूँगी।'

'तो क्या तुम मेरी राजरानी बनोगी?'

'बनूँगी।'

पशुपति के मन मे आनन्द-सागर उछलने लगा। दोनो की आँखे आँसुओ से भरी थीं। गीली आँखो से दोनो एक दूसरे को देर तक देखते रहे।

फिर एकाएक मनोरमा यक्षिणी की तरह घूम कर चली गई।

|१०|

फन्दे में

सरोवर के किनारे मिल कर हेमचन्द्र और मनोरमा जब तुर्क की खोज मे चले थे तब धर्माधिकारी के घर से कुछ दूरी पर रुक कर मनोरमा ने हेमचन्द्र से कहा, 'सामने वह महल देख रहे हो?'

'हाँ, देख रहा हूँ।'

'वही वह तुर्क गया है।'

'वहाँ क्यो गया है?'

इस प्रश्न का कोई जवाब न दे कर मनोरमा ने कहा, 'तुम यही, इस पेड़ की आड मे छिपे रहो। तुर्क को इसी राह से लौटना पडेगा।'

'तो तुम कहाँ जाओगी?'

'मै भी इसी महल मे जाऊँगी।'

हेमचन्द्र ने सहमति प्रकट की। मनोरमा का आचरण देख कर उन्हे विस्मय हो

रहा था। वे मनोरमा की सलाह के अनुसार ही एक बड़े पेड की आड मे छिप कर खड़े हुए। मनोरमा ने गुप्त द्वार से चुपचाप महल मे प्रवेश किया।

ठीक उसी समय शान्तशील पशुपति के पास उसके घर जा रहा था। उसने देखा कि कोई आदमी पेड की आड़ मे छिपा खड़ा है। तब मात्र सदेहवश शान्तशील उस पेड के पास गया। वहाँ हेमचन्द्र को खडा देख, बिना पहचाने ही उसने चोर समझ कर कहा, 'कौन है ? तुम कौन हो ? यहाँ छिपे क्या कर रहे हो ?' तभी उसकी दृष्टि हेमचन्द्र के बहुमूल्य अलकारो से सुशोभित योद्धा-वेश पर पडी और तत्काल ही उसने अपनी भाषा को सतुलित कर के पूछा, 'आप कौन है ?'

'मै कोई भी होऊँ, आप क्यो परेशान हो रहे है ?'

'आप यहाँ क्या कर रहे है ?'

'यहा खडा मै यवन को खोज रहा हूँ।'

सुन कर शातशील चौक पडा। पूछा, 'यहाँ यवन कहाँ है ?'

'एक इसी घर मे गया है।'

शातशील ने भयातुर हो कर पूछा, 'इस घर मे क्यो गया है ?'

'यह मै नही जानता।'

'यह घर किसका है ?'

'यह भी मै नही जानता।'

'तब आपने कैसे जाना कि इस घर मे कोई यवन गया है ?'

'यह सब सुन कर तुम क्या करोगे ?'

'यह घर मेरा ही है। यदि यवन इसमे गया है तो निश्चय ही वह अनिष्ट करने ही गया है। आप योद्धा जान पडते है। यवन के शत्रु। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ चलिए। दोनो मिल कर उसे पकड़ें।'

हेमचन्द्र राजी हो गए। शान्तशील के साथ चल पड़े। तब हेमचन्द्र को साथ ले कर सिंहद्वार से शातशील ने पशुपति के घर मे प्रवेश किया। और एक कोठरी के भीतर जा कर कहा, 'इसी कोठरी मे मेरा सर्वस्व है, सोना, इत्यादि सब कुछ। आप इसकी रक्षा कीजिए। मै अभी पता लगाता हूँ कि यवन किधर गया है।'

कह कर, झटपट शातशील कोठरी से बाहर आया और हेमचन्द्र के कुछ कहने के पहले ही कोठरी का दरवाजा बन्द कर लिया।

हेमचन्द्र समझ गये कि वे फदे मे फँस कर कैद हो गए है।

।११।

मुक्ति

पशुपति से बिदा होकर मनोरमा सीधे उसी चित्रगृह मे गई जहाँ हेमचन्द्र कैद थे। पशुपति और शातशील की बातो मे ही उसने सुन लिया था कि हेमचन्द्र वही कैद है। आते ही उसने चित्रगृह का किवाड खोला और हेमचन्द्र से बोली, 'हेमचन्द्र, जल्दी से बाहर निकलो।'

हेमचन्द्र झपट कर आये। मनोरमा के साथ-साथ बाहर की ओर चले। तब हेमचन्द्र ने पूछा, 'मै क्यो कैद किया गया था ?'

'यह सब बाद मे बताऊँगी।'

'जिसने मुझे यहाँ बद किया, वह कौन है ?'

'शातशील।'

'शांतशील कौन ?'

'गुप्तचर।'

'यह क्या उसी का घर है ?'

'नही।'

'फिर यह किसका घर है ?'

'सब बाद मे बताऊँगी।'

'वह यवन कहाँ गया ?'

'छावनी मे।'

'छावनी ? कितने यवन आये है ?'

'यही पचीस हजार।'

'उनकी छावनी कहाँ है ?'

'जंगल में।'

'कौन सा जगल ?'

'कुछ दूरी पर, नगर के उत्तर।'

हेमचन्द्र गंभीर हो कर कुछ सोचने लगे। तब मनोरमा बोली, 'क्या सोचने लगे ? क्या तुम उसके साथ युद्ध करोगे ?'

'पचीस हजार के साथ अकेले युद्ध कैसे सम्भव होगा ?'

'तब क्या करोगे ? घर लौट चलोगे ?'

'अभी घर नही जाऊँगा।'

'फिर कहाँ जाओगे ?,

'उसी जंगल मे।'

'जब लडना नही है, तब जंगल मे क्यो जाओगे ?'

'यवनो को देखने।'

'जब लडना ही नही है, तब देखोगे भी क्यो ?'

'देख कर समझूँगा कि उन्हे कैसे मारा जा सकता है।'

मनोरमा चौक पडी। बोली, 'पचीस हजार को कैसे मारोगे ?'

'मनोरमा तुम्हे यह सब बाते कहाँ पता लगी ?'

'इतनी ही नही, और भी बाते है। आज तुम्हे मारने के लिए तुम्हारे घर मे डाकू आवेगे। आज घर मत जाना।'

यह कह कर मनोरमा एक साँस मे भाग गई।

|१२|

अतिथि-सत्कार

हेमचन्द्र घर लौटे। एक सुन्दर सा तेज घोडा कस कर उस पर सवार हुए और चाबुक मार कर घोड़े को तेज दौड़ाते हुए जंगल की ओर चले। आबादी पार किया, फिर मैदान। मैदान का भी थोड़ा सा भाग पार किया। ठीक इसी समय उन्हे अपने दाहिने कंधे पर थोड़ा सा दर्द मालूम पडा। देखा कि कंधे पर एक तीर चुभा है। पीछे से घोड़ो के टापो की आवाज भी सुनाई दी। घूम कर देखा कि तीन सवार उनका पीछा करते आ रहे है।

हेमचन्द्र घोडे का मुँह फेर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। फिर देखा कि हर एक सवार ने उन्हे ही निशाना साध कर एक-एक तीर चलाया। हेमचन्द्र ने अपने अद्भुत कौशल से हाथ का भाला उठा कर तीन तीरो को एक बार मे ही गिरा दिया।

सवारो ने फिर एक साथ तीर चलाया और उनके भी नष्ट होते होते फिर चलाया। इस प्रकार हेमचन्द्र पर लतातार तीर चलने लगे। तब हेमचन्द्र ने एक विचित्र रत्न-जडित चमड़े के टुकड़े को हाथ मे लिया और उसे घुमाते हुए देखते ही देखते उस वाण-वर्षा को बेकार कर दिया। शायद दो एक तीर घोडे को लगे हो, पर वे अछूते रहे।

हेमचन्द्र का यह कौशल देख कर तीनो सवार विस्मित हो चुप रह गये। वे

आपस मे कुछ सलाह करने लगे। यह अवसर देख कर हेमचन्द्र ने एक सवार पर तीर चलाया। निशाना अचूक था एक सवार के माथे पर तीर लगा। वह उसी क्षण घोड़े की पीठ पर से जमीन पर आ गिरा।

यह देख कर अन्य दोनो सवार घोड़ो को चाबुक लगा, अपने-अपने भाले तान कर हेमचन्द्र पर झपटे और भाला तान कर मारा। यदि दोनो सवार हेमचन्द्र को लक्ष्य कर भाला चलाते तो अपने रण-कौशल से हेमचन्द्र अवश्य बच जाते। लेकिन उन सवारो ने हेमचन्द्र के घोडे को निशाना बनाया। उतनी दूर नीचे की ओर हाथ चलाने मे हेमचन्द्र को थोडा बिलम्ब हुआ। फिर भी एक का निशाना तो खाली गया और दूसरे का घोडे की गरदन के नीचे लगा। उस चोट को न सह पा कर वह घोडा बेदम हो कर जमीन पर लोट गया। तभी हेमचन्द्र जल्दी से गिरते हुए घोडे पर से उछल कर जमीन पर जा खडे हुए। उन्हो ने पलक झपते अपने हाथ का कराल भाला तान कह कहा, 'मेरे पिता का दिया हुआ यह शूल शत्रु का रक्तपान किए बिना कभी नही लौटता।' उनकी यह बात समाप्त होते न होते उनके तेज भाले से छिद कर दूसरा सवार भी जमीन पर आ गिरा।

अब तीसरा सवार जल्दी से अपने घोड़े का मुँह फेर कर भागा। वह शान्त-शील था।

अब हेमचन्द्र ने अपने कंधे मे चुभा तीर निकाला। तीर मास मे कुछ गहरे धँस गया था। निकलते ही खून की धारा फूट निकली। हेमचन्द्र अपने कपडो से उसे रोकने का प्रयत्न करने लगे। लेकिन उन्हे सफलता न मिली। काफी खून वह जाने के कारण हेमचन्द्र थोडी-थोडी कमजोरी का अनुभव करने लगे। वे समझ गए कि अब यवनो की छावनी मे जाने की कोई भी सभावना न थी। घोडा भी मारा गया, अपने को भी चोट लगी। अतएव खिन्न मन से धीरे-धीरे लौटने लगे।

हेमचन्द्र ने मैदान पार किया। तब तक शरीर काफी शिथिल हो गया था। खून से सारा शरीर भीग गया। चलने की शक्ति भी घटने लगी। बड़े कष्ट से वे नगर मे आए। अब चला नही जाता। एक कुटी के पास एक वटवृक्ष के नीचे बैठ गये। तब सबेरा होने लगा था। रात्रि जागरण, रात भर परिश्रम करने, खून बहने से कमजोर होने के कारण हेमचन्द्र को चक्कर सा आने लगा। उन्होने पेड के तने से अपनी पीठ टिका ली। आँखें मुँद गई। नीद सी लगी, होश जाता रहा।

निद्रा या बेहोशी के आवेग मे स्वप्न मे हेमचन्द्र ने सुना-कोई गा रहा है—

'कण्टके गढिलो विधि, मृणाल अधमे।'

तीसरा भाग

|१|

वे तुम्हारे कौन हैं ?

जिस कुटी के पास पेड़ के नीचे हेमचन्द्र बैठ कर बेहोश हो गये थे, उस कुटी मे एक रंगरेज रहता था। कुटी मे तीन कोठरियाँ है। एक कोठरी मे उसका रसोई-पानी है, दूसरे मे उसकी पत्नी, बाल-बच्चो के साथ सोई है, तीसरी कोठरी मे रगरेज की युवती कन्या रत्नमयी और दो अन्य स्त्रियाँ सोई है। ये दो स्त्रियाँ थी—मृणालिनी और गिरिजाया, जिन्हे नगर मे अन्य कही आश्रय न मिला था अत यही थी।

सबेरे तीनो स्त्रियाँ ही पहले जगी। सबसे पहले रत्नमयी। उसने गिरिजाया को पुकारा, 'सखी ?'

'क्या है सखी ?'

'तुम कहाँ हो ?'

'बिछौने पर।'

'अब उठो न सखी।'

'अभी नही सखी।'

'तब पानी छिड़क दूँगी।'

'तुम मेरे प्राणो की सखी हो। तुम्हारे समान कोई दूसरा नही है।'

'मै तुमसे बातो मे नही जीत सकती। तुम्हारे आगे बेवकूफ ही बन जाती हूँ। तुम्हारी बातो से मेल नही मिला पाती।'

'क्या और भी मेल चाहिए ?'

'तुम्हारे मुँह मे आग ! अब मेल का काम नही। मै चली अपने काम पर।' कह कर रत्नमयी घर के कामो मे लग गई। मृणालिनी अब तक कुछ न बोली थी। गिरिजाया ने उसे पुकार कर पूछा, 'जगी हो ?'

'जगी ही हूँ। मै तो सदा जगी ही रहती हूँ।'

'क्या सोच रही हो ?'

'जो हमेशा सोचती रहती हूँ।'

तब गिरिजाया ने गम्भीरता पूर्वक कहा, 'क्या करूँ ? मेरा दोष नही है। सुना तो है कि वे इसी नगर मे है, पर अभी तक उनका पता न लगा। अभी हमे भी आए दो-तीन दिन ही तो हुए हैं। जल्दी ही पता लग जायगा।'

'गिरिजाया, यदि यहाँ भी पता न चला, तो इस जीवन मे अब इसी कुटिया मे रहना होगा। मेरे लिए अब कोई जगह नही बची।' कह कर मृणालिनी ने अपना मुँह ढँक लिया। गिरिजाया के गालो पर भी आँसू लुडकने लगे।

इसी समय घबराई हुई रत्नमयी ने आ कर कहा, 'सखी, सखी ! जरा देखो तो। हमारे बरगद के नीचे कौन सोया पडा है। एक विचित्र पुरुष।'

गिरिजाया बाहर देखने गये। मृणालिनी ने भी कुटी के दरवाजे पर आ कर देखा। देखते ही दोनो पहचान गईं।

समुद्र मे जैसे एक बारगी तूफान आ गया। मृणालिनी ने गिरिजाया को बाहों मे कस लिया। इस समय भी गिरिजाया गा उठी—

'कण्टके गढिलो विधि मृणाल अधमे।

इसी कडी ने बेहोशी मे भी हेमचन्द्र के कानो मे प्रवेश किया था। गिरिजाया की इस बेमौके की तान पर खीझ कर मृणालिनी ने कहा, 'चुप राक्षसी ! मै तेरा कभी मुँह न देखूँगी। देख देख, वे तो जाग गये। यही से देख कि वे अब क्या करते है ! जहाँ वे जायें, दूर रह कर उनके साथ ही जा। यह क्या ? उनके शरीर पर इतना खून कैसे ? चल मै भी साथ ही चलती हूँ।'

हेमचन्द्र की बेहोशी दूर हो गई थी। सबेरा हुआ देख कर वे भाला टेक कर उठ खडे हुए और धीरे-धीरे अपने घर की ओर बढे।

हेमचन्द्र के थोडा आगे बढ जाने पर मृणालिनी और गिरिजाया उनके पीछे घर से निकली। तब देख कर रत्नमयी ने पूछा, 'वे तुम्हारे कौन है ?'

मृणालिनी ने कहा, 'भगवान जाने।'

|२|

प्रतिज्ञा

इतनी देर विश्राम कर लेने से हेमचन्द्र कुछ स्वस्थ हुए। खून का बहना भी कम हो गया। भाला टेकते हुए हेमचन्द्र धीरे-धीरे घर लौटे।

घर आ कर उन्होने देखा कि मनोरमा दरवाजे पर ही खडी है।

मृणालिनी और गिरिजाया ने भी ओट मे रह कर मनोरमा को देखा।

मनोरमा चुपचाप मूर्ति सी खडी थी। उसे देख कर मृणालिनी ने मन मे सोचा, 'राज-पुत्र यदि रूप पर रीझे हो तो मेरी सुख की रात का सबेरा हो गया।' गिरिजाया ने सोचा, 'राजपुत्र यदि रूप पर रीझे हो तो मेरी सखी का भाग्य ही फूट गया।'

हेमचन्द्र ने मनोरमा से पूछा, 'इस तरह क्यो खडी हो ?'

मनोरमा कुछ न बोली तो हेमचन्द्र ने ऊँचे स्वर मे पुकारा, 'मनोरमा ?'

फिर भी कोई जबाब नही। तब मनोरमा की आँखें आकाश की ओर लगी थी।

हेमचन्द्र ने पुकारा, 'मनोरमा, क्या हुआ ?'

तब मनोरमा ने धीरे-धीरे आकाश से आँखे हटा कर हेमचन्द्र के चेहरे की ओर देखा और देर तक एकटक देखती रही। फिर उसकी दृष्टि हेमचन्द्र के खून से सने कपडो पर पडी। व्याकुल हो उसने पूछा, 'यह क्या हुआ, यह खून कैसा ? तुम्हारा चेहरा क्यो उतरा हुआ है ? क्यो, तुम घायल हुए हो ?'

हेमचन्द्र ने उँगली से कंधे का घाव दिखा दिया।

तब हेमचन्द्र का हाथ पकड कर मनोरमा उन्हे भीतर ले गई। पलग पर बैठाया। कपडे उतरवाए। पानी ला कर खून धो डाला और फिर हरी-हरी दूब उखाड़ कर लाई। दूब को अपने दाँतो से खूब कूचा। फिर कुची हुई दूब को घावो पर रख कर कपड़े से बाँधा। फिर बोली, 'हेमचन्द्र ! और क्या करूँ ? तुम सारी रात जगे हो। अब सो जाओ।'

'हाँ, बहुत नीद आ रही है।'

मनोरमा का काम देख कर मृणालिनी ने चिन्तित हो कर गिरिजाया से कहा, 'यह सब क्या है, गिरिजाया ?'

'नाम तो सुना-मनोरमा।'

'यह क्या हेमचन्द्र की मनोरमा है ?'

'तुम क्या समझती हो ?'

'कुछ भी हो, मनोरमा ही भाग्यवान है। उसने उनकी सेवा की, मै न कर सकी। जिस काम से लिए मैं तड़पती रही, वह मनोरमा ने किया। देवता उसे लम्बी उम्र दे। गिरिजाया, अब मै घर चली। अब मेरा यहाँ रहना ठीक नही। तुम्ही समाचार ले आना कि वे कैसे है ? मनोरमा चाहे जो हो, पर हेमचन्द्र मेरे ही है।'

| ३ |

हेतुः धूमात्

हेमचन्द्र और मनोरमा के घर के भीतर चले जाने के बाद मृणालिनी को विदा कर के गिरिजाया घर के पास ही टहलने लगी। उसे जहाँ-जहाँ भी खिडकी दिखी, वहाँ-वहाँ सावधानी से सिर ऊँचा कर के उसने भीतर झाँका। एक कमरे मे उसे हेमचन्द्र गहरी नीद मे सोते दिखे। मनोरमा भी उन्ही की खाट पर बैठी थी। गिरिजाया वही, उसी खिडकी के नीचे बैठ गई। पहली रात को उसी खिडकी पर हेमचन्द्र ने तुर्क को देखा था।

हेमचन्द्र और मनोरमा मे क्या बातचीत होती है, यही सुनने के लिए गिरिजाया वहाँ बैठी थी। लेकिन हेमचन्द्र सो रहे थे, इसलिए कोई बातचीत नही हुई। अकेली वहाँ बैठी गिरिजाया बडा कष्ट पाने लगी। कुछ बोल नही सकती, गा नही सकती, हँस नही सकती, व्यंग्य नही कर सकती, सब मिल कर भयानक कष्ट है। उसकी जीभ मे खुजली होने लगी। वह मन ही मन सोचने लगी—वह पापी दिग्विजय भी नही दिखता। वही मिलता तो मुँह तो खोलती। उस समय दिग्विजय घर मे काम मे फँसा था। तब गिरिजाया अपने मन मे ही प्रश्न करने और उत्तर देने लगी—

'अरी तू कौन है ?'

'मै गिरिजाया हूँ।'

'यहाँ क्यो आई हो ?'

'मृणालिनी के लिए।'

'मृणालिनी तेरी कौन है ?'

'कोई नही।'

'तब उसके लिए तुझे इतना सिर-दर्द क्यो है ?'

'यहाँ एक और चिडिया है।'

'क्या चिडिया को पकड ले जाएगी ?'

'पकडूँगी भी कैसे ?'

'तब क्यो बैठी है ?'

'चिडिया के लिए मृणालिनी हर रात छिप-छिप कर रोती है। राधाकृष्ण नाम सुना हो, तो फिर जगल से चिडिया को घर ले आ। पढे हुए पक्षी की आशा छोड दे। पिजडा खाली मत रख।'

'मर तू, भिखरिणी की लडकी! तू ने अपने मन जैसी बात कही। यदि मृणालिनी चिढ कर पिजरा तोड डाले ?'

'ठीक है, ऐसा वह कर सकती है ।'

'तब यहाँ बैठ कर क्यो मर रही है ?'

'सिर मे बडी पीडा है । यह जो लडकी घर के भीतर बैठी है, यह मूर्खा है, नही तो अभी तक बोली क्यो नही ? औरतो का मुँह कभी इतनी देर तक बन्द रहा है भला !'

थोडी देर बाद गिरिजाया की मनोकामना पूरी हुई । हेमचन्द्र की नीद टूटी । तब मनोरमा ने पूछा, 'क्या नीद पूरी हो गई ?'

'नीद तो अच्छी आई ।' हेमचन्द्र ने कहा ।

'अब बताओ कि तुम्हे चोट कैसे लगी ?'

तब हेमचन्द्र ने संक्षेप मे रात की घटना कह सुनाई । सुन कर मनोरमा पछताने लगी ।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारे प्रश्न चुक गये ? अब मेरी बातो का जवाब दो । कल रात को जब तुम मेरा साथ छोड कर गईं उसके बाद जो जो भी हुआ, सब बताओ ।'

मनोरमा ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया । गिरिजाया कुछ सुन न सकी । समझी कि गुपचुप बातें हो रही है । उठ कर गिरिजाया फिर मन मे ही प्रश्न और उत्तर देने लगी—

'क्यो समझी ?'

'सिर्फ कुछ लक्षण ।'

'कैसे लक्षण ?'

गिरिजाया उँगली पर गिनने लगी—एक, लड़की अपूर्व सुन्दरी है । आग के सामने क्या घी पिघले गा नही ?—दो, मनोरमा हेमचन्द से प्रेम करती है, नही तो इतना आदर क्यो करती ?—तीन, एकान्त निवास । चार, रात मे साथ-साथ घूमना । —पाँच, गुपचुप बातें करना ।

'क्या मनोरामा हेमचन्द्र से प्रेम करती है ?'

'क्या बिना हवा ही कभी पानी मे लहर उठी है ? यदि कोई मुझसे प्रेम करे, तो मै भी उससे प्रेम करूँगी, इसमे सन्देह नही ।'

'मृणालिनी भी तो हेमचन्द्र से प्रेम करती है । तब हेमचन्द्र भी मृणालिनी से प्रेम करेंगे ही ।'

'ठीक है । लेकिन मृणालिनी अनुपस्थित और मनोरमा उपस्थित है ।'

यही सोचती-बिचारती हुई गिरिजाया उस मकान के द्वार पर आ खडी हुई । उसने एक गीत गा कर कहा,-'भिक्षा दो ।'

| ४ |

उपनयन

गिरिजाया ने गाया—

'काहे सखी जीयत मरत कि विधान ?
ब्रज कि किशोर सखी, कहा गैलो भागई,
ब्रजजन टुटायलो पराण ।'

सगीत की आवाज हेमचन्द्र ने सुनी । स्वप्न मे सुने शब्द के समान उन्होने सुना। गिरिजाया गा रही थी—

'ब्रज कि किशोर सखी, कहाँ गैलो भागई,
ब्रजबंधु टुटाइलो पाषाण ।'

हेमचन्द्र ध्यान से सुनने लगे—

मिलि गेई नागरी, भूलि गेई माधव,
रूपविहीन गोप कुमारी ।
को जाने प्रिय सोई, रसमय प्रेमिक,
हे न बधु रूप कि भिखारी ।'

हेमचन्द्र व्याकुल हो कर बोले, 'यह क्या मनोरमा ? यह तो गिरिजाया की आवाज है । मै चला ।'

हेमचन्द्र उछल कर पलंग से उतरे ।

'आगे नाहि बूझनू, रूप देखि भूलनू,
हृदि बेनु चरण-युगल ।
यमुना सलिल सई, अब तनु डाड़व,
आनो सखि भरिखबो गरल ।'

गिरिजाया के सामने आ कर हेमचन्द्र ने घबरा कर पूछा, 'गिरिजाया ! यह कौन है, गिरिजाया ? तुम यहाँ कहाँ ? तुम यहाँ कब आई ? क्यो आई ?'

'मै यहाँ कई दिनो से आई हूँ ।' कह कर गिरिजाया फिर गाने लगी—

'किवा काननवल्लरी, गल बेडि बाँधई,
नबीन तमाले दिबो फाँस ।'

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम यहाँ क्यो आई ?'

'भिक्षा ही मेरी जीविका है । राजधानी मे अधिक भिक्षा मिलेगी, इसी आशा से आई हूँ ।'

'मृणालिनी कैसी है ? देख कर आई हो ?'

गिरिजाया गाने लगी—

'नहे—श्याम श्याम श्याम श्याम, श्याम नाम जपयि!,
छार तनु करबो विनाश ।'

हेमचन्द्र खीझे, 'अपना गाना रहने दो । मेरी बातो का जवाब दो । मृणालिनी कैसी है ? देख कर आई हो ?'

'मृणालिनी को देख कर नही आई, यह गाना अच्छा नही लगता तो दूसरा गाती हूँ । सुनो—

'ए जनमेर सगे कि सई जनमेर साध फुराइबे ।
किवा जन्म-जन्मान्तरे, ए साध मोर पुराइबे ।'

हेमचन्द्र बोले, 'गिरिजाया, मै विनती करता हूँ, इस समय गाना छोडो । मृणालिनी का हाल कहो ।'

'क्या कहूँ ?'

'मृणालिनी से मिल कर क्यो नही आई ?'

'वह गौड नगर मे नही है ।'

'क्यो ? कहाँ गई ?'

'मथुरा ।'

'मथुरा ? किसके साथ गई ? क्यो गई ? कैसे गई ?'

'उसके पिता ने किसी प्रकार खबर पा कर आदमी भेज कर बुलवाया । शायद विवाह होने वाला है । विवाह करने के लिए ही ले गये है ।'

'क्या कहा ? क्या करने ?'

'मृणालिनी का ब्याह करने को उसके पिता ले गये है ।'

हेमचन्द्र ने मुँह फेर लिया । गिरिजाया इस समय के उनके भाव न देख सकी । हेमचन्द्र के कधे के घाव से अभी भी खून बह रहा था, उसे भी वह न देख सकी । उसने पहले की तरह ही गाया—

'बिधि तोरे साधि शुनो, जन्म यदि दिबे पून,
आमारे आबार येन, रमणी-जनम दिबे ।
लाज भय तेयागिबो, ए साध मोर छुटाइबो,
सागर छेचे रतन निबो, कण्ठे राखबो निशि-दिबे ।'

हेमचन्द्र बोले, 'गिरिजाया, तुम्हारा समाचार शुभ है । अच्छा ही हुआ ।'

यह कह कर हेमचन्द्र फिर भीतर चले गये । गिरिजाया के सिर पर तो आकाश ही टूट पडा । गिरिजाया ने झूठ ही मृणालिनी के विवाह की बात कह कर हेमचन्द्र की परीक्षा लेना चाहा था । सोचा था, हेमचन्द्र सुन कर चिढेगे, कातर होगे । लेकिन यह सब तो कुछ भी न हुआ । तब गिरिजाया ने माथा पीट कर सोचा—'हाय, यह मैने

क्या किया ? नाहक क्यों झूठ बोली ? हेमचन्द्र तो कह गए—'समाचार शुभ है।' क्या सुखी हुए ? अब सखी की क्या दशा होगी ?

हेमचन्द्र की बात गिरिजाया भला क्या समझे ! आखिर भिखारिन ही तो ठहरी। जिस क्रोध से यही हेमचन्द्र इसी मृणालिनी के लिए अपने गुरुदेव का सिर काटने को तत्पर हुए थे, आज भी वही दुर्जय क्रोध उनके हृदय मे उभरा था। अभिमान की अधिकता और दुर्गम क्रोध के ढग से ही प्रभावित हो कर हेमचन्द्र ने कहा था—'समाचार शुभ है।'

गिरिजाया इतना सब समझ नही सकी। उसने मन मे सोचा कि यह छठा लक्षण है। किसी ने उसे भिक्षा नही दी, उसने भी आशा त्याग दी।

चुप होकर घर की ओर लौटी।

|५|

एक समाचार और

उसी दिन माधवाचार्य की यात्रा शेष हुई। वे नवद्वीप पहुँचे। पहुँचते ही अपने प्रिय शिष्य हेमचन्द्र को दर्शन दिया, आशीर्वाद दिया, गले लगाया, आलिगन किया, और कुशल-क्षेम पूछने के बाद एकान्त मे बैठ कर दोनो अपने उद्देश्य को पूरा करने के सम्बन्ध मे बातचीत करने लगे।

माधवाचार्य ने विस्तार से अपनी यात्रा का पूरा वृत्तात सुना कर कहा, 'इतने परिश्रम के बाद कुछ काम बना। इस देश के अधीन राजाओ मे अनेक ने रणक्षेत्र मे सेना सहित सेन राजा की सहायता करने की बात स्वीकार की है। अब जल्दी ही सब आ कर नवद्वीप मे एकत्र होगे।'

हेमचन्द्र ने कहा, 'यदि वे लोग यहाँ आज ही नही पहुँचते तो सब प्रयत्न बेकार हो जाय गा। यवन-सेना आ गई है। जगल मे छावनी डाल कर ठहरी है। एक दो दिनो मे ही नगर पर हमला करेगी।'

यह समाचार सुन कर माधवाचार्य कॉप उठे। बोले, 'तब गौडेश्वर की ओर से क्या तैयारी हुई है ?'

'कुछ भी नही।। शायद राजा के कानो तक यह समाचार अभी तक नही पहुँचा है। मैने तो अचानक कल यह समाचार पाया।'

'इस सम्बन्ध मे तुमने राजा के सामने यह परामर्श क्यो नही रखा ?'

'समाचार पाने के तत्काल बाद ही राह में डाकुओ द्वारा घायल हो कर मै सडक पर पडा था, अभी-अभी घर लौट कर कुछ विश्राम करके थोडा स्वस्थ हुआ हूँ। कमजोरी के कारण राजा के पास जाने की शक्ति भी नही थी। अब जाता हूँ।'

'नही, अभी तुम विश्राम करो। मै ही राजा के पास जाता हूँ। फिर जैसा होगा, पीछे तुम्हे समाचार दूँगा।'

यह कह कर माधवाचार्य उठ खडे हुए।

तब हेमचन्द्र ने कहा, पभो! आप तो गौड तक गये थे। सुना है कि—'

माधवाचार्य ने मतलब समझ कर कहा, 'हाँ, गया तो था। तुम सायद मृणालिनी के समाचार की आशा से पूछ रहे हो? लेकिन अब मृणालिनी वहाँ नही है।'

'कहाँ गई?'

'यह मै नही जानता, कोई समाचार नही मिला।'

'क्यो चली गई?'

'यह सब बाते अब युद्ध के बाद बताऊँगा।'

'समस्त बातें मुझसे कहने मे यह शंका मत कीजिए कि मै मर्मपीडा से कातर हो उठूँगा। मैने भी कुछ सुना है। आप जो भी जानते है, मुझसे नि सकोच कह सकते है।'

माधवाचार्य के गौड नगर जाने पर हृषीकेश ने उनसे अपनी शक्ति भर मृणालिनी के बारे मे खूब बढा-चढा कर कहा था। उसी को माधवाचार्य ने भी सच्चा वृत्तात समझा। माधवाचार्य कभी भी स्त्री-जाति के अनुरागी नही। इसीलिए वे अच्छी तरह-स्त्री-चरित्र को समझते भी न थे। इस समय हेमचन्द्र की बात सुन कर उन्होने समझा कि हेमचन्द्र ने वही सब हाल सुन कर मृणालिनी के प्रति मोह त्याग दिया है, इसलिए किसी नई मर्मपीडा की सम्भावना न समझ, फिर बैठ कर उन्होने हृषीकेश द्वारा सुना पूरा वृत्तात विस्तार से हेमचन्द्र को सुनाया।

हेमचन्द्र ने सिर झुका कर, हथेली पर माथा रख कर चुपचाप सब कुछ ध्यान से सुना। माधवाचार्य की बात पूरी होने पर भी कुछ न बोले। उसी तरह चुपचाप बैठे रहे। तब माधवाचार्य ने पुकारा, 'हेमचन्द्र!'

कोई उत्तर न मिला।

फिर पुकारा, 'हेमचन्द्र!'

फिर भी जवाब न मिला।

तब माधवाचार्य ने खडे हो कर हेमचन्द्र का हाथ पकड कर बहुत ही कोमल और स्नेह भरे स्वर से कहा, 'वत्स! तात! मुँह ऊपर उठाओ। मुझसे बाते तो करो।'

हेमचन्द्र ने मुँह उठाया। उस मुँह को देख कर माधवाचार्य डर गये। बोले, 'मुझसे बातें करो। अगर नाराज हुए हो तो उसे ही प्रकट करो।'

तब हेमचन्द ने कहा, 'किसकी बात का विश्वास करूँ? आप कहते है कि हृषी-

केश का ऐसा कहना है और भिखारिणी तो और ही तरह की बातें कह रही थी।'

'कौन भिखारिणी ? उसने क्या कहा है ?'

हेमचन्द्र ने सक्षेप मे गिरिजाया की बताई बातें बता दी।

तब माधवाचार्य ने सकुचित स्वर मे कहा, 'मुझे तो अब हृषीकेश की ही बात झूठ जान पडती है।'

'लेकिन हृषीकेश की बात तो प्रत्यक्ष है।' कह कर हेमचन्द्र उठ खडे हुए। उन्होने पिता का दिया भाला हाथ मे ले लिया। फिर काँपते शरीर से चुपचाप टहलने लगे।

आचार्य ने पूछा, 'क्या सोच रहे हो ?'

हेमचन्द्र ने हाथ के भाले को आगे बढा कर दिखा कर कहा, 'मृणालिनी को इसी भाले से छेद दूँगा।'

माधवाचार्य इस समय हेमचन्द्र के चेहरे के भाव-क्रांति को देख कर काँप उठे। चुपचाप वहाँ से चले गये।

सबेरे ही तो मृणालिनी ने कहा था—'हेमचन्द्र मेरे ही है।'

|६|

मैं तो पागल हूँ

दोपहर ढलते माधवाचार्य लौटे। यह समाचार ले आये कि धर्माधिकारी ने बताया है कि सेना आई है जरूर, लेकिन पूर्व विजित राज्य मे विद्रोह की सम्भावना जान, अब यवन सेनापति सधि करने की इच्छा रखते है। कल वह अपना दूत भी भेजेंगे। दूत के आने को बात पर युद्ध की कोई तैयारी नही हो रही है। यही समाचार दे कर माधवाचार्य ने कहा, 'वह मूर्ख और कुलागार राजा इसी धर्माधिकारी की बुद्धि के कारण ही नष्ट होगा।'

पता नही कितनी बातें हेमचन्द्र सुन सका। उसे अनमना देख माधवाचार्य वहाँ से चले गये।

शाम को मनोरमा हेमचन्द्र के घर पहुँची। हेमचन्द्र को देख कर मनोरमा ने कहा, 'भाई, आज तुम इतने अनमने क्यो हो ? तुम्हारे चेहरे पर सावन की घटाओ जैसे अंधेरा छाया है। भादो की गङ्गा की तरह क्रोध उमड रहा है। इतना भौहे क्यो चढाते हो ? और—और देख रहा हूँ, आँखे गीली है। क्या अभी तुम रोये थे ?'

हेमचन्द्र मनोरमा के मुँह की ओर ताकने लगा। फिर आँखें झुका ली। फिर ऊँची खिडकी की ओर देखा, फिर मनोरमा का चेहरा ताका। मनोरमा समझ गई कि यह दृष्टि बिना किसी अर्थ की है। मनोरमा ने कहा, 'हेमचन्द्र ! तुम क्यो इतने कातर हो रहे हो ? क्या बात है ?'

'कुछ नही।'

मनोरमा पहले तो कुछ नही बोली। फिर अपने आप बडबडाने लगी। बोली, 'कुछ नही कहूँगी। छि छि ! मन के भीतर ही बिच्छू पालूँगी।' कहते कहते मनोरमा की आँखो से आँसू गिरने लगे। फिर एकाएक हेमचन्द्र की ओर मुँह करके कहा, 'मुझसे क्यो नही कहोगे, मै तुम्हारी बहन हूँ न !'

मनोरमा के चेहरे के भाव, शान्त-दृष्टि और आदर, मधुरता से इतनी सहृदयता टपकी कि हेमचन्द्र का मन द्रवीभूत हो उठा। बोले, 'मुझे जो क्लेश इस समय हो रहा है, वह बहन के आगे बताने लायक नही है।'

'तब मै बहन नही हूँ।'

इस पर हेमचन्द्र कुछ न बोले, फिर भी मनोरमा आशाभरी निगाहो से उनकी ओर ताकती रही। फिर कहा, 'तो मै तुम्हारी कोई नही।'

'मै क्या करूँ ? वह बात न तो बहन के सुनने लायक है न किसी और के ही।'

हेमचन्द्र का स्वर अत्यन्त करुण तथा दीनता से भरा है, यह बात मनोरमा को खटकी। उसी क्षण उसका स्वर बदला और उसकी आँखो से चिनगारियाँ छिटकने लगी। अपने होठ काटते हुए, उसने हेमचन्द्र से कहा, 'मुझे कोई दुख नही, मेने मणि के भ्रम मे एक काले साँप को गले मे लपेट लिया था, अब फेक दिया।'

कह कर मनोरमा फिर हेमचन्द्र की ओर ताकने लगी। धीरे-धीरे उसका कठोर हो गया चेहरा मधुर हो उठा, वह बोली, 'समझ गई। तुमने बिना परखे प्रेम किया है, उसी का परिणाम हुआ।'

'प्रेम किया था !' कहते-कहते हेमचन्द्र का चेहरा आँसुओ से गीला हो गया। यह देख कर मनोरमा चिढ गई। बोली, 'छि छि, प्रेम किया था ? तुम अब भी प्रेम करते हो। नही तो रोते क्यो ?' कहते-कहते मनोरमा के चेहरे पर एक प्रौढता आई, उसकी आँखें चमकने लगी, कण्ठ-स्वर और साफ हो गया, आग्रह भी काँपने लगा, बोली, 'यह केवल पुरुषो का दर्प है। अहकार से आग नही बुझाई जा सकती। तुम बालू को बाँध कर गङ्गा का वेग रोकना चाहते हो ! तुम प्रणयिनी को पापिष्ठा समझ कर कभी प्रणय का वेग नही रोक सकते ! हे कृष्ण ! सभी पुरुष एक जैसे होते है !'

हेमचन्द्र ने मन ही मन सोचा, 'मै तो इसे बालिका ही समझता रहा हूँ। लेकिन यह मात्र बालिका नही है।'

मनोरमा बोली, 'तुमने पुराण सुना है ? मैने अर्थ सहित सुना है। उसमे लिखा है

कि भगीरथ गङ्गा ले आये थे। एक दम्भी हाथी उसका वेग रोकने जा कर बह गया था। इसके क्या मतलब है—गङ्गा प्रेम-प्रवाह की तरह है, ईश्वर के चरणो से निकली है। जगत मे पवित्र मानी गई है—जो इसमे स्नान करे वह पुण्य का भागी होता है। वह मृत्युजय की जटा मे विहार करने वाली है। जो मृत्यु को जीत सकता है वही प्रणय को मस्तक पर धारण कर सकता है। मैने जो कुछ सुना है, ठीक वही कह रही हूँ। हाथी दम्भ का प्रतीक है, वह प्रणय-वेग के सामने नही ठहर पाता, बह जाता है। पहले प्रणय अकेले पथ पर चलता हुआ समय आने पर शतमुखी होता है और अन्त मे सागर-सगम मे जा कर लुप्त होता है—संसार के सभी जीव एक दिन विलीन हो जाते है।'

'तो क्या प्रणय मे पात्र का चुनाव नही है? क्या पापी से भी प्रेम करना पडे गा।'

'प्रेम तो सभी से करना चाहिए। प्रेम के लिए पात्र-चुनाव नही होता। प्रेम उत्पन्न होते ही प्रेम का यत्न करना चाहिए। क्योकि प्रणय अमूल्य हे। अच्छे से तो सभी प्रेम करते है, जो बुरा है, जो अपने को भूल कर प्रेम करता है, मै उससे ही अधिक प्रेम करती हूँ, लेकिन मै तो पागल हूँ।'

हेमचन्द्र चकित हो मनोरमा को देखते-सुनते रहे। फिर बोले, 'मनोरमा! यह सब तुमने कहाँ सीखा? तुम्हारा ज्ञानदाता अलौकिक व्यक्ति होगा।'

'वह सर्वज्ञानी है किन्तु—'

'किन्तु क्यो?'

'वह अग्नि के रूप मे प्रकाशित होते है पर जलाते भी है।'

'मनोरमा, तुम्हे देख कर और तुम्हारी बातें सुन कर मुझे लगता है कि तुमने भी प्रेम किया है।'

मनोरमा बोली नही। चुप रही। तब हेमचन्द्र ने कहा, 'अगर यह सच है तो मेरी एक बात सुनो। स्त्रियो के लिए सतीत्व से बडा कोई धर्म नही, जिस स्त्री मे सतीत्व नही, वह सूकरी से भी बढ कर नीच है। ऐसा नही कि केवल कार्य से ही सतीत्व की हानि होती है, पति के अलावा अन्य पुरुष की चिन्ता भी सतीत्व मे बाधा है। तुम विधवा हो, यदि पति के अलावा और किसी को मन मे जगह दो गी तो तुम अधम होगी। इसलिए, सावधान हो। अगर किसी की ओर चित्त गया हो तो उसे भूल जाओ।'

मनोरमा एकाएक ठठा कर हँस पडी। मुँह पर आँचल रख कर हँसने लगी। हँसती ही जाती है। रुकती ही नही। तब ऊब कर हेमचन्द्र ने क्रोध दिखा कर कहा, 'इतना हँसती क्यो हो?'

तब मनोरमा बोली, 'भाई, जा कर गंगा से कहो कि तुम पर्वत पर लौट जाओ।'

'क्यो?'

'स्मृति पर क्या अपना अधिकार है ? काले साँप को अपने मन मे पालने मे भला क्या सुख है ? फिर भी तुम उसे क्यो नही भूल पाते ।'

'उसके दंशन की ज्वाला के कारण ।'

'यदि वह न काटे तो क्या उसे भूल जाओ गे ?'

हेमचन्द्र चुप रहा, जवाब न दे सका । मनोरमा ने फिर कहा, 'तुम्हारी फूल की माला काला साँप हो रही है । तुम उसे कभी भूल नही सकते । मै अपनी फूल की माला को क्यो तोड़ूँ ? मै तो पागल हूँ ।'

'तुम ठीक कहती हो । स्मृति अपने अधीन नही । लोग अपने बडप्पन से अंधे हो कर दूसरो को उपदेश देते है, लेकिन यह हास्यास्पद है । किसी से कोई अर्थ-यश-ज्ञान-भूख-प्यास-नीद छोडने को नही कहता, केवल प्रणय छोडने का उपदेश देता है ! क्या प्रेम इतना छोटा है ? धर्म के लिए प्रेम चाहिए । स्त्री का परमधर्म है सतीत्व ।'

'मै अबला, मूर्खा, ज्ञान-हीना, मै यह सब नही जानती ।'

'सावधान, मनोरमा ! वासना से भ्रान्ति उत्पन्न होती है, भ्रान्ति से अधर्म उपजता है । तुम्हे भ्रान्ति है । तुम विचार कर के देखो तो सही, तुम यदि धर्म के अनुसार एक की पत्नी हो चुकी हो. तब तुम मन से दूसरे की पत्नी बनो तो दुराचारिणी हो गी कि नही ?'

वहाँ एक ओर एक तलवार लटक रही थी । उस तलवार को हाथ मे ले कर मनोरमा ने कहा, 'भाई हेमचन्द्र, तुम्हारी ढाल पर किसका चमडा है ?'

हेमचन्द्र हँस पडे ।

हेमचन्द्र ने मनोरमा की ओर देखा—निरी बालिका है ।

|७|

गिरिजाया की खबर

गिरिजाया जब लौट कर आई, तब तक वह मन ही मन स्थिर कर चुकी थी कि चाहे जान भी जाय पर वह हेमचन्द्र के नए अनुराग की बात मृणालिनी से कभी नही बताए गी । उधर उसकी प्रतीक्षा मे मृणालिनी पिंजडे मे बंद पक्षी की तरह तडफडा रही थी । देखते ही उसने गिरिजाया से पूछा, 'कहो गिरिजाया, क्या देखा ? हेमचन्द्र कैसे है ?'

'अच्छे है ।'

'इस तरह क्यो बोलती हो ? तुम्हारी बातो मे उत्साह नही दिखता ।'

'सो कैसे ?'

'गिरिजाया, तू मुझे धोखा नही दे सकती। क्या हेमचन्द्र स्वस्थ नही हुए ? मुझसे साफ-साफ बता न !'

इस बार हँसने की कोशिश कर के गिरिजाया बोली, 'इस तरह तुम बिना मतलब क्यो व्याकुल हो रही हो । मै साफ ही बता रही हूँ, उनके शरीर मे कोई कष्ट नही है । उठ कर चलते फिरते भी है ।'

कुछ देर सोच कर मृणालिनी बोली, 'मनोरमा के साथ उनकी कोई बातचीत तू ने सुनी ?'

'हाँ सुनी ।'

'क्या सुना ?'

तब गिरिजाया ने हेमचन्द्र की कही बाते बता दी । बस हेमचन्द्र और मनोरमा का रात मे घूमना और गुपचुप बाते करने वाली बात छिपा ले गई । मृणालिनी ने पूछा, 'तुमने उनसे भेंट की ?'

पहले तो गिरिजाया ने इधर-उधर किया फिर बोली, 'हाँ की ।'

'उन्होने क्या कहा ?'

'तुम्हारा हाल पूछा ।'

'तुमने क्या कहा ?'

'मैने कहा कि तुम ठीक हो ।'

'क्या पूछा कि मै आयी हूँ ?'

'नही ।'

'गिरिजाया, तुम ठीक से जवाब नही दे रही हो, टाल-टूल करती हो । तुम्हारा चेहरा भी उतरा है । तुम मेरी ओर देख भी नही रही । मै समझ रही हूँ कि कोई अमंगल समाचार तुम मुझसे छिपा रही हो । मुझे भी तुम्हारी बातो पर विश्वास नही हो रहा है । अब मेरे भाग्य मे चाहे जो हो, मै खुद हेमचन्द्र को देखने जाऊँगी । चाहो तो मेरे साथ चलो, नही तो मै अकेली ही जाऊँगी ।'

कह कर मृणालिनि घूँघट मे मुँह छिपा कर तेजी से सडक पर निकल गई । गिरिजाया उसके पीछे दौडी । थोडी दूर जा कर, उसका हाथ पकड कर कहा, 'सखी, लौट आओ । मैने जो छिपाया था, बता देती हूँ ।'

तब मृणालिनी गिरिजाया के साथ वापस आ गई । तब गिरिजाया ने जो कुछ छिपाया था, सब सविस्तार कह सुनाया ।

गिरिजाया ने हेमचन्द्र को ठगा था, पर वह मृणालिनी को न ठग सकी ।

|८|

मृणालिनी की लिपि

मृणालिनी बोली, 'गिरिजाया, उन्होने क्रोध से ही कहा होगा कि अच्छा हुआ । जो कुछ तू ने कहा, उसे सुन कर क्रोध क्यो न करेगे ?'

'हाँ संभव है ।'

'लेकिन तू ने यह सब कह कर अच्छा नही किया । अब इसका कुछ उपाय करना हो गा । तू जा, खाना खा ले । तब तक मै एक पत्र लिखती हूँ, खाने के बाद वह पत्र ले कर तू उनके पास जाना ।'

गिरिजाया चली गई । तब मृणालिनी ने लिखा—

'गिरिजाया झूठी है । किसलिए उसने तुमसे मेरे सम्बन्ध मे झूठ बात कही उससे पूछने पर वही तुम्हे कारण बतावेगी । मै मथुरा नही गई । जिस रात तुम्हारी अँगूठी देख कर मै यमुना तीर पर आई थी, उसी क्षण से मेरे लिए मथुरा का रास्ता बन्द हो गया । मै मथुरा न जा कर तुम्हे देखने नवद्वीप आ गई । यहाँ आ कर भी अभी तक तुमसे भेट नही की, क्योकि इससे तुम्हारी प्रतिज्ञा भग होती । मेरी इच्छा है कि मै तुम्हे देखूँ । तुमसे भेट करना आवश्यक है ।'

गिरिजाया पत्र ले कर फिर हेमचन्द्र के घर की ओर गई । शाम को मनोरमा से बातचीत करने के बाद हेमचन्द्र गगा-दर्शन के लिए निकले थे । रास्ते मे ही गिरिजाया से भेट हो गई । गिरिजाया ने उन्हे पत्र दिया ।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम फिर क्यो आईं ?'

'यह पत्र ले कर ।'

'किसका पत्र ?'

'मृणालिनी का ।'

'यह पत्र तुम्हारे पास कैसे आया ।'

'मृणालिनी नवद्वीप म ही है । मैने उनके मथुरा जाने की बात आप से झूठ कही थी ।'

'यह पत्र उन्ही का है ?' पूछ कर हेमचन्द्र ने बिना पढे ही पत्र को टुकडे-टुकड़े कर डाला । फिर वही फेंक कर कहा' 'मै पहले ही समझता था कि तू झूठी है । तू जिसका पत्र लाई है, वह विवाह करने नही गई, हृषिकेश ने उसे घर से निकाल दिया है, यह सब मै सुन चुका हूँ । मै कुलटा का पत्र नही पढ़ूँगा । तू भी मेरे सामने से चली जा !'

चकित दृष्टि से गिरिजाया हेमचन्द्र की ओर देखने लगी। हटी नही। तब पेड से एक टहनी तोड कर हेमचन्द्र ने कहा, 'चली जा, नही तो पीटूँगा।'

अब गिरिजाया से सहा न गया। वह दर्प के साथ बोली, 'वीर पुरुष हो! शायद यही वीरता दिखाने नदिया मे आये हो! इतनी दूर क्यो आये? यह वीरता तो मगध मे भी दिखा सकते थे! क्या तुर्को का जूता ढोने और गरीब लड़की को छडी मारने आए हो?'

लजा कर हेमचन्द्र ने छडी फेंक दी। लेकिन गिरिजाया शान्त न हो सकी। बोली, 'तुम मृणालिनी से विवाह करो गे? मृणालिनी की बात तो दूर रही, तुम तो मेरे योग्य भी नही हो!'

कह कर गिरिजाया दर्प के साथ घूमी और चली गई। हेमचन्द्र उसका अभिमान देख कर दंग रह गये।

लौट कर गिरिजाया ने हेमचन्द्र का आचरण मृणालिनी से कह सुनाया। इस बार उसने कुछ न छिपाया। मृणालिनी ने भी चुपचाप सुन लिया। कोई जवाब न दिया। रोई भी नही। जैसे बैठी थी, वैसी ही बैठी रही। यह देख कर गिरिजाया शकित हुई। उस समय ठीक अवसर न समझ मृणालिनी से बात किए बिना ही वहाँ से टल गई।

घर से थोडी दूर पर जो छोटा सा सरोवर है, उसी की सीढी पर गिरिजाया जा बैठी। शारदीया चाँदनी फैली थी। सरोवर मे अधखिले कमल थे। चारो ओर पेड़ खड़े थे। वही गिरिजाया सीढी पर बैठ गई।

गिरिजाया ने धीरे-धीरे गाना शुरू किया। धीरे-धीरे स्वर तेज हुआ। फिर इतने तेज स्वर मे गाने लगी कि वहाँ बैठी मृणालिनी भी सुन सकी। उसने गाया—

'पराण ना गेलो।

जो दिन पेखुनु सई जमुना के तीरे,
गायत नाचत सुन्दर धीरे-धीरे,
ओही पर पिय सईं, काहे कालो नीरे,
जीवन ना गेलो?

फिरि घर आयनु, ना कहनु बोलि,
तितायनु आँखिनीरे आपना आँचलि,
रोई रोई पिय सई काहे लो पराणि,
तई खन ना गेलो?

शुननू श्रवण पथे मधुर बाजे,
राधे राधे राधे राधे विपिन माझे,

यब शुनन लागे सई, सो मधुर बोलि,
जीवन न गेलो ?

धायनु पिय सई सोहि उपकूले,
लुटायनु काँदि सई, श्याम पद मूले,
सोहि पदमूले रई, काहे लो हामारि,
मरण ना भेलो ?'

गिरिजाया को गाते-गाते लगा कि कोई छाया हिली। घूम कर देखा कि मृणालिनी खडी है। उसके चेहरे को देखा—वह रो रही थी।

देख कर गिरिजाया खुश हुई। वह समझ न सकी कि रोने से मृणालिनी का दुख कम हुआ है। यह बात सभी नही समझते—लोग समझते है कि आँसू नही आए तो दुख कैसा ? यदि ससार मे सब लोग यह समझते कि आँसू से दुख घटता है तो कितनी ही मर्म पीडाओ का निवारण हो जाता।

थोडी देर दोनो ही चुप रही। मृणालिनी बोल नही पा रही थी। गिरिजाया भी कुछ न बोली। अन्त मे मृणालिनी ने ही कहा, 'गिरिजाया, सखी, तुम्हे एक बार और जाना होगा।'

'फिर उस पाषाण के पास जाऊँ ?'

'पाषाण मत कहो। हेमचन्द्र को भ्रम हुआ है। इस धरती पर कौन अभ्रान्त है ? मै अब खुद ही उनके पास जाऊँगी, तुम मेरे साथ चलो। तुम मेरे लिए बहन से भी बढ कर हो, मेरे लिए तुमने क्या कुछ नही किया ? मै जानती हूँ कि तुम अकारण मुझे कष्ट न दो गी। ऐसी बातो मे झूठ भी न बोलो गी। लेकिन मेरे किसी अपराध के बिना ही हेमचन्द्र मुझे त्याग दें गे, यह उनके मुँह से सुने बिना कैसे विश्वास करूँ ? अगर स्वयं अपने कानो से सुनूँ कि मृणालिनी को कुलटा समझ कर उन्होने त्याग दिया है, तब मै इस शरीर को ही नष्ट कर दूँगी।'

'प्राण त्याग दो गी ? ऐसा क्यो मृणालिनी ?'

मृणालिनी ने कोई जवाब नही दिया। गिरिजाया के कंधे पर बाँह रख कर फफक कर रो पडी। गिरिजाया भी रोने लगी।

|९|

गरलामृत

माधवाचार्य की बातो पर विश्वास कर के हेमचन्द्र ने मृणालिनी को दुश्चरित्रा समझ लिया था। बिना पढे ही मृणालिनी का पत्र भी फाड डाला था, उसकी दूती को पीटने को तैयार हो गए थे। लेकिन इतने से भी यह सिद्ध नही होता कि वे मृणालिनी से प्रेम नही करते थे। मृणालिनी के लिए ही राज्य त्याग कर वे मथुरावासी हुए थे। गुरू पर तीर चलाने को तत्पर हुए थे, गौड मे भिखारिणी की खुशामद की थी। और अब भाला दिखा कर आचार्य से कहा था—मृणालिनी को इसी भाले से छेद दूँगा। लेकिन क्या इतने से ही उनका स्नेह समाप्त हो गया ? क्या स्नेह कभी समाप्त होता है ? बहुत दिनो तक पहाडो मे भटकने वाली जल-धारा क्या कभी सूर्य-ताप से सूख जाती है ? पानी अपने लिए जो राह बनाता है, उसी राह पर वह बहता भी है। उसकी राह रोकी जाने पर वह धरती पर फैल जाता है।

उस रात हेमचन्द्र अपने पलग पर पडे खुली खिडकी की राह बाहर देख रहे थे पर क्या रात की शोभा देख रहे थे ? यदि कोई उस समय उनसे पूछता कि रात अधेरी है या चाँदनी, तो शायद वे बता न पाते। उस समय वे केवल हृदय मे उदित रजनी को ही देख रहे थे। उस समय चाँदनी रात थी। नही तो उनका सिरहाना गीला क्यो होता ? केवल बादल छाये थे। जिसके हृदयाकाश मे अधकार छाया रहता है, वह रोता नही।

जो कभी रोया नही वह अधम है, उस पर कभी विश्वास न करना। समझ लेना कि उसने कभी पृथ्वी के सुख को नही भोगा। दूसरे का सुख कभी वह सह नही सकता।

हेमचन्द्र रो रहे थे। जिसे पापिष्ठा और मन मे स्थान देने के अयोग्य समझ रहे थे, उसी के लिए रो रहे थे। वह केवल मृणालिनी के दोष को ही स्मरण नही कर रहे थे। बार-बार उन्हे मृणालिनी का चेहरा, प्रेमपूर्ण बातें याद आ रही थी। क्या मृणालिनी सचमुच अविश्वासिनी है ? एक समय मथुरा मे हेमचन्द्र मृणालिनी के पास एक पत्र भेजने के लिए व्याकुल थे, तब उन्हे कोई उचित वाहक नही मिला था। जब उन्होने मृणालिनी को खिडकी पर देखा था, तब हेमचन्द्र ने एक आम के फल पर लिख कर उसे मृणालिनी के पास खिड़की की राह फेका था। आम मृणालिनी के कान से जा लगा था, तभी आम के आघात से उसके कान का कुण्डल टूट कर गिर पडा था। तब मृणालिनी ने उस पर ध्यान भी न दिया था। उसने कान पर हाथ भी नही फेरा

था। तत्काल ओमं पेर ही जवाब लिख कर आम वापस फेंका था और जब तक हेमचन्द्र दिखाई पडते रहे थे, वह खिडकी से हटी न थी। हेमचन्द्र को यही सब याद आया। वही मृणालिनी क्या अविश्वासिनी हो सकती है? यह कदापि संभव नही। और एक दिन मृणालिनी को बिच्छू ने डक मारा था। दर्द से मृणालिनी मृतप्राय की तरह कातर हो गई थी। उसकी दवा लगाते ही दर्द कुछ कम हो गया था। इसी समय दूती से हेमचन्द्र ने संवाद भेजा कि वे बाग मे मृणालिनी की प्रतीक्षा कर रहे है। दर्द को भूल कर उसी क्षण मृणालिनी बाग मे भागी आई थी। हेमचन्द्र को यह भी याद आया। वही मृणालिनी क्या ब्राह्मण-कुल-कलंक व्योमकेश के कारण हेमचन्द्र से विश्वास-घात करेगी? नही यह असम्भव है। और फिर एक दिन हेमचन्द्र गुरु दर्शन के लिए मथुरा से जा रहे थे। मथुरा से एक पहर चलने के बाद वे बीमार हुए। राह मे पडी एक धर्मशाला मे वे पडे थे। किसी तरह यह खबर मृणालिनी को लगी। तब मृणालिनी उसी रात सिर्फ एक दासी को ले कर, इतना रास्ता चल कर हेमचन्द्र की सेवा करने आई थी। जब वह धर्मशाला पहुँची थी तब वह थकान से चूर थी, पाँवो मे छाले पड गए थे, खून भी बह रहा था। उसी रात मृणालिनी को पिता के भय के कारण वापस आना पडा था। घर आ कर वह स्वय बीमार हो गई थी। यह सब भी हेमचन्द्र को याद आया। वही मृणालिनी क्या नराधम व्योमकेश के लिए उसे त्यागेगी? जो ऐसी बात पर विश्वास करे वह निरा मूर्ख है, नराधम है। हेमचन्द्र बार-बार पछता रहे थे—मैने मृणालिनी का पत्र क्यो नही पढा? यह क्यो नही जानना चाहा कि वह नवद्वीप मे क्यो आई है?—पत्र के जो टुकडे फेके थे, शायद वे मिल जाये, तो उन्हे जोड-जाड़ कर पढने का प्रयत्न करे—यही सोच कर एक बार वहाँ तक गए भी पर एक भी टुकडा वहाँ न मिला। टुकड़े हवा मे उड़ गये थे। यदि उस समय अपनी बाँह काट देने से भी हेमचन्द्र पत्र के टुकड़े पा जाते तो काट देते।

हेमचन्द्र ने फिर सोचा, आचार्य झूठ क्यो बोलेंगे? वे मुझ पर पुत्रवत् स्नेह रखते है। इस समाचार से होने वाले कष्ट और यत्रणा का उन्हे अदाज है, फिर वे झूठ बोल कर व्यर्थ ही क्यो यत्रणा देंगे? फिर उन्होने कुछ अपने मन से तो कहा भी नही। मैने ही जिद कर के उनसे बाते कहलवा ली। जब मैने ही कहा कि मै सब जानता हूँ, तभी उन्होने बताया था। हो सकता है कि हृषिकेश ने ही उनसे झूठी बाते कही हो। लेकिन हृषिकेश भी अकारण गुरु से झूठ क्यो बोलेंगे? फिर मृणालिनी भी उनका घर छोड कर नवद्वीप क्यो आई?

यह सब सोच कर हेमचन्द्र के चेहरे पर अधकार छा गया, माथे पर पसीना हो आया। वे उठ कर बैठ गये। दम्भ से ओठ काटने लगे, आँख लाल हो कर फैल गई। भाला उठाने के लिए मुट्ठी बँध गई। फिर जैसे ही मृणालिनी के प्रेममय चेहरे की याद आई, वैसे ही वे कटे वृक्ष की तरह शय्या पर गिर पडे। तकिये मे मुँह

गाड कर बच्चो की तरह रोने लगे। हेमचन्द्र इसी तरह से विकल हो रहे थे। उसी समय उनके कमरे का दरवाजा खुला। गिरिजाया भीतर आई।

हेमचन्द्र ने पहले समझा कि मनोरमा है। पर जल्दी ही देखा कि वह कोमल मूर्ति नही है। गौर से देख कर पहचाना—गिरिजाया थी। पहले वे चकित-विस्मित हुए, फिर आल्हादित हुए। पूछा, 'तुम फिर क्यो आई ?'

'मै मृणालिनी की दासी हूँ। आप ने मृणालिनी को त्याग दिया है पर अभी मृणालिनी ने तो आप को नही त्यागा। इस लिए मुझे फिर आना पडा है। मुझे छडी मारने का मन हो तो मारिए। मैने निश्चय किया है कि इस बार उनके लिए मै वह भी सह लूँगी।'

इस तिरस्कार से हेमचन्द्र लजाए। कहा, 'तुम शका मत करो। स्त्री पर मै हाथ नही उठाऊँगा। पर तुम क्यो आई हो ? मृणालिनी कहाँ है ? तुमने तभी बताया था कि वह नवद्वीप मे आई है, लेकिन नवद्वीप म वह क्यो आई है ? मैने वह पत्र न पढ कर बडी भूल की है।'

'मृणालिनी आप को देखने ही नवद्वीप आई है।'

हेमचन्द्र के शरीर मे काँटे चुभने लगे। इसी मृणालिनी को उन्होने कुलटा समझ कर तिरस्कृत किया है! उन्होने फिर गिरिजाया से पूछा, 'मृणालिनी कहाँ है ?'

'वह आप से जीवन भर के लिए विदा लेने आई है। वहाँ सरोवर के किनारे खडी है। क्या आप चलिएगा ?'

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही गिरिजाया लौट चली। हेमचन्द्र उसके पीछे दौडे। गिरिजाया सीधे सरोवर के किनारे वहाँ पहुँची, जहाँ मृणालिनी सीढी पर बैठी थी। हेमचन्द्र भी वहाँ आये। गिरिजाया ने कहा, 'सखी उठो! राज-पुत्र आये है।'

एक झटके से मृणालिनी उठ खडी हुई। दोनो ने एक दूसरे के चेहरे की ओर देखा। मृणालिनी की दृष्टि लोप हुई, आँसुओ से आँखें भर आईं। जैसे सहारे की डाल टूट जाने से डाल से लिपटी लता जमीन पर गिर पडती है, वैसे ही मृणालिनी भी सहारा हीन लता की तरह हेमचन्द्र के पैरो पर गिर पडी।

गिरिजाया दूर हट गई।

| १० |

इतने दिनों बाद

हेमचन्द्र ने मृणालिनी का हाथ पकड कर उठाया। तब दोनो एक दूसरे के सामने खडे हुए।

इतने दिनो बाद दोनो मे भेट हुई थी। जिस दिन शाम को यमुना के किनारे मौलश्री के नीचे दोनो एक दूसरे से आँखो मे आँसू भर कर विदा हुए थे, उसके बाद अब यह भेट हुई थी। गरमी बीत गई, बरसात बीत गई, अब शरद ऋतु आई, लेकिन इन दोनो के हृदयो मे कितने काल बीत गये, इसका हिसाब ऋतुओ के आने-जाने मे नही लगाया जा सकता।

रात के समय, सरोवर के किनारे दोनो एक दूसरे के सामने खडे हुए। चारो ओर से पेडो की सघनता अधकार को और भी बढा रही थी। सिर के ऊपर चाँद, तारे और बादल, तथा आकाश चाँदनी मे हँस रहे थे। प्रकृति शात थी, बिना हिले-डुले धैर्य से स्थित थी। उसी धैर्यमयी पृथ्वी के ऊपर मृणालिनी और हेमचन्द्र एक दूसरे के सामने खडे थे।

दोनो चुपचाप। उनके पास क्या भाषा और शब्द नही है? उनके मन मे क्या कहने-सुनने के लिए कोई बात नही है? यदि भाषा और शब्द है तो वे लोग बात चीत क्यो नही करते? उस समय से एक दूसरे को देखने से ही उनका मन उन्मत्त था। फिर बात चीत कैसे होती! इस क्षण मात्र प्रणयी के सामने खडे होने मे जिस अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा था कि हृदय मे आज किसी सुख के लिए जगह ही न थी। जिसे यह सुख मिल जाये वह किसी अन्य सुख की कामना ही नही करता।

ऐसे समय मे मन मे इतनी बातें होती है कि कौन सी बात पहले कही जाये, यही निश्चय नही हो पाता। मनुष्य की भाषा मे ऐसा कौन सा शब्द है जो उस समय कहा जाय, यही निश्चय नही हो पाता,।

दोनो खड़े-खडे एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। हेमचन्द्र ने मृणालिनी के प्रेममय चेहरे को फिर देखा। हृषीकेश की बात का प्रभाव धीरे-धीरे मिटने लगा। मृणालिनी के चेहरे की एक-एक रेखा मे उन्हे पवित्रता ही दिखाई पडी। हेमचन्द्र, मृणालिनी की आँखो मे देखने लगे। उनसे मात्र प्रेमाश्रु ही बह रहे थे। जिसकी इतनी स्वच्छ व पवित्र आँखें है, क्या वह विश्वासघातिनी हो सकती है?

पहले हेमचन्द्र ने ही बात शुरू की। पूछा, 'मृणालिनी, कैसी हो?'

मृणालिनी कोई उत्तर न दे सकी। अभी तक उसका मन शात न हुआ था।

उसने जवाब देने की चेष्टा की, लेकिन फिर उसकी आँखें भर आई, गला भी भर आया। फल हुआ कि मुँह से शब्द न निकले।

हेमचन्द्र ने फिर पूछा, 'तुम यहाँ कैसे आई ?'

इस बार भी मृणलिनी उत्तर न दे सकी। तब हेमचन्द्र ने उसका हाथ पकड कर उसे सीढियो पर बैठा लिया और स्वय भी वही बैठ गये। अब तक मृणालिनी के मन मे जो अस्थिरता थी वह अब धीरे-धीरे मिटने लगी। धीरे-धीरे उसका सिर अपने आप हेमचन्द्र के कन्धे पर झुक गया। मृणालिनी को इसका होश ही न था। उसकी आँखो मे बहती आँसू की अविरल धारा से हेमचन्द्र का कन्धा व छाती भीग गई। इस धरती पर अब तक मृणालिनी ने जितने भी सुखो का अनुभव किया था, उसमे कोई भी सुख इस रुलाई के समान सुखदायी न था।

हेमचन्द्र ने फिर कहा, 'मृणालिनी ? मैने तुम्हारे प्रति बडा अन्याय किया है। मेरे अपराध को क्षमा करना। मैने तुम्हारे सम्बन्ध मे कलंक की बात सुन कर उस पर विश्वास कर लिया था। विश्वास करने के कितने ही कारण थे। मै अब जो पूछता हूँ, उसका जवाब देना।'

हेमचन्द्र के कन्धे पर से सिर उठाए बिना ही मृणालिनी ने कहा 'बोलो !'

'तुमने हृषीकेश का घर क्यो छोडा ?'

यह प्रश्न सुनते ही क्रोधित नागिन की तरह मृणालिनी ने सिर उठाया। बोली, 'हृषीकेश ने ही मुझे घर से निकाल दिया।'

हेमचन्द्र व्यथित हुए, मन मे थोडा सदेह और चिन्ता भी हुई। तभी मृणालिनी ने फिर हेमचन्द्र के कन्धे पर अपना सिर रख दिया। वहाँ सिर टिका कर मृणालिनी बडा सुख पा रही थी।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'हृषीकेश ने तुम्हे क्यो निकाला ?'

एकाएक मृणालिनी ने हेमचन्द्र की छाती मे अपना मुँह छिपा लिया और बहुत ही धीरे स्वर मे बोली, 'अब तुमसे क्या कहूँ ? उसने मुझे कुलटा कह कर निकाल दिया।'

सुनते ही तीर की तरह हेमचन्द्र उठ खड़े हुए। झटका लगने से मृणालिनी का सिर सीढ़ी से जा टकराया।

'पापिनी ! अपने ही मुँह से यह स्वीकार करती है ?' दम्भ के साथ कह कर हेमचन्द्र एकाएक वहाँ से चले गये। रास्ते मे उन्हे गिरिजाया दिखी। गिरिजाया हेमचन्द्र का चेहरा देख कर चौंक उठी। उसने हेमचन्द्र को रोकना चाहा, पर क्रोध से पागल हो रहे हेमचन्द्र गिरिजाया को लात से मार कर आगे बढ गये। बोले, 'तुम जिसकी दूती हो उसे लात मारने से मेरा पाँव भी कलकित होता, इसलिए तुझे ही मारा है।'

दनदनाते हुए हेमचन्द्र चले गये ।

जिसमे धैर्य नही, जो क्रोध के आते ही अन्धा हो जाय, उसे संसार में कोई सुख नही मिलता ।

किसी महान कवि ने कल्पना की है कि केवल अधैर्य के रोष के कारण ही योद्धा-श्रेष्ठ दोणाचार्य मारे गये थे । केवल एक शब्द—'अवश्त्थामा हत ' सुनते ही उन्होने धनुष-बाण का त्याग कर दिया था । दूसरी बार पूछ कर मतलब समझने का धैर्य भी उनमे न था । हेमचन्द्र मे केवल अधैर्य ही नही—अधैर्य, अभिमान और क्रोध तीनो थे ।

मृणालिनी चोट लगा सिर पकडे सीढी पर ही बैठी रही । गिरिजाया ने पूछा, 'सखी, क्या ज्यादा चोट लगी है ?'

'कैसी चोट ?'

'यह तुम्हारे माथे मे ।'

'मेरे माथे मे ? मुझे नही मालूम ।'

चौथा भाग

|१|

योजना

जिस क्षण मृणालिनी के सुख का तारा डूब रहा था, ठीक उसी समय गौड देश के सौभाग्य का चन्द्रमा भी अस्त हो रहा था। जिस व्यक्ति से गौड राज्य की रक्षा होती, वही अलग बैठ कर मकडी की तरह जन्मभूमि को जाल मे फँसाने के लिए जाल बुन रहा था। रात के समय एकान्त मे धर्माधिकारी पशुपति अपने सबसे विश्वासपात्र सहयोगी शातशील पर रुष्ट हो रहे थे। कह रहे थे, 'शातशील, सबेरे तुमने जो खबर दी है, उससे तुम्हारी ही क्षमता का परिचय मिलता है। अब तुम पर किसी काम के लिए भरोसा नही करूँगा।'

'यह असाध्य कार्य है। यही तो मै नही कर सका। अन्य कामो से मेरी क्षमता का परिचय लीजिए।'

'सैनिको को क्या आदेश दिया गया है ?'

'यही कि हम लोगो की आज्ञा के बिना कोई तैयारी न हो।'

'प्रान्तपाल और कोष्ठपालो को क्या कहा गया है ?'

'कि शीघ्र ही यवन-सम्राट के पास से कर ले कर कुछ यवन–दूत के रूप मे आने वाले है, उन्हे न रोका जाय।'

'दामोदर शर्मा आदेशानुसार काम कर रहे हैं या नही ?'

'उन्होने बडी चतुराई का काम किया है।'

'वह क्या ?'

'एक पुराने ग्रंथ के पृष्ठ बदल कर उन्होने उसमे आप की रचित कविताओ को लगा दिया है। आज सबेरे उन्होने राजा को वही ग्रन्थ पढ कर सुनाया था और माधवाचार्य की खूब निन्दा की थी।'

'उसमे गौड-विजेता का विस्तृत वर्णन दिया गया है। उस विषय मे राजा ने कोई खोज की थी ?'

'हाँ, की थी। मदनसेन हाल मे ही काशी से लौट कर आए है। कविता मे भविष्य के गौड विजेता का वर्णन सुन कर राजा ने उन्हे बुला भेजा था। मदनसेन के आने पर राजा ने पूछा, 'क्यो, क्या तुमने मगध मे यवन-सम्राट को देखा है ?' उसने कहा, 'हाँ।' तब महाराज ने पूछा, 'वह देखने मे कैसा है ?' तब मदनसेन ने बख्तियार खिलजी का वही रूप वर्णित किया जो उसने देखा था। कविता मे भी वही वर्णन था। अत. गौड़ राज्य तथा अपने राज्यपद के नाश को ही उन्होने निश्चित समझा।

'फिर ?'

'फिर राजा रोने लगे ! बोले, 'अब इस बुढापे मे मै क्या करूँ ? देखता हूँ कि अब तो सपरिवार तुर्कों के हाथो मारे जायेगे।—तब दामोदर ने आप द्वारा समझाए अनुसार कहा, 'महाराज, इस सकट से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि अवसर रहते आप सपरिवार तीर्थ-यात्रा पर चले जायँ। और धर्माधिकारी को राज-काज का भार सौप जाइए। तभी आप के परिवार की रक्षा सम्भव हो सकेगी। इतने पर भी यदि शास्त्र गलत निकले तो आप राज के राजा तो है ही।—तब इस सलाह को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करके राजा ने तत्काल ही नाव तैयार करने की आज्ञा दी। अब वे शीघ्र ही सपरिवार तीर्थ यात्रा के लिए निकलेगे।'

इतना बता कर शान्तशील चला गया।

|२|

सूतहीन हार

पशुपति यद्यपि बहुत से नौकरो के साथ ऊँची अट्टालिका मे रहते थे फिर भी उनके घर मे महाअधकार छाया है। जिनसे घर मे उजाला होता है—पत्नी, पुत्र और परिवार—यह सब उनके घर मे कुछ नही है।

आज शातशील से बातें करने के बाद पशुपति को इन सब की याद आई। मन मे सोचा—इतने दिनो बाद शायद इस घर का अँधेरा मिटेगा ! यदि भगवती कृपालु होगी तो इस अँधेरे को मनोरमा ही काटेगी।

यही सब सोचते हुए पशुपति सोने जाने के पहले अपने नियम के अनुसार अष्ट-

भुजा देवी को प्रणाम करने देव-मन्दिर मे गये । जाते ही देखा कि वहाँ पहले से ही मनोरमा बैठी है ।

पशुपति ने पूछा, 'मनोरमा, तुम कब आई ?'

पूजा से बचे फूलो से मनोरमा बिना सूत के ही माला गूँथ रही थी । उसने सुन कर भी पशुपति के प्रश्न का कोई उत्तर न दिया । पशुपति ने कहा, 'तुम मुझमे बाते तो करो । तुम जब तक रहती हो, तब तक मै सारी चिन्ताएँ भूला रहता हूँ ।'

तब मनोरमा ने मुँह ऊपर उठा कर देखा । वह पशुपति के चेहरे की ओर ताकती रही । क्षण भर बाद वह बोली, 'मै तुम्ही से कुछ कहने आई थी, लेकिन अब याद नही रहा, सब भूल गई ।'

'तो याद कर लो, मै प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।'

पशुपति बैठे रहे, मनोरमा फिर माला गूँथने लगी ।

बहुत देर चुपचाप बैठे रह मर पशुपति ने कहा, 'मुझे भी कुछ कहना है । जरा ध्यान से सुनो । इस आयु तक मैने केवल विद्या ही पढी है । अर्थोपार्जन भी किया है, पर मैंने ससारी-धर्म नही किया । जिसमे अनुराग रहा, वही किया है । लेकिन जब मे तुम्हे देखा है, तब से एकमात्र, तुम्हे पाने मे ही ध्यान लगा रहता है । इसी उद्देश्य के लिए मैने यह कठोर कार्यभार उठाया है । यदि ईश्वर कृपा करेंगे तो दो चार दिनो मे ही राज्य-प्राप्त करके तुमसे विवाह करूँगा । अभी तक विधवा नाम पर विघ्न है पर शास्त्रीय प्रमाण द्वारा मै इस विघ्न को समाप्त करूँगा । लेकिन एक और विघ्न है—तुम कुलीन-कन्या हो, जनार्दन शर्मा भी कुलीन-श्रेष्ठ है, मै तो श्रोत्रिय हूँ ।'

पता नही, मनोरमा यह सब ध्यान से सुन रही थी या नही । पशुपति ने देखा कि मनोरमा कुछ खोई-खोई सी है । पशुपति सरला बालिका मनोरमा को चाहते थे—प्रौढ, गम्भीर, तीक्ष्ण-बुद्धि मनोरमा से उन्हे डर लगता था । आज वह उसका दूसरे प्रकार का ही भाव देख रहे थे । फिर भी हिम्मत कर के पशुपति ने कहा, 'लेकिन कुल-रीति तो श्रद्धामूलक है नही, इससे कुल-नाश, धर्म-नाश या जाति-भ्रष्ट नही हुआ जा सकता । उनके अनजाने ही यदि तुमसे विवाह कर लूँ तो क्या हानि है ? यदि तुम राजी हो तो ऐसा कर सकता हूँ । बाद मे यदि तुम्हारे दादा जानें गे भी तो विवाह लौटा तो लेंगे नही ।'

मनोरमा ने अब भी कोई जवाब न दिया । पता नही, उसने यह सब भी सुना या नही ? तभी एक काले रग की बिल्ली आ कर उसके पास बैठ गई । मनोरमा वह गूँथा गया सूतहीन हार उसे ही पहनाने लगी । पहनाने मे माला खुल गई । सूतहीन थी न ! सब फूल बिखर गये । तब अपने सिर से एक बाल तोड कर मनोरमा उसी से माला फिर गूँथने लगी ।

पशुपति मनोरमा से कोई उत्तर न पा, चुपचाप माला के फूलो मे व्यस्त मनोरमा की उँगलियो की भगिमा देख-देख मुग्ध होते रहे।

|३|

पिंजड़े में

मनोरमा का ध्यान अपनी ओर खीचने और उसका बुद्धि-दीप जलाने के लिए पशुपति बार-बार प्रयत्न करते रहे। लेकिन उन्हे सफलता न मिली। अन्त मे उन्होने कहा, 'मनोरमा, रात अधिक हो गई है, अब मै सोने जाता हूँ।'

मनोरमा ने अन्यमनस्क हो कर कहा, 'जाओ।'

लेकिन पशुपति सोने न जा सके। बैठ कर माला गूँथने लगे। फिर दूसरा उपाय सोच कर, भय दिखा कर काम बनाने की नियत से, मनोरमा को डराने के लिए पशुपति ने कहा, 'मनोरमा, यदि इसी समय यवन यहाँ आ जायँ तो तुम कहाँ जाओगी ?'

मनोरमा ने चेहरा ऊपर उठा कर कहा, 'घर मे रहूँगी।'

'घर मे तुम्हारी रक्षा कौन करेगा ?'

मनोरमा ने लापरवाही से कहा, 'सो नही जानती, निरुपाय हूँ।'

पशुपति ने पूछा, 'तुम मुझसे क्या कहने मन्दिर मे आई थी ?'

'देवता को प्रणाम करने।'

सुन कर पशुपति चिढ गये। बोले, 'मनोरमा ! मै विनती करता हूँ। सुनो, मै अब जो कहता हूँ, उसे ध्यान से सुनो। तुम मुझसे स्पष्ट बता दो कि तुम मुझसे विवाह करोगी या नही ?'

अब तक मनोरमा का माला गूँथना पूरा हो गया था। उस माला को वह उसी काली बिल्ली को फिर पहना रही थी। पशुपति की बात शायद उसके कानो तक नही पहुँची। बिल्ली भी माला पहनने मे बहुत नखरे कर रही थी, नही पहनना चाहती थी। जितनी बार मनोरमा उसे माला पहना देती, वह बार-बार सिर झटक कर माला गिरा देती। मनोरमा दाँतो से अपने ओठ काट, हल्के से मुस्कारकर उसके गले मे माला डाल रही थी। तब, जब असह्य हो उठा, पशुपति ने खूब चिढ कर बिल्ली को एक चपत मारा। बिल्ली दुम उठाकर एक ओर भाग गई। वैसे ही ओठ काट कर मनोरमा ने हँसते हँसते वही माला उठा कर पशुपति के गले मे डाल दी।

बिल्ली की जूठी माला का प्रसाद अपने गले मे पाकर धर्माधिकारी पशुपति हतप्रभ रह गये। थोडा क्रुद्ध भी हुए लेकिन ओठ काटती हुई, हास्यमयी षोडसी की अनुपम व अलौकिक रूप-माधुरी को देख कर उनका सिर चक्कर खाने लगा। उन्होने मनोरमा को अपने आलिंगन मे भर लेने के लिए अपनी बाँहे फैलाईं। लेकिन मनोरमा छटक कर उछली और दूर जा खडी हुई। अपनी राह मे फन फैलाए काले साँप को देख कर राह चलने वाले जिस तरह दूर जा खडे होते है, उसी तरह मनोरमा भी दूर जा खडी हुई।

पशुपति कुछ समझ न पाये, अप्रतिभ हुए, क्षण भर को मनोरमा की ओर वे देख भी न सके। थोडी देर बाद उन्होने देखा—मनोरमा प्रौढ आयु वाली हँसमुख, महिमामयी सुन्दरी है।

पशुपति ने कहा, 'मनोरमा, बुरा मत मानना। तुम्ही मेरी पत्नी हो। तुम मुझसे विवाह करो।'

मनोरमा ने पशुपति की ओर तीव्र कटाक्ष कर के कहा, 'पशुपति! केशव की कन्या कहाँ है?'

'मैं नही जानता कि केशव की कन्या कहाँ है, जानना चाहता भी नही। तुम्ही मेरी एकमात्र पत्नी हो।'

'लेकिन मै जानती हूँ। बताऊँ केशव की कन्या कहाँ है?'

पशुपति आश्चर्य मे डूबे मनोरमा के चेहरे की ओर देखते रह गये।

मनोरमा बोली, 'एक ज्योतिषी ने गणना करके बताया था कि केशव की कन्या छोटी आयु मे विधवा हो कर पति के साथ सती हो जायगी। इस बात से कम आयु मे ही कन्या-वियोग के भय से केशव बहुत दुखी हुए। धर्मनाश के भय से उन्होने कन्या का विवाह तो किया लेकिन विधि का लिखा अखंड समझ कर विवाह की रात को ही लड़की को ले कर प्रयाग भाग गए। उनका अभिप्राय मात्र इतना ही था कि उनकी कोमल हृदय कन्या अपने स्वामी की मृत्यु का समाचार कभी जान ही न सके। लेकिन ईश्वर का लीला कि कुछ ही दिनो बाद प्रयाग मे केशव की मृत्यु हो गई। लड़की की माँ तो बहुत पहले ही मर चुकी थी। तब मृत्यु के समय केशव ने अपनी कन्या हेमवती को आचार्य के हाथ सौप दिया। मरते समय केशव ने आचार्य से कहा था—'इस अनाथ कन्या को अपने घर मे रख कर इसका पालन करें। इसके पति का नाम पशुपति है, पर ज्योतिषी की गणना है कि यह छोटी उम्र में ही पति के साथ सती होगी। इसलिए आप मेरे सामने स्वीकार कीजिए कि इस लडकी से यह सब कभी न कहेगे—न यही कि पशुपति इसके स्वामी है। साथ ही पशुपति से भी यह बात कभी प्रकट मत कीजिए गा कि हेम-वती उनकी पत्नी हैं।—आचार्य ने केशव की इच्छा को ही स्वीकार किया। तब से वे

हेमवती को अपने परिवार मे रख कर पालन कर रहे है और तुम्हारे साथ उसके ब्याह की बात छिपा रखी है।'

'इस समय वह कहाँ है।'

'मै ही केशव की वह कन्या हूँ। जनार्दन शर्मा मेरे आचार्य है।'

एकाएक यह सुन कर पशुपति घबरा उठे। उनका सिर घूमने लगा। कुछ कहे बिना झटपट उन्होने देवी प्रतिमा के आगे साष्टाँग प्रणाम किया। फिर उठ कर, आगे बढे और मनोरमा को छाती से लगाने लगे। पहले की तरह ही मनोरमा फिर छिटक कर दूर हट गई। फिर बोली, 'अभी नही, कुछ और भी बातें है।'

पशुपति को क्रोध हो आया। बोले, 'मनोरमा, राक्षसी, तू ने अभी तक मुझे इतने अंधकार में क्यो रखा था ?'

'क्या पहले तुम मेरी बात पर विश्वास करते ?'

'मनोरमा तुम्हारी किस बात पर मैने कब अविश्वास किया है ?' फिर यदि मुझे संदेह होता तो मै जर्नादन शर्मा से पूछ लेता।'

'तो क्या जर्नादन शर्मा उस बात को प्रकट कर देते ? शिष्य के आगे की गई प्रतिज्ञा से वे बँधे थे।'

'तब उन्होने यह बात तुमसे क्यो प्रकट की ?'

'उन्होने मुझसे नही कहा। एक दिन एकात मे ब्राह्मणी से कह रहे थे। मैने छिप कर सब सुना था। और फिर, मै लोगो के सामने विधवा बताई जाती हूँ। तब भला तुम मेरी बात पर विश्वास करते ? और लोगो के सम्मुख निंदनीय हो कर तुम मुझे कैसे ग्रहण करते ?'

'मैं सब लोगो को इकट्ठा कर उन्हे सब समझा देता।'

'लेकिन विधि के विधान को कैसे टालते ?'

'मैं ग्रह-शाति कराता। अच्छा अब तो जो होना था, वह हो गया। अब यदि मुझे रत्न मिला है तो उसे गले से क्यो उतारूँ ? अब तुम मेरा घर छोड कर कभी जा न सकोगी।'

'यह घर तो छोडना ही होगा, पशुपति ! मै आज जो कहने आई हूँ, वह सुनो। यह घर छोड़ दो। अपने राज्य पाने का दुराशा भी छोड दो। राजा के अहित की चेष्टा भी छोड दो। यह देश छोड़ कर चलो। चलो हमलोग काशीधाम चले। वहाँ ही मै तुम्हारी चरण-सेवा कर के अपना जन्म सार्थक करूँगी। जिस दिन हम लोगो की आयु समाप्त होगी, उस दिन हम दोनो साथ-साथ परम-धाम की यात्रा करेंगे। यदि यह स्वीकार करो तो तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति अचल रहेगी, नही तो—'

'नही तो क्या ?'

तब मनोरमा ने सिर उठा कर, आँखो मे आँसू भर कर, देवी-प्रतिमा के सामने हाथ जोड कर गद्गद् कण्ठ से कहा, 'नही तो देवी के सामने शपथ खाती हूँ कि तुम्हारी हमारी यही अतिम भेट है। अब इस जीवन मे फिर भेट न होगी।'

तब पशुपति भी देवो के सामने हाथ जोड़ कर खडे हुए। बोले, 'मनोरमा मै भी शपथ लेता हूँ कि मेरा जीवन रहते तुम मेरा घर छोड कर नही जा सकोगी। मनोरमा, मैने जिस रास्ते पर कदम रखा है, उस रास्ते से लौट जाने का कोई भी उपाय होता तो मै लौट जाता। तुम्हे ले कर सब कुछ त्याग कर काशीवास करता। लेकिन मै इस राह पर बहुत दूर तक आगे बढ आया हूँ। अब लौटने का कोई उपाय नही है। जो गाँठ लगा ली है, उसे अब खोल नही सकता। धारा मे नाव छोड कर अब लौट नही सकता, जो भी होना था, हो गया। क्या इसी के लिए मै अपने चरम सुख से वचित होऊँ ? तुम मेरी पत्नी हो, मेरे भाग्य मे जो कुछ भी हो, मै तुम्हे अपनी गृहणी बनाऊँगा। तुम क्षण भर ठहरना। मै अभी आता हूँ।'

यह कह कर पशुपति मदिर के बाहर गए। मनोरमा के मन मे संशय उत्पन्न हुआ। चिन्तित मन से वह कुछ देर मदिर मे खडी रही। अब पशुपति से विदा लिए बिना वह जा भी नही सकती थी।

थोडी देर बाद पशुपति लौट आए। बोले, 'प्राणाधिके ! अब आज तुम मुझे छोड कर नही जा सकोगी। मै सभी दरवाजे बन्द कर आया हूँ।'

मनोरमा चिडिया पिजडे मे बन्द हो गई।

|४|

यवन दूत (यमदूत)

उस दिन दोपहर के समय नगर वासियो ने आश्चर्य से देखा कि अनजान व अपरिचित जाति के सत्रह सैनिक सवार सडक से हो कर राजभवन की ओर जा रहे हैं। उनके आकार और इशारे को देख कर नवद्वीपवासी धन्यवाद देने लगे। उनका लम्बा-चौड़ा पुष्ट शरीर, तपे सोने सा वर्ण, चौडा मुँह, घनी काली दाढी, बडी-बडी चमकदार आँखें और उनका पहनावा अनर्थक चमक-दमक से शून्य था। योद्धाओ जैसा वेश, सर्वांग ढँके हुए जिरह-बख्तर से शोभित, आँखो मे दृढ प्रतिज्ञा के भाव और जिन सिन्धु पार के घोडो की पीठ पर बैठे वे लोग आ रहे थे, वे घोडे बडे मनोहर और दर्शनीय थे। पत्थर

के शिलाखड जैसी उनकी देह-राशि, तेजोगर्व मे प्रदीप्त थी। सभी सवार कुशल घुडसवार थे। उन्हे देख कर नवद्वीपवासी निहाल हो गए और प्रशसा करने लगे।

सत्रहो सवार गभीर मुद्रा मे चुपचाप राजमहल की ओर चले जा रहे थे। कौतूहल वश किसी नगरवासी ने उनसे कुछ पूछा, तब उनके साथ के एक भाषा जानने वाले ने कहा, 'ये लोग यवन-राजा के दूत है।' यही परिचय उन्होने प्रान्तपाल और काष्ठपालो को भी दिया था—पशुपति की आज्ञा से वही परिचय दे कर वे लोग नगर मे घुसे थे।

सवार राजभवन के राज-द्वार पर पहुँचे। बूढे राजा की अयोग्यता और पशुपति के परम कौशल से आज राजपुरी प्राय रक्षकहीन थी। राज सभा भंग हो चुकी थी। राज्य मे केवल नागरिक ही थे। थोडे से दरबान राज-द्वार की रक्षा कर रहे थे। आगन्तुको को देख कर एक दरबान ने पूछा, 'तुम लोग किस लिए आए हो ?'

यवन-सैनिको मे से एक ने उत्तर दिया, 'हम लोग यवन-राजा के दूत है। गौडेश्वर से भेट करे गे।'

दरबान बोला, महाराजधिराज गौडेश्वर इस समय अन्त पुर मे है। अभी भेंट नही हो सकती।'

दरबान की बात न सुन , यवन सैनिक खुले द्वार से भीतर घुसने को उद्यत हुए। सब से आगे एक नाटा, मोटा और अत्यन्त कुरूप यवन था। दरबान उसे रोकने के उद्देश्य से हाथ मे भाला ले कर सामने खडा हो गया। दरबान ने कहा, 'लौट जाओ नही तो मार दूँगा।'

'तू खुद ही मर !' कह कर नाटे यवन ने हाथ की तलवार से एक ही बार मे दरबान को काट डाला। दरबान मर गया। तब अपने साथियो की ओर देख कर नाटे यवन ने कहा, 'अब तुम लोग अपना-अपना काम करो।'

तत्काल ही बाकी सोलह सवारो ने ने भीषण जय-ध्वनि की। और देखते ही देखते सोलह सवारो—यवन सैनिको की कमर से सोलह चमकदार तलवारें निकल पडी। और बिजली की चमक की तरह सबो ने एक साथ तडप कर दरबानो पर आक्रमण कर दिया। दरबान लोग एकाएक कुछ समझ न पाये। सब लडने की तैयारी मे भी न थे। अचानक इस भीषण हमले से आत्मरक्षा की कोई चेष्टा भी न कर पाये और देखते-देखते मब मारे गये।

नाटे यवन ने कहा, 'जहाँ जिसे पाओ, उसे मारो। यहाँ फौज नही है। बूढे राजा को भी मार डालो।'

तब सोलहो यवन सैनिक इधर-उधर बिखर गये। कुछ बिजली की तरह महल मे घुस गये। कुछ, बाल वृद्ध-वनिता जहाँ जो भी नागरिक दिखाई पडा उसका सिर तलवार से काटने या भाले से मारने लगे।

नगरवासी भयानक आर्तनाद कर के इधर-उधर भागने लगे। यह घोर आर्तनाद

वहाँ तक सुनाई पडा, जहाँ बैठे बूढे राजा खाना खा रहे थे। सुनते ही उनका मुँह सूख गया। घबरा कर पूछा, 'क्या हुआ ? क्या यवन आ गये ?'

तब भाग कर आए एक नागरिक ने कहा, 'यवन सब को मार कर आप की हत्या करने आ रहे है।'

राजा के मुँह का ग्रास बाहर गिर पडा। उनका दुबला, सूखा शरीर पानी मे पडे बेंत की तरह काँपने लगा। पास ही राजरानी खडी थी। राजा को भोजन की थाली पर गिरते देख राजरानी ने उनका हाथ पकड लिया। बोली, 'कोई चिन्ता नही। आप उठिए।' कह कर राजा का हाथ पड़क कर उन्होने उठाया। राजा पुतले की तरह खडे हो गये।

राजरानी ने कहा, 'चिन्ता क्या है ? नाव मे सब सामान तो पहुँच ही गया है। चलिए हम लोग खिडकी की राह से निकल कर नाव द्वारा सोना गाँव चले चले।'

राजा हाथ भी न धो सके। रानी ने उन्हे खीच कर खिडकी की राह बाहर निकाला और सब सोना गाँव के लिए चल पडे। उसी राज-कुल-कलक-वृद्ध-असमर्थ राजा के साथ गौड राज्य की राजलक्ष्मी भी चली गई।

केवल सोलह सैनिको को ले कर आए नाटे, मोटे, कुरूप, बन्दर की सूरत वाले बख्तियार खिलजी ने गौडेश्वर की राजपुरी पर अधिकार कर लिया।

इस घटना के, साठ वर्ष बाद, यवन-इतिहासवेत्ता मिनहजउद्दीन ने ऐसा ही लिखा। कहाँ तक सत्य है, और कहाँ तक झूठ, इसे कौन बता सकता है ? मनुष्य के बनाए चित्र मे तो सिंह भी पराजित दिखाई पडता है, क्योकि मनुष्य ने सिंह का अपमान करने के लिए ही चित्र बनाया था, यदि सिंह के हाथ मे चित्र बनाने का सामान दिया जाता तो वह कैसा चित्र बनाता ? इसमे शक नही कि तब मनुष्य चूहे की तरह दिखाई पडता। दुर्भाग्य वाली, मंदभागिनी बगभूमि तो पहले से ही क्षीण-शक्ति है, दुर्बल है, फिर शत्रु के हाथो मे ही चित्र-निर्माण-सामग्री भी है।

|५|

जाल टूटा

गौडेश्वर के महल मे जम कर बैठने के बाद बख्तियार खिलजी ने धर्माधिकारी पशुपति को बुलाने को आदमी भेजा। उससे यवनो का सधि-बन्धन हुआ था, अब उसी सम्बन्ध मे बातें करनी थी।

पशुपति इधर देवी को प्रणाम कर, क्रुद्ध मनोरमा से विदा ले कर, कुछ प्रसन्न,

कुछ उत्सहित और कुछ शंकित मन से यवन-श्रेष्ठ के पास गये। बख्तियार खिलजी ने उठ कर उनका सादर अभिवादन किया और कुशल-मंगल पूछा। पशुपति रास्ते मे राजा के दासो के रक्त से अपने पाँव धोते आए थे, सहसा खिलजी के आदर-अभिवादन का कोई उत्तर न दे सके। तब बख्तियार खिलजी ने उनके मन का भाव समझ कर कहा, 'पाडितवर, राजसिंहासन पर बैठने की राह कोई फूलो की राह नही है। इस रास्ते पर बढने से मित्रो की लाशो और सिरो से हमेशा पाँव टकराते है।

पशुपति बोले, 'आप ठीक कहते है, लेकिन जो विरोधी हो उनका ही वध आवश्यक है। ये लोग जो मरे है वे अनजान है और निर्विरोधी है।'

खिलजी ने कहा, 'शायद खून देख कर आप अपने निश्चय को याद करके दुखी हो रहे है ?'

'मैने जितना कहा है, जितना स्वीकार किया है, वह अवश्य करूँगा। आप भी वैसा ही करें गे, इसमे कोई संदेह नही है।'

'हाँ इसमे कोई संदेह नही है। सिर्फ हमारी एक माँग है।'

'कहिए।'

'कुतुबुद्दीन की ओर से आज से गौड़-शासन का भार आप के हाथो मे दिया गया। आज से आप उनके बगराज के उनके प्रतिनिधि हुए। लेकिन यवन-सम्राट का सकल्प है कि इस्लाम धर्म स्वीकार किए बिना कोई भी व्यक्ति उनके राजकाज मे शामिल नही हो सकता। सो आप को भी यह भार ग्रहण करने के पहले इस्लाम धर्म ग्रहण करना पडेगा।'

पशुपति का चेहरा काला पड गया। बोले, 'लेकिन सुलह वार्ता के समय तो ऐसी कोई बात नही हुई थी।'

'अगर यह बात नही हुई तो यह भूल ही है। फिर इस बात को स्पष्ट रूप से न कहे जाने पर भी आप जैसे बुद्धिमान और पंडित व्यक्ति को तो स्वाभाविक रूप से यह समझ लेना चाहिए था कि क्या ऐसा कभी संभव हो सकता है कि मुसलमान बंगाल पर अधिकार करके उसे फिर हिन्दू के हाथ मे सौप दें ?'

'मैं इस मामले मे अवश्य ही बेवकूफ सिद्ध हुआ।'

'तो ठीक है, अगर अभी तक नही समझते थे तो अब समझिए कि आप को इस्लाम धर्म स्वीकार करना है और इसके लिए आपको तैयार हो जाना चाहिए।'

अब पशुपति का दर्प जागा। बोले, 'मैने अच्छी तरह सोच कर तय कर लिया है कि यवन-सम्राट से राज्य पाने के लिए अपना धर्म छोड कर नरक का रास्ता साफ नही करूँगा।'

'ऐसा कर के आप बडी भूल कर रहे हैं। जिसे आप अपना धर्म कहते है, उसमे

तो सिर्फ भूतो की ही पूजा है। कुरान मे लिखा धर्म ही एकमात्र सत्य धर्म है। मुहम्मद को अपना कर अपना जीवन सुधारिए।'

पशुपति मन ही मन यवन की शठता को समझ रहे थे। उसका मतलब सिर्फ यही था कि सधि करने के बाद भी सधि को भग कर देना है। और भी समझे कि छल से न होगा तो बल प्रयोग करेगे। इसलिए ऐसे कायर के साथ कपट का सहारा न लेकर दर्प दिखाना बेकार है। क्षण भर विचार कर के उन्होने कहा, 'ठीक है, जैसी आपकी आज्ञा होगी, मै वही करूँगा।'

बख्तियार उनके मन का भाव समझ रहा था। बख्तियार अगर पशुपति से ज्यादा चालाक न होता तो इतनी आसानी से और बिना परिश्रम ही गौड पर अधिकार न पा जाता। शायद बगभूमि के अदृष्ट-लेख मे यही लिखा है कि बगभूमि युद्ध के बिना ही सदा जीती जायगी। चालाकी से ही सदा इसकी जय है। चालाक क्लाइव साहब इसके दूसरे उदाहरण है।

बख्तियार ने कहा, 'ठीक है, अच्छी बात है। आज हम लोगो की भेंट का यह पहला दिन है। ऐसे कामो मे देरी करना ठीक नही रहता। हमारे पुरोहित-मौलवी तैयार है', अभी तत्काल आपको इस्लाम धर्म मे दीक्षित कर देंगे।'

पशुपति समझ गये कि सर्वनाश सिर पर सवार है। बोले, 'थोडी देर के लिए तो मौका दीजिए। अपने परिवार को तो ले आऊँ, फिर पूरे परिवार के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार करूँगा।'

बख्तियार ने बडी कठोरता और रुखाई से कहा, 'आप के खानदान को बुलाने को मै आदमी भेजता हूँ। आप पहरेदार के साथ जा कर आराम कीजिए।'

एक सिपाही ने बढ़ कर पशुपति का हाथ पकडा। पशुपति ने क्रोध से लाल होकर कहा, 'यह क्या ? क्या मै कोई कैदी हूँ ?'

बख्तियार ने आज्ञा के स्वर मे कहा, 'अभी तो वही हो।'

नतीजा हुआ कि पशुपति राजपुरी मे ही बन्द कर दिए गये। मकड़ी का जाल फट गया था—उस जाल मे वे आप ही फँस गये।

बुद्धिमान समझे जाने वाले पशुपति ने शत्रु पर विश्वास किया था, उन्हे घर मे प्रवेश कराया था, लेकिन उनकी चतुराई काम न आई। लेकिन यह सब न करने से युद्ध करना पडता। लेकिन मकडी कभी युद्ध नही करती, सदा जाल ही बुनती है।

उसी रात में जगल मे छिपे बीस हजार से अधिक यवन सैनिक जंगल से निकल कर समस्त नवद्वीप मे फैल गये।

नवद्वीप जीत लिया गया।

उस दिन नवद्वीप का सूर्य जो अस्त हुआ, वह फिर कभी उदित न हो सका।

क्या अब कभी उदित न होगा ? उदय और अस्त दोनो ही स्वाभाविक नियम है। एक सिक्के के दो पहलू।

| ६ |

पिंजड़ा टूटा

जब तक पशुपति घर मे रहे, मनोरमा को अपनी आँखो की पलको पर बिठाए रखा। जब वे यवन-श्रेष्ठ से मिलने गये थे तब घर के सब दरवाजे बन्द करके शान्त-शील को घर की सुरक्षा के लिए बैठा गये थे।

पशुपति के जाने के बाद से ही मनोरमा वहाँ से भागने का प्रयास करने लगी। घर का कोना-कोना देखने लगी। भाग जाने योग्य कोई रास्ता कही खुला दिखाई न पडा। बहुत ऊँचाई पर कुछ खिडकियाँ अवश्य थी, लेकिन उन पर चढा नही जा सकता था। उसमे से मनुष्य शरीर के निकलने की संभावना नही थी। फिर वह जमीन से इतनी अधिक ऊँचाई पर थी कि वहाँ से जमीन पर कूदने मे हड्डी पसली का चूर हो जाना निश्चित था। लेकिन मनोरमा पगली है। उसने वही से भी निकल भागने का निश्चय किया।

पशुपति जब गये तब मनोरमा उनके ही कमरे मे पलंग पर लेटी थी। लेकिन पशुपति के जाने के बाद क्षण भर भी उससे लेटा न रहा गया। उसने देखा कि पलग के सहारे रोशनदान पर आसानी से चढा जा सकता है। वह उठी, पलंग के सहारे रोशनदान पर चढी, पहले दोनो हाथ, फिर सिर, फिर छाती भी बाहर निकाल ली। रोशनदान के पिछवाडे बाग मे आम के पेड की एक सुडौल डाल दिखाई पडी। मनोरमा ने वही डाल पकड़ ली और रोशनदान से बाहर आ कर डाल के सहारे-सहारे जमीन पर आ गई। जब उसने डाल पकडी और उस पर झूली तो उसके भार से डाल झुक गई। जमीन के पास उसके पाँव पहुँच गये। मरोरमा डाल छोड कर आसानी से जमीन पर आ गई और पल भर की भी देरी किए बिना वह जनार्दन के घर की ओर दौड गई।

| ७ |

यवन-प्रलय

उस रात को नवद्वीप नगरी विजयोन्मत्त यवन-सेना के अत्याचार से तरंगित सागर की तरह चचल हो उठी। समस्त राजपथ अनेक सवारो, पैदलो, खड्ग, धनुष और

भाले तथा तलवार के समारोह से कलरव कर उठा। सैनिक व सैन्य-बल-विहीन राजधानी के नागरिकगण डर कर अपने-अपने घरो मे घुसे छिपे रहे। लोग घरो के किवाडे भीतर से बन्द किए डर से इष्ट देव के नाम का जप करने लगे।

यवनो ने घरों के बाहर, सडको पर जिन अभागे आश्रयहीनो को पाया उन्हे भाले से छेद कर या तलवार से काट कर मार डाला। फिर जब सड़क पर मारने के लिए कोई न दिखा तो मकानो के बन्द दरवाजो पर आक्रमण किया। वे चालाक यवन सैनिक कही दरवाजा तोड कर, कही दीवार फाँद कर और कही आतंक से अत्यधिक डरे हुए लोगो को अभय का झूठा आश्वासन दे कर घरो मे घुसने लगे। घरो में घुस कर, गरीब और भयभीत गृहस्थो का सर्वस्व अपहरण कर, बाद मे स्त्री-पुरुष-बालक-वृद्ध सबके सिरो को गाजर-मूली की तरह काटने और क्रूर अट्टहास करने लगे। मात्र युवती व सुन्दरी स्त्रियो के लिए यह नियम लागू न था।

सीधे-साधे गरीब गृहस्थो का घर-आँगन खून से लथपथ होने लगा। यवन सेना भी रक्तस्नान करके लाल हो उठी। लूटे गए माल के भार से घोडो की पीठ और आदमियो का कंधा दुखने लगा। भाले से छिदे और तलवार से कटे हुए ब्राह्मणो के भू-लुंठित सिर भीषण दृश्य उपस्थित करने लगे। ब्राह्मणो के पवित्र यज्ञोपवीत घोड़ो के गलो मे लटकने लगे। पूजा घर म सिंहासन पर रखी शालिग्राम शिलायें यवनो के पैरो की ठोकरो से इधर-उधर लुढकने लगी।

ऐसा ही भयागक और कारुणिक दृश्य था!

भयानक आर्तनाद और असहाय चीख पुकार से रात का शात आकाश भी गूँज उठा। घोडो की टाप, सैनिको के शोर, हाथी की चिग्घाड़, यवनो की विजयोन्मत्त जय-ध्वनि, उस पर घायलो की कराह और चीख, माताओ का विलाप, बच्चो का रोना और वृद्धो की करुणा की आकाक्षा तथा युवतियो की गलाफाड चीख से मिश्रित आवाज से वातावरण काँप उठा।

यवनो के दमन और नाश के लिए जिस वीर पुरुष को माधवाचार्य इतने आदर से नवद्वीप मे ले आये थे, वह इस समय कही दिख नही रहा था।

इस भयानक यवन-प्रलय के समय योद्धा हेमचन्द्र युद्ध नही कर रहे थे। अकेले युद्ध करके वे करते भी क्या?

हेमचन्द्र इस समय अपने शयनागार मे पलग पर गहरी नीद मे सोये पडे थे। नगर पर आक्रमण से उठा कोलाहल और शोर जब उनके कानो तक पहुँचा तब उनकी नीद खुली। उन्होने दिग्विजय से पूछा, 'यह कैसी आवाज है?'

दिग्विजय ने बताया, 'यवन-सेना ने नगर पर आक्रमण किया है।'

सुनते ही हेमचन्द्र चौक पडे। उन्हे अभी तक बख्तियार खिलजी द्वारा नवद्वीप पर अधिकार किए जाने और वृद्ध तथा असहाय राजा के भाग जाने का हाल मालूम न

हो सका था। दिग्विजय ने विशेष रूप से हेमचन्द्र को सब हाल सुना दिया।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'नागरिक क्या कर रहे है ?'

'जो जहाँ भाग सकता था, भाग गया। जो नही भाग सके, वे सब काट डाले गये।'

'और गौडीय सेना ?'

'वह किसके लिए लडे ? राजा तो भाग गये। कोई उन्हे आदेश देने वाला नही रहा। इसलिए उन्होने भी अपनी-अपनी राह पकडी।'

'तुम तत्काल मेरा घोडा कसो।'

विस्मित हो दिग्विजय ने पूछा, 'कहाँ जाइएगा ?'

'नगर मे।'

'एकदम अकेले ?'

हेमचन्द्र ने भौहे तरेरी। आँखो से शोले लपकने लगे। उनकी भौहो और आँखो की क्रुद्ध भगिमा देख कर दिग्विजय एकदम डर गया। वह चुपचाप घोडा कसने लगा।

तब हेमचन्द्र बहुमूल्य रण-सज्जा से सज्जित हो कर, सुन्दर व तेज घोडे पर सवार हो गए ओर भीषण, तेज भाला हाथ मे ले कर तेज नदी की बहती धारा की तरह उस असीम यवन-सेना-सागर मे जा कूदे।

वहाँ जा कर हेमचन्द्र ने देखा कि यवन सैनिक युद्ध नही कर रहे है। सभी केवल लूट-पाट मे ही व्यस्त है। युद्ध करने कोई उनके सामने न आया। उन सैनिको का इस समय ध्यान ही युद्ध की ओर नही था। जिन निहत्थे लोगो को वे लूट रहे थे, लूटने के बाद बिना युद्ध किए उन्हे ही मारते थे। इसलिए यवनो ने दल बाँध कर हेमचन्द्र को मारने के लिए उन पर आक्रमण करने का कोई उद्योग नही किया। छिटपुट रूप मे जिस यवन सैनिक ने हेमचन्द्र द्वारा आक्रान्त हो उनसे युद्ध किया, वह उसी क्षण मारा गया।

हेमचन्द्र चिढ गये। वे युद्ध करने का हौसला ले कर आये थे। लेकिन यवन तो पहले ही बिना युद्ध किए जीत गए थे। अब लूट का माल छोड कर कायदे से लडने को इच्छुक न थे। हेमचन्द्र ने मन मे सोचा—वृक्ष के एक-एक पत्ते को तोड कर कोई पूरे जगल को पत्र-विहीन कैसे कर सकता है ? एक-एक यवन को अलग-अलग मार कर क्या करूँ ? यवन लडते नही, तब यवनो के बध मे भी क्या सुख है ? बल्कि गृहस्थो की रक्षा करना और उन्हे सहायता पहुँचाना ही अच्छा है। अतएव हेमचन्द्र उसी दिशा मे अग्रसर हुए। लेकिन उन्हे इसमे विशेष सफलता न मिली। जब तक दो यवन उनके साथ लडते होते तब तक तीसरा यवन गृहस्थ का सब कुछ हरण कर ले जाता था। जो भी हो, हेमचन्द्र यथासाध्य और यथाशक्ति पीडितो का उपकार करने मे व्यस्त रहे।

एक समय रास्ते के किनारे एक झोपड़ी के भीतर से आती आर्तनाद की आवाज

हेमचन्द्र को सुनाई पडी। यवनों द्वारा सताये जाने वाले किसी आहत व्यक्ति की आर्तनाद समझ कर हेमचन्द्र झोपडी के भीतर घुस गये।

वहा जाकर देखा कि झोपडी के भीतर एक भी यवन न था, बल्कि वहाँ यवनो के प्रलय के निशान स्पष्ट बने हुए है। वहाँ माल-असबाब कुछ भी नही था, जो था सब टूटा-फूटा बेकार और एक ब्राह्मण घायल हो कर जमीन पर पडा आर्तनाद कर रहा था। उसे इतनी गहरी और गभीर चोट लगी थी कि उसकी मृत्यु अति निकट ही दिखती थी। हेमचन्द्र को देख कर वह घायल और मृतप्राय ब्राह्मण भ्रमवश उन्हे यवन समझ कर कहने लगा, 'आओ, आओ—मारो, मारो—जल्दी, मारो—मारो—मेरा सिर काट कर उस राक्षसी को दे दो—ओह, प्राण भी नही निकलते—पानी ! पानी ! लेकिन कौन पानी देगा ?'

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारे घर मे कही पानी है ?'

ब्राह्मण और अधिक कातर हो कर कहने लगा, 'पता नही—याद नही—पानी ! पानी ! पानी ! पिशाचिनी !—राक्षसी !—उसी राक्षसी के कारण मेरी जान गयी।'

हेमचन्द्र ने चारो ओर खोज कर देखा। एक घडे मे पानी था। बर्तन न दिखने से हेमचन्द्र ने पत्ते के दोने मे पानी भर ला कर उसे पिलाना चाहा, तब ब्राह्मण बड़बडा उठा, 'नही, नही ! मै पानी नही पी सकता। यवन के हाथ से मरते समय पानी नही पी सकता।'

हेमचन्द्र बोले, 'मै यवन नही हूँ, हिन्दू हूँ। मेरे हाथ का पानी पी सकते हो। क्या मेरी बातो से भी मुझे नही पहचानते ?'

तब ब्राह्मण ने पानी पिया।

हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारा और क्या उपकार करूँ ?'

ब्राह्मण बोला, 'अब और क्या उपकार करोगे ? मै मरा ! मरा ! जो मर रहा हो, उसके लिए भला क्या करना ?'

'तुम्हारा और कोई है ? उसे मेरे पास रख जाओ।'

'और कौन है ? और कौन है मेरा ? बहुत से है। उसमे वह राक्षसी है, उसी से कह देना, कह देना कि मेरे अपराध का मुझे बदला मिल गया।'

'वह कौन है ? किससे कहूँगा ?'

'कौन है ? वह राक्षसी कौन है ? राक्षसी को नही पहचानते ? वही राक्षसी, पिशाचिनी मृणालिनी—मृणालिनी—मृणालिनी—मृणालिनी पिशाचिनी है।'

मृणालिनी का नाम सुन कर हेमचन्द्र चौक उठे। ब्राह्मण जोरो से कराहने लगा। उत्तेजना उसे असह्य हो रही थी। हेमचन्द्र ने पूछा, मृणालिनी तुम्हारी कौन है ?'

'मृणालिनी मेरी कौन है ? मेरी वह कौन होगी ? कोई नही। मेरे लिए वह यमदूती है।'

'लेकिन मृणालिनी ने तुम्हारा क्या बिगाडा ? '

'क्या बिगाडा है ? कुछ नही—कुछ नही बिगाडा । मैंने ही उसकी दुर्दशा की है । उसी का बदला पाया है ।'

'तुमने उसकी क्या दुर्दशा की है ?'

'अब और नही—और नही बोल सकता । पानी पिला दो ।'

हेमचन्द्र ने उसे फिर पानी पिलाया । पानी पी कर, थोडा स्वस्थ हो कर, स्थिर हो कर जब ब्राह्मण चैतन्य हुआ तो हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'व्योमकेश ।'

सुनते ही हेमचन्द्र की आँखो से अगारे बरसने लगे । उनके दाँत ओठ काटने लगे । हाथ के भाले पर मुट्ठी कसने लगी । लेकिन अपने को अति संयत, स्वाभाविक और शात रख कर हेमचन्द्र ने पूछा, 'तुम कहाँ के रहने वाले हो ?''

'गौड । गौड नही सुना ? वही मृणालिनी मेरे घर मे रहती थी ।'

'फिर ?'

'फिर क्या ? फिर और क्या ? फिर मेरी यही दशा है ।—मृणालिनी—मृणालिनी पापिनी, पापिष्ठा । निर्दयी । मै उसे कितना चाहता था पर उसने कभी पलट कर भी मेरी ओर नही देखा ।—एक दिन—क्रोध मे—अपमान और उपेक्षा का बदला लेने को मैने अपने पिता के आगे उसके नाम झूठा कलंक लगाया । पिता ने मेरी बातो पर, उसको बिना किसी दोष के ही अपमानित कर के घर से निकाल दिया था । राक्षसी ! राक्षसी ! हम लोगो को छोड कर—छोड कर चली गई थी ।'

'तब तुम उसे गलियाँ क्यो दे रहे हो ?'

'क्यो ? क्यो ? गालियाँ—गालियाँ क्यो न दूँगा ?—मृणालिनी ने पलट कर मेरी ओर देखा भी नही ।—मै—मै उसे देख कर जीवन धारण करता था । वह जब चली गई, तभी से—मैने सब कुछ त्याग दिया । उसकी खोज मे किस—किस देश मे नही गया ?—कहाँ-कहाँ नही भटका ? गिरिजाया—गिरिजाया—भिखारी की लडकी—उसकी ताई ने बताया—वह नवद्वीप मे है । इसीलिए नवद्वीप भी आया—कोई पता न लगा—यहाँ यवनो के हाथ मारा गया—उसी राक्षसी के कारण मै—मै मारा गया । उससे—उससे कभी भेट हो तो कह देना कि मुझे मेरे पाप का फल मिल गया ।'

इसके बाद व्योमकेश बोल न सका । बोलने मे पडे परिश्रम से वह थक कर निर्जीव सा हो गया ।

फिर बुझने वाला दीपक बुझ गया । क्षण भर बाद विकट व वीभत्स मुँह बना कर व्योमकेश ने अपने प्राण त्याग दिए ।

अब हेमचन्द्र वहाँ और खडे न रह सके । फिर उन्होने यवनो का वध भी नही किया । किसी तरह रास्ते पर आए और अपने घर लौटे ।

|८|

मृणालिनी का सुख

जहाँ, सरोवर की सीढिओ पर पत्थर की चोट से व्यथित, उसे हेमचन्द्र छोड गये थे, मृणालिनी अब भी वही बैठी है। ससार मे कही जाने के लिए उसके लिए जगह नही थी। उसके लिए तब सभी समान थे। रात के बाद सबेरा हुआ, तब गिरिजाया ने बहुतेरा समझाया, बहुत कुछ कहा, लेकिन मृणालिनी ने कोई जवाब नही दिया, बस सिर झुकाए बैठी रही। नहाने-खाने का समय हुआ। तब गिरिजाया ने एक प्रकार से जबर-दस्ती उसे पानी मे उतार कर नहलाया। नहा कर मृणालिनी गीले कपडो मे ही वहाँ बैठी रही। गिरिजाया स्वय भी बहुत भूखी थी। लेकिन मृणालिनी को वह किसी तरह भी न उठा सकी। बहुत साहस कर के भी बार-बार कह न सकी। तब पास के जगल से कुछ फल-फूल जुटा कर उसने ला कर मृणालिनी को दिया। बहुत कहने पर मृणालिनी ने उन्हे छू भर लिया, खाया नही। उसे ही प्रसाद मान कर बाद मे गिरिजाया ने खाया। वह इतनी भूखी थी कि उसने कुछ भी मृणालिनी के लिए नही छोडा।

इसी तरह समय बीता। पूरब का सूरज मध्य आकाश मे गया, फिर मध्य-आकाश से पश्चिम की ओर गया। फिर शाम भी हो गई। गिरिजाया ने देखा कि अब भी घर वापस लौटने के कोई लक्षण मृणालिनी मे नही दिखते। तब गिरिजाया बहुत ज्यादा घबरा उठी। पहली रात जागते ही बीती थी, इस रात भी जागरण के ही लक्षण है। कुढन के मारे गिरिजाया मृणालिनी से कुछ न बोली। उसने कुछ पत्तियाँ बटोरी और उन्हे सीढी पर बिछा कर अपना बिस्तर तैयार किया। मृणालिनी ने उसका मतलब समझ कर कहा, 'तुम घर जा कर सो रहो सखी!'

मृणालिनी की बातें सुन कर गिरिजाया पहले तो प्रसन्न हुई, फिर कुछ सोच कर बोली, 'एक साथ ही चलेंगे।'

'मै थोडी देर मे चलूँगी।'

'तब तक मै ऐसे ही रहूँगी। भिखारिनी को पत्ते बिछा कर सोने की आदत है। लेकिन हिम्मत पाऊँ तो एक बात कहूँ—राजपुत्र से तो अब इस जनम मे संबध टूटा। तब अब बेकार क्यो इस कार्तिक की ओस मे कष्ट सहे?'

'सखी गिरिजाया! हेमचन्द्र से इस जन्म मे मेरा सबंध नही टूट सकता। मैं कल भी हेमचन्द्र की दासी थी, आज भी हूँ और कल भी रहूँगी।'

गिरिजाया मन ही मन चिढ गई। आवेश मे आ उठ कर बैठ गई। बोली, 'सखी, तुम अभी भी यह कह रही हो कि तुम उस निर्दयी, पाखण्डी की दासी हो? अगर तुम

अभी भी उसकी दासी हो तो मै तो चली। अब तुम्हारे पास मेरी कोई जरूरत नही है।'

'सखी गिरि, अगर हेमचन्द्र ने तुम्हे तकलीफ दी हो तो तुम दूसरो के सामने उनकी निन्दा करना। हेमचन्द्र ने मुझ पर कोई अत्याचार नही किया। मै क्यो उनकी निन्दा सहूँ ? वे राजपुत्र है, मेरे स्वामी है, उन्हे पाखण्डी तो मत कहो।'

गिरिजाया और भी चिढ गई। थोडी देर पहले बहुत यत्न से बिछाई पत्तो की शय्या को नोच-खसोट कर फेकने लगी। बोली, 'पाखण्डी न कहूँ ? एक बार कहूँगी, दस बार कहूँगी, सौ बार कहूँगी, हजार बार कहूँगी।' कहते-कहते उसने बिस्तर बने सभी पत्रो को फेंक दिया। फिर बोली, 'पाखण्डी न कहूँ ? भला किस दोष पर उन्होने तुम्हारा इतना अपमान किया ?'

'इसमे दोष मेरा ही है। मै समझ कर सब बातें उनसे नही कह सकी। क्या कहने को था और क्या कह गई ?'

'जरा अपना माथा तो छू कर देखो !'

तब मृणालिनी ने अपने माथे पर हाथ फेरा।

गिरिजाया ने चिढ और व्यग्य से पूछा, 'क्या देखा ?'

'थोडा दर्द है।'

'यह दर्द कैसे हुआ ?'

'मुझे नही मालूम।'

'तुमने हेमचन्द्र के कधे पर सिर रखा था न ! वह झटक कर चले गये थे। तभी पत्थर पर गिरने से तुम्हारे सिर मे चोट लगी थी।'

मृणालिनी क्षण भर कुछ सोचती रही। उसे कुछ भी याद न आया। बोली, 'मुझे याद नही। हो सकता है, मै अपने आप गिर पडी होऊँ !'

गिरिजाया चकित हुई। बोली, 'इस ससार मे तुम्ही सुखी हो।'

'क्यो, कैसे ?'

'तुम क्रोध नही करती।'

'मै सुखी हूँ। लेकिन उसके लिए नही।'

'तब कैसे ?'

'हेमचन्द्र से भेंट हो गई, इसलिए।'

| ९ |

स्वप्न

गिरिजाया ने फिर कहा, 'घर चलो।'

मृणालिनी ने पूछा, 'नगर मे यह कैसा शोर हो रहा है ?'

उस समय यवन-सेना नगर मे प्रलय मचाने मे व्यस्त थी।

शोर सुन कर दोनो ही सशंकित हुईं। गिरिजाया ने गंभीर स्वर मे कहा, 'अब चलो, अब होशियार हो जाना चाहिए।'

दोनो चली। लेकिन सड़क तक पहुँचते ही देखा—आगे जाने का कोई उपाय नही है। फिर लाचार हो कर सरोवर के किनारे आ बैठी। तब गिरिजाया ने कहा, 'यदि वे सब यहाँ भी आवेगे तब ?'

मृणालिनी चुप रही। क्या कहती ? तब गिरिजाया अपने आप ही बोली, 'जंगल के अंधेरे मे इसी तरह छिपी रहूँगी तो कोई देख न सकेगा।'

दोनो अंधेरे मे सीढी पर बैठी रही।

मृणालिनी ने सिर झुका कर कहा, 'गिरिजाया, अब शायद मेरा यथार्थ सर्वनाश आ उपस्थित हुआ है।'

'सो कैसे ?'

'अभी उधर एक सवार गया है। वह हेमचन्द्र है। सखी, नगर मे भयानक युद्ध हो रहा है। अगर मेरे स्वामी इस युद्ध मे गये होगे, तो न जाने किस विपत्ति मे पड़ेंगे।'

गिरिजाया इसका कोई उत्तर न दे सकी। असल मे उसे बड़ी नीद लग रही थी। कुछ देर बाद मृणालिनी ने देखा कि गिरिजाया गहरी नीद मे सो गई है।

भोजन और नीद के अभाव मे मृणालिनी सचमुच कमजोर हो गई थी। ऊपर से दिन-रात तीव्र मानसिक यन्त्रणा भी तो सह रही थी। अब तो बिना नीद लिए शरीर भी साथ देने मे असमर्थ हो रहा था। उसे भी झपकी आ गई। नीद मे ही वह सपना देखने लगी। देखा कि हेमचन्द्र अकेले ही सारे युद्ध मे विजयी हुए है। मृणालिनी उस वीर-विजेता को देखने के लिए रास्ते के किनारे खड़ी है। सड़क पर हेमचन्द्र के आगे-पीछे कितने ही हाथी-घोड़े-पैदल-सवार चल रहे है। लगा कि हेमचन्द्र की वह सेना मृणालिनी को गिरा कर पैरो से कुचलती हुई चली गई। तब अपनी सिन्धु देश की सुन्दर घोड़ी से उतर कर हेमचन्द्र ने उसका हाथ पकड़ कर उठाया। तब उसने हेमचन्द्र से कहा, 'स्वामी! बहुत कष्ट सह चुकी, अब दासी का त्याग मत करना।' तब जैसे हेमचन्द्र ने

कहा, 'अब तुम्हे कभी नही छोड़ूँगा।'—बस इसी आवाज को सुन कर जैसे उसकी नीद टूट गई। जागते मे भी जैसे उसने यही बात सुनी—'अब तुम्हे कभी नही छोड़ूँगा।'

व्याकुल हो मृणालिनी ने आँखे खोली—जो देखा, उस पर विश्वास न हुआ। फिर से ठीक से देखा, सचमुच, मामने हेमचन्द्र ही खडे थे।

हेमचन्द्र कह रहे थे, 'और एक बार क्षमा कर दो। अब तुम्हे कभी नही छोड़ूँगा।'

दर्प, अभिमान-रहित, निर्लज्जा मृणालिनी ने फिर हेमचन्द्र के गले से लग कर उनके कन्धे पर अपना सिर रख दिया।

| १० |

प्रेम–नाना प्रकार

आनन्द के अनगिनत आँसू बहा कर अपना चेहरा गीला कर लेने वाली मृणालिनी का हाथ पकड कर हेमचन्द्र उसे अपने घर की ओर ले चले। एक दिन इसी मृणा-को तिरस्कृत, अपमानित और व्यथित कर के हेमचन्द्र उसे त्याग कर, झटका देकर चले गये थे। आज फिर अपने आप आ कर उसे हृदय से लगाया, ग्रहण किया—यह देख कर गिरिजाया के विस्मय की सीमा न रही। लेकिन मृणालिनी ने हेमचन्द्र से एक बार भी नही पूछा, कुछ भी न कहा। वह आनन्द की सीमाहीन अनुभूति से विवश हो कर कपड़े से आँसू पोछती हुई उनके साथ-साथ चलने लगी। गिरिजाया से चलने के लिए कहना नही पडा। वह स्वय ही उन दोनो से थोड़ी दूरी रख कर और उनके साथ पीछे-पीछे चल पडी।

हेमचन्द्र के घर मृणालिनी के आने के बाद दोनो जन बैठ कर बहुत दिनो की अपने-अपने दिल की बातें खोलने लगे। हेमचन्द्र ने सब कहा—जिन-जिन घटनाओ को सुन कर उनके मन मे मृणालिनी के प्रति गहन वितृष्णा और विराग उत्पन्न हुआ था, और जिन-जिन बातो से उस वितृष्णा और विराग का नाश हुआ था—सभी कुछ खोल कर कहा। तब मृणालिनी ने भी सब विस्तार से बताया—किस तरह हृषीकेश का घर छूटा, किस तरह नवद्वीप आई, सब कहा। दोनो ने इस प्रकार क्रमश मन मे छिपे कितने ही भावो को एक दूसरे के सामने प्रकट किया। दोनो ही मिल कर भविष्य

के बारे मे जाने कितनी कल्पनाएँ करने लगे। दोनो ही कई नई-नई प्रतिज्ञाओ मे अपने आप बँधने लगे। दोनो ही जाने कितनी निष्प्रयोजन बातो को भी आवश्यक बातो की तरह अत्यधिक आग्रह के साथ कहने-सुनने लगे। कितनी ही बार, दोनो ही कितनी बार एक दूसरे के मुँह की ओर देख कर मधुर हँसी हँसे और लजाये। बाद मे चिडियो के चहचहाते पर प्रभात की सूचना पा कर कई बार दोनो ने विस्मय मे एक दूसरे से पूछा— अभी ही रात कैसे बीत गई, आज रात इतनी जल्दी कैसे बीत गई?—उस नगर मे यवन-प्रलय का जो आर्तनाद और कोलाहल तूफानी समुद्र की तरह उफन रहा था, वह दो प्रणयी जनो के हृदय सागर की तरगो मे डूब गया।

तभी हेमचन्द्र के घर मे एक जगह एक और काण्ड हो गया। हेमचन्द्र के आदेशानुसार दिग्विजय रात को जाग कर घर की रक्षा के लिए पहरा दे रहा था। मृणालिनी को साथ ले कर जब हेमचन्द्र आये तब उसने देखते ही मृणालिनी को पहचान लिया। मृणालिनी उसके लिए पूर्व परिचिता न थी। फिर भी वह पहचान गया। पहले तो मृणालिनी को देख कर दिग्विजय विस्मित हुआ, लेकिन करता भी क्या? पूछने का कोई उपाय न था। क्षण भर बाद जब उसने गिरिजाया को भी आया देखा तो मन मे सोचा, समझ गया, यह दोनो ही हम लोगो को मिलने आई है। मालकिन तो युवराज से मिलने आई है और यह मुझसे। इस बात मे कोई शंका नही है।—यही सोच कर दिग्विजय ने एक बार मूँछो पर ताव दिया और मन ही मन बोला, 'भेट क्यो नही होगी? लेकिन यह बहुत पाजी है। एक दिन भी यह गौड मे मुझसे सीधे मुँह नही बोली, हमेशा गालियाँ ही देती रही है। तब क्या भरोसा कि मुझे ही मिलने आई है! जो हो, जरा आजमा कर देखना होगा। रात बीत रही है, युवराज भी आ ही गये है। अब मै जरा करवट बदल कर सो कर देखूँ कि यह मुझे खोजती है या नही?'—यही सोच कर दिग्विजय एक एकात स्थान पर जा कर लेट गया और जल्दी ही उसे नीद भी आ गई।

गिरिजाया ने भी दिग्विजय को सोते देखा। तब गिरिजाया मन ही मन सोचने लगी, 'मै तो मृणालिनी की दासी ठहरी—मृणालिनी तो इस घर की मालकिन है, या होगी—तब घर के काम काज का भार तो मुझ पर ही है।'—मन मे यही सोच कर गिरिजाया ने पास ही पडी एक झाडू उठाई और जहाँ दिग्विजय सो रहा था वही चली गई। तब तक दिग्विजय की नीद कच्ची ही थी। दिग्विजय की आँखें तो बंद ही थी पर पैरो की आवाज से वह समझ गया कि गिरिजाया आ रही है। मन ही मन अतीव प्रसन्नता का अनुभव किया कि अब तो गिरिजाया मुझसे प्रेम करती है। वह प्रतीक्षा करता रहा कि देखें कि गिरिजाया क्या कहती या करती है? यही सोच कर दिग्विजय आँखें बंद किए पड़ा रहा। एकाएक उसने देखा कि उसकी पीठ पर झमाझम झाडू चलने लगी। गिरिजाया झाडू चलाती जाती और बडबड़ाती जाती, 'ओ माँ! मैं तो मर गई! घर भर मे इतनी धूल जमा है—देखो तो यह क्या है, यह कौन है? चोर है

क्या ? मरा पाजी ! राजा के घर चोरी करने आया है ?' कह कर उसने फिर झाड़ू मारना शुरू किया। दिग्विजय को लगा कि उसकी पीठ छिल गई होगी। घबरा कर चीखा, 'अरे, गिरिजाया ! यह मै हूँ, मै।'

'तुझे ही समझ कर तो मैने झाड़ू मार कर तुझे बिछा दिया है।' कह कर फिर झाड़ू-प्रहार शुरू किया।

'दोहाई ! दोहाई गिरिजाया ! मै दिग्विजय हूँ।'

'चोर ! आया है चोरी करने और कहता है कि दिग्विजय हूँ। तू भला गिरिजाया को क्या जाने रे पाजी !' और झाड़ू-प्रहार का वेग और बढ गया।

तब दिग्विजय ने बडी कातरता से कहा, 'गिरिजाया मुझे भूल गई ?'

'तेरी-मेरी कब की भेंट-मुलाकात है रे !'

दिग्विजय ने देखा कि अब छुटकारा नही है। उसने भी रग मे भग करने की ठानी। कोई और उपाय न देख वह जोरो से उठ कर भाग खडा हुआ।

गिरिजाया भी झाड़ू ताने उसके पीछे-पीछे भाग गई।

|११|

पूर्व-परिचय

सबेरा होते ही हेमचन्द्र माधवाचार्य की खोज मे निकल गये। गिरिजाया आ कर मृणालिनी के पास बैठ गई। गिरिजाया मृणालिनी के दुख मे सगिनी बनी थी, ममता से उसने उसके दुख के समय दुख की कहानियाँ सुनी थी। आज जब सुख के दिन आए है, तब वह सुख की सगिनी क्यो नही बनेगी ? आज भी उसी ममता के साथ सुख की बाते क्यो नही सुनेगी ? गिरिजाया भिखारिणी है और मृणालिनी एक महाधनी की कन्या। दोनो मे बडी सामाजिक दूरी है। लेकिन दुख के दिनो मे गिरिजाया ही मृणालिनी की एकमात्र सहचरी थी, ऐसे समय मे एक भिखरिणी और एक राजपुत्र-वधू मे अधिक अन्तर नही रहता। आज इसी भरोसे से गिरिजाया मृणालिनी के हृदय के सुख की भागिनी बनी है।

जो बातचीत हो रही थी, उससे गिरिजाया विस्मित और प्रसन्न, दोनो साथ-साथ हो रही थी। उसने मृणालिनी से पूछा, 'तब इतने दिनो से यह सब बातें क्यो नही कही ?'

'अब तक राजपुत्र की ओर से मनाही थी, इसीलिए नही कह सकी। अब यह सब कहने की अनुमति दी है, इसीलिए कह रही हूँ।'

'मालकिन, सब बातें कहो न ! सुन कर मुझे बडी तृप्ति मिले गी।'

तब मृणालिनी ने कहना शुरू किया, 'मेरा पिता एक बौद्ध मतावलम्बी सेठ है। वह बहुत अधिक धनी और मथुरा के राजा के प्रिय पात्र है। मथुरा की राज-कन्या मेरी सखी थी।

'एक दिन मै अपनी सखी—मथुरा की राज-कन्या के साथ नाव पर यमुना मे जल विहार के लिए गई। वहाँ एकाएक भयानक आँधी-पानी के आ जाने से नाव पानी मे डूब गई। राजकन्या और अन्य लोग रक्षको और मल्लाहो के प्रयत्न से रक्षा पा सके, लेकिन मै नदी मे बह गई। दैवयोग से एक राज-पुत्र उस समय वही नाव पर सैर कर रहे थे। पहले मै उन्हे पहचानती न थी—वे हेमचन्द्र थे। वह भी आँधी-पानी के डर से नाव को किनारे लगा रहे थे। पानी म जब उन्होने मेरे बाल देखे तो स्वय पानी मे कूद पड़े और मुझे बचाया। मै उस समय बेहोश थी। हेमचन्द्र मेरा परिचय न जानते थे। इस समय वे तीर्थं दर्शनो को मथुरा आये थे। अपने डेरे मे मुझे ले जा कर उन्होने मेरी खूब सेवा की। मुझे होश आने पर, मेरा परिचय पूछ कर वे मुझे, मेरे पिता के पास भेजने की तैयारी करने लगे। लेकिन तीन दिनो तक आँधी-पानी का वेग कम न हुआ। ऐसा दुर्दिन उपस्थित हुआ कि कोई घर से बाहर भी नही निकल सकता था। अतएव तीन दिनो तक हम लोगो को साथ ही रहना पडा। हम दोनो ने एक दूसरे का परिचय पाया। केवल जाति और कुल का ही परिचय नही, दोनो ने एक दूसरे के अन्त करण का भी परिचय पाया। तब मेरी आयु सोलह वर्ष की थी। लेकिन उसी उम्र मे मैं उनकी दासी हो गई। उस अबोध व कोमल आयु मे कुछ समझ न सकी। हेमचन्द्र को देवता की तरह मानने लगी। उन्होने जो कहा उसे धर्मवाक्य माना। उन्होने कहा—'विवाह करो।'—मुझे लगा कि यह परम आवश्यक कर्तव्य है, चौथे दिन दुर्योग हटा देख कर उपवास किया, दिग्विजय ने सब व्यवस्था कर दी। तीर्थ-यात्रा मे राज-पुत्र के कुल पुरोहित साथ मे थे ही। उन्होने ही हम दोनो का विवाह कराया।'

'कन्यादान किसने किया ?'

'अरुन्धती नाम की एक पुरानी कुटुम्बिनी थी। वह रिश्ते मे मेरी माँ की बहन होती थी। उन्होने मुझे बचपन से ही खेलाया और पाला था। वह मुझसे अत्यधिक स्नेह करती थी। मेरे सभी उपद्रवो को वह सहती भी थी। मैने उन्हो का नाम बताया। दिग्विजय ने चालाकी से व छल से हमारे अन्त पुर मे संवाद भेज कर उन्हे हेमचन्द्र के घर बुलवाया। औरो की तरह अरुन्धती भी समझती थी कि मै जमुना मे डूब मरी हूँ। अत. वहाँ मुझे जीवित देख कर वे इतनी प्रसन्न हुईं कि मेरी किसी बात का भी उन्होने विरोध नही किया। विवाह हो जाने के बाद मै अरुन्धती मौसी के साथ अपने पिता के घर गई।

वहाँ सब कुछ सच-सच बताया, सिर्फ विवाह की बात छिपा ली। मेरे, हेमचन्द्र, दिग्विजय, कुलपुरोहित और अरुन्धती के अलावा इस विवाह का हाल और कोई नही जानता था। अब आज तुम सुन रही हो।'

'माधवाचार्य भी नही जानते ?'

'नही, यदि वे जान जाते तब तो सर्वनाश ही हो जाता। तब तो मगधराज भी जरूर सुन लेते। मेरे पिता बौद्ध है और मगधराज बौद्धो के परम शत्रु।'

'अच्छा, अगर तुम्हारे पिता अब तक तुम्हे कुमारी ही समझते थे तो इतनी उम्र होने पर भी उन्होने तुम्हारा ब्याह क्यो नही किया ?'

'इसमे मेरे पिता का कोई दोष नही है। उन्होने कम प्रयत्न नही किया, लेकिन सुपात्र आसानी से नही मिलते। क्योकि बौद्ध धर्म अब प्राय लुप्त हो गया है। पिता बौद्ध दामाद चाहते है, साथ ही सुपात्र भी। लेकिन इस तरह का एक मिला था, वह भी मेरे हेमचन्द्र से विवाह होने के बाद। विवाह का दिन भी स्थिर हुआ था, सब प्रकार से तैयारी भी हुई थी। लेकिन उसी समय मै भयानक बुखार मे पड गई। उसने फिर दूसरी जगह कही विवाह कर लिया।'

'जानबूझ कर ही बुखार बुला बैठी थी न ?'

'सही तो, जानबूझ कर ही। हमारे बाग मे एक पुराना कुआँ है, उसका पानी कोई नही छूता। उस कुएँ का पानी पीने या उससे नहाने से जरूर बुखार आ जाता है। मैने उस रात मे छिप कर उसी पानी से नहा लिया था।'

'फिर तो जब भी बात आती होगी, वैसा ही करती रही होगी ?'

'और नही तो क्या ? और नही तो हेमचन्द्र के पास भाग जाती थी।'

'मथुरा से मगध तक एक महीने से ज्यादा की राह है। औरत हो कर अकेली तो नही आ सकती थी, फिर किसकी सहायता से भागती ?'

'मुझे मगध तक की यात्रा करने की जरूरत नही थी। मुझसे ही मिलने के लिए हेमचन्द्र मथुरा मे एक दूकान कर के वहाँ रत्नदास वणिक का रूप धर कर रह रहे थे। वे वहाँ इसी नाम से परिचित थे। व्यापार के बहाने वे वर्ष मे कई बार मगध से वहाँ आते थे। जब वे मथुरा मे न रहते थे तब दिग्विजय ही व्यापार का काम सभालता था। दिग्विजय को आदेश था कि जब भी मै जैसी आज्ञा दूँ, वह उसी क्षण वैसा ही करे। इस प्रकार मै नि.सहाय न थी।'

मृणालिनी जब कह चुकी तब गिरिजाया ने कहा, 'मालकिन ! तब तो मैने एक बहुत बडा अपराध किया है। मुझे क्षमा करना ही होगा। मै उचित प्रायश्चित भी करने को तैयार हूँ।'

'ऐसा कौन सा अपराध कर बैठी हो ?'

'क्या भिखारियो की लडकी का भी ब्याह होता है ?'

'करने से होगा क्यो नही ?'
'तब मै उस नालायक से विवाह करू ँगी—और क्या करू ँ?'
'तब मै तुझे हल्दी लगाऊँ गी।'

| १२ |

परामर्श

माधवाचार्य की कुटी मे पहुँच कर हेमचन्द्र ने देखा कि आचार्य जप कर रहे है। हेमचन्द्र ने प्रणाम करके कहा, 'हम लोगो का सारा प्रयत्न बेकार हो गया। अब मेरे लिए क्या आज्ञा है ? यवनो ने गौड राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया है। शायद भारत के भाग्य मे यवनो का दासत्व ही लिखा है। नही तो बिना लड़े ही यवन गौड को कैसे जीत लेते ? इस शरीर का अत करने से यदि एक दिन के लिए भी जन्मभूमि डाकुओ के अधिकार से मुक्त हो सके तो मै इसी क्षण अपना शरीर नष्ट करने को तैयार हूँ। इसी अभिप्राय से मै रात को युद्ध करने की ठान कर नगर मे आगे बढा था—लेकिन युद्ध तो कही हुआ ही नही। सिर्फ देखा कि एक ओर लोग आक्रमण करते है और दूसरी ओर लोग भागते है।'

तब माधवाचार्य ने कहा, 'वत्स, तुम दुखी मत हो हो। दैव-निर्देश कभी बेकार होने वाला नही है। जब मैने गणना की है कि तुर्कों को पराजित होना पड़ेगा, तब निश्चित जानना कि वह सब पराजित होगे। यह सही है कि अभी यवनो ने नवद्वीप पर अधिकार कर लिया है, लेकिन नवद्वीप ही समस्त गौडराज्य तो नही है। राजा राज-सिहासन छोड कर भाग गया है, लेकिन गौड राज्य में अन्य अनेक राजे भी है। वे सब तो अभी तक नही भागे है न ? फिर कौन कह सकता है कि जब सब राजा पूरी शक्ति और प्राण-प्रण से इकट्ठे हो कर चेष्टा करेंगे तब भी यवन जीत सकेंगे ?'

'लेकिन इसकी संभावना अब बहुत ही कम है।'

माधवाचार्य ने कहा, 'ज्योतिष गणना झूठ नही हो सकती। वह अवश्य सत्य होगी। शायद मुझे एक भ्रम हुआ होगा। पूर्व देश मे यवन पराजित होगे, सोच कर हम-लोगो ने नवद्वीप मे ही यवनो के पतन की आशा की थी। लेकिन गौड राज्य ही तो पूर्व-देश नही है। कामरूप ही ठीक पूर्व है। शायद वही हम लोगो की आशा फलवती होगी।'

'लेकिन अभी तो यवनो के कामरूप जाने की कोई भी सम्भावना नही दिखाई देती।'

'इन यवनो का चरित्र ही ऐसा है कि ये लोग क्षण भर भी स्थिर नही रहते। गौड मे थोडा स्थिर होते ही ये लोग कामरूप पर अवश्य ही आक्रमण करेंगे।'

'यदि यह मान भी ले और यह भी मान ले कि कामरूप पर आक्रमण करने से वे परिजित होगे, लेकिन इससे मेरे पिता के राज्य के उद्धार का क्या उपाय होगा ?'

'देखो, ये यवन अब तक बराबर विजय पाते जा कर राजाओ मे अजेय के नाम से विख्यात हो गये है। भय और आतक के कारण कोई उनका विरोध करना नही चाहता। बस एक बार उनके पराजिन हो जाने से उनकी यह महिमा मिट जायगी। तब भारतवर्ष के सभी राजे निडर हो कर उनके विरुद्ध शस्त्र उठा लेंगे। सब के एक साथ शस्त्र धारण करने पर फिर यवन कहाँ टिक सकेंगे ?'

'गुरुदेव ! आप आशा का सहारा ले रहे है, मैने भी वैसा ही किया। अब आज्ञा दीजिए कि मै क्या करूँ ?'

'मै भी सोचता हूँ कि अब इस नगर मे तुम्हारा रहना उचित नही, क्योकि यवनो ने तुम्हे मार डालने का ही संकल्प किया है। मेरी राय है कि तुम आज ही यह नगर छोड दो।'

'तब कहाँ जाऊँ ?'

'मेरे साथ कामरूप चलो।'

तब हेमचन्द्र ने सिर झुका कर, लज्जाभरे मधुर स्वर मे कहा, 'तब मृणालिनी को कहाँ छोड जायेंगे ?'

विस्मित हो कर माधवाचार्य बोले, 'यह क्या ? मै तो समझता था कि कल की बातो के अनुसार तुमने मृणालिनी को मन से निकाल दिया है।'

'मृणालिनी अत्याज्य है। वह मेरी विवाहिता पत्नी है।'

आचार्य चौक पडे। क्रुद्ध हुए। क्षोभ से भर कर बोले, 'मै इस बारे मे कुछ जान ही न सका।'

तब हेमचन्द्र ने शुरू से आखिर तक अपने विवाह की बात खोल कर विस्तार से बताई। सुन कर माधवाचार्य कुछ देर चुप रह कर कुछ सोचते रहे। फिर बोले, 'वत्स ! मै प्रसन्न हुआ। मैने तुम्हारी ऐसी प्रियतमा और गुणवती पत्नी को तुमसे अलग रख कर बहुत कष्ट दिया है। अब आर्शीवाद देता हूँ कि तुम दोनो दीर्घजीवी रहो। धर्म आचरण करो और जब तुम इस समय सपत्नीक हुए हो तो मै तुम्हे अभी अपने साथ कामरूप चलने को नही कहूँगा। मैं ही अकेला पहले जाऊँगा। जब समय आएगा तब कामरूप नरेश तुम्हारे पास दूत भेजेंगे। इस समय तुम बहू को ले जा कर मथुरा मे रहो। या कही और जी चाहे तो वहाँ जाओ।'

इसके बाद माधवाचार्य से विदा ले कर हेमचन्द्र वापस हुए। तब माधवाचार्य ने आर्शीवाद दे कर, आलिंगन कर के आँसुओ भरी आँखो से हेमचन्द्र को विदा किया।

|१३|

प्रायश्चित

जिस रात को राजधानी यवनो द्वारा मचाए गए प्रलय से पीडित हुई, उस रात मे पशुपति अकेले कारागार मे कैद थे। सबेरा होते ही यवन-प्रलय की आँधी समाप्त हो गई। मुहम्मद अली कारागार मे पशुपति से बाते करने आया। उसे देखते ही पशु-पति ने कहा, 'यवन ! अब मीठी बातो की जरूरत नही है। तुम्हारी ही मीठी बातो पर विश्वास करके मै इस दशा मे पहुँच गया हूँ। विधर्मी यवनो पर विश्वास करने का जो फल मिलता है।' वही मैने पाया। अब मैने मृत्यु को ही सत्य मान कर सभी उम्मीदें छोड दी है। अब तुम लोगो की किसी मीठी बात मे नही फँसूँगा।'

मुहम्मद अली बोला, 'मै तो सिर्फ अपने मालिक का हुक्म बजाता हूँ। इस समय भी मालिक का हुक्म ही मानने के लिए आया हूँ। आप को मुसलमानी पोशाक पहननी होगी।'

'इस बारे मे अब अपना मन आप लोग शात कर ले। मैने अब मरने का ही निश्चय कर लिया है। अब तो जान देने के लिए ही तैयार हूँ। लेकिन किसी भी मूल्य पर इस्लाम धर्म ग्रहण नही करूँगा।'

'मै अभी आप से इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिये नही कहता, सिर्फ मालिक की इच्छा के लिए मुसलमानी पोशाक पहनने को कह रहा हूँ।'

'ब्राह्मण हो कर मै मुसलमानी पोशाक क्यो पहनूँ ?'

'अगर खुशी से नही पहनें गे, तो जबरदस्ती पहनाऊँ गा। इन्कार करने का मतलब अपमान करना होगा।'

पशुपति चुप रहे। मुहम्मद अली ने अपने हाथो उन्हें मुसलमानी पोशाक पह-नाया और कहा, 'अब मेरे साथ चलिए।'

'कहाँ ?'

'आप कैदी है। आप को यह पूछने का अधिकार नही है।'

पशुपति चुप रहे।

मुहम्मद अली उन्हें राजमहल के राजद्वार की ओर ले चला। जो रक्षक पशुपति की रक्षा के लिए तैनात था, वह भी साथ-साथ चला।

दरवाजे पर पहरेदारो के पूछने पर मुहम्मद अली ने अपना परिचय दिया। फिर उसके एक इशारे पर ही पहलेदार दूर हट कर खड़े हो गये। राज-द्वार से निकल कर वे तीनो सडक तक आये। उस समय यवन सैनिक नगर मे लूटपाट करके, थक कर

आराम कर रहे थे। इसलिए सडक पर कोई उपद्रव नही हो रहा था। मुहम्मद अली ने कहा, 'धर्माधिकारी! आप ने बिना कारण ही मेरा बडा अपमान किया है। मै बख्तियार खिलजी के इस मतलब को बिल्कुल ही नही समझा था। ऐसा होता तो मैं कभी भी धोखेबाजी की बाते करने आपके पास न आता। जो भी हो, यह तो सच ही है मेरी बातो पर विश्वास करने के ही कारण आप इस दशा को पहुँचे है। मुझसे जहाँ तक हो सका है, मैने प्रायश्चित किया। गंगा किनारे आपके लिए नाव तैयार है। आप अब जहाँ जाना चाहें, चले जायँ। मै अब यही से बिदा होता हूँ।'

मुहम्मद अली की बातो पर पशुपति विस्मित हुए। मुहम्मद अली ने और कहा, 'मेरी राय है कि आप इसी रात को यह नगर छोड कर चले जायँ, नही तो कल सवेरे आप से व्यर्थ ही झगडा होगा। मेने यह सब खिलजी की मरजी के खिलाफ किया है। इसका गवाह यह पहरेदार है। इसके बचाव के लिए इसे भी यहाँ से हटाना जरूरी है। इसे भी आप अपने साथ नाव पर ही लेते जायँ।'

यह कह कर मुहम्मद अली लौट गया। कुछ देर पशुपति चकित खडे रहे। फिर गगा किनारे चले गये।

|१४|

विसर्जन

मुहम्मदअली के चले जाने के बाद पशुपति नवद्वीप के राजपथ पर धीरे-धीरे चलने लगे। क्योकि यवनो की कैद से छुटकारा पाकर भी जाने क्यो उनके भीतर तेज चाल से चलने की प्रेरणा नही रह गई थी। सडक पर जो भी दिखा, उसे देख कर वे अपना मन मार कर चुप रह गये। रास्ते मे कदम-कदम पर उन्हें वहाँ बिछी लाशो की ठोकर लगती थी। खून के कीचड से दोनो पाँव सन गये। रास्ते के दोनो ओर के मकानो मे कोई आदमी न था। बहुतेरे घर जले हुए दिखे। कही कही अभी तक आग बुझी न थी। लगभग सभी घरो के दरवाजे टूटे, खिडकियाँ टूटी, कोठरियाँ टूटी और लाशो से पटी दिखी। अभी भी कही-कही कोई-कोई अभागा मौत की घडियाँ गिनता हुआ आर्तनाद के साथ चीख पडता था।

पशुपति को लगा कि इस व्यापक विध्वस का मूल कारण वही है। भयानक लोभ के वश मे उन्होने ही इस राजधानी को श्मशान-भूमि मे परिवर्तित करा दिया है। पशुपति ने मन ही मन स्वीकार किया कि उन्होने फाँसी पडने जैसा अपराध किया है। वे

क्यो मुहम्मद अली के कहने से यवनो के कलकित कैदखाने से भागे ? अच्छा हो कि यवन उन्हे पकड ले और मनमानी सजा दे। मन मे आया कि फिर लौट चले। तब उन्होने मन ही मन इष्ट देवी को याद किया। लेकिन देवी से क्या माँगे ? माँगने के लिए अब है भी क्या ? उन्होने आह भर कर आकाश की ओर ताका। आकाश की पवित्र शोभा आँखो से सही न गई। उन्होने घबरा कर आँखे बन्द कर ली। तभी अचानक एक भय ने आ कर उनका हृदय दबोच लिया। भय के मारे उनके कदम आगे बढ़ने से रुक गये। उन्हे लगा कि एकाएक वे शक्तिहीन हो गये है। सम्हलने के लिए राह के किनारे बैठते-बैठते उन्होने देखा कि वे एक लाश पर बैठने जा रहे थे। लाश खून से लथपथ थी और उनके कपडो मे भी खून लग गया। वह रोमाचित हो कर काँप उठे। घबरा कर वह तेज कदम चलने लगे। एकाएक एक बात और याद आई—उनका घर ? क्या अब तक वह यवनो के ध्वस से बचा होगा ? उस घर मे जिस फूल सी कोमल प्राण-पुतली को छिपा आये थे, उसकी क्या दुर्दशा हुई हो गी ? मनोरमा कहाँ हो गी ? उस प्राणप्यारी ने उन्हें पाप के रास्ते पर बढने से बार-बार रोका था—अब तक शायद वह भी उनके पाप सागर की तरंगो मे डूब गई होगी। इस यवन सेना के राक्षसी प्रवाह मे वह कली न जाने कहाँ बह कर गई होगी !

पशुपति पागल की तरह उन्मत्त होकर अपने घर की ओर चले। वहाँ जा कर देखा कि जो सोचा था वही हुआ। उनकी ऊँची अट्टालिका ऊँचे पहाड मे लगी आग की तरह जल रही थी।

देखते ही पशुपति को विश्वास हो गया कि पशु समान बर्बर यवनो ने अवश्य ही मनोरमा का बध करके घर मे आग लगाई है। आसपास उन्हे कोई न दिखा जो उन्हे कुछ समाचार देता। अपने मन मे उठी आशका को ही उन्होने सच समझ लिया। हलाहल का घडा भर गया—मन का अन्तिम तार भी टूट गया। काफी देर तक आँखें फाड़-फाड कर अपनी जलती अट्टालिका को देखते रह गये। अचानक वे मरने वाले पतग की तरह क्षण भर के लिए एक जगह पर ठहरे, फिर बडी तेजी से दौड कर उस अग्नि भंडार मे कूद पडे।

साथ का सिपाही चौका, पर वह कुछ कर न सका। खडा रहा।

बडी तेजी से पशुपति दौडते हुए मकान के जलते हुए दरवाजे के भीतर घुस कर लपकती लपको मे अदृश्य हो गये। किसी तरह अग्नि-कुण्ड पार कर अपने कमरे मे पहुँचे। वहाँ कुछ दिखाई न पड़ा। जलते शरीर से कमरे-कमरे मे घूमते रहे। इस समय उनके हृदय मे जो भयानक आग जल रही थी, उसकी तीव्रता के कारण वे बाहर लगी आग की जलन का अनुभव न कर सके।

क्रमश घर के लगभग सभी भागो मे आग लग गई। बन्द कोठरी से निकलती लपटे धुएँ के साथ आकाश मे उठ कर भयानक गर्जन कर रही थी। क्षण-क्षण पर मकान

के जले हिस्से बज्रपात की तरह धरती पर गिर रहे थे। धुआँ, लपटो के साथ चिनगारियो से सारा आकाश भरने लगा।

दावानल से जलते जंगल मे फँसे हाथी की तरह पशुपति भी लपकती आग मे इधर-उधर दास-दासी और मनोरमा को खोजते भागने लगे। किसी का कही नाम-निशान भी न मिला। वे निराश हुए। तब उनकी नजर देवी के मदिर की ओर गई। देखा कि अष्टभुजा देवी का मदिर भी धू धू करके जल रहा है। पशुपति पतंग की तरह उसमे घुस गये। देखा कि अग्नि मण्डल के बीच मूर्ति विराज रही है। पशुपति उन्मत्त की तरह पुकार ऊठे—'माँ, जगदम्बे! अब तुम्हे जगदम्बा नही कहूँगा। तुम्हारी पूजा नही करूँगा माँ, एक दिन के पाप से मैने सर्वस्व खो दिया। मैने क्या इसी दिन के लिए आजीवन तुम्हारी पूजा की थी? तुमने मेरी पापमति को नष्ट क्यो नही किया?'

तभी मदिर की आग प्रबल रूप धारण करके गरज उठी। फिर भी पशुपति मूर्ति को सबोधित कर के चिल्लाते ही रहे, 'वह देखो, धातु-मूर्ति! तुम धातु-मूर्ति-मात्र हो। देवी नही, वह देखो, आग गरज रही है। जिस राह मे मेरी प्राणप्रिया मनोरमा गई है, उसी राह यह आग मुझे भी ले जायेगी। लेकिन मै आग को यह यश न लूटने दूँगा। मैने तुम्हारी स्थापना की थी, अब मै ही तुम्हारा विसर्जन भी कर दूँगा। चलो देवी! मेरी इष्ट देवी! तुम्हे गगा मे विसर्जित कर दूँ।'

यह कह कर पशुपति ने प्रतिमा को उठाने के प्रयास मे दोनो हाथो से उसे पकडा। उसी समय आग ने फिर भयानक गर्जन की। पर्वत के फूटने जैसी भीषण आवाज हुई। जलता हुआ मदिर, धुआँ और राख के साथ ही आग की चिनगारियाँ उठाता हुआ धराशायी हो गया।

उसी मंदिर मे देवी प्रतिमा के साथ ही पशुपति की भी जीवित समाधि बन गई।

|१६|

अंतिम-काल

पशुपति यद्यपि रोज ही स्वय अष्टभुजा देवी की पूजा-अर्चना करते थे, फिर भी उनकी नित्य नियमित सेवा के लिए दुर्गादास नामक एक ब्राह्मण को नियुक्त कर रखा था। नगर-प्रलय के दूसरे ही दिन दुर्गादास ने सुना कि पशुपति का घर जल कर धराशायी हो गया। तब उस ब्राह्मण देवी सेवक ने भस्म के अम्बार से देवी प्रतिमा को

निकाल कर अपने घर मे स्थापित करने का संकल्प किया।

नगर को पूरी तरह लूटने के बाद भूखे यवन सैनिक जब तृप्त हो गए तब बख्तियार खिजली ने आदेश जारी किया कि सैनिक अब नगर निवासियो को न सतावें। यह सुन कर, मन मे साहस जुटा कर एक दो बँगाली सड़क पर निकलने लग गए थे। यह देख दिन के तीसरे पहर दुर्गादास देवी प्रतिमा के उद्धार हेतु पशुपति के मकान की ओर चल पडे। पशुपति के मकान के जिस भाग मे वह मन्दिर था, उसी ओर उन्होने प्रवेश किया। देखा कि मलबे का ढेर हटाए बिना प्रतिमा को निकलना सम्भव नही है। अत. दुर्गादास अपने पुत्र को बुला लाए। इंटे गल कर आपस मे चिपक गई थी और कुछ तो अभी भी जल रही थी। पिता पुत्र ने मिल कर बडी कठिनाई से पानी डाल-डाल कर उस भाग की आग ठडी की और बडे कष्ट से देवी-प्रतिमा की खोज करने लगे। ईंटो के ढेर को हटाने के बाद उसके नीचे से प्रतिमा निकली। लेकिन भय से पिता-पुत्र ने देखा कि प्रतिमा के चरणो पर किसी आदमी की लाश पडी है। फिर उलट-पुलट कर लाश को देखा तो पहचाना कि वह लाश पशुपति की ही है।

विस्मय से आक्रात दुर्गादास ने कहा, 'चाहे जिस प्रकार भी मालिक की यह दशा हुई हो, हमलोगो को अब ब्राह्मण कर्त्तव्य निभाना चाहिए। चलो, अब गगा किनारे लाश ले जा कर हमे मालिक का सत्कार करना चाहिए।'

पिता पुत्र दोनो मिल कर पशुपति की लाश को ढो कर गगा तट तक ले गए। वहाँ शव की रक्षा के लिए पुत्र को छोड कर दुर्गादास लकड़ी आदि जरूरी सामान के लिए नगर मे गए। फिर यथा साध्य सुगधित लकडी की व्यवस्था कर के गंगा किनारे लौट आए।

तब दुर्गादास ने पुत्र की सहायना से यथाशास्त्र पशुपति का दाह-संस्कार किया। सुगधित लकडी की बनी चिता पर पशुपति की लाश को रख कर दुर्गादास ने ही आग लगाई।

तभी एकाएक चौक कर ब्राह्मण पिता-पुत्र ने देखा कि गंदे कपडे पहने, सूखे बालो वाली धूल और धुएँ से शक्ल बिगाडे एक पागल सी स्त्री आई। वह स्त्री सीधे ब्राह्मणो के पास आई।

भयभीत दुर्गादास ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'यह तुम लोग किसकी अंतिम क्रिया कर रहे हो ?'

'मृत धर्माधिकारी पशुपति की।'

'पशुपति की मृत्यु कब हुई ?'

'सबेरे नगर मे यह अफवाह फैली कि यवनो के कारागार से वे किसी प्रकार रात को भाग निकले है। आज अपने मदिर को राख बनते देखा तो मै अष्टभुजा की प्रतिमा की रक्षा के लिए गया। वहाँ जा कर मैने मालिक की लाश देखी।'

स्त्री ने सुना पर कोई जवाब न दे सकी। गंगा किनारे वही पर रेत पर बैठ गई। बहुत देर तक चुप रहने के बाद पूछा, 'तुम लोग कौन हो?'

'हम लोग ब्राह्मण है। धर्माधिकारी हमारे अन्नदाता थे। पर आप कौन है ?'

उस स्त्री ने कहा, 'मै उनकी पत्नी हूँ।'

'उनकी पत्नी तो बहुत समय से लापता है। आप कैसे उनकी पत्नी हुई ?'

'मै ही वह लापता केशव की कन्या हूँ। पति के साथ सती न होना पडे, इस लिए मेरे पिता अभी तक मुझे छिपाए थे। आज मै विधि-लिपि को प्रतिष्ठित करने आई हूँ।'

यह सुन कर पिता और पुत्र दोनो ही काँप उठे। तब वह स्त्री फिर कहने लगी, 'अब मै स्त्री जाति का कर्तव्य पालन करूँगी। तुम लोग तेयारी करो।'

दुर्गादास युवती के कहने का मतलब समझ गए। उन्होने पुत्र की ओर घूम कर पूछा, 'क्या कहते हो ?'

भला पुत्र क्या जवाब देता, चुप रहा। तब दुर्गादास ने युवती से कहा, 'माँ ! तुम अभी बालिका हो। इस कठोर कर्म के लिए क्यो तत्पर हो ?'

इस पर युवती ने भौहे तरेर कर क्रोध मे कहा, 'ब्राह्मण हो कर अधर्म की बात क्यो करते हो ? मै जैसा कहती हूँ, तैयारी करो।'

तब तैयारी के लिए ब्राह्मण फिर नगर मे गया। जाते-जाते दुर्गादास से विधवा ने कहा, 'तुम नगर मे जा रहे हो, वहाँ नगर मे राजा की उपवन-वाटिका वाली अट्टालिका मे हेमचन्द्र नामक एक विदेशी राज-पुत्र रहते है। उनसे कहना कि मनोरमा गंगा किनारे पति की चिता पर चढ कर सती होने जा रही है—वे आ कर एक बार उससे मिल जायँ। उनसे मनोरमा की यही भिक्षा है।'

ब्राह्मण ने जा कर मनोरमा की बात अक्षरश हेमचन्द्र से कही। ब्राह्मण के ही मुँह से हेमचन्द्र ने यह भी सुना कि मनोरमा ने स्वयं ही अपना परिचय पशुपति की पत्नी कह कर दिया है और अब सती होने जा रही है। सब कुछ सुन कर पहले तो हेमचन्द्र कुछ भी ठीक-ठीक न समझ सके। लेकिन वे दुर्गादास के साथ गंगा तट पर आए। वहाँ उन्होने मनोरमा मे बहुत ही मलिन, व उन्मादिनी रूप के साथ गम्भीरता देखी और उसके अनुपम, सुन्दर चेहरे की कांति को भी देखा। तब उनकी आँखो मे आँसू आ गए। जैसे तडप कर पूछा, 'मनोरमा बहन यह क्या ?'

तब मनोरमा ने स्थिर-भाव से मृदु-गंभीर स्वर मे कहा, 'भाई, आज स्त्री-जीवन की परम उच्च-सीमा को छू पाने का मुझे ईश्वर ने अवसर दिया है। आज मै अपने स्वामी के साथ जा रही हूँ।'

फिर क्षण भर बाद मनोरमा ने धीमे स्वर मे, ताकि और कोई न सुने, हेमचन्द्र से कहा, 'मेरे स्वामी अपरिमित धन-संग्रह कर के रख गये है। मै ही उनकी सम्पति

की एक मात्र अधिकारिणी हूँ। आज मै वह सब तुम्हे दान करती हूँ। तुम उसे स्वीकार करो। नही तो बेधर्मी पापी यवन उसका भोग करे गे। उसी मे से आवश्यकता भर धन खर्च के जर्नादन शर्मा को काशीधाम मे रहने की व्यवस्था कर देना। पर जर्नादन के हाथ मे अधिक धन मत देना। नही तो यवन छीन लेंगे। मेरे दाह संस्कार के बाद तुम मेरे स्वामी के घर जा कर उनकी सम्पत्ति का पता लगाना। मै जहाँ बताए देती हूँ, वहाँ खोजने से पा सको गे। मेरे अलावा उस जगह के बारे मे और कोई नही जानता।'

फिर मनोरमा ने वह गुप्त जगह बता दी, जहाँ धन छिपा था।

अत मे मनोरमा ने हेमचन्द्र से विदा ली। जर्नादन और उसकी पत्नी को प्रणाम कहने को कहा।

इसके बाद ब्राह्मणो ने मनोरमा का शास्त्रीय-विधि से इस कठोर व्रत मे दीक्षित कराया और शास्त्रीय-आचार के बाद मनोरमा ने ब्राह्मण द्वारा लाए गए नए वस्त्रो को पहना। नए वस्त्र पहन, प्रसन्न पुष्पमाला गले मे पहन कर मनोरमा गौरव से प्रतिष्ठित होती हुई पशुपति की जलती चिता की प्रदक्षिणा कर के प्रसन्न मन से चिता पर चढ गई।

हँसते चेहरे से चिता पर बैठ कर अग्नि की लपटो का आलिंगन करते हुए मनो-रमा ने प्राण त्याग दिए।

परिशिष्ट

मनोरमा के बताए हुए स्थान से पशुपति के संग्रह किए धन का उद्धार करके हेमचन्द्र ने उसका एक छोटा सा अश जनार्दन शर्मा को दे कर उन्हे काशीवास के लिए भेज दिया।

फिर हेमचन्द्र ने सब बाते बता कर माधवाचार्य से पूछा कि बाकी बचा धन ग्रहण करना चाहिए या नही। माधवाचार्य ने कहा, 'इस धन का उपयोग पशुपति के हत्यारे बख्तियार खिलजी को नष्ट करने हेतु ग्रहण करना उचित होगा। दक्षिण-समुद्र के किनारे के क्षेत्र जनहीन पडे है। मेरी राय है कि इस धन से तुम वहाँ नया राज्य-संस्थापन करो और वहाँ यवनो को नाश करने के लिए एक समर्थ सेना का संग्रह करो।'

इसी सलाह के अनुसार माधवाचार्य ने उसी रात हेमचन्द्र को नवद्वीप छोड कर दक्षिण की ओर जाने को विवश किया। पशुपति के धन को छिपा कर हेमचन्द्र अपने साथ ले गये। मृणालिनी, गिरिजाया और दिग्विजय उनके साथ गये। हेमचन्द्र को नया राज्य स्थापित करने मे सहायता देने के लिए माधवाचार्य भी साथ गये।

दक्षिण मे नये राज्य का सस्थापन हेमचन्द्र के लिए बहुत सहज हो गया। क्यो कि यवनो के धर्म-द्वेष से पीडित और आतंक से भयभीत कई लोग अपना-अपना स्थान त्याग कर हेमचन्द्र द्वारा स्थापित नये राज्य मे आ बसे थे।

माधवाचार्य की प्रेरणा से बहुतेरे धनी लोग भी वहाँ आ कर रहने लगे। इस तरह सबो के सहयोग से बहुत जल्द ही एक छोटा सा व्यवस्थित राज्य बन गया। धीरे-धीरे सेना भी इकट्ठी कर ली गई। अब वह नया राज्य जल्दी ही एक रमणीय राजपुरी मे बदल गया।

मृणालिनी ने उस नये राज्य मे राजरानी बन कर राज्य का गौरव बढाया।

गिरिजाया का दिग्विजय से विवाह हो गया। गिरिजाया मृणालिनी की सेवा मे बनी रही और दिग्विजय तो पहले से ही हेमचन्द्र की सेवक था। कहते है कि विवाह होने के बाद एक दिन भी ऐसा न बीता होता जब गिरिजाया ने एक आध झाड़ू की मार से दिग्विजय के शरीर को पवित्र न किया हो। इससे दिग्विजव बहुत दुखी हो, ऐसी बात नही थी, बल्कि एक दिन किसी कारणवश गिरिजाया दिग्विजय को झाड़ू मारना भूल गई। इस पर दुखी हो कर दिग्विजय ने एकबार गिरिजाया से पूछा, 'क्यो आज तुम मुझ पर कुछ नाराज हो क्या ?'

हेमचन्द्र का नया राज्य स्थापित करा के माधवाचार्य कामरूप गये। इधर हेमचन्द्र ने दक्षिण से ही यवनो के विरुद्ध चाल चलना शुरू किया। बख्तियार खिलजी हार कर कामरूप से भागा। और तभी लौटते समय अपमान व हार की ग्लानि से उसकी मृत्यु हो गई।

रत्नमयी एक सम्पन्न पाटनी से विवाह कर हेमचन्द्र के नये राज्य मे जा बसी। वहाँ मृणालिनी की कृपा से उसके पति की खूब तरक्की हुई। गिरिजाया और रत्नमयी मे सदा एक सखी-भाव बना रहा।

माधवाचार्य के द्वारा हृषीकेश से आग्रह करा के मृणालिनी ने मणिमालिनी को अपने राज्य मे बुला लिया। नये राज्य मे मणिमालिनी राजरानी की सखी होने के कारण आदर पाने लगी। उसके पति को राज्य कर्मचारी बना लिया गया।

जब शान्तशील ने देखा कि हिन्दुओ को अब राज्य मिलने की कोई आशा नही है, तब वह अपनी चतुराई और बुद्धिमता से तथा कार्य-क्षमता दिखा कर यवनो का प्रिय और विश्वासपात्र बनने की चेष्टा मे लग गया। फिर हिन्दुओ पर अत्याचार और विश्वासघात द्वारा जल्दी ही वह अपनी मनोकामना सिद्ध कर राज्य-काल में नियुक्त हो गया।

● ● ●

इन्दिरा

□

[रचनाकाल · सन् १८७३]

□

'इन्दिरा' का प्रथम प्रकाशन 'वगदर्शन' के एक ही अक में हुआ था। प्रथम प्रकाशन के बाद ही इसे आधुनिक युग की श्रेष्ठ कथा-कृति मान लिया गया। पहले इस कथा का कलेवर बहुत छोटा था लेकिन बाद मे, मृत्यु के एक वर्ष पूर्व बकिमचन्द्र ने इसे बढ़ा कर वर्तमान रूप मे सँवारा था। इसे वर्तमान रूप मे सँवार कर इसकी भूमिका मे बकिमचन्द्र ने लिखा .

'इन्दिरा छोटी थी—अब बडी हो गई। इसे यदि कोई अपराध समझ कर नाराज हो तो इन्दिरा विनीत भाव मे निवेदन करेगी कि सभी तो छोटे से बडे हो जाते है। भगवान की इच्छा मे ही बहुत छोटे भी बडे हो जाते है। राजा को तो यही करते देखा जाता है—छोटे को बडा करना, बडे को छोटा करना। समाज को भी देखा जाता है—बडे को छोटा, छोटे को बडा करते। मैं भी जिसके अधीन हूँ, उसी ने मुझे लघु जान कर बडा कर दिया। और मैं क्या कैफियत दूँ ?

'तब बुराई तो यह है कि बडे होने पर दर बढ जाता है। राजा की कृपा या समाज की कृपा से जो भी बडा होता है उसका दर भी बढ जाता है। देखो न, पुलिस का जमादार एक रुपये से ही सतुष्ट हो जाता है, दारोगा होने पर उसे दो रुपये चाहिए, क्यो न हो, बडे होने से दर बढ गया न! गरीब इन्दिरा भी कहेगी, मै हठात बड़ी हो गई, मेरा दर क्यो नही बढेगा ?

'लेकिन, इन्दिरा का बडा होना ठीक हुआ या गलत, यह सशय की बात है। अपना तो विचार है कि छोटे का छोटा रहना ही ठीक है। छोटे लोगो का बडा होना कब ठीक हुआ है ? लेकिन बहुत से छोटे लोग यह बात स्वीकार नही करेंगे। फिर इन्दिरा ही इसे क्यो स्वीकार करे ?

'पाठकगण, इन्दिरा का कलेवर बढाने का कारण जानना चाहेंगे। क्योकि उनकी समालोचना करने की जन्मजात प्रवृत्ति है। लेकिन उनकी प्रवृत्ति मे अवरोध पैदा करना अपनी प्रवृत्ति नही रही। मेरी तो यह पुरानी कृति है—पुराना नाम और नया ग्रथ रचने का अधिकार सभी को है। ग्रथकार की इतनी सफाई यथेष्ट है।'

●

| १ |

मैं ससुराल जाऊँगी

बहुत दिनो बाद मै ससुराल जा रही हूँ। मै उन्नीस साल की उम्र तक यही पडी रही। अर्थात् अभी तक श्वसुर-घर नही जा सकी। इसका कारण भी है, मेरे पिता धनी है, श्वसुर दरिद्र। विवाह के कुछ दिनो बाद श्वसुर ने मुझे बुला लाने को आदमी भेजा था, लेकिन पिता ने भेजा नही। बोले, 'समधी जी से कहना, पहले मेरे दामाद कमाना-धमाना शुरू करे, उसके बाद बहू को लिवाने आवें। इस स्थिति मे लिवा ले जा कर मेरी बेटी को खिलाएँ गे क्या ?' यह सुन कर मेरे स्वामी के मन मे बडी घृणा उपजी। तब उनकी उम्र बीस वर्ष की थी। उन्होने उसी समय प्रतिज्ञा की कि वे स्वय अर्थोपार्जन कर के परिवार का पालन करें गे। यही सोच कर उन्होने देश के पश्चिमी अंचल की यात्रा की। तब तक रेल नही चली थी। पश्चिम जाने का रास्ता अति-दुर्गम है। अत वे पैदल ही, बिना रुपये-पैसे के, बिना किसी की सहायता के, कठिन रास्ता पार करते हुए पंजाब पहुँचे। जो इतनी हिम्मत रखता हो वह अर्थोपार्जन तो कर ही सकता है। मेरे स्वामी रुपये कमाने लगे, घर पर भी प्रचुर धन भेजने लगे। लेकिन सात-आठ साल तक घर न आ सके न ही उन्होने मेरी कोई खोज खबर ली। क्रोध से मेरा शरीर जल-जल उठता। कितने रुपये चाहिए ? पिता-माता पर बडी गुस्सा आई— उन्होने क्यो इस रुपये-पैसे कमाने की बात उठाई ? रुपये क्या मेरे सुख से बढ कर है ? मेरे पिता के घर इतने रुपये है—रुपयो के ले कर मै ठीकरो की तरह खेलती। मन ही मन सोचती—एक दिन रुपये बिछा कर उन पर सो कर देखूँगी, कितना सुख मिलता है ! एक दिन माँ से बोली, 'माँ रुपये बिछा कर सोऊँगी।' माँ ने कहा, 'यह पागलो जैसी बात !' माँ बात का मर्म समझ गई। जाने क्या चालाकी की, मै कह नही सकती। लेकिन जिस समय का इतिहास मै प्रारभ कर रही हूँ, उसके कुछ पहले मेरे स्वामी

अपने घर आये। पता लगा कि कमसरिसट मे काम कर के उन्होने अतुल ऐश्वर्य उपार्जित किया है। मेरे श्वसुर ने मेरे पिता को लिख कर भिजवाया, 'आपके आशीर्वाद से उपेन्द्र (मेरे पति का नाम है उपेन्द्र—नाम लेने के लिए वृद्ध जन क्षमा करेगे।) अब बहू का प्रतिपालन करने मे सक्षम हो गया है। पालकी और कहारो को भेज रहा हूँ। बहू को इन्ही के साथ भेज दीजिए गा। नही तो आज्ञा दीजिएगा कि उपेन्द्र का फिर दूसरा विवाह कर दूँ।'

पिता ने देखा, नये बडे आदमी है। पालकी के भीतर कीमखाब लगा है, ऊपर चाँदी के पत्तर, बगल मे भी चादी के पत्तर की सजावट। जो दासी साथ आई थी वह भी गहने पहन कर आई थी, गले मे बडे बड़े मोटे दानो का सोने का हार था। चार जन, काली दाढी वाले भोजपुरी भी पालकी के साथ आए थे।

मेरे पिता हरिमोहन दत्त बुनियादी बडे आदमी। हँस कर बोले, 'बेटी इन्दिरा! और ज्यादा अब तुम्हे यहाँ नही रोक सकूँगा। अभी तो जाओ, फिर जल्दी ही बुलवा लूँगा। देखो, अँगुली फूल कर केला का पेड़ हुई है। देख कर हँसना मत।'

मैने अपने मन मे ही उनकी बात के उत्तर मे कहा, 'यह तो समझती हूँ कि मेरे स्वामी तो अँगुली फूल कर केला का पेड होने जैसे हो गये है, लेकिन यह समझ कर तुम भी मत हँसना।'

लगता है कि मेरी छोटी बहन कामिनी समझ गई थी, बोली थी, 'दीदी! अब कब आओगी?'

मैने धीरे से उसका गाल दबा दिया।

कामिनी ने कहा, 'दीदी, ससुराल क्या होता है, मै तो इस बारे मे कुछ नही जानती।'

मैने कहा, 'जानती हूँ। वह है नन्दनवन, वहाँ रतिपति पारिजात के फूलो के वाण मार कर आदमी का जन्म सार्थक कर देते है। वहाँ पाँव रखते ही स्त्री-जाति अप्सरा हो जाती है, पुरुष भेडा हो जाता है। वहाँ नित्यप्रति कोकिला कूकती है, शीत काल मे दक्षिणी हवा चलती है, अमावस्या को भी पूर्णचन्द्र निकलता है।'

कामिनी ने हँस कर कहा, 'मरन है तब तो!'

|२|

मैं ससुराल चली

बहन को आशीर्वाद देकर मै ससुराल चली। मेरी ससुराल है मनोहरपुर। और मायका, महेशपुर। दोनो गाँवो के बीच में दस कोस का रास्ता है। इसलिए सबेरे

ही खा पी कर यात्रा शुरू हुई। जाननी थी कि पहुँचने मे पाँच सात घडी रात हो जायगी।

यह सोच कर मेरी आँखे गीली हो गई कि रात मे पहुँचने पर अच्छी तरह देख भी न पाऊँगी कि वे कैसे है, रात मे वे भी ठीक से नही देख सकेंगे कि मै कैसी हूँ। माँ ने अच्छी तरह मेरे सिर के बाल सँवार का बाँध दिए थे। लेकिन दस कोस जाते-जाते जूडा सरक जायगा और बाल भी बिखर जाएँगे। पालकी के भीतर ही मेरी शोभा मलिन हो जायगी। प्यास से मुँह का पान का रग भी सूख जायगा, थकान से देह भी मुरझा जायगी। मे कैसे क्या करूँगी ? मै भरी जवानी मे पहले-पहल ससुराल जा रही थी।

रास्ते मे कालीदीघी नाम का एक बडा तालाब पडता है। उसका पानी करीब आधे कोस मे फैला है, उसके किनारे भी पहाड की तरह ऊँचे है। चारो ओर बरगद के कई पेड है जिनकी छाया खूब ठण्डी रहती है। तालाब का पानी बादल के रग की तरह नीला है। वहाँ का दृश्य बडा ही सुहावना है। उधर आदमियो का आना-जाना भी बहुत कम होता है। घाट के ऊपर सिर्फ एक दूकान है। पास मे जो गाँव है उसका भी नाम कालीदीघी है।

तालाब पर अकेले आने मे लोग डरते है। डाकुओ के डर के मारे लोग बिना गोल बाँधे नही आते। इसीलिए उसे 'डाकू कालीदीघी' कहते है। दूकानदार को भी लोग डाकुओ का संगी-साथी कहते है। मुझे वह सब डर न था क्योकि मेरे साथ बहुत से आदमी थे। सोलह कहार, चार दरबान और दूसरे लोग भी थे। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे, उस समय अढाई पहर दिन चढा था। कहारो ने कहा, 'अब कुछ खाना-पीना किए बिना हमलोग आगे नही जा सकते।' दरबानो ने आपत्ति की, 'यह जगह सुरक्षित नही है।' कहारो ने कहा, 'हम सब इतने लोग तो है हम लोगो को भला क्या डर ?' अन्त मे सबो को कहारो की ही बात माननी पडी। हमारे साथ के और लोगो ने भी तब तक कुछ भी खाया पिया न था।

तालाब के घाट पर एक बरगद के पेड़ के नीचे पालकी! मेरे शरीर का हाड-हाड़ जल उठा। कहाँ मैने ठाकुर जी से प्रार्थना की थी कि जल्दी पहुँचूँ। यहाँ कहार लोग पालकी उतार, खडे हो, गरदन ऊँची करके मैले अंगोछे से हवा कर रहे थे। किन्तु, छि, स्त्रियाँ सब से बढ कर अपना ही सुख व भला समझती है। मै उनके कन्धो पर चढ कर जा रही हूँ। वे भी मुझे अपने कन्धो पर ढो कर ले जा रहे हैं। मै अपनी भरी जवानी मे पति का प्रथम बार दर्शन पाने जा रही हूँ। वे जा रहे है भूखे। एक मुट्ठी भर भात के लिए। यह सोच कर मुझे अपने आप पर क्रोध आया। धिक्कार है ऐसी जवानी को!

यही सोचते-सोचते मैने काफी देर बिता दी। जब देखा तो पाया कि सभी

लोग काफी दूर चले गये है। वहाँ पूरा सन्नाटा देख कर मैने साहस कर के पालकी का दरवाजा थोडा सा खोला और तालाब की ओर देखने लगी। तब देखा कि सभी कहार दूकान के समाने एक बरगद के नीचे बैठे जलपान कर रहे है। जहाँ ये सब बैठे थे वह जगह पालकी से करीब डेढ बीघा दूर थी। देखा समाने बड़ा सा ताल फैला हुआ है। चारो ओर पहाडो की कतार की तरह ऊँचे और मुलायम घास से ढँके सुन्दर किनारे थे। किनारे के ऊँचे टीले और तालाब के पानी के बीच लम्बी चौड़ी भूमि पर बरगद के पेड की कतार थी। टीलो पर बहुत से गाय-बछडे चर रहे थे। पानी के ऊपर बहुत से जल-पक्षी खेल रहे थे। पानी की तरगो के धीरे-धीरे काँपने से लगता जैसे स्फटिक टूट रहे हो। छोटी-छोटी लहरो के टकराने से कभी-कभी कमल के फूल, पुरइन के पात और सिवार हिल रहे थे। फिर मैने देखा कि मेरे साथ के दरबान तालाब मे उतर कर नहा रहे थे—उनके हाथ पाँव चलाने से, पानी मे लहरें उठती और नीले पानी पर सफेद मोतियो के हार बिखर जाते थे।

आकाश की ओर घूम कर देखा, कैसी सुन्दर नीलिमा! कैसे सुन्दर सफेद-सफेद बादल! उनके बीच मे स्वच्छन्द उड़ते पक्षियो को देख कर मन ही मन सोचा कि क्या कोई ऐसा उपाय नही हो सकता कि मनुष्य भी पक्षी बन जाये! काश कि मै पक्षी बन सकती तो उड कर उनके पास चली जाती।

थोडी देर के बाद तालाब की ओर घूम कर देखा। इस बार मन ही मन थोड़ा सहमी। देखा कहारो को छोड कर मेरे साथ के और सभी लोग एक ही साथ नहाने के लिए तालाब मे उतर गये है। साथ की दोनो औरतें—एक ससुराल की और दूसरी मायके की—भी पानी मे उतर चुकी थी। मेरे मन का डर बढता गया। सोचा कोई भी पास नही है। यह जगह खतरनाक है, सबो ने दूर जा कर अच्छा नही किया। करती भी क्या मै! मै कुलवधू थी, मुँह खोल कर किसी को पुकार भी नही सकती थी। ठीक उसी समय पालकी के दूसरी ओर कुछ शब्द सा हुआ लगा। लगा कि एक बरगद के पेड से कोई वजनी चीज गिरी है। पालकी के इस ओर के दरवाजे को थोडा सा खोल कर मैंने देखा। बरगद के पेड पर से कोई एक काली डरावनी शक्ल का आदमी कूदा था। मैंने डर के मारे पालकी का दरवाजा बन्द कर लिया। लेकिन उसी क्षण मुझे लगा कि दरवाजे को खुला रखना ही ठीक होगा। मैने फिर दरवाजा खोला ही था एक दूसरा आदमी भी, काला-काला सा बदसूरत सा पेड़ पर से कूद पडा। उसके बाद फिर एक और कूदा, उसके पीछे फिर एक! इस तरह देखते-देखते चार आदमी कूदे पडे। वे सभी दौड कर पालकी के पास आये और पालकी को एकाएक उठा कर अपने कन्धो पर रख कर साँस छोड कर भाग चले।

यह देखते ही मेरे साथ के दरबान भी 'कौन है,' 'कौन है ?' करके चिल्लाते हुए पानी से निकल कर दौडे। अब मेरी समझ मे आया कि मै डाकुओ के फेर मे पड़

गई हूँ। अब फिर लज्जा-शर्म का क्या काम ? मैने झपट कर पालकी के दोनो ओर के दरवाजे खोल दिये। बार बार मैंने सोचा कि खुले दरवाजे से कूद कर भाग जाऊँ। तभी देखा कि मेरे साथ के सभी आदमी खूब हो-हल्ला करते हुए पालकी के पीछे-पीछे दौडते आ रहे है। मुझे आशा बँधी, लेकिन शीघ्र ही वह आशा भी जाती रही और निराशा ने मन पर अधिकार जमाना शुरू किया क्योकि तब तक आस-पास के दूसरे पेडो से भी कई डाकू कूद-कूद कर पालकी ले कर भागने वालो की सहायता मे आ गये थे। तालाब के किनारे-किनारे दूर तक बरगद के पेडो की कतार थी। उन्ही के नीचे से डाकू पालकी ले कर भाग रहे थे। और उन्ही पेडो पर से डाकू कूदे भी थे। इनमे से बहुतेरो के हाथो मे बाँस की लाठियाँ और कुछ के हाथो मे पेडो की ताजी डालें थी।

डाकुओ की सख्या ज्यो-ज्यो बढती गई, मेरे साथ के लोग जो पीछे-पीछे शोर करते हुए दौडे आ रहे थे वे क्रमश· पिछडने लगे। तब मैने पूरी तरह हताश हो कर कूद पडने का ही निश्चय किया। लेकिन पालकी उठा कर भागने वाले इस तेजी से दौड रहे थे कि ऐसे मे पालकी से कूदने पर गहरी चोट लग सकती थी। तभी एक डाकू ने मुझे लाठी दिखा कर कहा, 'अगर कूदेगी तो तेरा सिर ही फोड दूँगा।'

डर के मारे मै कूद भी न सकी।

मै घबराई हुई इधर-उधर देख ही रही थी कि मेरे एक दरबान ने आ कर पालकी पकड ली। उसे ताक कर एक डाकू ने उसे एक लाठी मारी। वह दरबान उसी क्षण बेहोश हो कर जमीन पर लोट गया। उसे फिर उठते मैने नही देखा। लगता है कि शायद वह फिर नही उठा।

उस दरबान की गति देख कर दूसरे सब जहाँ कि तहा रुक गये। और अब डाकू मुझे ले कर बे रोक-टोक भागे। रात को एक पहर तक वे लोग एक सी गति से सरपट भागते रहे। तब कही जा कर जहाँ पालकी उतारी, वहाँ घोर जगल और भयानक अंधकार था। तब डाकुओ ने एक मशाल जला कर रोशनी की। तब एक ने बडी खूँखार आवाज मे मुझसे कहा, 'तुम्हारे पास जो कुछ भी हो, दे दो, नही तो मार डालूँगा।'

मैने चुपचाप अपने सब गहने और कपडे दे दिये। देह पर के गहने भी उतार कर दे दिए। सिर्फ हाथ का कगन नही दिया था, सो भी उन्होने उतार लिए। उन्होने पहनने को मुझे एक फटा-पुराना कपडा दिया, उसी को पहन कर मैने सभी पहने हुए कीमती कपडे उतार दिए। इस प्रकार मेरा सब कुछ ले लेने के बाद डाकुओ ने पालकी भी तोड डाली और उसमे लगी सभी चाँदी निकाल ली। फिर उन्होने टूटी हुई पालकी मे आग लगा कर उसे भी जला डाला और इस प्रकार डकैती के सभी चिन्ह भी मिटा दिए। यह सब काम पूरा करके वे लोग मुझे वही जंगली जानवरो का ग्रास बनने के लिए छोड़ कर चले जाने लगे। यह देख कर मै रो उठी। मैने चिल्ला कर कहा, 'तुम्हारे पाँव

पडती हूँ। मुझे भी साथ ले चलो।' इस समय डाकुओ का साथ ही मुझे एकमात्र सुरक्षित लगा।

तब एक बूढे डाकू ने करुणा भरे स्वर मे कहा, 'बेटा, ऐसी गोरी लड़की ले कर हम कहाँ जायेगे ? अभी-अभी इस डकैती का शोर मच जायगा—तुम जैसी सुन्दरी व गोरी लडकी को हमारे साथ देख कर वे सब हमे पकड ले गे।

तब एक जवान डाकू ने कहा, 'मै इसे ले कर फाटक पर जाता हूँ, यह कितनी अच्छी है। इसको मै छोड न सकूँगा।' इसके बाद उसने जो कुछ कहा वह मै नही बता सकती। उन शब्दो को मन मे नही दोहरा सकती। वह बूढा डाकू इस दल का सरदार था। उस युवक को लाठी दिखा कर बोला, 'इसी लाठी से मै तो तेरा सिर चूर कर के यही रख जाऊँगा। इस तरह का पाप क्या हम लोगो को सहता है ?'

यह कह कर वह सब को ले कर आगे बढ गया।

|३|

ससुराल का सुख

ऐसा भी क्या कभी हुआ है ? ऐसी विपत्ति, ऐसा दुःख, क्या किसी और पर कभी पडा है ? कहाँ तो पहले-पहल स्वामी के दर्शन करने जा रही थी, समस्त अंगो मे रत्न-जडित गहने पहन कर, कितनी साध से बालो को बाँध कर, बड़े शौक से पान से ओठो को रग कर, सुगध से सीच कर कुमारावस्था का यह खिला हुआ शरीर ले कर, यह उन्नीस साल ले कर प्रथम बार स्वामी के दर्शन करने जा रही थी, क्या कह कर यह अमूल्य रत्न मै उनके चरण-कमलो मे उपहार चढाऊँ गी—यही सोचती हुई चली जा रही थी—कि अकस्मात यह मुझ पर कौन सी बिजली गिरी ? सभी गहने उतरवा लिए, ले लें, गंदा-फटा कपडा पहनाया, पहनूँगी, बाघ-भालुओ के मुँह मे छोड गये, जायँ ! भूख-प्यास से मेरे प्राण सूख रहे है, प्राण निकल रहे है, निकल जायँ, अब और जीवन नही चाहिए, इसी क्षण निकल जायँ, तो ही अच्छा हो ! लेकिन अगर प्राण नही गये, यदि बच गये, तब मै कहाँ जाऊँगी ? अब तो उनसे भेंट नही ही हो गी—लगता है, अब माँ-बाप को भी नही देख पाऊँगी ! रोने से रुलाई भी तो नही आती !

सो मन ही मन स्थिर कर रही थी—अब रोऊँ गी नही। आँखो के आँसू किसी तरह रुकते ही न थे, फिर भी कोशिश कर रही थी—ठीक इसी समय खूब दूरी से खूब जोरो से गरजने की सी आवाज आई। मन मे सोचा—बाघ है। मन मे एक तरह की

प्रसन्नता ही हुई । बाघ यदि मुझे खा जाय तो सभी सन्ताप दूर हो जायँ ! अब बाघ मेरा हाथ-पाँव तोड कर मेरा खुन भी चूस कर पी लेगा । सोचा, उसे भी सह लूँगी, शरीर का कष्ट तो मिटेगा । मर सकूँ तो वह भी बडा भारी सुख है । इसलिए प्रसन्न होकर रोना बन्द कर के शात हुई और व्यग्रता से बाघ के आने की प्रतीक्षा करने लगी । बिछे सूखे पत्तो की जितनी बार खडबडाहट होती, उतनी ही बार सोचती कि अब मेरे समस्त दुखो को दूर करने मेरा रक्षक, मेरा प्राण छुडाने वाला बाघ आ रहा है । लेकिन बहुत रात बीत गई, मे प्रतीक्षा ही करती रही और बाघ नही आया । आशा भी छूटने लगी । तब मन मे विचार आया कि जहाँ बहुत घना जगल होता हे वहाँ साँप भी होते ही होगे । साँप के ऊपर पाँव रख कर उससे अपने को डसवाने की आशा से मै जंगल मे घुसी । जगल के अंधेरे मे कई बार सर—सर, झट—पट शब्द सुने तो प्रसन्न हुई लेकिन कही भी साँप के ऊपर मेरे पाँव नही पडे न ही मुझे किसी साँप ने डसा । मेरे पावो मे बहुत से काँटे जरूर चुभ गये । बहुत से साँप—बिच्छू दिखे भी लेकिन यह क्या ? वे तो हिले भी नही । फिर निराश होकर वापस आ गई । भूख—प्यास से इतनी थकान लग रही थी कि और अधिक घूम न सकी । एक ओर खाली जगह देख कर मै हताश हो बैठ गई । सहसा ठीक सामने एक रीछ दिखाई पडा । मन मे सोचा, चलो भालू के हाथ ही मर लूंगी । रीछ को छेडने के लिए उसे मारने दौडी । लेकिन हाय रे मेरा भाग्य ! रीछ तो मुझसे कुछ बोला ही नही । वह सीधे जा कर पेड पर चढ गया । थोडी देर के बाद उसी पेड पर हजारो मधुमक्खियो की भनभनाहट सुनाई पडी । समझ गई कि इस पेड पर मधुमक्खियो का छत्ता है । शायद रीछ भी जानता था तभी तो शहद चाटने की लालच मे उसने मुझे छोड दिया था ।

फिर रात के पिछले पहर थकान से चूर होने के कारण मुझे नीद आ गयी । पेड से पीठ लगा कर बैठी-बैठी ही मै सो गई ।

। ४ ।

अब कहाँ जाऊँ

जब मेरी नीद टूटी तब कौवे और चिडियाँ शोर कर रही थी । बाँस के पत्तो से छन-छन कर थोड़ी-थोडी धूप नीचे आकर धरती का मणि मोतियो से श्रृंगार कर रही थी । उजाले मे सब से पहले मेरी नजर अपने नंगे हाथो पर गई, देखा, मेरे हाथो मे कुछ भी न था । डाकुओ ने मेरे सभी गहने उतार कर मुझे विधवा का वेश दे दिया था ।

मुझे रुलाई आ गई। मैने रोते-रोते ही एक लता की डाली तोडी और उसे दाहिने हाथ की कलाई पर चूडी की तरह लपेट लिया।

फिर चारो ओर आँखे दौडा कर देखा कि मै जहाँ बैठी थी वहाँ चारो ओर बहुत से पेडो की कटी बुई डालें बिखरी पडी थी, शायद कोई पेड जड़ से काटा गया है, सिर्फ डालें ही पड़ी थी। समझ गई कि कोई लकडी वाला आया रहा होगा। गाँव तक जाने का रास्ता भी हो गा। दिन के उजाले मे चारो ओर देखने के बाद मेरे मन मे फिर से बचने की इच्छा जागी। फिर एक बार आशा का उदय हुआ—उन्नीस साल कोई बहुत ज्यादा तो नही है। उठ कर इधर-उधर खोजने के बाद एक बहुत धुँधली सी रेखा जैसी पगडण्डी दिखाई पडी। वह पगडडी पकड कर मै चल पडी। उस पर थोडी दूर चलने के बाद वह पथ-रेखा और स्पष्ट हो गई। अब विश्वास बढा, मन मे भरोसा हुआ कि अवश्य ही गाँव तक पहुँच जाऊँगी।

अब मन मे एक और विपत्ति जागी—गाँव जाना तो हो ही नही सकता। जो फटा-फुटा कपडा डाकू मुझे दे गए थे, उसे किसी तरह मैने कमर से घुटने तक लपेट लिया था। मेरी छाती पर कोई कपड़ा न था। ऐसे मे किस तरह लोगो को अपना काला मुँह दिखा सकूँगी ? अब तो गाँव जाना हो ही नही सकता। यही पर मरना होगा। यही निश्चय किया।

लेकिन धरती पर सूर्य की किरणो को फैला हुआ देख कर, चिडियो का सुमधुर कोलाहल सुन कर, लता-लता पर प्रसन्न मुख हिलते फूलो को देख कर फिर से जीते रहने की इच्छा प्रबल होने लगी। तब पेडो की बहुत सी पत्तियाँ तोड कर उन्हे एक मे गूथ कर कमर और गले मे गाँठ दे कर बाँधा। किसी तरह लज्जा छिपाई। बहुत कुछ पागलो जैसी दिखने लगी। और एक बार फिर वह पगडण्डी पकड़ कर चली। काफी दूर चलने के बाद गायो की आवाज सुनाई दी। समझ गई कि गाँव अब निकट ही है।

किन्तु थकान के कारण आगे नही बढ सकी। कभी इतनी दूर चलने का अभ्यास भी न था। फिर रात भर जगी रही हूँ। रात भर का असहाय शारीरिक और मानसिक कष्ट। भूख प्यास के कारण निर्जीव सी मै रास्ते के किनारे एक पेड के नीचे लेट गई। लेटते ही नीद ने आक्रमण कर दिया।

नीद मे ही एक सपना देखा कि मै बादलो पर बैठ कर इन्द्रलोक मे ससुराल चली गई हूँ। साक्षात कामदेव ही जैसे मेरे पति है। रति देवी मेरी सौत है। पारिजात के फूलो के लिए मै सौत से झगडा कर रही हूँ।—ठीक इसी समय किसी के जगाने से मेरी नीद खुल गई। आँखें खुलते ही देखा—एक नौजवान था। देखने से लगा कि कोई शूद्र जाति का है और कुली मजदूर की तरह मेरा हाथ पकड कर खीच रहा है। सौभाग्य की बात कि नही पास मे एक लकडी पडी थी, उसे ही उठा कर घुमा कर उस पापी के

सिर पर दे मारा। मुझमे उस समय इतनी शक्ति कहाँ से आ गई, मै नही जानती। वह आदमी सिर पर हाथ रख कर चिल्लाता हुआ भागा।

उस लकडी को मैने फेंका नही। उसे ही टेकती आगे बढी। बहुत दूर चलने के बाद, बहुत रास्ता पार करने के बाद, एक बूढी स्त्री को देखा। वह एक गाय लिए जल्दी-जल्दी चली जा रही थी।

उसी से पूछा कि महेशपुर किधर है या मनोहरपुर कहाँ है ?

उत्तर मे बुढिया ने पूछा, 'बेटी ! तुम कौन हो ? ऐसी सुन्दर लडकी क्या इस तरह घाट-राह मे घूमती फिरती है ? अहा, मै तो मर गई ! कैसा मनोरम रूप पाया है ? तुम मेरे घर चलो।'

उसके साथ उसके घर गई। उसने मुझे भूखी समझ कर गाय को दुहा और मुझे पीने को दूध दिया। वह जानती थी कि महेशपुर कहाँ है। मैने उससे कहा, 'तुम्हे बहुत से रुपये दिलवाऊँ गी। तुम मुझे वहाँ तक पहुँचा दो।'

वह खुद तो नही चली। पर उसने राह बता दी। उसी राह को पकड कर मै चल पडी। शाम तक उसी तरह राह चलती गई। फिर बडी थकान लगी। तब एक राहगीर से पूछा, 'भाई, महेशपुर यहाँ से कितनी दूर है ?'

मुझे देख कर वह राहगीर हक्का बक्का सा रह गया। बहुत देर तक सोचने के बाद वह बोला, 'तुम कहाँ से आ रही हो ?'

मैने बुढिया के गाँव का नाम बता दिया। तब राहगीर ने कहा, 'तुम भूल रही हो। यह तो तुम बिल्कुल उल्टी ओर बढ़ती जा रही हो। यहाँ से महेशपुर का पूरे एक दिन का रास्ता है।'

सुन कर मेरा माथा चक्कर खा गया। मैने फिर पूछा, 'तुम कहाँ जाओ गे ?'

'मै यहाँ पास ही गौरी गाँव मे जाऊँगा।'

लाचार हो मै उसी के पीछे-पीछे चली। गाँव मे पहुँच कर उसने मुझसे पूछा, 'तुम यहाँ किसके यहाँ जाओ गी ?'

'मै तो यहाँ किसी को नही जानती-पहचानती। कही किसी पेड के नीचे सो रहूँगी।'

'तुम्हारी जाति क्या है ?'

'मै कायस्थ हूँ।'

'मै तो ब्राह्मण हूँ। तुम मेरे साथ-साथ आओ। तुम्हारा कपडा-लत्ता देख कर तो नही, पर तुम वैसे किसी बडे घर की लडकी हो, यह तो समझ मे आता है। छोटे घरो मे ऐसा, तुम्हारे जैसा रूप नही होता।'

जले यह रूप ! यह रूप-रूप सुनते-सुनते तो देह भर मे आग लग गई। लेकिन वह ब्राह्मण बूढा था। बिना डर मै उसके साथ चली गई।

उस ब्राह्मण के यहाँ दो दिनो रह कर मैने आराम किया। वह दयालु और बूढा ब्राह्मण कर्मकाण्डी था। पुरोहिती करता था। मेरे कपडो की दुर्दशा देख कर उसने बडे अचरज से कहा, 'बेटी, तुम्हारे कपडो की ऐसी दशा कैसे हुई। क्या किसी ने तुम्हारे कपडे छीन लिए है ?'

'जी हाँ !'

उसे अपने यजमानो से कभी-कभी कपडे मिलते थे—उसने दो शुद्ध बहार की चौडे रंगीन किनारी की साडी मुझे पहनने को दी। उसके घर मे शंख का एक कड़ा भी मिल गया। मैने उसे भी पहन लिया।

यह सब काम मैने पूरा तो किया लेकिन बडे कष्ट से। मेरा शरीर टूटा जा रहा था। ब्राह्मणी ठकुरानी ने खाने को थोडा भात दिया, मैने खा लिया। एक चटाई दी, उसे बिछा कर सोई। लेकिन मन मे इतना हाहाकार था कि नीद नही आई। मै जो जीवित रह गई, यही तकलीफ की बात थी, मर जाती तो ही ठीक होता। रह रह कर मन मे यही बात आती थी। इसी से नीद नही आई।

सबेरा होते-होते थोडी देर को नीद आई। फिर सपना देखने लगी। देखा कि सामने यमराज की भयंकर काली मूर्ति अपने बडे-बडे दाँत निकाल कर हँस रही है। फिर डर कर जाग गई, फिर नीद नही आई। उठ कर देखा कि मेरी समस्त देह पीड़ा से टूट रही है। पाँवो मे भी सूजन आ गई थी। बैठने तक की ताकत न थी।

जब तक देह का दर्द न गया, मै ब्राह्मण के यहाँ ही रही। ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने मुझे बडे आराम से रखा। लेकिन महेशपुर जाने का कोई उपाय न दिखा। कोई स्त्री भी रास्ता न जानती थी, न किसी ने साथ जाना ही स्वीकार किया। पुरुष तो साथ जाने को कई तैयार हुए, पर अकेले उनके साथ जाने मे डर लगा। ब्राह्मण ने भी मना किया, कहा, 'इन सबो का चरित्र ठीक नही है। उनके साथ मत जाना। कोई भरोसा नही कि उनके मन मे कब क्या हो ! मै स्वय कुलीन ब्राह्मण हूँ। तुम जैसी सुन्दरी कन्या को उन लोगो के साथ जाने को नही कह सकता।'

इसलिए मै उनके साथ नही गई।

एक दिन सुना कि इसी गाँव के कृष्णदास बसु नाम के एक भले आदमी अपने परिवार के साथ कलकत्ता जाएँगे। सुन कर मुझे लगा कि यही ठीक अवसर है। कलकत्ता से मेरा मायका और ससुराल दोनो ही दूर है, लेकिन मेरे एक जाति के चाचा वहाँ काम करते थे और रहते थे। मैने मन ही मन सोचा कि कलकत्ता पहुँच कर जरूर ही मैं अपने चाचा का पता लगा सकूँगी। तब वे मुझे मेरे मायके भेजने की अवश्य ही व्यवस्था कर देगे। नही तो कम से कम मेरे पिता को ख़बर कर ही देंगे।

मैने यह बात ब्राह्मण से कही। ब्राह्मण बोला, 'यह तो ठीक सोचा। बाबू

कृष्णदास मेरे यजमान है। तुम्हे साथ ले जाने को उनसे कह दूँगा। वे वृद्ध और सज्जन भलेमानुस है।'

फिर ब्राह्मण मुझे कृष्णदास के पास ले गया। ब्राह्मण ने कहा, 'एक अच्छे कुल की यह कन्या दुर्भाग्य से रास्ता भटक कर इस ओर आ पहुँची है। यदि आप इसे अपने साथ लेते जायँ तो यह अनाथ लडकी अपने पिता के घर पहुँच सकती है।'

बाबू कृष्णदास राजी हो गये। मै उनके घर के भीतर गई। दूसरे ही दिन उनके परिवार की स्त्रियो के साथ कलकत्ता के लिए रवाना हुई।

पहले तो चार-पाँच कोस चल कर हम गगा किनारे पहुँचे। दूसरे दिन नाव पर सवार हुए।

|५|

महानगरी

मैने गंगा कभी नही देखी थी। इस समय गगा के दर्शन कर के मेरे प्राण लह-लहा उठे। मै अपना समस्त दुख थोडी देर के लिए बिसर गई। गगा का विशाल हृदय। उसमे उठती छोटी-छोटी लहरे, लहरो पर सूर्य-किरणो की झलमलाहट, जितनी दूर आँखे जाती थी, दूर तक लहरें चमक रही थी। गगा के किनारे पर बाग की तरह अनन्त पेड़ो के झुण्ड, पानी मे तरह-तरह की बहुत सी नावे, जल पर डाँड चलने से छपाक्-छपाक आवाज, डाँड़ चलाने वाले मल्लाहो की हुँकार और बोली, घाट किनारे का कोलाहल। कई प्रकार के कितने ही आदमी नहा रहे थे। खूब विस्तृत पानी का फैलाव, कही कही बालू से ढँकी धरती। उस पर बैठे तरह-तरह के पक्षी तरह-तरह की आवाज मे बोल रहे थे। देख कर लगा कि गगा सचमुच पुण्यमयी है। मै बहुत देर तक गगा को ही देखती रही।

कलकत्ता पहुँचने मे जब एक दिन बाकी रह गया तो शाम के पहले नदी मे ज्वार आ गया। इसलिए नाव का आगे बढ़ना कठिन हो गया। अत एक अच्छे गाँव के पक्के घाट के पास हमारी नाव लगा दी गई। मैने कितनी ही सुन्दर चीजे देखी। मल्लाहो का मछली पकडना देखा। पडित समाज घाट पर बैठ कर शास्त्रीय चर्चा कर रहे थे। गाँव की बहुत सी सुन्दरियाँ सज-धज कर घाट पर पानी लेने आई थी। कोई पानी उछालती, कोई घड़ा भरती, कोई बार-बार घडा भरती पानी गिराती और फिर भरती। कुछ बैठ

कर गप्पें लडाती । उन्हे देख कर मुझे एक पुराना गीत याद आ गया ।

अकेली काँख मे घडा दबाया
कलसी मे जल भरा
जल के भीतर श्याम सलोने
कलसो मे उठती लहरें
और कोई दिखा नही
फिर वह जल मे छिप गये ।

उसी दिन, उसी स्थान पर दो लडकियो को देखा था । उन्हे तो कभी भूल ही नही सकती । उनकी उम्र यही सात-आठ वर्ष की होगी । देखने में अच्छी थी पर बहुत सुन्दर नही । लेकिन सजी-बजी खूब थो । कानो मे कर्णफूल थे और हाथ तथा गले मे एक-एक गहना था । बेणियो मे फूल गुथे । शैफाली के फूल के रंग के कपडो मे काली किनारी थी, वही पहने थी । पैरो मे खूब मैल जमी और कमर पर छोटी-छोटी कलसियाँ । घाट के किनारे उतरते समय ज्वार के जल का एक गीत गाती हुई उतरी । वह गाना मुझे इतना अच्छा लगा कि मैने याद कर लिया । एक लड़की एक पद गाती और दूसरी दूसरा पद । उनके नाम थे अमला और निर्मला । पहले अमला ने गाया—

धान के खेतो मे उठती लहरें
बॉसो के तल मे जल
आओ चले, जल ले आवें
जल लाने चल ।

निर्मला ने गाया—

घाट है शीतल, पेड़ों के झुंड
फूले फूलो के दल
आओ चले, जल ले आवे
जल लाने चल ।

गाना लंबा था । इतना ही याद कर पाई ।

लडकियो को देख कर जी जुडा गया । मै बडे ध्यान से गीत सुन रही थी । मुझे खूब तन्मय देख कर बसु महाशय की पत्नी ने मुझसे पूछा, 'बड़े ध्यान से सुन रही हो, गीत तो बेकार है ।'

मै बोली, 'हानि भी क्या है ? सोलह साल की लडकी के मुँह से यह चाहे अच्छा न लगे पर इन छोटी-छोटी लडकियो के मुँह से तो सुहावना लगता ही है कभी उम्र वाले आदमी के हाथ की चीज वैसी अच्छी नही लगती जितनी कि बच्चे के हाथ की मीठी लगती है ।'

बसु-पत्नी ने फिर कुछ न कहा। मेरी बात पर थोडा मुँह फुला कर बैठी रही। मैं सोचने लगी—इतना भेदभाव क्यो ? एक ही चीज दो तरह की क्यो लगती है ? गरीब को देने से जो दान कहा जाता है, बडे आदमी को वही देने से खुशामद क्यो समझा जाता है ? जो सत्य धर्म का मुख्य अग है, परिस्थिति विशेष मे वही पर निन्दा रूपी पाप क्यो बन जाता है ? जिस क्षमा को परमधर्म कहते है, वही अत्याचारी के प्रति दरसाने से महापाप क्यो बन जाती है ? कोई अपनी स्त्री को जगल मे छोड आए तो उसे महापापी कहेगे लेकिन रामचन्द्र ने सीता को जान-बूझ कर वन भेज दिया था उन्हे कोई महापापी क्यो नही कहता ?

मैने समझा कि परिस्थिति के अन्तर के कारण इतना भेद होता है। लेकिन बात मेरे मन मे बनी रही।

नाव पर कलकत्ता के निकट आने पर, दूर से ही कलकत्ता को देख कर मै चकित हुई और भयभीत भी हुई। छत के ऊपर छत, अटारियो पर अटारियाँ, घर के ऊपर घर, घर की पीठ पर घर, उसकी पीठ पर फिर घर। अटारियो का जंगल, अन्त-हीन, कही ओर-छोर का पता नही। जहाजो के मस्तूलो का जगल देख कर तो मेरा दिमाग ही चक्कर खा गया। नावो की कभी समाप्त न होने वाली पाँत देख कर मन मे प्रश्न उठा कि इतनी नावे आदमियो ने कैसे बनाई होगी ! महानगरी के और निकट जाने पर देखा कि किनारे की सडक पर पालकियाँ, गाडियाँ चीटी की कतार की तरह रेगती चली जा रही है, जिनकी गिनती भी नही की जा सकती। जितने लोग सडको पर चल रहे थे उनकी तो गिनती भगवान भी नही कर सकते। मुझे भय लगा कि इस भीड मे मै अपने चाचा को कैसे खोज पाऊँगी ?

|६|

सुभाषिणी

बाबू कृष्णदास कलकत्ता आये थे, कालीघाट मे पूजा चढाने। वे भवानीपुर मे ठहरे। मुझसे पूछा, 'तुम्हारे चाचा कहाँ रहते हैं ? कलकत्ता मे या भवानीपुर मे ?'

लेकिन मै बता न सकी, जानती ही न थी।

उन्होने पूछा, 'कलकत्ते मे वह कहाँ रहते है ?'

यह भी मै नही जानती थी। मै समझ कर आई थी कि जिस तरह महेशपुर एक बडा गाँव है, उसी तरह कलकत्ता और थोडा बडा गाँव होगा। एक भले आदमी का

नाम पूछते ही कोई भी उनका पता बता देगा। अब देख कर जाना कि कलकत्ता तो बहुत विशाल घरो और अटारियो का अनन्त महासागर है। अपने चाचा का पता लगाने को कोई उपाय समझ मे नही आया। बाबू कृष्णदास ने भी अपने भरसक उनका पता लगाने का प्रयत्न किया। लेकिन एक ग्रामीण का उस जनसमुदाय मे भला क्या पता लगता ?

तय हुआ कि कालीघाट मे पूजा चढाने के बाद बाबू कृष्णदास काशी चले जायेंगे। जब पूजा चढाई जा चुकी तो वे सपरिवार काशी यात्रा का प्रबध करने लगे। तब मै अपनी असहाय अवस्था को सोच-सोच कर रोने लगी। उनकी पत्नी ने कहा, 'तुम मेरी राय मानो। तुम कलकत्ता मे रह कर अपने चाचा को खोजो। अभी किसी के घर नौकरानी का काम कर लो तो रहने की व्यवस्था हो जायगी। आज सुबो आवेगी, उससे कहूँगी, अपने यहाँ वह तुम्हे दासी का काम दे दे।'

सुन कर लगा कि मै पछाड खा कर गिर पडूँगी। मे जोर-जोर से रोने लगी। क्या अन्त मे मेरे भाग्य मे दासी बनना ही लिखा है ? क्लेश के कारण मैने अपने ही दाँतो से अपने ओठ काट कर लहूलहान कर लिए। बाबू कृष्णदास को मुझ पर दया आई, इसमे कोई शक नही, लेकिन वे बोले, 'बताओ, मे क्या करूँ ?

उनका कहना ठीक ही था। भला वे बेचारे कर भी क्या सकते थे ? मेरा भाग्य ही खोटा था !

एक कमरे के एक कोने मे पड कर मै रोने लगी। शाम के कुछ पहले बसु-पत्नी ने मुझे बुलाया। मै उठ कर उनके पास गई। वे बोली, 'देखो, यह सुबो आई है। तुम अगर उसके घर नौकरी करना चाहो तो मे कह दूँ।'

मै दासी नही बनूँगी, चाहे भूखो मर जाऊँ—मन मे यह निश्चय कर चुकी थी। मैं ठेठ देहात की लडकी थी। मेने सोचा था कि 'सुबो' यहाँ की कोई मामूली चीज होगी। लेकिन देख कर जाना कि मेरा सोचना गलत था। 'सुबो' एक स्त्री थी, देखने लायक चीज। ऐसी अच्छी चीज मेने पहले कभी नही देखी थी। वह मेरी ही उम्र की थी। रंग रूप मुझसे अच्छा हो, ऐसी बात तो थी नही। वेश-भूषा भी कुछ ऐसी खास नही। कानो मे छोटे-छोटे कर्णफूल थे, हाथो मे कडे, गले मे हँसुली, एक काली किनारी की साडी पहने थी। बस देखने को यही सामान थे। लेकिन ऐसा आकर्षक चेहरा कभी न देखा था। खिले कमल जैसा—बाल ऐसे बिखरे जैसे चारो ओर से साँपो ने कमल को घेर रखा हो। आँखें खूब बड़ी-बड़ी। कभी कभी स्थिर रहती, कभी हँसने लगती। पतले-पतले ओठ। सब मिला कर चेहरा ऐसा लगता जैसे ताजा लाल फूल खिला हो। गठन कैसी है, उस ओर ध्यान नही दे सकी। छोटे पौधो की कई डालें हवा मे जिस तरह खेलती है, उसी तरह उसके सारे अग खेल रहे थे। नदी मे जेसे लहरे उठती थी, उसके शरीर मे भी कुछ वैसी ही लहरें जैसे उठती थी। मै यह समझ न सकी कि क्या

है। उसने अपने मुँह पर कुछ पोत रखा था, उसी ने मुझ पर जादू का असर किया था। मै एक स्त्री हूँ। कभी मुझे भी अपनी सुन्दरता पर गर्व था। सुबो के साथ एक तीन साल का लडका भी था, वह भी खिलते हुए फूल जैसा ही था। उठता, बैठता, हिलता, दौडता, कूदता, हँसता, चीखता, मारता और सब का आदर करता।

मै एकटक सुबो और उसके लडके को देखती रही। मुझे देख कर बसु-पत्नी ने कहा, 'जवाब क्यो नही देती, क्या सोच रही है ?'

मैने पूछा, 'ये कौन है ?'

बसु-पत्नी ने धमकाने जैसे स्वर मे कहा, 'क्या यह भी बतलाना होगा ? यह सुबो है, सुबो। और कौन है !'

मै इतने पर भी जब कुछ न समझी तब सुबो ने खुद ही कहा, 'मौसी, बतलाना तो होगा ही। यह बेचारी यहाँ के लिए अभी नई है। मुझे कैसे जानेगी ?' फिर मेरे चेहरे की ओर देख कर हँसते हुए सुबो ने कहा, 'मेरा नाम सुभाषिणी है, ये मेरी मौसी है। बचपन से ही ये लोग मुझे 'सुबो' कहते है।'

तब बसु-पत्नी बीच मे ही बोल उठी, 'कलकत्ते के रामराय दत्त के लडके से ब्याह हुआ है। बहुत बडे आदमी है। शुरू से ही यह ससुराल मे रहती है, इसलिए कभी भेंट नही हो पाती। मै कलकत्ता आई हूँ। यह सुन कर हमसे मिलने आई है। यह लोग बडे आदमी है। बडे आदमी के बडे घर मे तुम ठीक से काम-काज कर सकोगी तो ?'

मै भी बडे आदमी की लडकी हूँ। हरिमोहन दत्त की लडकी। कभी मै रुपये बिछा कर सोना चाहती थी—अब—बडे आदमी के बडे घर मे ठीक से काम-काज कर सकूँगी तो ? सुन कर मेरी आँखो मे आँसू आ गये। फिर जाने क्या सोच कर मुँह पर हँसी भी आई। लेकिन उसे और किसी ने नही देखा, सिर्फ सुभाषिणी ने ही देखा। उसने अपनी मौसी से कहा, 'मै इससे जरा अकेले मे बातें करूँगी, अगर यह राजी होगी तो साथ लिए जाऊँगी।' कह कर सुभाषिणी मेरा हाथ पकड कर खीचते हुए मुझे पास के एक कमरे मे ले गई। वहाँ हम दोनो के सिवा और कोई न था। सिर्फ सुभाषिणी का लडका माँ के पीछे-पीछे दौडता आ गया था। कमरे मे एक तख्तपोश बिछा था। सुभाषिणी उसी पर बैठ गई और मेरा हाथ खीच कर मुझे भी अपने पास ही बिठाया। बोली, 'देखो, मैने बिना पूछे ही अपना नाम बता दिया। अब तुम भी अपना नाम बताओ, बहन।'

उसने 'बहन' कहा। लगा कि अगर मेरे भाग मे दासी बनना ही लिखा है तो इसी के पास दासी बन कर रह सकती हूँ। मैने मन ही मन सोच कर उसको उत्तर दिया, 'मेरे दो नाम है, एक प्रचलित है और एक प्रचलित नही है, जो इन लोगो को बताया है। इसलिए वही नाम आप से भी बताऊँगी। मेरा नाम है, कुमुदिनी।'

बच्चा बोल उठा, 'कुमुदनी।'

सुभाषिणी बोली, 'ठीक है, यही नाम सही। क्या कायस्थ हो ?'

'हाँ, हम कायस्थ है।'

सुभाषिणी बोली, 'ठीक है, किसकी लडकी हो, किसकी पत्नी हो, घर कहाँ है, ससुराल कहाँ है, यह सब अभी नही पूछूँगी। अभी मे जो कहती हूँ, तुम वही सुनो। तुम भी बडे घर की बेटी हो, इतना तो मै समझ गई। तुम्हारे गले व हाथ मे गहने के सुबूत मे काली रेखाएँ अभी भी मौजूद है। मै तुम्हे दासी बनने को नही कहूँगी। तुम थोडा बहुत खाना बनाना जानती हो या नही ?'

'जानती हूँ। अच्छा खाना बनाने के लिए मे अपने मायके मे खूब प्रसिद्ध थी।'

'अपने घर मे तो हम सभी रसोई बनाते है। तो भी कलकत्ता के रिवाज के मुताबिक रसोई बनाने वाली महराजिन भी है। वह अब अपने घर जायगी, अभी माँ से कह कर तुम्हे उसी की जगह रखवा दूँगी। तुम्हे रसोईदारिन की तरह रसोई बनानी पडेगी। हम सभी बना ले गे, तुम्हे भी साथ देना होगा। क्यो राजी हो ?''

'आप के पास मै दासी-कार्य करने को भी तैयार हूँ।'

'ऐसा क्यो कहती हो बहन ! यह सब कहना होगा तो माँ से कहना। उसी माँ को ले कर तो सब गडबडी है। वे कुछ चिडचिडे स्वभाव की हे। बस उन्हे ही वश मे कर लेना होगा। यह तुम कर सको गी। मै समझ गई हूँ। मुझे भी आदमी की पहचान है। क्यो, राजी हो न ?'

'राजी तो होना ही पडेगा। और करूँगी भी क्या ? मेरे लिए और कोई दूसरा रास्ता भी तो नही बचा है !' कहते-कहते मै फिर रो पडी।

'रास्ता क्या नही है ? ठहरो बहन, असली बात तो भूल ही गई।' कह सुभाषिणी भाग कर मौसी के पास गई और पूछा, 'हाँ मौसी ! यह तुम लोगों कौन है ?'

इसके उत्तर मे उसकी मौसी ने क्या कहा मै सुन नही पायी। लगता है कि मेरे बारे मे बसु पत्नी जितना जानती थी, वही बताया होगा। लेकिन सच तो यह है कि वे मेरे बारे मे कुछ भी नही जानती थी। उस ब्राह्मण से जितना सुना था, उतना ही जानती थी।

थोडी देर बाद हँसते हुए वापस आ कर सुभाषिणी बोली, 'चलो बहन, गाडी तैयार है। अब तो अगर नही चलो गी तो मैं तुम्हे पकड कर ले चलूँ गी। लेकिन जो बात कही है, वह याद रखना—माँ को वश मे करना होगा।'

सुभाषिणी ने एक प्रकार से बलात खीचते हुए मुझे ले जा कर गाडी पर बैठा

लिया। ब्राह्मण की दी हुई रगीन किनारी की दो धोतियो मे से एक तो मै पहने थी, दूसरी रस्सी पर सूख रही थी, उसे ले आने का समय भी उसने न दिया।

उसके पास बैठ कर मे सुभाषिणी के लडके को गोद मे बैठा कर उसको प्यार करती, उसका मुँह चूमती चल पडी।

|७|

स्याही की बोतल

माँ थी—सुभाषिणी की सास। उन्हे ही वश मे करना था, इसलिए जाते ही मैने उन्हें प्रणाम कर उनके पैरो की धूल को माथे पर चढाया, फिर एक नजर देखा कि कैसी है ? उस समय वे छत पर एक चारपाई बिछा कर सिर के नीचे तकिया रखे लेटी थी, एक औरत उनके पैर दबा रही थी। देख कर मुझे लगा कि एक बडी और लम्बी स्याही की बोतल, पूरी रोशनाई से भरी हुई, चारपाई पर पडी है। पके, सफेद बाल टीन के ढक्कन जैसे लगते थे। उनका दिव्य रूप अधेरे को और गहरा कर रहा था। मैने मन मे सोचा—'यही है इस बडे घर की ठकुरानी ?'

मुझे देख कर ठकुरानी ने अपनी बहू से पूछा, 'यह कौन है ?'

'तुम एक रसोईदारिन खोजती थी न, इसीलिए इसे ले आई हूँ।'

'कहाँ मिली ?'

'मौसी ने दिया है।'

'बाभन या कायथ ?'

'कायथ।'

'आह, तेरी मौसी का सिर जले ! कायथ की लडकी ले कर क्या करूँगी ? को भी तो भात देना होता हे।'

सुभाषिणी ने ही उत्तर दिया, 'रोज तो बाभन को भात देना नही है। जितने दिन चल सके, चले, फिर जब बाभनी मिल जायगी तो रख लें गे। लेकिन बाभनी का झमेला बहुत रहता है। हम लोगो के रसोई घर मे चले जाने से ही हाँडी-कूडी फेंकने लगती है। पटरे[1] का प्रसाद देने आती है। क्यो, क्या हम लोग चमार है ?'

मन ही मन मै सुभाषिणी की बडाई करने लगी—समझ गई कि इस स्याही भरी लम्बी बोतल को मुट्ठी मे बाँधना वह जानती है। तब ठकुरानी ने कहा, 'सो तो ठीक है बहु, छोटे लोगो का इतना घमण्ड सचमुच सहा नही जाता। तो ठीक है, इस

१. पटरा जिस पर भोजन रखा जाता है।

समय कुछ दिनो कायथ की लडकी को ही रख कर देख लो। लेकिन कितना महीना लेगी ?'

सुभाषिणी बोली, 'उसकी तो मैने बात नही की।'

ठकुरानी विकल हो उठी, 'हाय रे, कलयुग की लडकियाँ ! आदमी को नौकर रखने को पकड लाई और महीना-तनखाह की बात तै नही की ?' फिर मुझसे पूछा, 'तुम क्या लोगी ?'

मैने कहा, 'जब आप का सहारा लेने आई हूँ तो जो देगी वही ले लूँगी।'

ठकुरानी ने सतुष्ट हो कर कहा, 'हाँ। बाभन की लडकी को तो ज्यादा देना होता है, लेकिन तुम तो कायथ की लडकी हो—तुम्हे मै तीन रुपया और खाना-कपडा दूँगी।'

मुझे तो सिर्फ सिर छुपाने को जगह चाहिये थी, अत मै तत्काल राजी हो गई। लेकिन महीना लेने का नाम सुनते ही मेरा मन दुख से हाहाकार कर उठा। लेकिन चुप रही मै और बोली, 'ठीक है, वही दीजिए गा।'

मन मे निश्चिन्त हुई, झझट मिटी, लेकिन झझट मिटी कहाँ ? उस लम्बी बोतल मे स्याही बहुत थी। ठकुरानी ने पूछा, 'तुम्हारी उम्र क्या है ? अधेरे मे ठीक से देख नही पा रही हूँ। लेकिन तेरा गला तो लड़के की तरह मालूम देता है।'

मैने कहा, 'यही उन्नीस-बीस साल।'

ठकुरानी ने झटपट कहा, 'तो बेटी, कही और दूसरी जगह तुम काम तलाशो। तुम लौट जाओ। मै इतनी जवान औरत को नही रख सकती।'

सुभाषिणी बोली, 'ऐसा क्यो माँ ? साफ सुथरी जवान और क्या बुरी है ? '

सास ने कहा, 'ऐसा न होता तो छोटे लोग जो मेहनत कर के खाते है, वे क्या अच्छे है ?'

अब मै अपनी रुलाई रोक न सकी। वहाँ से उसी क्षण रोती हुई उठ गई। सास ने बहू से पूछा, 'छोकडी चली गई क्या ?'

'हाँ, मालूम तो होता है।'

'ठीक है, जाने दे।'

'लेकिन गृहस्थ के घर आ कर बिना खाये चली जायेगी ? इसे कुछ खिला-पिला कर विदा करूँगी।'

कहते हुए उठ कर सुभाषिणी मेरे पीछे-पीछे आई। मुझे पकड कर अपने सोने के कमरे मे ले गई। मैने कहा, 'अब मुझे इस तरह क्यो बाँध रही हो ? पेट के लिए हो, चाहे प्राणो के लिए हो, मै इस तरह की बातें सुनने के लिए यहाँ नही रह सकती।'

'ठीक है रहने की जरूरत नही। लेकिन मेरे कहने से तो आज रात को मेरे पास रह जाओ।'

सोचा—कहाँ जाऊँगी ? इसी से उस रात वही रहने को राजी हो गई। फिर इधर-उधर की बातो के बाद सुभाषिणी ने पूछा, 'यहाँ अगर नही रहोगी तो जाओगी कहाँ ?'

'गंगा मे बहुत पानी है।'

सुभाषिणी की आँखें भी बरसने लगी। बोली, 'गगा मे तुम्हे नही जाना पडेगा। मै अब क्या करती हूँ, जरा चुपचाप देखो। तुम झझट मत करना, मेरी बातें सुनना।'

फिर सुभाषिणी ने एक औरत को पुकरा—'हारानी !'

हारानी सुभाषिणी की खास नौकरानी थी।

हारानी आवाज सुनते ही भागी आई। मोटी, छोटी, काली, चालीस पार, मुँह पर हँसी, सारे शरीर मे हँसी। चचल भी। सुभाषिणी ने कहा, 'एक बार उन्हे बुला तो लाओ।'

हारानी ने कहा, 'इस समय बेमौके वे आवे गे क्या ? मै चाहे जितना बुलाऊँ अभी तो आने से रहे।'

सुभाषिणी ने भौवे चढा कर कहा, 'चाहे जो कर, बुला कर ला।'

हारानी हँसती-हँसती चली गई। मैने सुभाषिणी से पूछा, 'किसे बुलवाया है ? अपने स्वामी को ?'

'और नही तो क्या मुहल्ले के मोदी मुँशी को इतनी रात को बुलावाऊँगी ?'

'मेरा मतलब था कि मुझे उठ कर जाना होगा या नही ?'

'नही, तुम यही बैठी रहो।'

थोडी ही देर बाद सुभाषिणी के स्वामी आये। बहुत सुन्दर पुरुष थे। आते ही उन्होने पूछा, 'यह बेमौके की पेशी क्यो हुई ?' फिर मेरी ओर देख कर पूछा, 'ये कौन है ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'इन्ही के लिए तुम्हे बुलाया है। अपनी रसोईदारिन घर जायेगी। इसीसे उसकी जगह काम करने को मै इसे मौसी के पास से ले आई हूँ। लेकिन माँ इसे रखना नही चाहती।'

'क्यो नही रखना चाहती ?'

'यह जवान है, इसलिए,।'

सुभाषिणी के पति थोडा हँसे। बोले, 'तो इसमें मुझे क्या करना है ?'

'इसे रखना होगा।'

'क्यो ?'

सुभाषिणी उठी, अपने पति के निकट गई और ऐसे धीरे स्वर मे जिसे मै न सुन सकूँ, बोली, 'मेरा हुक्म है।'

लेकिन सुभाषिणी का कहना मैने सुन लिया। उसके स्वामी ने भी उसी तरह धीरे से कहा, 'जैसी आज्ञा!'

'तो कब से रखोगे ?'

'भोजन के समय।'

उनके जाने के बाद मैने सुभाषिणी से कहा, 'यह तो हुआ कि मानो उन्होने रखवा लिया, लेकिन ऐसी कडवी बात सह कर मै कैसे रहूँगी ?'

'यह तो बाद की बात है। बाद मे ही देखी जायगी। गंगा तो एक दिन मे सूख न जायेगी ?'

फिर रात को लगभग नौ बजे सुभाषिनी के पति भोजन करने आए। उनकी माँ जा कर पास ही बैठ गई। सुभाषिणी मुझे भी घसीट ले गई। कहा 'चलो देखें क्या होता है।'

हमने छिप कर ओट से देखा, तरह-तरह के व्यजन थाली मे परोसे गये थे, लेकिन रमन बाबू ने एक बार जरा सा मुँह मे डाला और थाली खिसका दी। कुछ भी न खाया। तब माँ ने पूछा, 'बच्चा, कुछ खाया नही ?'

पुत्र ने कहा, 'यह खाना तो भूत-प्रेतो के गले भी नही उतर सकेगा। बाभन ठकुरानी के हाथ का खाते-खाते मुझे तो खाने से ही अरुचि उत्पन्न हो गई है। अब सोचता हूँ कि कल से बुआ के घर जा कर खाऊँगा।'

एकाएक ठकुरानी जैसे सिकुड कर छोटी हो गईं, बोली, 'नही, यदु! ऐसा नही करना बेटा! मै दूसरी रसोईदारिन ठीक करती हूँ।'

बाबू हाथ धो कर उठ गये। देख कर सुभाषिणी ने तनिक संताप से कहा, 'हम लोगो के लिए, बहन, वे खा भी न सके। ठीक है, नही खाये, काम तो होना ही चाहिए।'

मै आश्चर्य चकित! कुछ कहने जा रही थी, उसी समय हारानी ने आ कर सुभाषिणी से कहा, 'तुम्हारी सास बुला रही हैं।' कह कर वह जान बूझ कर मेरी ओर देख कर हँसी। मै समझ तो गई थी कि हँसी उसका रोग है, लेकिन इस समय की हँसी दूसरा माने रखती थी।

सुभाषिणी सास के पास गई। मै छिप कर सुनने लगी।

सास ने कहा, 'वह कायथ की छोकरी चली गई क्या ?'

'नही, अभी उसे खिलाया नही है, इससे रोक रखा है।'

'वह कैसी रसोई बनाती है ?'

'सो तो मै नही जानती।'

'तो जब आज वह अभी नही गई सो अच्छा ही हुआ। कल सबरे उससे दो एक चीजे बनवा कर देखना होगा।'

'तो मै उसे रोक लेती हूँ '

कह कर सुभाषिणी सास के पास से मेरे पास आई और पूछा, 'बहन तुम खाना बनाना तो जानती हो न ?'

'जानती हूँ, यह तो पहले ही बताया था।'

'अच्छी रसोई बनाना जानती हो न ?'

'कल खा कर देखना तभी समझो गी।'

'अगर अभ्यास न हो तो बोलो, मै पास बैठ कर सिखा दूँगी।'

मै हँस पडी। बोली, 'बाद की बात बाद मे होगी।'

|८|

आश्रय

दूसरे दिन मैने ही पूरी रसोई बनाई। सुभाषिणी एक बार देखने आई थी। मैने जान बूझ कर उसी समय लालमिर्च का फोरन दिया—वह खाँसती छीकती उठ कर भागी। बोली, 'मौत है, यह रसोई भी।'

रसोई तैयार हो जाने पर पहले लडको बच्चो ने खाया। सुभाषिणी का बच्चा अभी ज्यादा अन्न नही खाता था। लेकिन सुभाषिणी की एक पाँच साल की लडकी थी—हेमा। सुभाषिणी ने उसी से पूछा, 'कहो, रसोई कैसी बनी है, हेमा ?'

हेमा बोली, 'बहुत अच्छी, बहुत अच्छी माँ! लडकी कविता रट कर कहने मे बडी चतुर थी। वह गाने लगी—

'राँध बेश, बाँध केश,
बकूल फूलेर माला
रांगा साडी, हाते हाँडी,
राँधछे ग्वालार बाला!
एमन समय, बाजल बाशी
कदम्बेर तले।
काँदिये छेले, रान्ना फेले,
राँधूनि छोटे जले।'

माँ ने धमकाया, 'बस, कविता रहने दे।'

लडकी हेमा चुप हो गई।

उसके बाद रमन बाबू भोजन करने बैठे। मै छिप कर देखने लगी। देखा, उन्होने थाली की एक एक चीज खा ली। ठकुरानी माँ के चेहरे पर हँसी थमती ही न थी। रमन बाबू ने पूछा, 'आज रसोई किसने किया है?'

'एक नई रसोईदारिन आज आई है।'

'बनाती तो अच्छा है।' कह कर रमन बाबू हाथ धोने चले गये।

फिर घर के मालिक भोजन करने बैठे। मै वहाँ न जा सकी। ठकुरानी माँ की आज्ञानुसार बूढी ब्राह्मणी ही मालिक की थाली ले कर गई। अब मै समझ गई कि ठकुरानी माँ को कहाँ दर्द है, वे जवान स्त्रियो को क्यो नही रखती!

मैने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि जितने दिन भी उस घर मे रहूँगी, उधर कभी नही जाऊँगी। मैने बाद मे आदमियो से सुना कि मालिक का चरित्र कैसा है। सभी जानते है—ये सज्जन पुरुष है, जितेन्द्रिय है, लेकिन स्याही की बोतल के तो गले तक स्याही भरी थी।

ब्राह्मणी के लौट आने पर ठकुरानी माँ ने उससे पूछा, 'मालिक ने भोजन करके क्या कहा?'

उत्तर देने के पहले ही ब्राह्मणी लाल भभूका हो गई। चिचिया कर बोली, 'अच्छा बनाया है माँ, बहुत अच्छा बनाया है। हम लोग भी बनाना जानती है लेकिन हमे बूढी होने के कारण कौन पूछेगा? अब रसोई करने के लिए गुण नही चाहिए, रूप और जवानी चाहिए।'

समझ गई कि मालिक ने खा कर तारीफ की है। लेकिन ब्राह्मणी के चिचियाने का कुछ उत्तर देने का जी चाहा। उसी से मैने कहा, 'सो तो ठीक ही कहती हो ब्राह्मणी दीदी! रूप और जवानी तो जरूरी है। बुढिया को देख कर किसे खाना अच्छा लगेगा भला?'

ब्राह्मणी दाँत दिखा कर कर्कश स्वर मे कहा, 'लगता है कि तुम्हारी यह जवानी और तुम्हारा रूप, यह हमेशा ऐसा ही रहेगा? क्या कभी मुँह पर झुर्रियाँ नही पडेगी?'

यह कह कर क्रोध के मारे बेचैन हो एक हाँडी चढाने जा कर ब्राह्मणी ने हाँडी ही तोड डाली। मैने फिर व्यग्य किया, 'देखा दीदी! रूप और यौवन न रहे तो हाथ की हाडी भी टूट जाती है।'

बस क्या था! अस्त-व्यस्त हो, अधनगी दशा मे ही ब्राह्मणी सँडसी उठा कर मुझे मारने को झपटी। उम्र का दोष कहे, या कुछ, लगता है वह सुनती भी कम थी। मेरी पूरी बात शायद सुन न सकी। बडा ही घृणित उत्तर उसने मुझे दिया। मुझे भी

क्रोध चढ आया। मैने कहा, 'दीदी, ठहरो। सँडसी का हाथ मे रहना ही इस उम्र मे ठीक होता है।'

इसी समय सुभाषिणी, शोर-गुल सुन कर वहाँ आ गई। क्रोध से अंधी हो रही ब्राह्मणी ने उसे नही देखा। मेरी ओर फिर झपट कर बोली, 'हरामजादी, जो मुँह मे आएगा वही कहेगी ? क्या मै पागल हूँ ?'

तब सुभाषिणी ने भौवें चढा कर कहा, 'क्या मै इसे ले आई हूँ कि तू इसे हराम-जादी कहे ? तुम अभी हमारे घर से बाहर हो जाओ।'

तब ब्राह्मणी बडे अस्त-व्यस्त भाव से सँडसी एक ओर फेक कर रोती हुई कहने लगी, 'अरे माँ, यह कैसे बात हुई ? मैने कब इसे हरामजादी कहा ? ऐसी बात भला मेरे मुँह से निकलेगी ? तुमने तो कमाल ही कर दिया बहू माँ !'

यह सुन कर सुभाषिणी खिलखिला कर हँस पडी। ब्राह्मणी ने तब तक चिल्ला कर रोना शुरू कर दिया था। उसने कहा, 'अगर मैने इसे हरामजादी कहा हो तो मै यमराज के घर जाऊँ !'

मै बोली, 'यह क्या दीदी ! इतने सबेरे-सबेरे जाओगी ? छि छि, दीदी, दो दिन और रुको न !'

'मुझे नरक मे भी जगह न मिले।'

'ऐसा तो मत ही कहना। दीदी नरक के लोगो ने अगर तुम्हारे हाथ की रसोई न खाई तो फिर उनके लिए नरक क्यो ?'

रो कर बुढिया ने सुभाषिणी से कहा, 'देखो बहू माँ, इसके जो भी मुँह मे आता है, यह कहती जाती है और आप कुछ भी नही कहती ? मै ठकुरानी माँ के पास जाती हूँ।'

सुभाषिणी ने कहा, 'हाँ, जरूर जाओ। मै भी गवाही दूँगी कि तुमने इसे हरामजादी कहा है।'

बुढिया ने तब और जोरो से चिल्लाना शुरू किया, 'भला देखो तो ! मैने भला कब हरामजादी कहा ? मैने कब हरामजादी कहा ? मैने कब हरामजादी कहा ?'

तब हम दोनो ने बुढिया को पुचकारा और कुछ मीठी बातें कहना शुरू किया। पहले मैने ही कहा, 'हाँ, ठकुरानी बहू, तुमने इसे हरामजादी कहते कब सुना ? यह तो इसने नही कहा। मैने तो यह कहते इसे नही सुना।'

तब झटपट बुढिया बोली, 'सुना न बहू माँ ? मेरे मुँह से भला यह बात कभी निकल सकती है ?'

तब सुभाषिणी ने भी कहा, 'तो होगा—हो सकता है कि बाहर कोई किसी को कुछ कह रहा हो, कही बात मेरे कानो मे पड़ गई होगी ! बामन ठकुरानी क्या ऐसी-वैसी

है ? इसकी रसोई कल ही खाई थी न ! इस कलकत्ते मे क्या, कही भी कोई इसकी तरह रसोई नही कर सकती ।'

ब्राह्मणी ने मेरी ओर ताक कर कहा, 'सुना तुमने ?'

मै बोली, 'ऐसा तो सभी कहते है । मैने भी ऐसी रसोई नही खाई ।'

तब एक ही गाल से हँस कर-बुढिया ने कहा, 'सो तो तुम जरूर कहोगी बेटी ! तुम जरूर किसी बडे घर की लडकी हो । तुम्हे रसोई की परख है । अहा ! ऐसी लडकी को मै भला गाली दे सकती हूँ ? सो दीदी, तुम मन मे कुछ मत लाना, तुम्हे मै रसोई करना सिखा कर तब जाऊँगी ।'

इस तरह हम लोगो ने बुढिया को शान्त किया । उससे एक प्रकार से मेल हो गया । मै बहुत दिनो रोई थी, आज बहुत दिनो बाद थोडा सा हँसी । किसी दरिद्र के खजाने की तरह यह हँसी-मजाक मुझे बडा अच्छा लगा । उस दिन की वह हँसी मै जन्म भर नही भूल सकती । और कभी हँस कर उतना सुख भी नही पाऊँगी ।

फिर ठकुरानी माँ खाना खाने बैठी । उनके साथ ही बैठ कर मैने उन्हे खूब यत्न से खिलाया । बुढिया ने खाया भी खूब । अत मे बोली, 'बनाती तो अच्छा हो बेटी ! कहाँ सीखी ?'

'मायके मे !'

'तुम्हारा मायका कहाँ है बेटी ?'

मैने एक किसी गाँव का झूठा नाम ले लिया । तब ठकुरानी माँ ने कहा, 'यह तो किसी बडे आदमी के घर जैसी रसोई हुई है । तुम्हारे बाप क्या बड़े आदमी थे ?'

'हाँ, माँ !'

'तो तुम यहाँ रसोई करने क्यो आई हो ?'

'विपत्ति मे पड गई हूँ ।'

'तो जब तक मेरे पास हो, मजे मे रहना । तुम बडे घर की लडकी हो । मेरे घर मे भी वैसे ही रहोगी ।'

फिर सुभाषिणी को पुकार कर बूढी बोली, 'बहूरानी, देखो बेटी, इसे कोई कडी बात न कहे, और तुम तो कहोगी ही नही । तुम तो वैसे खानदान की लडकी नही हो ।'

सुभाषिणी का लडका वही बैठा था । बोल उठा, 'मै कली बात कहूँगा माँ ।'

मैने कहा, 'कहो, देखूँ ?'

लडका बोला, 'कला चातू हालि—आल कि माँ ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'और तेरी सास !'

लडके ने पूछा, 'कौन छाछ ?'

तब हेमा ने मुझे दिखा कर कहा, 'यह तेरी सास है ।'

तब लड़का कहने लगा, 'कमुडिनी मेली छाछ ! कुमुडिनिया मेली छाछ !'

सुभाषिणी मेरे साथ कोई रिश्ता जोडने को बेचैन हो रही थी। बच्चो की बातें सुन कर मुझसे बोली, 'अब तो तुम मेरी बहन हुई न ?'

मै चुप रही।

सबसे अत मे सुभाषिणी खाने बैठी। मुझे भी खाने के लिए अपने पास ही बैठा लिया। उसने खाते हुए पूछा, 'तुम्हारे कितने ब्याह हुए है, बहन ?'

मै मजाक समझ गई। बोली,'क्यो, रसोई द्रौपदी की बनाई जैसी लगी है क्या ?'

सुभाषिणी पुलक उठी, बोली, 'ओ, यस ! मिसेज पाण्डव फर्स्ट क्लास बावर्ची थी। मेरी सास की बात समझ तो गई तुम ?'

मै बोली, 'अधिक तो नही। हाँ कंगाल और अमीर आदमी की लडकी मे सभी एक प्रकार का भेद करते हैं।'

सुभाषिणी हँस पडी। बोली, 'तू मर ! यही समझा तूने उन्हे ? खाक समझा ! तुम्हे बडे घर की लडकी कह कर, मै समझती हूँ कि उन्होने तुम्हारा आदर ही किया है।

'और नही तो क्या ?'

'उनका लडका भर पेट खा सके गा, इसीलिए तुम्हारा इतना मान किया गया है। अब अगर तुम इशारा भी करो तो तुम्हारा वेतन दूना हो जायगा।'

'मे वेतन नही चाहती। अगर न लूंगी तो झझट मचे गी, इसलिए हाथ फैला कर महीना ले लूंगी। लेकिन ले कर तुम्हारे पास रखा दूँगी। तुम गरीब भिखारी को दे देना। तुम्हारी कृपा से मुझे आश्रय मिल गया, यही मेरे लिए बहुत है।'

|९|

पके बालों का सुख-दुख

मुझे आश्रय मिल गया। आश्रय के साथ एक और बहुमूल्य रत्न भी मिला—सुभाषिणी। वह मुझे सचमुच हृदय से चाहती थी, मुझसे अपनी सगी बहन जैसा ही स्नेहमय व्यवहार करती। उसके प्रभाव के कारण ही अन्य नौकर-चाकर मेरा तिरस्कार, उपेक्षा न कर पाते थे। इधर रसोई-बसोई से भी सुख मिल गया। वह बूढी ब्राह्मणी, सोना की माँ, वह घर नही गई। उसने देख कर समझ लिया था कि एक बार घर जाने पर फिर नौकरी नही मिलेगी और उसकी जगह मै जम जाऊँगी। वह तरह-तरह के बहाने बना कर घर नही गई, वही डटी रही। इस प्रकार सुभाषिणी के रसोईघर मे हम

दोनो ही रह गईं। उसने अपनी सास को समझाया कि कुमुदिनी बडे घर की लडकी है, उससे रोज-रोज पूरी रसोई नही हो पायेगी। और फिर सोना की माँ भी बूढी है। नौकरी छूट जाएगी तो अब यह देह ले कर वह कहाँ जायेगी ? सास ने कहा—'दोनों जनो को क्या हम रख सकते है ? रुपये भला कैसे दिए जाएँगे ?'

सुभाषिणी ने कहा, 'तो फिर अगर एक ही रखना है तो फिर सोना की माँ को ही रखना होगा। कुमुदिनी इतना कर नही सकती।'

'नही, नही, यह नही होगा। सोना की माँ के हाथ की रसोई मेरा लडका खा नही सकेगा। तो फिर दोनो ही रहे।'

मेरा कष्ट दूर करने के लिए ही सुभाषिणी ने यह जाल बुना था। ठकुरानी माँ उसके हाथ की कठपुतली थी। क्यो न हो, वह थी भी तो रमन की पत्नी, बहूरानी! रमन की बहू की बात टालने की उस घर मे भला किसकी शक्ति थी ? फिर सुभाषिणी की जैसी तेज बुद्धि, स्वभाव भी वैसा ही सुन्दर था। ऐसी बुद्धि के कारण ही तो मुझे दुख के दिनो मे यह सुख मिला।

मै पूरी रसोई कभी न करती। मछली-माँस बना देती या एक दो स्वादिष्ट व्यजन तैयार कर देती। बाकी समय मे सुभाषिणी के सग गप्प हाँकती—उसके लडके-लड़की को खेलाती। बाकी एक बात है, एक झंझट मे जरूर पड़ गई। घर की बूढी ठकुरानी माँ को यह भ्रम था कि उनकी उम्र अभी कम है। केवल भाग्य के दोष से ही उनके बाल पक गये है। पके बालो को उखाड देने भर से वे फिर युवती हो सकती हैं। इसलिए किसी को पकड पाते ही अवसर देख कर वे अपने पके बाल उखड़वाने बैठ जाती। एक दिन उनकी इस बेगार मे मै ही पकडा गई। मै तेज हाथो से जल्दी-जल्दी भादो महीने का खेत साफ करने लगी। दूर से देख कर ही सुभाषिणी ने ऊँगली के इशारे से मुझे बुलाया। मै ठकुरानी माँ के काम से छुट्टी पाते ही उसके पास गई।

सुभाषिणी ने कहा, 'यह क्या कर रही हो ? मेरी जवान सास को मुण्डी क्यो किए दे रही हो ?'

'यह काम भी एक दिन पूरा हो जाय तभी ठीक होगा।'

'ऐसा होने पर क्या यहाँ टिकी रह सकोगी ? फिर जाओ गी कहाँ ?'

'मेरा हाथ कुछ तेज ही चलता है।'

'यही तो मरना है। दो एक ठो नोच कर क्या चली नही आ सकती थी ?'

'तुम्हारी सास जो नही छोडती।'

'कह दो कि अब पके बाल नही है।'

'इस तरह क्या दिन मे ही डाका डाल सकूँ गी ? लोग भला क्या कहेगे ? यही न, कि यह भी कालीदीघी की डकैती है।'

'कालीदीघी की डकैती क्या ?'

सुभाषिणी से बाते करते समय मै एक प्रकार से अपने बारे मे भूल गई थी। असावधानी के कारण मेरे मुँह मे कालीदीघी की बात निकल ही गई। मैने बात को दबाया। बोली, 'यह बात फिर किसी दिन बताऊँगी।'

'ठीक है। तो मैने अभी जो कहा है उसे एक बार कह कर तो देखो। मेरे कहने से ही कहो न एक बार।'

हँसते हुए मै उठी और ठकुरानी माँ के पास जा कर फिर उनके पके बाल नोचने लगी। दो चार बाल नोचने के बाद मैने कहा, 'माँ, और पके बाल तो मुझे दिखते नही। बस दो एक और बचे है, उन्हे अब कल निकाल दूँगी।'

बुढिया एक गाल हँसी। बोली, 'फिर बेटी तो कहती है कि सारे बाल ही पक गये है।'

बुढिया के प्रति मेरा आदर बराबर बढता जाता। लेकिन मै कोई ऐसा उपाय सोचने लगी कि किसी तरह रोज-रोज बैठ कर बाल नोचने से छुट्टी मिले। वेतन के रुपये पा गई थी। उसमे से एक रुपया हारानी को दे कर कहा, 'एक शीशी खिजाब तो किसी से मँगा देना।'

हारानी बुरी तरह हँसने लगी। हँसी रुकी तो पूछा, 'खिजाब मँगा कर भला क्या करो गी ? किसके बालो मे लगाना है ?'

'ब्राह्मणी के बालो मे !'

यह सुनते ही हारानी हँसते-हँसते दोहरी हो गई। इसी समय ब्राह्मणी वहाँ आ पहुँची। उसे देख कर हारानी हँसी रोकने को अपने मुँह मे कपडा ठूँसने लगी। इस पर भी जब हँसी नही रुकी तो वह वहाँ से उठ कर भाग गई। तब ब्राह्मणी ने मुझसे पूछा, 'यह इतना हँस क्यो रही है ?'

मैने कहा, 'उसका भला और काम ही क्या है ? मैने कहा कि बाभन ठकुरानी के लिए बालो मे खिजाब लगाना ठीक नही है, बस इसी बात पर हँस रही है।'

'इसमे भला हँसने की क्या बात है ? खिजाब लगाने मे हर्ज भी क्या है ? लडके दिन रात चिढाते रहते है—उस झझट से तो बचूँगी।'

इसी समय सुभाषिणी की लडकी ने शुरू किया—

'चले बूडी, शोनेर नूड़ी,
खोपाय घेट्ठ फूल।
हाते नडि, गलाय दडी,
काने जोड़ा दूल।'

हेमा के भाई ने भी आवाज लगाई। तब बात बिगडेगी, डर से सुभाषिणी उन्हे खीच ले गई।

मै समझ गई कि ब्राह्मणी को खिजाब लगाने की बडी लालसा है—इसलिए कहा—'अच्छा तो मे तुम्हे खिजाब दे दूँगी।'

ब्राह्मणी बोली, 'अच्छा तो दे देना। तुम जीती रहो, तुम्हारे पास सोने के गहने हो जायँ। तुम खूब अच्छी रसोई करना सीख लो।'

हारानी चाहे हँमे जितना, पर थी वह बडे काम की। चटपट एक शीशी बढिया खिजाब ले ही तो आई।

मै हाथ मे खिजाब ले कर ठकुरानी माँ के बालो म खिजाब लगाने लगी। उन्होने पूछा, 'यह तेरे हाथ मे क्या है ?'

मेने कहा, 'यह एक औपधि है, एक अर्क। इसे बालो मे लगाने से सभी पके बाल गिर जाते है और काले बाल रह जाते है।'

'अच्छा, ऐसा गुणकारी अर्क तो मैने पहले कभी सुना नही। ठीक है, लगाओ तो देखूँ। हाँ, दखना खिजाब मत लगा देना।'

मैने खूब अच्छी तरह उनके बालो मे खिजाब लगा दिया। लगा कर बोली, 'अब पके बाल नही है।' कह कर मै चली गई। थोडा समय बीतने के बाद उनके सब बाल काले हो गये। लेकिन दुर्भाग्य की बात कि कमरे मे झाड़ू लगाते समय हारानी ने यह देख लिया। बस झटपट झाड़ू पटक, मुँह मे कपडा ठूँस कर हँसती हुई वह सदर मकान की ओर भागी। वहाँ सभी पूछने लगे, 'क्या हुआ दाई ? क्या हुआ दाई ?' इस तरह वहाँ गडबडी मचने पर वह वहाँ से भाग कर छत पर चली गई। वहाँ बैठी सोना की माँ अपने बालो को सुखा रही थी। हारानी की दशा देख कर पूछा, 'क्या हुआ ?'

हँसी के जोर के कारण हारानी कुछ कह न सकी। सिर्फ सिर पर हाथ रख कर दिखाने लगी। सोना की माँ कुछ समझ न सकी, लेकिन दाल मे कुछ काला समझ कर वह नीचे आई। नीचे उसकी नजर ठकुरानी माँ के सिर के काले बालो पर पड़ी। बस वह फुक्का छोड कर रोने लगी। बोली, 'हाय माँ, यह क्या हो गया ? तुम्हारे सिर के तो सारे बाल काले हो गये है। हाय माँ! पता नही किसने तुम्हारी यह दवा की है!'

उसी समय मुझे खोजती हुई सुभाषिणी मेरे पास आई। वह भी हँस रही थी। मुझे पकड कर बोली, 'कलमुँही! यह क्या किया तू ने ? माँ के बालो मे खिजाब लगाया है क्या ?

'हाँ।'

'तेरे मुँह मे आग! जरा देख तो, क्या तूफान मच गया है!'

'तुम चिन्ता मत करो।'

तब तक ठकुरानी माँ ने अपने आप मुझे बुलवाया। कहा, 'हाँ बेटी, कुमू! तूने मेरे सिर मे खिजाब लगाया है ?'

मैने भाँप लिया कि ठकुरानी माँ के मुँह पर विशेष प्रसन्नता है। अत निडर हो कर कहा, 'यह किसने कहा, माँ ?'

'यही सोना की माँ ही कहती थी।'

'सोना की माँ भला क्या जाने गी ! यह खिजाब नही है माँ ! यह मेरी दवा है।'

'फिर तो यह बहुत ही अच्छी दवा है, बेटी ! जरा शीशा तो ला। देखूँ तो ?'

मैने लपक कर एक शीशा ला कर दिया। अपने को अच्छी तरह देख कर ठकुरानी माँ ने कहा, 'अरी माँ ! सब बाल काले हो गये ! वाह रे, अभागे की बेटी ! लोग देख कर कहे गे कि खिजाब लगाया है।'

ठकुरानी माँ के चेहरे पर प्रसन्नता थमती न थी। उसी दिन शाम को मेरी रसोई की खूब तारीफ कर के मेरा वेतन बढा दिया। फिर कहा, 'बेटी, तुम सिर्फ काँच की चूडियाँ पहन कर घूमती हो, देख कर मुझे दुख होता है।' कह कर उन्होने अपने, बहुत दिन के रखे सोने के दो कडे निकाल कर मुझे बखशीश मे दे दिये। हाथ बढा कर उन्हे लेते हुए मेरी मौत हो गई। आँखो के आँसू न रोक सकी। 'नही लूँगी' कहने का अवसर न था। कह भी न सकी।

दूसरे दिन सन्नाटे मे मौका देख कर ब्राह्मणी ने मुझे पकडा और बोली, 'क्यो, अब वह दवा नही है क्या ?'

'कैसी दवा ? बुढिया को उसके स्वामी को वश मे करने को जो दी थी ? वही क्या ?'

'मर जा ! दूर हो यहाँ से ! इसे ही कहते है लडक-बुद्धि। मेरे पास किसी को वश मे करने को कोई सामान नही है।'

'नही क्यो ? क्या एक भी नही ?'

'लगता है, तू ने तो पाँच-पाँच किए है ?'

'पाँच-पाँच न करली तो क्या ऐसी रसोई बना सकती थी ? द्रौपदी बने बिना क्या ऐसी रसोई की जा सकती है ? तुम भी पाँच का जुगाड करो न ! तुम्हारी रसोई खा कर तो लोग बेहोश हो जायँगे।'

बुढिया ब्राह्मणी ने लम्बी साँस खीची। बोली, 'एक ही का जुगाड नही होता तो भला पाँच कहाँ मिले गे ? मुसलमानो मे होता है, हिन्दुओ मे तो इसे पाप मानते है। फिर भी क्यो होगा कुछ ? यह देखो न, रूई की तरह बाल सफेद हो गए है। इसी से तो कहा था कि क्या वह दवा और है जिससे बाल काले हो जाते है ?'

'तो ऐसा कहो न ! दवा है नही तो क्या ?'

तब मैने खिजाब की शीशी ब्राह्मणी को दे दी। रात को भोजन कर लेने के बाद अँधेरे मे बैठ कर वह अपने बालो मे खिजाब रगड रही थी। कुछ बालो मे लगा, कुछ मुँह मे। सबेरे जब वह सबो के सामने प्रकट हुई तो उसके बाल चितकबरी बिल्ली

की तरह थे। कुछ काले, कुछ भूरे। मुँह भी कलमुँहे बंदर या ऊदबिलाव की तरह। उसे जो देखता वही ठठा कर हँसता। किसी की हँसी रुक ही नही रही थी। हारानी तो हँसते-हँसते सुभाषिणी के पावो के पास गिर-गिर कर पछाड खाने लगी। हँसी के बीच रुक-रुक कर बोली, 'ठकुरानी बहू, अब तुम्ही बताओ, हंसी के इस घर मे अब मै कैसे रहूँ ? किसी दिन हँसते-हँसते बेदम हो कर अब मरना भर बाकी है।'

हेमा भी कहने से न चूकी। ब्राह्मणी से बोली, 'बूढी बुआ ? तेरा साज सिंगार किसने किया है ?' उसने कहा—

'यम बोलेछे, सोनार चाँद,
एशो आमार घरे।
ताई घाटेर सज्जा साजिये दिले
सिंदूरे गोबरे।'

एक दिन एक बिल्ली ने हाँडी मे मुँह डाल कर मछली खाई थी। उसके मुँह पर कालिख लग गई थी। सुभाषिणी के लडके ने भी उसे देखा था। उसने भी ब्राह्मणी को देख कर कहा, 'माँ, बूली पूपी हाँली मे खाई ।'

लेकिन मैने पहले ही सबो को सकेत कर रखा था। इससे किसी ने भी बुढिया से खोल कर असली बात नही बताई। वह बिना हिचक अपनी बदरी शोभा लिए सब के सामने घूमती रही।

सबो को हँसते देख कर उसने पूछा, 'तुम सब लोग आज हँस क्यो रहे हो ?'

सबो ने एक ही बात कही, 'यह लडका क्या कहता है, सुना नही। कहता है— बूली पूपी हाँली खाई।'

बस बुढिया ने सबो को गरियाना शुरू किया, 'सब का नाश हो।' कह कर सबो को यमराज का निमत्रण देने लगी। लेकिन बुढिया के कहने पर यमराज ने भी शायद ध्यान नही दिया।

ब्राह्मणी अपना वही रूप लिए, रमन बाबू को भोजन की थाली देने गई। देख कर रमन बाबू भी अपनी हँसी न रोक सके। वे उस दिन ठीक से खा भी नही सके। मैने सुना कि जब वह राय रामदत्त को भोजन परोसने गई तो उन्होने उसे 'हट-हट' कह कर भगा दिया।

अत मे ऊब कर या दया करके सुभाषिणी ने बुढिया से कहा, 'मेरे कमरे मे बड़ा आईना है। जरा जा कर अपना चेहरा तो देखो।'

बुढ़िया ने जा कर देखा और लगी जोर-जोर से रोने। मै यही समझाने लगी कि मैने तो बालो मे लगाने को दिया था। मुँह मे लगाने को तो नही ? लेकिन बुढ़िया इसे समझ न सकी। मेरे सिर को खाने के लिए बार-बार यमराज की पुकार होने लगी। तब सुन कर सुभाषिणी की लडकी ने कहा—

'जे डाके यमे।
तार परमाइ कमे।
तार मुखे पड़्क छाये।
बूडी मरे या ना भाई।'

अत मे मेरे उसी तीन साल के जमाई ने रसोई घर मे रखी एक चैला लकडी ले जा कर बुढिया की पीठ पर जमा दी। तब तो बुढिया पछाड खा-खा कर रोने लगी। वह जितना ही रोती, मेरा जमाई उतना ही तालियाँ पीट-पीट कर नाचता।

मैने उसे जब गोद मे उठा कर उसका मुँह चूमा तब कही वह रुका।

|१०|

आशा का द्वीप

उसी दिन तीसरे पहर मेरा हाथ पकड कर खीचते हुए मुझे ले जा कर सुभाषिणी ने मुझे एक एकान्त स्थान पर बिठाया। बोली, 'कल तुमने मुझसे कालीदीघी के डाके का हाल सुनाने को कहा था। अब सुनाओ।'

मैने कहा, 'वह मुझ अभागिन की ही कहानी है। मेरे पिता बडे आदमी है, यह तो मै कह ही चुकी हूँ। तुम्हारे ससुर भी बडे आदमी है, लेकिन मेरे पिता की तुलना मे कुछ नही है। मेरे पिता आज भी हैं, उनका अतुल वैभव आज भी है। आज भी उनके दरवाजे पर हाथी बँधा है। मै जो आज यहाँ रसोई बना रही हूँ, उसका कारण कालीदीघी का डाका ही है।'

इतना कह कर मै चुप हो गई। मेरी ओर देख कर सुभाषिणी ने कहा, 'यदि कहने मे तकलीफ होती हो तो मत कहो। मै तो यो ही सुनना चाहती थी।'

मैने कहा, 'मै सब सुनाऊँगी। तुम मुझे इतना प्यारा करती हो, मेरा इतना हित किया है, कहने मे कष्ट क्या होगा ?'

मैने अपने पिता व ससुर का नाम नही बताया, न ही मायके या ससुराल के गाँव का नाम ही बताया। बाकी सारी घटना कह सुनाई। सुनते-सुनते सुभाषिणी रो पडी, कहते-कहते मै भी रोती रही।

फिर उस दिन इसके आगे बात नही चली।

दूसरे दिन सुभाषिणी मुझे फिर एकान्त मे ले जा कर बोली, 'तुम्हे अपने पिता का नाम बताता ही होगा।'

मैने बता दिया।

फिर बोली, 'बताओ, गॉव का नाम !'

सो भी बताया।

'डाकखाना का नाम ?'

'डाकखाना ? डाकखाना का नाम तो डाकखाना ही है।'

'दुर पगली ! कलमुँही ! जहाँ डाकखाना है उस गाँव का नाम ?'

'सो मै नही जानती। बस डाकखाना भर जानती हूँ।'

'ओफ हो, मै पूछती हूँ कि तुम्हारे ही गाँव मे डाकखाना है या किसी और गाँव मे ?'

'इतना मुझे नही मालूम।'

सुभाषिणी दुखी हुई। लेकिन बोली कुछ नही। दूसरे दिन उसी तरह एकान्त मे फिर पूछा, 'तुम बडे घर की बेटी हो। और कब तक दूसरे की रसोई करो गी ? लेकिन तुम्हारे जाने पर मै बहुत रोऊँ गी। फिर सोचती हूँ कि अपने सुख के लिए मै तुम्हारी हानि क्यो करूँ ? ऐसी पापिन नही बन सकती। हमने सोचा है कि '

मै बीच मे ही बोली, 'हमने मतलब, कौन कौन ?'

'मै और मेरे स्वामी। हम लोगो ने सोचा है कि तुम्हारे पिता के पास पत्र भेजा जाय कि तुम यहाँ हो। इसीलिए तो कल तुमसे डाकखाने का नाम पूछ रही थी।'

'तो क्या, तुमने उनसे सब बाते बता दी ?'

'बता तो दी है। इसमे हर्ज क्या है ?'

'हर्ज तो नही है, फिर भी '

'महेशपुर लिख कर ही चिट्ठी भेजी गई है।'

'चिट्ठी लिख ली गई या अभी नही ?'

'हाँ, लिख गई।'

उस समय इतनी बातें हो जाने पर मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। रोज दिन गिनने लगी। पत्र का उत्तर कितने दिनो मे आवेगा ? लेकिन उत्तर नही आया। मेरा भाग्य ही खोटा है। महेशपुर मे कोई डाकखाना नही था। दूसरे किसी गाँव मे डाकखाना था। मै राजा जैसे बाप की दुलारी बेटी थी, इतनी बात भी मुझे मालूम न थी। डाकखाने का पता न पा कर कलकत्ता के बडे डाकखाने से होती हुई चिट्ठी रमन बाबू के पास लौट आई।

मैंने फिर रोना शुरू किया। लेकिन रमन बाबू ने प्रयास नही छोडा। उस दिन सुभाषिणी ने आ कर जिद कर के कहा, 'अब तुम्हे अपने पति का नाम भी बताना ही होगा।'

मै पति का नाम मुँह से कैसे लेती। लेकिन मै लिखना जानती थी। पति का नाम मैने एक कागज पर लिख दिया।

सुभाषिणी ने फिर पूछा, 'और ससुर का नाम ?'

वह भी लिख दिया।

'गाँव का नाम ?'

वह भी बता दिया।

'डाकखाने का नाम ?'

'वह क्या मै जानती हूँ ?'

बाद मे मुझे पता लगा कि रमन बाबू ने मेरे ससुराल भी पत्र लिखा था। लेकिन वहाँ से भी कोई उत्तर नही आया। इस बार मै मन मे बहुत ही दुखी हुई। तभी मन मे एक बात आई। मैने आशा से भर कर पत्र लिखने मे रुकावट नही डाली थी। लेकिन डाकू उठा ले गये थे अत अब मै उन घरो के योग्य नही थी, मेरी अब कोई जाति भी नही थी। यही सोच कर ससुर-स्वामी सभी मेरी उपेक्षा व वहिष्कार करे गे, इसमे सदेह नही। लगता है कि मेरे ससुराल मे पत्र भेजना उचित नही हुआ।

मेरी बात सुन कर सुभाषिणी चुप हो गई।

मेरी समस्त आशा अब निराशा मे बदल गई। मै समझ गई कि अब कोई भरोसा नही है। मैने खाट पकड ली।

|११|

मैं पहचान गई

एक दिन सबेरे उठते ही मैने लक्ष्य किया कि घर मे कुछ विशेष आयोजन हो रहा है। रमन बाबू वकील है। उसके एक मुवक्किल बहुत बडे आदमी थे। मै दो दिन से हल्ला सुन रही थी कि वे कलकत्ता आए है। रमन बाबू और उनके पिता उनके ठहरने के स्थान पर बराबर आ-जा रहे थे। कारण था कि उनके साथ कारोबार का संबंध था। आज सुना कि वही आज दोपहर का खाना खाने आने वाले है। इसी से रसोई की विशेष रूप से तैयारी हो रही है।

रसोई अच्छी होनी चाहिये, इसलिए उसका भार मेरे ऊपर ही आ पडा। मैने भी खूब मन लगा कर बडे यत्न से रसोई तैयार की। भोजन करने का स्थान भी भीतर ही निश्चित हुआ। रामराय बाबू, रमनबाबू और निमन्त्रित अतिथि, तीनो जन खाने

बैठे। परोसने का भार बुढिया ब्राह्मणी पर था। मै कभी भी बाहर लोगो के सामने जा कर खाना नही परोसती थी।

बुढिया परोस रही थी, मै रसोईघर मे थी। ठीक इसी समय एक गडबडी हुई। सुना कि रमन बाबू बुढिया को खूब जोरो से डॉट रहे थे। उसी समय रसोईघर की एक नौकरानी भागती हुई आई और बोली, 'ऐसे समय मे लोगो को बेवकूफ बनाने का मन करता है।'

'क्या हुआ है ?'

'बुढिया दादाबाबू की थाली मे दाल परोस रही थी। उन्होने हाथ बढा कर 'ऊहूँ, उहूँ' किया। और सारी दाल उनके हाथ पर गिर पड़ी।'

मै चुपचाप सहमी सी सुन रही थी। रमन बाबू बुढिया पर बिगड रहे थे, 'जब तुम्हे ठीक से परोसना नही आता तो परोसने क्यो आई हो ? और किसी को नही भेज सकती थी ?'

रामराय बाबू ने कहा, 'यह तुम्हारा काम नही है। जा कर कुमू को भेज दो।'

ठकुरानी माँ वहाँ थी नही। मना कौन करता ? जब खुद घर के मालिक ने ही हुक्म दिया है तो मै भी कैसे टाल सकती थी ? जानती थी कि जाने पर मालकिन नाराज होगी और न जाने पर मालिक। मै बडी मुश्किल मे आ फँसी। बार-बार बुढिया को समझाया, कहा, 'जरा होशियारी से ठीक से परोसना।'

लेकिन डर के मारे बुढिया जाने को तैयार ही न हुई। तब विवश हो कर मैने हाथ धोया, मुँह पोछा और कपडे ठीक से पहन कर थोड़ा सा घूँघट काढ़ कर परोसने निकली। लेकिन कौन जानता था कि यह घटना हो जाएगी ? मै अपने को ही बड़ी बुद्धिमान समझती थी—यह नही जानती थी कि सुभाषिणी मुझे एक बाजार मे बेच कर दूसरी बाजार मे खरीद सकती है।

मै घूँघट काढे थी। लेकिन घूँघट से चेहरा छिप सकता है, औरतो का स्वभाव नही छिप सकता। घूँघट के भीतर से ही मैने एक बार उन निमन्त्रित अतिथि को देखा।

देखा कि उनकी आयु तीस वर्ष के लगभग थी। उनका रंग गोरा था और अच्छे दर्शनीय पुरुष थे। देखने मे ही वे रमणी-मनोहर प्रतीत हुए। मै बिजली की चमक की तरह चौकी और तुरन्त अनमनी हो उठी। माँस का बर्तन हाथ मे ले कर थोडी देर खडी रही और घूँघट के भीतर से उन्हे ही निहारती रही। इसी समय उन्होने भी अपना चेहरा उठाया। उन्होने भी देखा कि मै घूँघट के भीतर से उन्हे ही देख रही हूँ। मौका रहने पर भी जानबूझ कर अपनी इच्छा से ही मैने उनकी ओर आँखों से कुटिल-कटाक्ष नही फेका। वैसा पाप हृदय मे उस समय नही आया। मै तो समझती हूँ कि साँप भी स्वेच्छा से जानबूझ कर अपना फण नही फैलाता। फण फैलाने का अवसर आने पर अपने आप फुँफकारता है। साँपो का मन भी पापमय नही होता—समझा कि

कमीबेश कुछ ऐसी ही स्थिति होती होगी। ऐसा लगा कि वे एक कुटिल कटाक्ष से मेरी ओर देख रहे थे। वे पुरुष जो ठहरे। अंधेरे मे दीपक की भाँति घूँघट के भीतर रमणी का कटाक्ष कुछ बढ कर ही दिखाई पडता है। लगता है कि उन्होने भी इसी तरह देखा होगा। फिर उन्होने हल्के से हँस कर चेहरा झुका लिया। लेकिन उस हँसी को केवल मै, एकमात्र मै ही देख सकी।

फिर सारा माँस उन्ही की थाली से उँडेल कर मै चली आई।

मै थोडा लज्जित और थोडा दुखी हुई। इसी उम्र मे, मै सधवा हो कर भी जन्म को विधवा हो उठी थी। विवाह के समय सिर्फ एक बार और वह भी क्षण भर को अपने स्वामी का चेहरा देखा था। मेरी जवानी की सारी इच्छाएँ अभी तक अतृप्त थी। ऐसे समय मे गहरे पानी मे कंकडी फेंकने से मुझे लगा कि बहुत ढेर सी लहरें उठी, सोच कर मेरा मन खिन्न हो उठा। मै मन-ही-मन नारी-जीवन को सैकडो बार कोसने और धिक्कारने लगी। मै तो मन-ही-मन मे मर गई।

रसोईघर मे वापस आने पर मन मे कही यह धक्का लगा कि मैने इन्हे पहले कही देखा है। सदेह मिटाने के लिए फिर जा कर आड मे खडी हुई और एकटक उन्हे देखने लगी। बहुत ध्यान मे खूब अच्छी तरह देख कर मै मन-ही-मन मे कह उठी, 'जरूर कही देखा है। पहचानती हूँ।'

इसी समम रामराय बाबू ने कुछ लाने को पुकारा। उस दिन कई तरह का माँस पकाया गया था, वही लेकर गई। देखा कि उन्होने अभी भी वही कटाक्ष धारण कर रखा है। मुझे सामने देख कर उन्होने रामराय दत्त से कहा, 'रामबाबू अपनी रसोई-दारिन मे कहिए कि रसोई बहुत अच्छी बनी है।'

रामबाबू भीतरी बात तो समझ नही सके, बोले, 'हाँ यह खाना अच्छा बनाती है।'

मैने मन ही मन कुढ कर कहा, 'तुम्हारा सिर बनाती हूँ।'

तब निमन्त्रित अतिथि ने कहा, 'लेकिन एक आश्चर्य की बात मै देख रहा हूँ रामबाबू ?'

'क्या ?' रामबाबू ने सतर्क हो कर पूछा।

'आप के घर मे दो तीन खाने की चीजें तो हमारे देश की तरह बनी है।'

रामराय बाबू ने कहा, 'हो सकता है। इसका घर इस देश मे नही है।'

उस दिन अतिथि के स्वागतार्थ मैने सचमुच दो तीन चीजें अपने देश की तरह बनाई थी।

उन्होने जैसे सीधा रास्ता खोज पा लिया। एकाएक मेरे मुँह की ओर ताका कर मुझसे ही पूछ बैठे, 'तुम्हारा घर कहाँ है, जी ?'

मै भारी उलझन मे फँसी। जबाब दूँ या नही ? लेकिन दूसरे ही क्षण मैने जवाब देने का ही निश्चय कर लिया।

फिर दूसरी उलझन मन मे उठी। ठीक-ठीक जवाब दूँ या झूठ बोलूँ ? इस बार निश्चय किया कि झूठ बोलूँ गी। ऐसा निश्चय मैने क्यो किया, यह तो वही बता सकते है। जिन्होने नारी हृदय को सदा टेढे रास्ते पर चलने का आदी बनाया है। मैने सोचा, जरूरत होने पर सब सच-सच कहना भी तो मेरे हाथ मे है। अभी तो कुछ और ही कह कर देखूँ गी। यही सोच कर मेने जवाब दिया, 'हमारा घर है कालीदीघी ?'

सुनते ही वे चौक उठे। क्षणभर मे अपने को सम्हाला और तब बहुत कोमल स्वर मे पूछा, 'कौन कालीदीघी ? डाकुओ वाली कालीदीघी ?

'हाँ।'

फिर वे और कुछ न बोले।

मै माँस का बर्तन लिए वही खडी रही। इस प्रकार वहाँ खडा रहना उचित न था, इस बात को उस समय मै भूल ही गई थी। अभी-अभी मेने अपने को जो हजारो तरह से कोसा, धिक्कारा और प्रताडित किया था, वह सब भी भूल गई। देखा कि अब वे अच्छी तरह खाना नही खा पा रहे है। यह रामराय बाबू ने भी लक्ष्य किया। बोले, 'उपेन्द्र बाबू ! भोजन कीजिए न ?'

बस मेरे लिए यही सुनना तो बचा था। उपेन्द्र बाबू ?

उपेन्द्र बाबू ! उपेन्द्र ही तो मेरे पति का नाम है ! ये मेरे स्वामी है। मैने नाम सुनने के पहले ही पहचान लिया था, पहली बार ही देख कर अब नाम सुनने के बाद कोई शका नही रही।

रसोई घर मे जा कर बर्तन फेंक कर मै इतने दिनो बाद एक बार खुशी मनाने बैठी। रामराय बाबू ने पुकारा, 'क्या गिरा ?'

मैने ही तो माँस का बर्तन उठा कर फेंक दिया था।

|१२|

हरानी के शरण मे

अब इस कहानी को आगे कहने मे मुझे पति का नाम लेना आवश्यक होगा। यदि यह अनुचित है, और प्रथा के अनुसार मुझे पति का नाम नही लेना चाहिए तो पाँच रसिक लडकियाँ कमेटी कर के निश्चय कर दे कि मै किस शब्द का प्रयोग कर के अपने स्वामी को सम्बोधित करूँ ? क्या पाँच सौ बार स्वामी—स्वामी कह कर कानो

को जला लूँ ? या घरजमाई की प्रतिष्ठा के अनुसार पति का नाम ले कर 'उपेन्द्र' ही कहूँ ? अथवा प्राणनाथ, प्राणेश्वर, प्राणपति और प्राणाधिक का प्रयोग ही शुरू कर दूँ ? जो हम स्त्री जाति के लिये सब से बढ कर प्रिय सबोधन का पात्र है, जिसे पल-पल के बाद ही बुलाने को मन करता है, उसे भला क्या कह कर बुलाऊँगी, इसका कोई प्रबंध इस मुए देश की भाषा मे नही है। मेरी एक सहेली अपने पति को 'बाबू' कह कर बुलाती थी, फिर बाद मे सिर्फ बाबू कहना उसे जँचा नही और वह बाबू राम कहने लगी। मेरा भी मन कुछ वैसा ही कहने का होता है।

माँस के बर्तन को फेककर मैने मन ही मन निश्चय किया कि अगर विधाता ने मेरे खोए धन को फिर वापस दे दिया है तो अब मुझसे वह छोडा न जाएगा। बच्चो की तरह लज्जा कर के अब मै और अपना सर्वस्व नष्ट नही करूँगी।

यही मन मे निश्चय कर के मै एक ऐसी जगह जा खडी हुई जहाँ भोजन कर के बाहर जाते समय अगर वे तनिक भी इधर-उधर देखें गे तो मुझे अवश्य ही देख सके गे। फिर मन मे सोचा कि अगर वे इधर-उधर देखे ही नही तो इसके माने है कि अपने जीवन के बीस बरसो मे मै पुरुष का चरित्र समझ ही नही सकी हूँ। मै बिल्कुल साफ-साफ कहती हूँ, मै सिर पर थोडा सा आँचल डाल कर जा खडी हुई। बताने मे लाज तो लगती है, लेकिन तब मेरा क्या कर्त्तव्य होना चाहिए। इसका विचार भी दूसरो को करना ही चाहिए।

सब से आगे रमन बाबू चले। वे चारो ओर देखते गये, मानो खबर ले रहे हो कि कौन कहाँ है। उनके पीछे रामराय दत्त थे। उन्होने अगल-बगल कही न देखा। सब से पीछे गये मेरे स्वामी। उनकी आँखें चारो ओर मानो किसी को खोज रही थी। अपनी योजना के अनुसार मै उनके दृष्टिपथ मे पडी। उनकी आँखें निश्चय ही मुझे ही खोज रही थी। यह मै अच्छी तरह समझ गई। उन्होने ज्यो ही मुझे देखा त्यो ही जान-बूझ कर—क्या कहूँ, कहते हुए लाज लगती है—साँप की कुण्डली जैसे स्वभाव सिद्ध होती है, उसी तरह हम दोनो के कटाक्ष भी स्वभाव सिद्ध हुए। फिर जिन्हे मै अपने स्वामी के रूप मे पहचान गई थी, उन पर थोडा सा और विष मै क्यो न ढाल देती ? मालूम हुआ कि मेरे स्वामी—मेरे प्राणनाथ बुरी तरह घायल हो कर बाहर निकले।

तब मैने हरानी की शरण लेना निश्चित किया। एकान्त मे बुलाने पर वह फौरन हँसती हुई आ गई। आते ही बहुत वेग से हँसती हुई वह बोली, 'परोसते समय बुढिया का नखरा देखा था ?' और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह फिर हँसी की बौछार करने लगी।

मैने कहा 'उसकी बात छोडो। अभी मैने तुझे एक दूसरे काम के लिए बुलाया है। तू मेरा एक उपकार कर दे, जन्म भर उसे न भूलूँगी। मुझे जल्दी से यह खबर ला कर दे कि ये बाबू कब जाएँगे ?'

सुनते ही हारानी की हँसी एकाएक बन्द हो गई, जैसे धुएँ के अँधेरे से आग ढँक

गई हो। हारानी अचानक गम्भीर हो कर बोली, 'दीदी ठकुरानी! तुम्हे यह रोग है, यही नही जानती थी।'

मुझे हँसी आ गई। बोली, 'आदमी के दिन एक जेसे नही रहते। इस समय तू मेरे रोग की चिन्ता छोड और बता कि मेरा यह काम करके मुझपर उपकार करेगी या नही?'

'मुझसे यह काम किसी तरह भी नही हो सकेगा।'

मै हारानी को पहले से जानती थी, इसीलिए हाथ खाली रख कर उसे नही बुलाया था। मेरे पास वेतन के रुपये तो थे ही, पाँच रुपये साथ लाई थी जो उसके हाथ मे धर दिए। फिर कहा, 'तुझे मेरे सिर की कसम, तुझे मेरा यह काम करना ही होगा।'

पहले तो ऐसा लगा कि हारानी रुपयो को फेकने वाली है पर पास ही चूल्हा पोतने की मिट्टी की जो ढेर थी, उसी पर रख कर वह अत्यन्त गम्भीरता से बोली, 'चाहती थी कि तुम्हारे रुपये फेक दूँ, लेकिन फेंका नही, वहाँ रख दिया है, उठा लेना। और फिर मुझसे ये सब बाते कभी मत कहना।'

अब मै रोने लगी। एकमात्र हारानी पर ही इतमिनान था, अब और किसे पकड़ूंगी? मेरे रोने से उसे मुझ पर दया आ गई। अर्थभरी दृष्टि से ताक कर पूछा, 'रोती क्यो हो? पहचाने आदमी है क्या?'

एक बार तो मन मे आया कि हारानी से सब खोल कर बता दूँ, लेकिन मैने अपने को सम्हाल लिया। उसे बताती तो वह सब बात शायद समझ न पाती, बल्कि एक और झझट उठा देती। सो मन मे निश्चय किया कि सुभाषिणी को छोडकर और कही मेरी गति नही है। उसी की बुद्धि पर भरोसा था, वही मुझे इस समय बचा सकती थी, उसी से सब कुछ खोल कर कहूँ गी और वही ठीक-ठीक राय भी दे गी। यही सोच कर हारानी से मैने कहा, 'हाँ, पहचाने आदमी है, बहुत पहचाने हुए। सब बातें सुन कर तत्काल तू विश्वास नही कर सके गी, फिर कभी सब बता दूँ गी। अभी समय नही है। लेकिन मेरा काम कर देने मे कोई दोष नही है।'

कहने को कह तो गई कि दोष नही है। माना कि मेरे लिए दोष नही है, पर हारानी के लिए तो दोष है ही। कुतर्क से मन को समझाना चाहा। जो दुर्दशा मे पडता है, वह अपने उद्धार के लिए कुतर्क का भी सहारा लेता है। मैने हारानी को फिर समझाया, 'कहती हूँ न, कि कुछ दोष नही है।'

'तुम क्या उनसे मिलो गी?'

'हाँ।'

'कब?'

'रात मे जब सब लोग सो जाएँ।'

'अकेली ही?'

'हाँ, अकेली।'

'मेरे बाप से भी नही हो सकता।'

'और अगर बहू ठकुरानी हुक्म दे तब ?

'तुम्हारा क्या माथा ही फिर गया है ? वे घर की बहू है, सती है, लक्ष्मी है। क्या इन सब पाप के कामो मे हाथ डालें गी ?'

'अगर वे कहे, तब तो जाए गी न ?'

'तब तो जाना ही पडे गा। लेकिन तुम्हारे रुपये नही लूँ गी।'

तब मैने अपनी आँखो के आँसू पोछे और सुभाषिणी के पास गई। वह अकेली थी। मुझे देख कर वह खुश हो गई। हँस कर मेरे कान के पास अपना मुँह ला कर बोली, 'क्यो पहचान लिया न ?'

मै तो आकाश से गिर पडी। कहा, 'वे कौन है ? तुमने कैसे जाना ?'

'आह, तेरा सोने का चाँद, लगता है अपने से ही फँस गया। आकाश से तेरा चाँद हम लोग उतार लाये है।'

'हम लोग, माने ? तुम और रमन बाबू ?'

'और नही तो कौन ? तुमने अपने पति, ससुर और ससुराल के गाँव का पता बताया था न ? याद है ? वह सब सुन कर तभी मेरे स्वामी पहचान गए थे। तुम्हारे पति का एक बडा मुकदमा उनके ही हाथ मे है। उसी के बहाने से उपेन्द्र बाबू को कलकत्ता बुलाया। फिर घर आने का निमत्रण दिया।'

'फिर बूढी की दाल ?'

'वह हम लोगो की ही चाल थी।'

'तो क्या मेरा भी परिचय दिया गया ?'

'ओह, सर्वनाश! वह कैसे दिया जाता ? तुमको डाकू लोग उठा ले गये थे, उसके बाद कहाँ, क्या-क्या हुआ, सब वृतान्त भला कौन जानता है ? तुम्हारा परिचय जान कर क्या तुम्हे घर मे ले जायें गे ? कहे गे—हम उन्हे फँसा रहे है। मेरे स्वामी का कहना है कि, बुला दिया, अब तुम अपने आप जो कर सको।'

'तो मै एक बार अपनी किस्मत आजमा कर देखूँ गी, नही तो अब डूब मरूँ गी। लेकिन बिना उनसे एक बार मिले, कर हो क्या सकती हूँ ?'

'कब मिलोगी ?'

'जब तुम लोगो ने मेरे लिए इतना किया है तब एक बार इस बारे मे भी सहायता करो। अगर वे अपने डेरे मे लौट जाएँ गे तब भेंट नही हो सकेगी। वहाँ मुझे लिवा कर कौन जाये गा ? कौन उनसे मिलाये गा ? इसलिए यही भेंट करनी होगी।'

'कब ?'

'रात को सबो के सो जाने के बाद।'

'अभिसारिका बन कर जाओ गी ?'

'और उपाय भी क्या है ? दोष भी क्या है ? वे मेरे स्वामी है।'

'नही, दोष तो कोई नही। पर इसके लिए उन्हे रात मे रोकना होगा। उनका डेरा भी पास ही है। ऐसी व्यवस्था कैसे हो सकती है ? अच्छा एक बार बाबू से राय ले कर देखूँ।'

तब सुभाषिणी ने रमन बाबू को बुलवाया। उनसे जो बातें हुई, वह सब मुझे बताया। रमन बाबू ने कहा था—'इस समय मुकदमे के कागज-पत्र न देखे गे, बहाने से टाले गे और उसके लिए शाम का समय तय करे गे। कागज-पत्र मे रात देर तक उलझाए रहे गे। रात हो जाने पर अनुरोध कर के भोजन के लिए विवश करे गे। उसके बाद फिर जैसी तुम्हारी किस्मत हो, तुम जो चाहना करना। रात को रोकने के लिए अनुरोध करने को हमारे पास और क्या बहाना है ?'

मैने सुभाषिणी से कहा, 'वह अनुरोध और बहाना अब तुम लोगो को नही करना पडे गा। वह सब मै खुद ही कर लूँ गी। मेरा अनुरोध जिस प्रकार वे माने, वही करूँ गी। दो एक कटाक्ष के बाण मारे है, लेकिन उन्होने लौटा दिया। अच्छे आदमी नही है। लेकिन अपना अनुरोध मै उन तक भेजूँ कैसे ? एक चिट्ठी लिख कर दूँगी। किसी के हाथ उनके पास भिजवा देना।'

'क्यो, नौकर के हाथ भेजो न ?'

'चाहे जन्म-जन्मान्तर तक भी पति को वापस न पाऊँ, पर यह काम किसी पुरुष से नही करा सकूँगी !'

'ठीक कहती हो। तब दासी ?'

'लेकिन दासी विश्वासी है क्या ? कही कोई गड़बडी हो गई तो फिर सब कुछ खो जाय गा।'

'लेकिन हारानी तो विश्वासी है।'

'हारानी से कहा था। वह नाराज हो गई। तुम्हारा आदेश पा कर जा सके गी। लेकिन ऐसा करने के लिए तुम्हे कैसे कहूँ ? मर जाऊँ गी, मै अकेली ही मर जाऊँ गी।' कह कर मै रोने लगी।

'हारानी क्या मेरे लिए बोली है ?'

'हाँ, तुम कहो गी, तभी जाए गी।'

थोडी देर सोच कर सुभाषिणी बोली, 'तो इस काम के लिए उसे शाम के बाद मेरे पास आने को कहना।'

| १३ |

प्रेम का पाठ

शाम होने के बाद मेरे स्वामी मुकदमे के कागज-पत्र ले कर रमन बाबू के पास आये। खबर पा कर मै एक बार और हारानी की खुशामद करने लगी। हारानी यही कहती, 'अगर बहू दीदी कहे तो कर सकती हूँ। तब मै समझ लूँगी कि कोई दोष नही है।'

मैने कहा, 'जो चाहो सो करे। मै तो ज्वाला से मरी जा रही हूँ।'

मेरी बेचैनी और तडप देख कर हारानी हँसी से लोट-पोट होने लगी। फिर भागती हुई सुभाषिणी के पास गई। मै उसके लौटने की राह देखती रही। थोडी देर बाद वह पहले से ज्यादा हँसती हुई, उलझे बालो को सभालती, हाँफती हुई दौडती वापस आई।

मैने पूछा, 'इतना अब क्यो हँस रही हो ?'

'दीदी ! ऐसी जगह भी क्या किसी को भेजते है ? बस, समझो कि प्राण जाते-जाते रह गये।'

'क्यो क्या हुआ ?'

'मै जानती हूँ कि बहू दीदी के कमरे मे झाडू नही रहती। जरूरत होने पर झाडू ले जा कर हमलोग ही साफ कर आते है। लेकिन देखा कि आज बहू दीदी के पास ही झाडू रखी थी। मैने ज्यो ही जाकर पूछा कि क्या जाऊँ ? बस त्योही बहू दीदी वही झाडू उठा कर मुझे मारने को दौडी। किसी तरह भाग कर जान बचाई। नही तो आज झाडू खा कर ही मरती। फिर भी एक भरपूर हाथ पीठ पर पडा। देखो, देखो पीठ पर दाग जरूर पडा होगा।'

हारानी ने हँसते-हँसते पीठ दिखाई। सफेद झूठ। कही कोई दाग-वाग नही था। तब उसने कहा, 'अब बोलो, क्या करना है ?'

'झाडू खा कर भी जाओ गी क्या ?'

'झाडू भर मारी है, मना तो नही किया। बोलो, क्या करना है ?'

एक कागज पर मैने लिख रखा था—'मैने आप को अपने हृदय और प्राण दे दिए है। स्वीकार करे गे क्या ? यदि कर सकें तो आज की रात इसी घर मे सोइए गा। कमरे का दरवाजा खुला रखिए गा—आप की वही, रसोईदारिन।'

वही पत्र उसे देना था, लेकिन मन मे होने लगा कि जा कर पोखरे मे ही डूब मरूँ या कही अधेरे मे छिप जाऊँ। नही तो क्या करूँ ? भगवान ने कैसा भाग्य दिया

है ? लगता है, कभी किसी अन्य कुलीन स्त्री के भाग्य मे ऐसी दुर्दशा नही लिखी गई हो गी ।

हिम्मत कर के मुडा कागज हारानी के हाथ मे दे दिया । बोली, 'जरा ठहरना ।'

फिर सुभाषिणी से कहा, 'जैसे भी हो, एक मिनट के लिए दादा बाबू को बुलवा लो, कोई भी बात कर के उन्हे वापस कर देना । तब तक हारानी चिट्ठी दे आए गी ।'

सुभाषिणी ने वैसा ही किया । रमन बाबू के आने पर मैने हारानी से कहा, 'अब जा ।'

हारानी चली गई और जल्दी ही वही कागज वापस ले कर लौटी । कागज के एक कोने मे लिखा था—'अच्छा !'

तब मैने हारानी से कहा, 'जब इतना किया है तब एक काम और करना ही होगा—आधी रात को मुझे उनके सोने का कमरा दिखा आना हो गा ।'

'अच्छा । पर कोई दोष तो नही है ?'

'कोई दोष नही । ये दूसरे जन्म के मेरे स्वामी है ।'

'दूसरे जन्म के या इसी जन्म के ?'

मैने हंस कर झिडकी दी, 'चुप रह !'

हारानी फिर हंसते हुए बोली, 'अगर इसी जन्म के है तब तो मै पाँच सौ रुपये इनाम लूँगी, नही तो मेरी झाड़ू की चोट अच्छी न होगी ।'

मैने जा कर सुभाषिणी से सब बता दिया । सुभाषिणी फौरन जा कर अपनी सास से कह आई—'आज कुमुदनी का जी ठीक नही है । आज वह रसोई न कर सके गी । सोना की माँ ही करेगी ।'

सोना की माँ अकेले ही रसोई करने गई । सुभाषिणी ने मुझे अपने कमरे में ले जा कर भीतर से किवाडे बन्द कर लिए । मैने पूछा, 'यह क्यो ? बन्द क्यो करती हो ? कैद करोगी क्या ?'

'तुझे आज सजाऊँ गी ।'

सुभाषिणी ने अपने हाथो मेरा मुँह धोया-पोछा । बालो मे सुगन्धित तेल डाल कर बडे यत्न से मेरा जूडा बाँधा । कहा, 'इस जूडे का दाम हजार रुपया है । समय आने पर मुझे हजार रुपया भेज देना होगा ।' इसके बाद एक खूब बढ़िया, कीमती और चटकीली साडी निकाल कर मुझे पहनाने लगी । मैने रुकावट डाली तो उसने ऐसी खीचा-तानी की कि नगी हो जाने के डर से मै चुपचाप पहनने लगी । इसके बाद वह अपने बहुत से गहने ले आई और मुझे पहनाने लगी । तब मैने कहा, 'मै यह सब कुछ हरगिज नही पहनूँ गी ।'

इसी बात को ले कर थोडी कहा-सुनी भी हो गई । लेकिन मैने किसी तरह भी गहना नही पहना । तब वह बोली, 'तो फिर मेरी खातिर सिर्फ एक थान पहन लो ।'

मै भला कितना झगडा करती ? जबरदस्ती सुभाषिणी ने एक गले का हार, कडा, और बाजूबन्द पहना ही दिया। फिर एक जोडा सोने की नई इयरिंग निकाल कर बोली, 'यह मैने अपने पैसो से बनवाई है। तुम्हे ही देने के लिये। तुम जहाँ भी रहना, इसे पहन कर मुझे याद करना। क्या पता, भाई, शायद आज से ही तुम बिछुड जाओ। भगवान ऐसा ही करे! इसलिये आज तुम्हे यही इयरिंग पहनाऊँ गी। अब इसके लिये 'नही' मत करना।'

कहते-कहते जाने क्यो सुभाषिणी रो पडी। मेरी आँखें भी बरसने लगी।

फिर मन मे एक दुख की बात उठी थी, इस दुख के समय उसे भी सुभाषिणी से कहे बिना न रह सकी। बोली, 'जो कुछ हुआ, उससे मै प्रसन्न हूँ। पर दुखी भी हूँ। मै तो उन्हे पहचान गई कि वे मेरे स्वामी है, इसलिये मैने जो कुछ भी किया, उसमे कोई दोष नही है, लेकिन उन्होने मुझे पहचाना हो, यह किसी तरह भी सम्भव नही है। मैने उन्हे पहले भी ब्याह के समय देखा था सो पहचान गई। लेकिन उन्होने तो पहले मुझे सिर्फ ग्यारह वर्ष की लडकी के रूप मे ही देखा था। वे मुझे भी पहचान सके है, इसका भी कोई लक्षण नही दिखा। इसलिये अगर वे मुझे पर-स्त्री समझ कर मुझ पर मुग्ध हो गये है तो मैने मन ही मन उनकी बडी निन्दा भी की है। लेकिन वे स्वामी है और मै उनकी दासी, उनके सम्बन्ध मे कुछ भी निन्दनीय सोचना मेरे लिये अनुचित है।'

सुभाषिणी ने कहा, 'तेरे समान बन्दर पेड पर नही है।'

'क्या वे मेरे पति नही है ?

'हाय पगली! पुरुष और स्त्री क्या बराबर होते है ? तू भी कमसरियट मे काम कर के रुपये ले आ तो देखूँ!'

'ठीक है, वे पेट से बच्चा पैदा करे, मै कमसरियट जाऊँ गी। जो जो कर सकता है वही तो करता है! पुरुष क्या हम स्त्रियो की तरह इन्द्रियो को वश मे कर सकते है ?'

'अच्छा, अच्छा, पहले तेरा घर बन जाय, फिर तू उस घर मे आग लगा देना। इन बातो को अभी रहने दे। किस तरह तू स्वामी का मन जीत सके गी, इसका एक प्रमाण तो दे, जरा देखूँ। ऐसा न होगा तो तेरी गुजर नही है।'

मैने कहा, 'यह विद्या तो कभी सीखी नही।'

'तो मुझसे सीख ले। मै इस विषय की पण्डित हूँ। जानती है न ?'

'सो तो देख ही रही हूँ।'

'तो सीख! मानो तू पुरुष है। मै किस तरह तेरा मन लुभाती हूँ, देख जरा।'

यह कह कर दुष्ट सुभाषिणी ने अपने सिर पर घूँघट काढ लिया। बडे यत्न से अपने हाथो सुगधित पान ला कर खाने को दिया। वह पान वह सिर्फ रमन बाबू के लिये

रखती थी। फिर फूल कढे ताड के पंखे से मुझे हवा करने लगी। हाथ की चूडियो और कडे से मीठी-मीठी झकार करने लगी।

मैने कहा, 'भाई, यह तो दासीपना है।'

'हम लोग दासी नही तो और क्या है ?'

'ठीक है, तो जब उनका प्रेम उमडे गा, तभी दासी बनूंगी। तभी पखा झलूंगी, पॉव भी दबाऊँगी, पान भी सजा कर दूंगी। लेकिन यह सब इस समय के लिये नही है।'

तब भी हँसती-हँसती सुभाषिणी आ कर मेरे पास बैठ गई। मेरा हाथ अपने हाथो मे ले कर मीठी-मीठी बाते करने लगी। सखी भाव से ही मेरे जाने की बातें करते-करते उसकी आँखो मे आँसू छलकने लगे। तब उसे खुश करने के लिये मैने कहा, 'जो तुमने मुझे सिखाया, वही तो स्त्रियो के हथियार है। लेकिन अभी यह हथियार काम मे नही आ सकते।'

तब सुभाषिणी ने दर्प से कहा, 'तो मेरा ब्रह्मास्त्र सीख लेना।'

यह कह कर सुभाषिणी ने मेरे गले मे हाथ डाल कर मेरे मुँह को उठा कर चूम लिया। एक बूँद आँसू मेरे गाल पर आ गिरा। थूक घोट कर और आँखो के आँसू रोक कर मैने कहा, 'यह तो बिना सकल्प के ही दक्षिणा देना सिखा रही हो।'

'तब तू नही सीख सकती। अच्छा तू जो जानती है, वही दिखा, देखूँ। यह देख-समझ ले मे उपेन्द्र बाबू हूँ।' कहते हुये वह उछल कर बैठ गई। हँसी रोकने को मुँह मे कपडे ठूँसने लगी। फिर रुक कर मेरे चेहरे की ओर सकपका कर देखा और फिर हँसते हुए लोट-पोट होने लगी। फिर बोली—'हाँ अब अपनी विद्या दिखा तो।'

मैने आगे बढ कर जो किया उसके उत्तर मे मुझे ढकेल कर सुभाषिणी ने कहा, 'दूर हट पापिष्ठा, तू तो जादूगरनी है रे !'

'क्यो क्या हुआ ?'

'तेरी इस नजर के सामने कोई पुरुष क्या टिके गा ? मर कर भूत बन जाये गा।'

'तो मै पास हुई ?,

'अच्छी तरह से। हाँ, पुरुष का सिर यदि घूम जाय तो जरा तेल डाल देना।'

'अच्छा, अब उधर की आवाज से तो यही लगता है कि बाबू लोगो का खाना-पीना हो गया है। अब रमन बाबू इधर आवे गे। मै चलती हूँ। जो तुमने सिखाया है, उसमे एक पाठ बड़ा मीठा लगा, वही चुम्बन ! आओ न एक बार और '

सुभाषिणी ने उछल कर मेरी गर्दन पकड ली, मैने उसकी। प्रगाढ़ आलिंगन मे बँधी हम दोनो बार-बार एक-दूसरे का मुँह चूम कर, गले से गले लगी, बडी देर तक रोती रही। ऐसे प्रेम का क्या फिर कभी अवसर आवे गा ? सुभाषिणी की तरह क्या और कोई प्रेम करना जानता है ? मर जाऊँ गी पर सुभाषिणी को कभी नही भूलूँ गी।

|१४|

मैं जान दे दूँगी

हारानी को सतर्क कराके मे अपनी कोठरी मे गई। बाबू लोगो का खाना-पीना हो चुका है। इसी समय अचानक बडी गडबडी हो गई। कोई पंखा माँग रहा था, कोई पानी के लिये गुहार कर रहा था। कोई दवा और डाक्टर की चीख कर रहा था—इसी तरह की हडबडी मची थी। फिर हारानी हँसती हुई आई। मैंने पूछा, 'यह क्या गडबड है ?'

'वही अतिथि बाबू मूर्छित हो गये है।'

'कैसे ?'

'अब संभल गये है।'

'तब !'

'लेकिन घर जाने लायक नही है। घर नही जा सके। यही बड़े बैठकखाने के पास वाले कमरे मे सोने गये है।'

मै चालाकी समझ गई। मैने कहा, 'सब रोशनी बुझ जाने पर सब के सो जाने पर आऊँ गी।'

'लेकिन तुम्हारी तबियत तो ठीक नही है।'

'ठीक नही है तेरा सर !'

हारानी हँसती हुई चली गई।

बाद मे सबो के सोने पर और अधेरा होने पर हारानी मुझे साथ ले जा कर पहुँचा आई। मै उनके कमरे के भीतर गई। देखा, वे अकेले सो रहे थे। बीमारी कही से न दिखी। कमरे मे दो बडे बडे दिए जल रहे थे। उनके सौदर्य का प्रकाश अलग ही फैल रहा था। मेरे कलेजे मे भी वाण चुभ गया। आनन्द से मेरा शरीर डूबने सा लगा।

यौवन पाने के बाद मेरी पति के साथ यह पहली भेंट थी। यह कितनी सुखद है, कैसे बताऊँ ? मै बहुत वाचाल थी, लेकिन जब पहली बार उनसे बात करने गई तो बात मुँह और गले मे ही फँस गई। गला रुँधने लगा। शरीर के सभी अंग काँपने लगे। दिल की धडकन तेज हो गई। तालू सूखने लगा। मुँह की बात बाहर नही आई। मै रो पडी।

मेरी रुलाई को, मेरे आँसुओ को वे समझ ही न सके। बोले, 'रो क्यो रही हो ? मैने तो तुम्हे बुलाया नही है। तुम अपने से आई हो, फिर क्यो रो रही हो ?'

इस नीरस और कठोर बात से मुझे बडी चोट लगी। क्या उन्होने मुझे कुलटा समझा ? सोच कर कलेजे और आँखो मे जलन बढ गई। सोचा, अब अपना परिचय साफ-साफ दे दूँ। अब यह ज्वाला सही नही जाती। लेकिन तभी मन मे आया कि परिचय देने पर यदि ये विश्वास न करे तब ? अगर मन मे सोचें कि इसका घर तो कालीदीघी है, मेरी पत्नी के चुराए जाने की खबर इसे मालूम हो गी और अब वैभव व सम्पत्ति की लालच मे मेरी पत्नी कह कर झूठा परिचय दे रही है। अगर ये ऐसा सोचें तो मै कैसे विश्वास दिला सकूँगी ? इसलिए सोच समझ कर परिचय न दे सकी। लंबी साँस छोड कर और आँखो के आँसू सुखा कर उनसे बाते करने लगी। कुछ दूसरी-दूसरी बातो के बाद वे बोले, 'कालीदीघी मे ऐसी सुन्दरी जन्म ले सकती है, यह मै सपने मे भी नही सोच सकता था।'

मैने उनकी आँखो की ओर देखा। वे बडे आश्चर्य से मेरी ओर देख रहे थे।

मैने भी तनिक व्यंग्य मे कहा, 'मै सुन्दरी नही, मै तो बंदरी हूँ। हमारे क्षेत्र मे आप की स्त्री ही सौदर्य का नमूना है।' इस बहाने उनकी स्त्री की बात को बीच मे ला कर मैने पूछा, 'कहिए, उनका कुछ पता चला ?'

'नही। तुम कितने दिनो से अपने देश से यहाँ आई हो ?'

'मै उसी काण्ड के बाद देश से चली आई। लगता है, आप ने दूसरा विवाह कर लिया ?'

'नही।'

फिर बहुत तरह की बाते हुई। मैने देखा कि उनके पास ठीक से उत्तर देने का भी अवसर नही है। मै रसोईदारिन हो कर अभिसारिका बन कर आई हूँ, मेरे प्रति आदर दिखाने का भी उनके पास अवसर न था। वे चकित दृष्टि से मुझे ही निहारते रहे। बस एक बार कहा, 'ऐसा रूप तो कही नही देखा।'

मेरी सौत नही है, सुन कर प्रसन्न हुई। बोली, 'आप लोग बड़े आदमी है, यह काम भी बडप्पन वाला हुआ, नही तो अगर आप की स्त्री मिल जायँ तो दोनो सौतों मे ठेला-ठेली मच जाय।'

वे हँस पडे। कहा, 'नही, वैसा डर नही है। वह स्त्री यदि मिल भी जाय तो उसे अपना सकूँ गा, यह कहना मुश्किल है। उसकी अब कोई जाति नही है। इसका भी तो विचार करना होगा।'

मेरे सिर पर बज्र गिरा। सभी आशाएँ समाप्त हो गईं। मेरा परिचय पा कर और मुझे पहचान कर भी मुझे ग्रहण नही करे गे। तब तो मेरा नारी-जन्म व्यर्थ गया।

हिम्मत बाँध कर मैंने पूछा, 'यदि अभी उन्हे देख पावें तब क्या करेंगे ?'

'उसे छोड़ दूँ गा।'

इतनी कठोरता ! इतनी निर्दयता ! मै ठगी सी रह गई । मेरी आखो के सामने पृथ्वी नाचने लगी ।

उस रात को, स्वामी की शय्या पर बैठ कर उनका मनोरम रूप देखती हुई, मैने मन मे प्रतिज्ञा की कि ये यदि मुझे पत्नी के रूप मे ग्रहण करें तो करें, नही तो मैं जान दे दूँ गी ।

|१५|

परीक्षा

अब मुझे कोई चिन्ता न थी । मै पहले से ही समझ रही थी कि वे मेरे वश मे हो गये थे । मैने मन ही मन सोचा––यदि गैडे के खाग चलाने मे पाप नही है, यदि हाथी के दाँत चलाने मे पाप नही है, यदि भैंसे के सीग मारने मे पाप नही है तो मुझे ही अपना हथियार चलाने मे पाप क्यो होगा ? विधाता ने हम नारी-जाति को जो बहुत से हथियार दिए है, आज दोनो की भलाई के लिए उनका उपयोग करूँ गी । यदि यह मैल कभी भी दूर हो सकती है तो वह अभी ही ।

मै उनके पास से हट कर दूर जा कर बैठ गई । और भरसक प्रसन्न मुद्रा मे उनसे बातें करने लगी । वे मेरे पास खिसक आए । मैने उनसे कहा, 'आप कृपया मेरे इतने पास मत आइए । मै देखती हूँ कि शायद आप को एक भ्रम हो गया है ।'

यह बात मैने भरसक हँसते-हँसते ही कही थी । फिर अपनी चोटी खोलती और उसे फिर बाँधते हुए मैने कहा, 'आप के मन मे शायद एक भ्रम हो गया है कि मै कुलटा हूँ । पर मै कुलटा नही हूँ । आप के पास उधर का, अपने देश का हाल-चाल जानने के लिए ही आई हूँ । मेरा कोई बुरा मतलब नही है ।'

उनकी मुद्रा से मुझे लगा कि उन्हे मेरी इस बात पर विश्वास नही हुआ । तब मैने हँस कर कहा, 'अगर मेरी बात पर विश्वास नही होता तो मैं चली । तुम्हारे साथ मेरी यही भेट है ।'

कह कर जिस कटाक्ष के साथ देखना चाहिए, उसी तरह देखती हुई मै अपने घुँघराले, रेशमी, कोमल, सुवासित बालो की एक लट को इस प्रकार उनके गाल से छुवाती हुई जैसे अपने आप ही असावधानी के कारण छू गई हो, शाम की ठण्डी हवा मे बासन्ती लता की भाँति जरा हिलती हुई उठ खडी हुई ।

मै सचमुच उठ खडी हुई हूँ, यह देख कर वे अचानक मुर्भा से गये, उदास हो गए। लपक कर पास आ कर मेरा हाथ पकड लिया। वे मेरा हाथ पकडे रह कर अचरज मे डूबे बहुत देर तक मेरे हाथ की ओर ही देखते रहे। तब मैने पूछा, 'क्या देख रहे हो ?'

उन्होने उत्तर दिया, 'यह क्या फूल है ? लेकिन यह फूल तो लगता नही। फूल ऐसा तो नही होता ? फूल से आदमी सुन्दर है। मल्लिका के फूल से आदमी सुन्दर हो सकता है, यह तो आज पहले पहल देखा।'

मैने क्रोध के साथ हाथ को एक गहरा झटका दे कर हाथ छुडा लिया। फिर क्रोध छिपा कर फौरन हँसी और बोली, 'तुम मुझे मत छूना। तुम अच्छे आदमी नही हो। तुमने मुझे कुलटा समझा। पर मै कुलटा नही हूँ।'

यह कह कर अभिमान के साथ मै दरवाजे की ओर बढी। तब उन्होने—मेरे पतिदेव ने, मेरे स्वामी ने—आज भी उस बात को याद कर लज्जा आती है, कहने मे दुख होता है—मेरे देवता ने मुझे हाथ जोड़ कर बुलाया। पुकार कर कहा, 'मेरी बात सुन लो। अभी जाना मत। मैं तुम्हारा रूप देख कर पागल हो गया हूँ। ऐसा रूप मैने कभी नही देखा, जरा ठहरो, थोडी देर और देख लूँ। फिर ऐसा रूप शायद और कभी नही देख सकूँ गा।'

सुन कर मै ठमकी। फिर लौट पड़ी, लेकिन बैठी नहीं। कहा, 'प्राणाधिक ! मै तो एक तुच्छ नारी मात्र हूँ। तुम्हारे जैसे रत्न को पाने के बाद भी छोड कर मै वापस जा रही हूँ। इसी से तुम मेरे हृदय की व्यथा समझना। लेकिन क्या करूँ ? हम लोगो के जीवन मे धर्म ही एकमात्र प्रधान धन है—और एक दिन के क्षणिक सुख के लिये मै धर्म नही छोड़ूँगी। मै भावावेश मे बिना सोचे-समझे आप के पास चली आई हूँ, बिना सोचे-समझे आप को पत्र लिखा था। लेकिन मैं एकबारगी ही गड्ढे मे नही गिर सकती, नही गिर सकूँ गी। अभी भी मेरी रक्षा का पक्ष खुला है। मेरा भाग्य है कि यह होश मुझे आ गया है। मै अब चली।'

वे बोले, 'अपना धर्म तो तुम जानो। लेकिन मुझे तुमने ऐसी दशा मे डाल दिया है, ऐसी स्थिति कर दी है मेरी कि मुझे धर्म और अधर्म का ज्ञान ही नहीं रह गया है। मै शपथ ले कर कहता हूँ कि तुम चाहो गी तो चिरकाल तक मेरी हृदयेश्वरी होकर रहो गी। सिर्फ एक दिन के लिये मत सोचना।'

मै हँस पड़ी। हँसते हुये बोली, 'हम नारी लोग पुरुषो की शपथ का महत्व जानती है। हमे पुरुष की शपथ का विश्वास नही। एक क्षण के देखने मे ही क्या ऐसा हो जाता है ?' कह कर मै क्षण भर चुप रही और फिर चलने को आगे बढ़ी। दरवाजे तक पहुँची। और तब अधिक धैर्य रखने मे असमर्थ हो कर उन्होने आगे बढ़ कर

अपने दोनो हाथो से मेरे पैरो को पकड कर मेरा रास्ता रोक लिया। कहा, 'मैंने ऐसा तो और कही नही देखा।'

रह-रह कर वे मर्मभेदी साँस छोड रहे थे। उनकी यह दशा देख कर मुझे सचमुच बडी पीडा होने लगी। फिर भी अपनी दृढता बनाए रख कर मैने कहा, 'तो अपने ठहरने की जगह पर चलो। यहाँ रहने पर तुम मुझे छोड कर चले जाओ गे।'

वे तत्काल ही तैयार हो गये। उनका डेरा पास ही था, बस थोडी ही दूर पर। उनकी गाडी भी मौजूद थी। दरबान भी सो रहे थे। हम लोग चुपचाप जा कर गाडी मे बैठ गये। उनके डेरे पर जा कर देखा—अच्छा दुमजिला घर। मुझे एक कमरे की ओर ले गए। मैं पहले ही कमरे में चली गई। भीतर जाते ही मैने भीतर से कुडी चढ़ा दी। मेरे स्वामी बाहर ही खडे रहे।

फिर वे बाहर से ही गिडगिडाने लगे। हँसते हुए मैने भीतर से ही पुकार कर कहा, 'मै तो अब तुम्हारी दासी हो गई। लेकिन देखूँ गी पहले, कि तुम्हारे प्रेम का यह ज्वार कल सबेरे तक रहता है या नही ? यदि कल भी ऐसा ही प्रेम देख सकूँ गी तो तुम्हारे साथ फिर बातें करूँ गी। बस, आज इतना ही।'

उनके बहुत जिद करने पर भी मैने दरवाजा नही खोला। थोडी देर बाद विवश हो कर वे दूसरी जगह सोने चले गये। जेठ की असह्य गरमी मे, कठिन प्यास से तडपतें आदमी को, स्वच्छ, शीतल सरोवर के किनारे बिठाकर उसका मुँह बाँध दो ताकि यह पानी न पी सके—तब कहो, देखूँ उसकी प्यास, पानी की चाह बढती है या नही ?

बहुत देर बाद मैने जब दरवाजा खोला तो देखा कि स्वामी तब भी द्वार पर ही खडे है। मैने अपने हाथो मे उनका हाथ थाम कर कहा, 'प्राणनाथ ! यदि हो सके तो मुझे इसी समय रामराय दत्त के घर पहुँचा दो, नही तो आठ दिनो तक मुझसे बातें मत करना। इन्ही आठ दिनो मे तुम्हारी परीक्षा हो गी।'

उन्हो ने आठ दिनो की परीक्षा भी स्वीकार कर ली।

|१६|

खून किया, फाँसी चढ़ी

पुरुषो को जलाने और सताने के लिए जितने उपाय विधाता ने स्त्रियो को दिए है, लगभग उन सभी उपायो का उपयोग कर के मैने आठ दिनो तक अपने स्वामी को

खूब सताया और जलाया। मै औरत हो कर यह सब बातें किस मुँह से खोल कर कहूँ ? अगर मै आग जलाना न जानती तो पिछली रात वे इतना न जलते। लेकिन किस तरह आग लगाई, किस तरह फूँक-फूँक कर आग को बढाया, किस तरह अपने स्वामी के हृदय को सतप्त किया, लज्जा के मारे मे वह सब कह नही पा रही हूँ। यदि कभी किसी स्त्री ने पुरुष-हत्या का व्रत लिया हो और अपने प्रयास मे सफल भी हुई हो तभी वह मेरी स्थिति और मेरी बात समझ सके गी। या यदि कोई पुरुष-घातिनी स्त्री के चंगुल मे फँसे हो, तो वे भी समझ सकते है। सच पूछा जाय तो स्त्रियाँ ही इस पृथ्वी पर एक मात्र कटक है। हमारी नारी जाति के माध्यम से या नारी जाति द्वारा इस धरती पर जितना अहित होता है, उतना पुरुष जाति द्वारा कदापि नही। बस एक ही सौभाग्य की बात है कि यह पुरुष-घातिनी विद्या सभी स्त्रियाँ नही जानती। यदि ऐसा होता तो इतने दिनो बाद आज तक इस धरती पर एक भी पुरुष जीवित न बचता।

इन आठ दिनो मे मै बराबर स्वामी के साथ रही। बराबर मै आदरपूर्वक खूब सरस बातें करती, नीरस बाते कभी न करती। हँसी, कटाक्ष, अग-भंगी–ये सब तो स्त्रियो के हथियार है ही। मैने इनका भरपूर उपयोग किया। मैने पहले दिन आदर पूर्वक बातें की। दूसरे दिन थोडे से प्रेम के लक्षण प्रकट किए, तीसरे दिन उनके घर के कामो को देखना-भालना शुरू किया, जिससे उनके भोजन का समय, सोने का समय स्नानादि समय ठीक से निभे। जो-जो करने से वे अच्छी तरह रह सकें, वही-वही करना मैने शुरू किया। अपने हाथो ही मैने रसोई बनाना शुरू किया। यहाँ तक कि उनका सब काम अपने ऊपर ले लिया। कि दाँत खोदने की खरिका भी मैं अपने हाथो ही जुटा कर रखती। उनकी थोडी सी तकलीफ या बेचैनी या सिरदर्द देख कर सारी-सारी रात जग कर उनकी सेवा करते काट देती।

आज भी मेरे मन मे इतना गर्व है कि केवल पेट पालने की लालच से या स्वामी के धन की मलकिन होऊँ गी, इस लालच से भी इतना सब नही किया न कर ही सकती थी। पति को पाऊँ गी, इस लालच से मैं दिखावटी व बनावटी प्रेम न कर सकी। इन्द्र की इन्द्राणी होऊँगी, इस लालच से भी मै यह सब न कर सकती थी। पति को मोहित करना है, इसलिये हँसी और कटाक्ष का पूर्णतया उपयोग कर सकती हूँ पर दिखावटी, बनावटी, नकली प्रेम-प्रदर्शन नही कर सकती। भगवान ने मुझे उस मिट्टी से गढा ही नही है। जो अभागे-अभागिन इस बात को नही समझ सकते, जो नरक-पथ-यात्री मुझसे कहे कि तुम हँसी और कटाक्ष का जाल फैलाती हो, जूडा खोल कर फिर बाँधती हो, बातो के बहाने सुवासित घुँघराले रेशमी बालो को एक अभागे बेचैन युवक के गाल पर छुआ कर उसे रोमाचित कर सकती हो—बस तुम यही सब कर सकती हो और कुछ नही कर सकती हो। उस चिडिया के पंख नोच कर फेंक देने या उसके

हुक्के की चिलम को फूँक देने का काम नही कर सकती—तो जो मुझे ऐसी बात कहेगा, वह सचमुच मेरे जीवन की कहानी को समझने मे असमर्थ है। पुरुषो को अगर छोड भी दे, तो भी सभी स्त्रियाँ भी इस शास्त्र को नही समझ सकती।

वे मेरे स्वामी है। उनकी सेवा, पति सेवा मे ही मुझे अपार आनन्द है—वह सब भी दिखावटी नही, यह बात मै अपने हृदय की पूरी सत्यता के साथ कह सकती हूँ। क्योकि हर प्रकार की यह पति-सेवा मै मन से ही करती थी। मन मे सोचा करती कि यदि इन्होने मुझे स्वीकार नही ही किया तो मेरे लिये पृथ्वी पर जो सारा सुख अभी जुट गया है, जो और कोई और कभी नही पाता और शायद और कोई कभी पा भी न सकेगा, उसे कम से कम इन अचानक मिल गये कई एक दिनो मे ही अच्छी तरह प्राणों मे भर कर भोग लूँ। इसीलिये प्राणप्रण से मै अपने स्वामी की सेवा मे जुटी रहती थी। यह सब कर के मै कितना सुखी होती थी उसे दूसरा कोई क्या समझेगा ?

पति-भक्ति के तत्व और क्षेत्र ही अलग है—बिल्कुल अलग। अन्य सेवाओ से इस सेवा का कही मेल नही, कोई तुलना भी नही। जो बुद्धि केवल कालेज की परीक्षा पास करके ही सीमा-क्षेत्र मे पहुँच जाती है, वकालत करके कुछ रुपये ला सकने भर से विश्वविजयिनी प्रतिभा मान ली जाती है, जिसका अभाव ही राजद्वार पर सम्मान पाता है, उस बुद्धि की परिधि के बाहर है इस पति-सेवा का तत्व। जो लोग शिक्षा देते है कि विधवा का पुनर्विवाह कर दो, लडकी को पुरुष की तरह शास्त्रो मे पडिता बना दो, वे भला इस स्वामी-भक्ति के तत्व को क्या समझेगे ? और जो हँसने और कटाक्ष के तत्व की बात है, वह बहुत स्थूल है। जैसे महावत अंकुश से हाथी को वश मे करता है, कोचवान चाबुक से घोड़े को वश मे करता है, ग्वाला गायो को रस्सी से वश मे करता है, अंग्रेज जैसे लाल आँखें दिखा कर देसी बाबुओ को वश मे करता है, हम स्त्री जाति वाली हँस कर और कटाक्ष कर के पुरुषो को वश मे करती है। हमारी पति-भक्ति हम सब का परम-गुण है। हमारी हँसी और कटाक्ष को जो लोग कलकित करते हैं, वे खुद दोषी और अज्ञानो है।

लोग कहेगे कि मै अभिमान को बात कर रही हूँ। सोचा है, सत्य भी हो, लेकिन हम लोग कच्ची माटी के घड़े के समान है, फूल के चोट से भी टूट जाती है। जिस देवता के अग नही है, लेकिन उनके धनुष-बाण तो है, जिनके माँ-बाप नही है, परन्तु स्त्री है—उनके बाण है तो फूल के ही बाण लेकिन उनसे पर्वत भी फट जाते है, वही देवता तो स्त्रियो के गर्व को सदा तोडते, चूर करते रहते है। हम अपनी हँसी और कटाक्ष के जाल मे दूसरो को फँसाने जाकर खुद ही फँस जाती है। दूसरे को जलाने जा कर अपनी ही आग से खुद ही जलने लगती है। होली मे अबीर के खेल की तरह दूसरे को रँगने जा कर खुद को ही रग लेना पड़ता है।

मै कहती हूँ, उनका रूप—मनोहर रूप है, इसलिए यह भी जानती हूँ कि कि जिनकी यह रूप-राशि है, वे मेरी ही सम्पत्ति है—

ताहारेई सोहागे आमि सोहागिनी,
रूपसी ताहारेई रूपे।

फिर यह आग की लगा-लगी ! मै हँसना जानती हूँ, लेकिन हँसी का कोई उत्तर नही है। मै चाहती हूँ, पर उस चाहने के बदले क्या चाहना मिलती है ? मेरे ओठ दूर से ही चुम्बन की लालसा से फड़कते रहते है, फूल की बीसो पखुडियाँ खुल कर खिली रहती है। उनके खिले हुए लाल फूल जैसे कोमल ओठ क्या उसी प्रकार खिल कर, पखुडियो को खोल कर मेरी ओर क्या लौटना नही जानते ? यदि मै उनकी हँसी और दृष्टि-भंगिमा मे, उनकी चुम्बन की इच्छा मे, केवल थोडी सी इन्द्रियो की लालसा का ही लक्षण देखती तो मै ही विजयिनी होती, किन्तु ऐसी बात नही थी। उस हँसी, उस भंगिमा, उन ओठो के फडकने मे केवल स्नेह, अपरिचित प्रेम था। मै तो सहज ही हार गई। हार कर भी मैने माना कि इस पृथ्वी का सोलहो आना सुख इसी हार मे है। जिस देवता ने इनके साथ मेरे विवाह की व्यवस्था की थी, उनकी अपनी देह तो राख हो चुकी है।

इधर परीक्षा के आठ दिन समाप्त होने को आये। लेकिन तब तक मै उनके प्रेम मे इतनी वशीभूत हो गई थी कि मैने मन ही मन निश्चय किया कि परीक्षा के आठ दिन बीत जाने पर अगर वे मुझे मार कर निकाल भी दें गे तो भी मै उन्हे छोड़ कर अब नही जाऊँ गी। अन्त मे यदि वे मेरा पूरा परिचय पा कर भी मुझे पत्नी-रूप मे स्वीकार नही करें गे, तब यदि रखेल की तरह, वेश्या की तरह भी उनके पास रहना पड़े गा, तो भी रहूँ गी। स्वामी को पाने के लिए किसी प्रकार की भी लोक-लज्जा का भय नही करूँ गी। लेकिन यदि भाग्य मे वह भी न हो तो ? इसी भय की, शका की कल्पना कर मै बार बार बैठ कर रोने लगती थी।

लेकिन साथ ही साथ मै यह भी समझती थी कि मेरे स्वामी के पंख भी कट चुके है। अब उनमे उड जाने की शक्ति नही रह गई है। उनके प्रेमाग्नि मे बहुत अधिक मात्रा मे घी की आहुति पड चुकी है। अब वे और सारे काम छोड़ कर हर समय सिर्फ मेरा मुँह ही ताकते रहते थे। मै घर का काम करती, वे छोटे बच्चे की तरह मेरे पीछे-पीछे घूमा करते। उनके मन का न थम सकने वाला वेग मै हर कदम पर देख पाती, लेकिन वे मेरी एक भंगिमा, एक सकेत-मात्र से ही जड हो जाते थे। कभी-कभी मेरा पैर पकड़ कर रोने लगते, 'मै पूरे आठ दिनो तपस्या करूँ गा, तुम्हारी बात मानूँ गा, तुम मुझे छोड कर चली मत जाना।'

अत मे मैंने देखा कि यदि सचमुच मै उन्हे छोड दूँगी तो उनकी दशा बड़ी चिन्तनीय और दयनीय हो जाय गी। लेकिन परीक्षा-काल तक बाँध रुका न रह सका।

आठ दिन बीतने के पहले ही एक दिन बातो ही बातो मे हम दोनो बुरी तरह अधीर हो उठे। उन्होने मुझे कुलटा समझ लिया। यह भी मैने सह लिया। और चाहे जो भी हो, मैने हाथी के पैर मे सीकडी तो पहना ही दी थी, यह मैं खूब अच्छी तरह समझती थी। मुझे लगा कि मैने जो खून किया है, उसी के लिए फाँसी चढ़ गई हूँ।

|१७|

फाँसी के बाद मुकदमा

मेरे कलकत्ता निवास के कितने ही दिन सुख-स्वच्छदता से बीते। उसके बाद एक दिन देखा कि मेरे स्वामी हाथ मे एक चिट्ठी लिए बडी चिन्तित मुद्रा मे बैठे है। मैने पूछा, 'क्या बात है ? इतने चिन्तित क्यो हो ?'

वे बोले, 'घर से चिट्ठी आई है, घर जाना हो गा।'

हठात् मै चीख पडी—'मै ?'

मै खड़ी थी, धम् से जमीन पर बैठ गई। आँखो से आँसू की धाराएँ बह चली।

स्वामी ने बडे स्नेह से मेरा हाथ पकड कर मुझे उठाया, और मेरा मुँह चूम कर मेरे आँसू पोछे। बोले, 'वही चिन्ता तो मुझे भी है, वही तो सोच रहा था। तुम्हें छोड कर तो जा न सकूँगा।'

'तो वहाँ लोगो से क्या कह कर मेरा परिचय दोगे ? किस तरह और कहाँ रखो गे।'

'वही तो सोच रहा हूँ। शहर तो वह है नही तो कही दूसरी जगह रख सकूं और कोई जान भी न सके। वहाँ माँ-बाप की आँखो के सामने भला तुम्हे कैसे रख सकूँगा ?'

'क्या न जाने से काम नही चले गा ?'

'नही, जाए बिना काम नही चले गा।'

'तो कितने दिनो मे लौटो गे ? अगर जल्दी ही लौट सको तो न हो तो मुझे यही छोड जाओ।'

'कैसे कहूँ कि जल्दी लौट सकूँ गा। ऐसी आशा नही है। कलकत्ता तो हम लोग बहुत कम, कभी-ही-कभी आते है।'

'तुम जाओ! मै तुम्हारी लिए विघ्न नही बनूँ गी।' कह कर मै फिर फफक कर रो पडी। रोते-रोते बोली, 'मेरे भाग्य मे जो लिखा है वही तो होगा न ?

'लेकिन मै तो तुम्हारे बिना नही रह सकूँ गा । तुम्हें देखे बिना मै पागल हो जाऊँ गा ।'

'देखो मै तुम्हारी विवाहित पत्नी नही हूँ · · 'सुन कर मेरे स्वामी कॉप उठे । मै कहती गई, 'तुम्हारे ऊपर मेरा कोई अधिकार नही है, तुम इसी समय मुझे बिदा ,

उन्होने मुझे आगे कहने न दिया । बीच मे ही बोल पडे, 'आज तो इस बात की जरूरत नही है । आज भर और सोचता हूँ । सोच कर जो निश्चय करूँगा कल बताऊँगा ।,

दिन ढलते उन्होने पत्र भेज कर रमन बाबू को बुलवाया । पत्र मे लिखा— 'गुप्त बात है । आप के आए बिना काम नही चलेगा ।'

शाम को रमन बाबू आये । मै किवाड की आड मे छिप कर सुनने लगी कि उन दोनो मे क्या बात होती है । मेरे स्वामी ने कहा, 'आप लोगो की वह रसोईदारिन जो कम उम्र की है, उसका नाम क्या है ?'

'कुमुदनी ।' रमन बाबू ने सहज भाव से उत्तर दिया ।

'उसका घर कहॉ है ?'

'इस समय नही बता सकता ।'

'सधवा है या विधवा ?'

'सधवा ।'

'क्या उसके पति को जानते है ?'

'जानता हूँ ।'

'कौन है ?'

'अभी बताने का मुझे अधिकार नही है ।'

'इसमे कोई गुप्त रहस्य है क्या ?'

'हाँ, है ।'

'तो आपलोगो को वह कहाँ मिली ?'

'मेरी स्त्री अपनी मौसी के पास से लाई थी ।'

'अच्छा छोडिए, ये सब बातें छोडिए । यह बताइए कि उसका चरित्र कैसा है ?'

'एकदम ठीक । परम पवित्र। मेरी बूढी रसोईदारिन को खूब सताती थी, इसके अलावा कोई और दोष नही है ।'

'मै स्त्री-चरित्र के संबंध मे पूछ रहा था ।'

'ऐसा स्वच्छ-चरित्र जल्दी देखने को नही मिलता ।'

'तो क्यो नही बताते कि उसका घर कहाँ है ?'

'कहा न, कहने का अधिकार नही है ।'

'तो उसके पति का घर कहाँ है ?'

'यह भी बताना वर्जित है।'

'पति जीवित है ?'

'कहा न सधवा है।'

'आप उसे पहचानते-जानते है ?'

'हाँ जानता हूँ, पहचानता भी हूँ।'

'अब वह स्त्री कहाँ है ?'

'आप ही के इसी घर मे।' रमन बाबू ने हँस कर कहा।

मेरे स्वामी चौक पडे। चकित हो कर पूछा, 'आप ने कैसे जाना ?'

'वह सब नही बताऊँगा। आप बताइए, आप का मतलब सिद्ध हुआ ?'

'हुआ तो। लेकिन आप ने तो पूछा ही नही कि यह सब मै क्यो पूछ रहा हूँ ?'

'दो कारणो से नही पूछा। एक तो यह कि पूछने पर आप सच नही बतायँगे। कहिए ठीक है न ?'

'और दूसरा कारण ?'

'मै जानता हूँ कि आप यह सब क्यो पूछ रहे है।'

'वह भी जानते है ? कहिए न क्यो है ? जरा सुनूँ तो।'

'वह नही बता सकता।'

'अच्छा, लगता है कि आप सब कुछ जानते है। अच्छा, बताइए कि मै जो षडयंत्र रच रहा हूँ, उसमे सफलता मिले गी या नही ?'

'जरूर मिले गी। आप कुमुदनी से पूछिए गा।'

'अच्छा, एक बात और। आप कुमुदनी के सबध मे जो कुछ भी जानते है, उन सब को एक कागज मे लिख कर दस्तखत के साथ क्या दे सकते है ?'

'दे सकता हूँ। पर एक शर्त है। लिख कर पुलिन्दे पर मुहर लगा कर मै उसे कुमुदिनी को सौप दूँगा। आप उसे अभी नही पढ सकते। अपने देश जा कर पढ़िए गा। कहिए, तैयार है ?'

मेरे स्वामी ने थोडी देर सोच कर कहा, 'तैयार हूँ। पर वह मेरे अभिप्राय को सिद्ध करने वाला होगा न ?'

'हाँ।'

और थोडी देर और इधर-उधर की बातें कर के रमन बाबू चले गये। तब मेरे स्वामी मेरे पास आए।

मैने पूछा, 'यह सब बातें क्यो कर रहे थे ?'

'सब सुन लिया क्या ?'

'हाँ, सब सुन लिया है। सोच रही थी कि तुम्हारा खून कर के मै तो फाँसी चढ़ ही चुकी हूँ। अब फाँसी के बाद यह मुकदमा क्यो खुला ?'

'इस समय का कानून ऐसा ही है।'

|१८|

मायाविनी

उस दिन के बाद से मेरे स्वामी बहुत उदास और चिन्तित रहने लगे। मुझसे ज्यादा बातचीत भी नही की। मुझे देखते तो देर तक मेरी ओर ही एकटक ताकते रहते। उनसे अधिक चिन्ता का कारण मेरे लिए था, लेकिन उन्हे चिन्तित देख कर मेरी चिन्ता दब गई और मुझे बडी व्यथा होने लगी। अपने दुख को दबाए रख कर मैं उन्हे बराबर समझाने की कोशिश करती। तरह-तरह की फूलो की माला, गुलदस्ते आदि बना-बना कर उन्हे देती। तरह-तरह से पान के बीड़े बना कर देती, तरह-तरह का भोजन बना कर खिलाती। मैं हर समय मन ही मन रोती रहती लेकिन उन्हे बना कर तरह-तरह के रसगुल्ले खिलाती। मेरे स्वामी स्वभाव से विषयी आदमी थे, सब से अधिक वे विषय को ही चाहते थे। इसीलिए एक दिन सोच-साच कर विषय-कर्म की भी चर्चा छेडी। मै थी रईस हरमोहन की बेटी, ऐसी बात नही कि विषय-कर्म को समझती ही न थी। लेकिन इन सब प्रयत्नो का कोई फल न निकला। मेरा रोना और भी बढ़ गया।

दूसरे दिन स्नान करने के बाद जलपान कर के उन्होंने मुझे अपने पास बैठा कर कहना शुरू किया, 'क्यो, मै जो-जो पूछूँ गा, उसका ठीक-ठीक उत्तर दो गी न ?'

मुझे तत्काल रमन बाबू की बातें याद आ गईं। मैं बोली, 'मै जो कुछ भी कहूँ गी, बिल्कुल सच कहूँ गी। और झूठ न बोलना पड़े इसलिए शायद सभी बातो का उत्तर न दे सकूँ गी।'

'मैने सुना है कि तुम्हारे पति जिन्दा है। क्या उनका नाम-धाम बता सको गी ?'

'अभी नही। कुछ दिन और बीत जाएँ, तब बता सकूँ गी।'

'वे इस समय कहाँ है, यह तो बता सकती हो ?'

'हाँ, वे इस समय यही है।...यही कलकत्ता मे।'

स्वामी चौंक उठे। बोले, 'वाह! तुम भी कलकत्ता मे हो, वे भी कलकत्ता मे हैं, फिर तुम उनके साथ क्यो नही रहती ?'

'उनके साथ मेरा परिचय नही है।'

यह सुन कर और चकित हो कर मेरे स्वामी ने पूछा, 'पति-पत्नी में परिचय नही है ? यह तो बडी अजीब बात है।'

'सब की बात अलग-अलग है। तुम्हारी क्या है ?'

वे झेंप गये। बोले, 'वह तो दुर्भाग्य की बात है।'

'दुर्भाग्य कहाँ नही है ?'

'अच्छा जाने दो। यह बताओ कि आगे चल कर उनके द्वारा तुम पर कोई दावा करने की संभावना है क्या ?'

'वह बात मेरे हाथ की है। अगर मै उन्हे अपना असली परिचय दूँ, तब क्या हो गा, अभी नही कहा जा सकता।'

'तो मै निश्चित हो कर तुम पर ही सारी बात छोड सकता हूँ। अभी भी सब खोल कर कहता हूँ। यह मै जानता हूँ कि तुम बहुत बुद्धिमती हो। अब तुम क्या राय देती हो ? सो कहो।'

'कहो, सुनूँ ?'

'मुझे घर जाना हो गा।'

'जानती हूँ।'

'शायद घर जाने पर जल्दी लौट भी नही सकूँ गा।'

'यह भी जानती हूँ।'

'तुम्हे छोड कर जा भी नही सकता। तुम्हारे बिना मर जाऊँ गा।'

मेरे प्राण गले तक आ कर जैसे अटक गये। तो भी मैने जोर से हँस कर कहा, 'फूट गये भाग! भात छीटने पर कौवो की कमी नही रहती।'

'कोयल का दुख कौआ नही समझता। मै तुम्हे ले जाऊँ गा।'

'कहाँ रखो गे ? क्या परिचय देकर रखो गे ?'

'एक भारी जुआचोरी करूँ गा। यही कल दिन भर मे सोचा है। अभी तुमसे नही कहा।'

'यही कहे गे न कि यही इन्दिरा है। रामराय दत्त के यहाँ से खोज कर लाया हूँ।'

'ओह, सर्वनाश! अरे तुम कौन हो ?'

स्वामी जड हो कर बिना हिले-डुले, दोनो आँखो की पुतलियो को ऊपर उठाए, मेरे चेहरे को एकटक निहारते रहे। मैने ही पूछा, 'क्यो, क्या हो गया ?'

'तुमने इन्दिरा का नाम कैसे जाना ? या मेरे मन की इतनी गुप्त बात भी कैसे जान गईं ? तुम कोई मायाविनी तो नही हो ?'

'सो तो बाद मे जानो गे, जब मेरा परिचय जानो गे। इस समय तो उलटे मै ही तुम्हे जिरह करूँ गी। ठीक-ठीक जवाब देना।'

'कहो।'

'उस दिन तो तुमने मुझसे कहा था कि यदि तुम्हारी स्त्री मिल भी जाय गी तो भी तुम उसे ग्रहण नही करो गे। उसे डाकू उठा ले गये है, उसे स्वीकार करने से तुम्हारी जाति चली जाय गी। फिर मुझे इन्दिरा बना कर घर ले जाने मे वह डर नही है क्या ?'

'नही, अब वह डर नही है। और दूसरे बहुत से डर थे। तब मेरी जान पर इतनी नही आ बनी थी। अब तो मेरे प्राण ही जा रहे है। अब बताओ, जाति बडी है या प्राण ? और उसमे भी इतना संकट नही है। ऐसी बात तो आज तक किसी ने नही कही कि इन्दिरा जाति से गिर चुकी है। कालीदीघी मे जिन्होने डाका डाला था, वे सब के सब पकडे जा चुके है। उन्होने स्वीकार किया है। स्वीकार किया है कि उन्होने इन्दिरा के सिर्फ गहने-कपडे छीन कर उसे छोड दिया था। हाँ, अब वह कहाँ है, या उसका क्या हुआ, वह जिन्दा है या मर गई, यह कोई नही जानता। उसे पाए जाने पर एक निष्कलक वृत्तान्त आसानी से तैयार किया जा सकता है। आशा है कि रमन बाबू जो कुछ लिखेगे, उससे उसकी पुष्टि ही हो गी। इतने पर भी अगर गॉव मे कोई बात उठती है तो थोडा भोजन-भात देने से ही सारी झंझट छूट जाय गी। हम लोगो के पास काफी रुपये है। आजकल रुपयो से सब ठीक किया जा सकता है।'

'अगर इतना हो सकता है तो फिर झझट क्या है ?'

'झंझट तुम्हे ले कर ही है। यदि कभी यह बात खुल जाय कि तुम इन्दिरा नही हो ?'

'तुम्हारे घर मे तो मुझे कोई पहचानता नही। असली इन्दिरा को भी कोई नही पहचानता। सिर्फ छुटपन मे तुम लोगो ने उसे देखा था, तब फिर कैसे पकडी जा सकती हूँ ?'

'कही कुछ दुष्ट लोग जाने हुए लोगो को विरुद्ध तैयार कर ले तो सहज मे ही बात पकड जाय गी।'

'तो तुम मुझे सब कुछ सिखा-पढा कर रखना।'

'वह तो ठीक है, लेकिन सारी बातें तो नही सिखाई जा सकती न ! सोचो कि कोई बात सिखाते समय याद न रहे और बाद मे वही आ पडे, तब तो सहज मे ही पकडी जा सकती है न ? सोचो, कभी असली इन्दिरा आ ही जाय, दोनो के बीच निर्णय के समय, पहले की बातें पूछे जाने पर तुम्ही तो पकडी जाओ गी।'

मै हँस पडी। ऐसी स्थिति मे हँसी अपने आप ही आ जाती है। इस समय भी मुझे लगा कि मेरा असली परिचय देने का समय अभी नही आया है। मैने हँस कर कहा, 'लेकिन मुझे कोई ठग नही सकता। तुम तो मुझसे सिर्फ यही जानना चाहते थे न कि क्या मै मायाविनी हूँ ? मै मानवी नही, मायाविनी ही हूँ।'

मेरी बात सुन कर वे एक बार सिहर उठे। मैने उन्हे बोलने का मौका न देकर

कहा, 'मै कौन हूँ, यह तो बाद मे बताऊँ गी । अभी तो बस इतना ही कह सकती हूँ कि मुझे कोई ठग नही सकता ।'

मेरे स्वामी ठगे से रह गये । वे चतुर, बुद्धिमान और कर्मठ आदमी है। नही तो इतने थोडे दिनो मे इतना बडा रोजगार कर के इतना रुपया न कमा पाते । यो वे बाहर से जरा नीरस है—काठ की तरह, लेकिन भीतर से बड़े मीठे, बडे मधुर, बडे स्नेही । रमन बाबू या आजकल के लडको की तरह ऊँची शिक्षा तो नही पाई । वे देवी-देवता को भी खूब मानते थे, बहुत से देशो मे घूम-घूम कर भूत, प्रेत, डाकिनी, पिशाचिनी, योगिनी, मायाविनी आदि की खूब कहानियाँ सुन रखी थी । वे इन सब पर विश्वास भी करते थे । वे मुझ पर किस तरह मुग्ध हो गए थे, यह भी उन्हे इस समय याद पडा । जिसे मेरी असाधारण बुद्धि कहते थे, वह भी याद आया । जो पहले नही समझ सके थे, वह भी याद आया । इसलिए मेरे कहने पर कि मै मानवी नही हूँ, उन्हे उस पर विश्वास हो गया । वे काफी देर तक जडवत् बैठे रहे । फिर अपने ही बुद्धिबल से उस विश्वास को दूर कर के कहा, 'अच्छा मै पूछता हूँ कि तुम मायाविनी कैसे हो, बताओ ।'

'पूछो ।'

'मेरी स्त्री का नाम इन्दिरा है, जानती ही हो । तो फिर उसके बाप का नाम बताओ तो ।'

'हरमोहन दत्त ।'

'उसका घर कहाँ है ?'

'महेशपुर ।'

वे फिर चौके । पूछा, 'आखिर, तुम हो कौन ?'

'कहा तो कि बाद मे बताऊँ गी । पर मानवी नही हूँ ।'

'तुमने कहा था कि तुम्हारे पिता का घर कालीदीघी मे है । कालीदीघी के लोग तो यह सब सहज मे ही जान सकते हैं । अच्छा, अब बताओ कि हरमोहन दत्त के घर का सदर दरवाजा किस तरफ है ?'

'दक्षिण तरफ । एक बडे फाटक के दोनो ओर दो सिंहिनियाँ है ।'

'उनके कितने लड़के हैं ?'

'सिर्फ एक ।'

'नाम क्या है ?'

'बसन्त कुमार ।'

'उनके बहने कितनी है ?'

'आप के विवाह के समय दो थी ।

'उनके नाम ?'

'इन्दिरा और कामिनी ।'

'उनके घर के पास कोई पोखर भी है ?'

'हाँ, है । नाम है देवीजी । उसमे बहुत कमल खिलते है ।'

'हाँ, यह तो देखा था । तब तुम महेशपुर मे थी ? इसमे कोई विशेष बात नही । जब वहाँ थी तो देखा ही होगा सब । और कोई खास बात बताओ तो देखूँ । इन्दिरा के विवाह मे कन्या-दान कहाँ हुआ था ?'

'पूजावाली दालान के उत्तर-पश्चिम कोने मे ।'

'किसने किया था कन्यादान ?'

'इन्दिरा के चाचा कृष्णमोहन दत्त ने ।'

'स्त्री-आचार के समय एक ने मेरा कान ऐंठ दिया था । उसका नाम मुझे मालूम है । तुम बता सको तो जानूँ ।'

'बिन्दु ठकुरानी । बडी-बडी आँखें, लाल-लाल ओठ, नाक मे बडी सी नथ ।'

'ठीक ! लगता है कि तुम विवाह के समय वहाँ पर थी । उनके परिवार को तो जानती हो न ?'

'परिवार मे नौकरानी या रसोईदारिन की लड़की का ज्यादा जानना संभव भी नही है । फिर भी ऐसी दो एक बातें पूछो न ?'

'अच्छा बताओ, इन्दिरा का विवाह कब हुआ था ।'

'बैसाख महीने की २७ तारीख को, शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी ।'

उन्होने चुप लगा कर सोचा । फिर बोले, 'मुझसे वायदा करो । मैं दो एक बातें और पूछूँ गा ।'

'वायदा किया । पूछो ।'

'सोने के कमरे से सबो के उठ कर जाने के बाद, मैने इन्दिरा से एकान्त मे एक बात पूछी थी, उसने जवाब भी दिया था, वह क्या बात थी ?'

अब उत्तर देने मे थोडी देरी लगी । कारण कि उस बात को याद कर के मेरी आँखो मे आँसू आ गये । मै अपने को सम्हाल रही थी । इस बीच वे बोल उठे, 'लगता है इस बार ठगी गई हो । तब तो बच गया । तुम मायाविनी नही हो । मानवी हो ।'

मैंने आँखो को सुखा कर कहा, 'तुमने इन्दिरा से पूछा था, 'आज तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध हुआ, बताओ तो ।' तब इन्दिरा ने कहा था, 'आज से तुम मेरे देवता हुए, मै तुम्हारी दासी हुई ।' यह तो हुआ एक प्रश्न । अब दूसरा बोलो ।'

'और पूछते अब डर लगता है । लगता है कि मेरी बुद्धि ही गुम हो गई है । अच्छा बताओ, फूल-शय्या के दिन इन्दिरा ने खिलवाड करते हुए मुझे गालियाँ दी थी, मैने भी उसे सजा दी थी । वे क्या बातें थी, बताओ तो देखूँ ।'

'तुमने इन्दिरा का एक हाथ पकड़ कर और दूसरा हाथ कन्धे पर रख कर

पूछा था, 'इन्दिरा, बताओ तो मै तुम्हारा कौन हूँ ?' इस पर इन्दिरा ने कहा था, 'सुनती हूँ कि तुम मेरी ननद के पति हो।' तब तुमने सजा देने को इन्दिरा के गाल पर चपत लगाई थी, फिर जब वह रुआँसी हो गई थी तब तुमने उसका मुँह चूमा था।' कहते-कहते मेरा सारा शरीर एक अजीब आनन्द मे डूब गया था। वही तो मेरे जीवन मे प्रथम चुम्बन था। फिर बहुत दिनो बाद उस दिन सुभाषिणी के साथ हुई चुम्बन-वर्षा। इसके बीच मे घोर सूखा पडा रहा। हृदय भी सूख कर धरती की तरह ही फट गया था।

यही सब बातें मैं सोच रही थी। तभी देखा कि स्वामी ने तकिए पर सिर रख कर आँखे मूंद ली।

मैने पूछा, 'और कुछ नही पूछो गे क्या ?'

'नही। या तो तुम्ही इन्दिरा हो, नही तो मायाविनी।'

|१९|

विद्याधरी

मुझे लगा कि अब मैं अनायास ही अपना असली परिचय दे सकती हूँ। मेरे अपने पति के मुँह से मेरा परिचय प्रकट हो चुका है। लेकिन जब तक तनिक भी संदेह रहे गा, परिचय नही दूँ गी, यही निश्चय किया था, इसी से कहा, 'सुनो, अब अपना परिचय देती हूँ। कामरूप मे मेरा स्थान है। मायाशक्ति के महामन्दिर मे मै उन्ही के पास रहती हूँ। लोग हमे डाकिनी कहते हैं, लेकिन हम लोग है—विद्याधरी। मुझसे मायाभाया के आगे कोई अपराध हो गया था। इसीलिए शापग्रस्त हो कर यह स्त्री-रूप पाया है। रसोईदारिन का काम और यह कुलटा-वृत्ति भी उसी शाप के कारण अपनानी पडी। इसी से यह सब भाग्य मे जुड गया। अब मेरे शाप-मुक्त होने का समय आ गया है। मैंने जब स्तुति कर के जगमाता को प्रसन्न किया था तब उन्होने आज्ञा दी थी कि महाभैरवी के दर्शन-मात्र से मेरी मुक्ति होगी।'

'वे कहाँ हैं ?'

'महाभैरवी का मंदिर महेशपुर मे है। तुम्हारे ससुर के घर के उत्तर मे। वह उन्ही लोगो की ठाकुरबाड़ी है। बाडी के बाहर, खिडकी के रास्ते लोग आते-जाते है। चलो न, महेशपुर चलूँ।"

'मेरा ख्याल है कि तुम मेरी इन्दिरा ही हो गी। कुमुदिनी ही अगर इन्दिरा सिद्ध हो जाय तो फिर कितना सुख है! फिर मै कितना सुखी हो जाऊँगा!'

'जो हो, महेशपुर जाने पर सब झंझट मिट जाय गी।'

'तो चलो कल ही यहाँ से चल दें। मै तुम्हे कालीदीघी पार करा कर महेशपुर भेज कर फिर सीधे अपने घर चला जाऊँगा। बस, हाथ जोड़ कर तुमसे यही भीख माँगता हूँ कि तुम चाहे इन्दिरा हो या कुमुदिनी और चाहे विद्याधरी, मुझे छोड़ना भर मत।'

'नही। शाप-मुक्त होने पर भी देवी-कृपा से फिर तुम्हे पा सकूँ गी। तुम मुझे प्राणो से भी बढ कर प्रिय हो।'

'यह तो डाकिनी जैसी बात नही है।' कह कर वे उठे और बैठक में चले गये। कोई आ गया था। कोई क्या, रमन बाबू आये थे। मेरे स्वामी के साथ आ कर रमन बाबू मुझे पुलिन्दा दे गये। बोले, 'सुभाषिणी से क्या कहूँ गा ?'

'कहिए गा कि कल मैं महेशपुर जाऊँगी। जाते ही शाप-मुक्त होऊँ गी।'

मेरे स्वामी बोले, 'आप लोग यह सब जानते है या नही ?'

'मै सब नही जानता। मेरी स्त्री सुभाषिणी सब जानती हैं।'

बाहर आ कर मेरे स्वामी ने रमन बाबू से पूछा, 'आप डाकिनी, योगिनी, विद्याधरी आदि के बारे मे विश्वास करते है ?'

रमन बाबू एक बारगी ही सब समझ गये। बोले, 'करता हूँ। सुभाषिणी कहती है कि कुमुदिनी शाप-ग्रस्त विद्याधरी है।'

'कुमुदिनी या इन्दिरा, जरा अपनी स्त्री से अच्छी तरह पूछ देखिए गा।'

फिर रमन बाबू और नही रुके। हँसते हुए चले गये।

|२०|

इन्दिरा

उस दिन की बातचीत के अनुसार हम दोनों निश्चित समय से कलकत्ता से विदा हुए। वे मेरे साथ कालीदीघी नामक उसी अभागी दीघी तक आए। दीघी पार करा कर वे अपने घर की ओर चले गये।

साथ के लोगो ने मुझे महेशपुर तक पहुँचाया। गाँव के बाहर ही मैंने सिपाहियो और कहारो को रुक जाने को कहा और फिर अकेले पैदल ही गाँव में घुसी पिता का घर सामने दिखा तो एक निर्जन स्थान पर बैठ कर मै खूब रोई। जब सामने जा कर पिताजी को देख कर प्रणाम किया तो मुझे पहचान कर वे प्रसन्नता से बेबस हो गये।

मै इतने दिनों कहाँ रही, कैसी रही, इस संबंध मे किसी से कोई बात न की। माता-पिता के पूछने पर भी कह दिया कि यह सब बाते कभी बाद मे बताऊँगी।

फिर बाद मे अवसर पा कर कुछ मोटी-मोटी बातें उन्हे बता दी पर पूरी बात नही कही। इतना समझा दिया कि इधर के दिनो मे मै अपने स्वामी के ही पास थी। उन्ही के पास से आ भी रही हूँ। वे भी एक दो दिन बाद यहाँ आवेगे। लेकिन सब बातें, कुछ तोड कर, कुछ चुरा कर कामिनी से बताइं। कामिनी मुझसे सिर्फ दो वर्ष छोटी है। मजाक करना उसे अच्छा लगता है। उसने कहा, 'दीदी! जब जीजा इतने भारी गोबर-गणेश है तब उनके साथ एक तमाशा क्यो न किया जाय ?'

'मुझे कोई आपत्ति नही है।'

फिर हम दोनो बहनो ने राय की। सबो को सिखा-पढा कर ठीक किया। माँ बाप को भी सिखाना पडा। समझाया कि दामाद के सामने यह बात प्रकट न करें कि इन्दिरा लौट आई है।

दो दिनो बाद दामाद आये। माता-पिता ने उनका खूब आदर-सत्कार किया। मैं आ गई हूँ, यह बात भीतर-बाहर वे किसी के मुँह से न सुन सके। खुद भी संकोच वश किसी से पूछ न सके। इसीलिए जब वे घर के भीतर जलपान करने आए तब भी वे काफी उदास थे।

जलपान के समय भी मै उन्हे न दिखी। कामिनी और जाति की तीन-चार अन्य बहनें उनके पास बैठी। उस समय साँझ बीत चुकी थी। कामिनी उनसे बहुत सी और तरह-तरह की बातें पूछती रही। वे भी मशीन की तरह जवाब देते रहे। मै आड़ मे छिपी खडी सब देख सुन रही थी। आखिर मे कोई सहारा न पा उन्होने कामिनी से पूछा, 'तुम्हारी दीदी कहाँ है ?'

कामिनी ने गहरी नि श्वास छोड़ कर कह, 'कोई क्या जाने कि कहाँ हैं ? कालीदीघी मे वह जो सर्वनाशी काण्ड हुआ उसके बाद तो किसी को कुछ भी नही मालूम हो सका।'

उनका चेहरा लम्बा सा लटक आया, कुछ बात न बोल सके। कुमुदिनी को भी खो दिया, यही सोचा होगा, क्यो कि उनकी आँखो से आँसू बहने लगे थे। फिर उन्होने सम्हल कर पूछा, 'कुमुदिनी नाम की कोई स्त्री आई थी या नही ?'

'कौन है कुमुदिनी ? हम लोग तो नही जानते। एक स्त्री परसो पालकी पर चढ कर जरूर आई थी। बिना कही रुके सीधे वह महा-भैरवी के मंदिर मे गई, देवी को प्रणाम किया। तभी एक आश्चर्य की बात हो गई। सहसा बादलो का अंधेरा छा गया। वर्षा की भी झडी लग गई। ठीक उसी समय वह स्त्री, हाथ मे त्रिशूल लिए, उड़ती हुई आकाश मे चली गई।'

यह सुन कर मेरे स्वामी ने खाना बन्द कर दिया। उठ कर हाथ धोया। फिर

बडी देर तक एकान्त मे माथे पर हाथ धरे बैठे रहे। बडी देर बाद बोले, 'जहाँ से कुमुदिनी अन्तर्धान हुई है, वह जगह क्या देख नही सकता ?'

कामिनी बोली, 'क्यो नही देख सकते ? अंधेरा बढ़ गया है। रोशनी ले आती हूँ।'

तब कामिनी ने मुझे इशारा किया। मतलब था—पहले तू जा, फिर बाद मैं रोशनी के साथ उपेन्द्र बाबू को ले कर आऊँगी।'

मै उन लोगो के पहले ही जा कर मदिर के बरामदे मे बैठ गई। वही लालटेन रख कर कामिनी मेरे स्वामी को मेरे पास लाई। वे सीधे आ कर मेरे पैरो पर गिर पड़े। बोले, 'कुमुदिनी, कुमुदिनी ! अगर आ गई हो तो अब मुझे मत छोडना।'

थोड़ी देर बाद कामिनी बोली, 'आ दीदी ! चली आ। यह आदमी तो कुमुदिनी को पहचानता है, तुम्हे नही पहचानता।'

स्वामी ने अति आतुर भाव से पूछा, 'दीदी ! कौन दीदी ?'

कामिनी ने क्रोध दिखा कर कहा, 'मेरी दीदी इन्दिरा ! कभी नाम नही सुना है क्या ?'

यह कह कर दुष्ट कामिनी ने लालटेन बुझा दी और हाथ पकड़ कर मुझे खीच ले आई। हम दोनो खूब दौड़ कर आ गईं। वे भी हमारे पीछे-पीछे आए, लेकिन अंधेरा था और रास्ता भी अनजान था, तभी एक चौखट से हल्के से टकरा गये। हम दोनो पास ही थी। हम दोनो ने उनके दोनो हाथ पकड़ कर उन्हे उठाया। कामिनी ने धीरे-धीरे फुसफुसा कर कहा, 'हम लोग विद्याधरी है, तुम्हे बचाने के लिए साथ-साथ घूमती है।'

यह कह कर उन्हे खीचती हुए हम दोनो ने उन्हे एक प्रकार से घसीट कर कमरे मे पहुँचाया। वहाँ काफी उजाला था। हम दोनो को देख कर प्रसन्न हो कर वे बोले, 'अरे वाह ! यह तो कामिनी और कुमुदिनी है।'

क्रोध से फुँफकारते हुए कामिनी ने कहा, 'आह ! भाग फूट गया ! क्या इसी अक्ल से इतना व्यापार करते हो ? हल क्यो नही चलाते ? यह कुमुदिनी नही है—इन्दिरा है, इन्दिरा, इन्दिरा ! तुम्हारी पत्नी, क्या पहचानते नही ?'

तब मेरे स्वामी ने खुशी के मारे बेहोश होते हुए मुझे गोद मे उठाने के बदले, कामिनी को ही उठा लिया। वह भी कम न थी। उनके गाल पर एक चपत मार कर हँसती हुई भाग गई।

उस दिन की खुशी की बात—बातो मे नही बता सकती। घर पर खूब हंगामा मचा। उत्सव हुआ।

|२१|

सभी की खुशी

कालीदीघी की उस डकैती के बाद मेरे भाग्य ने जो जो मेरी गति की, उसका विस्तृत वर्णन मैंने इस समय अपने स्वामी को सुना दिया। सुभाषिणी और रमन बाबू ने जिस प्रकार जाल रच कर उन्हे कलकत्ता बुलाया, वह सब भी बताया। वे थोडा नाराज भी हुए। बोले, 'भला मुझे इतना नचाने की क्या जरूरत थी?' तब मैंने बताया कि क्या जरूरत थी। वे सुन कर संतुष्ट हुए, लेकिन कामिनी किसी तरह भी संतुष्ट नही हुई। बोली, 'तुम्हे कोल्हू के चारो ओर नही घुमाया, वैसे ही छोड दिया, यही भर दीदी का दोष है। अब फिर शान दिखाने लगे? जब हम लोगो के आलता रंगे श्री चरणो से अलग पुरुष की कोई गति नही, तो फिर इतनी शान किस बात की?'

इस बार मेरे स्वामी ने भी उत्तर दिया, 'लेकिन तब पहचान नही सका था। और तुम लोगो को पहचाना जा सकता है क्या?'

कामिनी उसी तरह फुंफकारती हुई बोली, 'तुम पहचानोगे, यह तो विधाता ने तुम्हारे माथे पर लिखा ही नही। रथ-यात्रा के समय क्या सुना नही? कहते है—गाय ने कहा, 'कृष्ण, तुम्हे भला कौन पहचाने? हम तो सिर्फ यमुना किनारे को हरी-हरी घास को पहचानती हैं। तुम्हारी बाँसुरी की आवाज सुन कर तुम्हारे चरण-चिह्न खोजती है। उसमे जो ध्वज, वज्र, अंकुश के चिह्न है, उन्हें भला हम पशु-जाति क्या पहचानें?'

यह प्रवचन सुन कर मैं किसी तरह भी अपनी हँसी न रोक सकी। मेरे स्वामी ने कामिनी से कहा, 'जा जा, और अधिक मत जला! देवता का उत्सव मनाया है, उसके बदले मे यह पान का बीडा ले जा।'

कामिनी ने मुँह बना कर कहा, 'अरे दीदी! जीजा के पास बुद्धि भी है, इस समय तो यही देख रही हूँ।'

'क्या हुआ?'

'बाबू ने पनडब्बा रख कर पान का बीडा दिया है, क्या यह बुद्धि का काम नही है? तब तुम एक काम करना, बीच-बीच मे अपने पैर पर हाथ रखने देना, ऐसा करने से हाथ बढ जायेंगे।'

'मै क्या उन्हे अपने पैरो पर हाथ रखने दे सकती हूँ? वे है मेरे पतिदेव, स्वामी!'

'देव कब रहे ? पति अगर देवता होता है, तब इतने दिन तेरे पास उपदेवता क्यो बने रहे ?'

'देवता तो तब हुए, जब उनकी विद्याधरी चली गई है।'

'विद्या को पकडने जा कर भी नही पकड सके। सो देखो जीजा, तुम्हारे पास जो विद्या है, उसके साथ धर-पकड न करना ही ठीक होगा। वह विद्या ही बड़ी विद्या है जो पकड़ मे न आवे।'

'कामिनी ! तू बहुत बोलने लगी है। आखिर मे चोरी-चमारी भी इन पर मढ़ रही है ?'

'क्या यह भी मेरा ही दोष है ? जब ये कमसरियट मे काम करते थे तब चोरी तो की ही थी। और चमारी—जब रसद जुटाते है, तब चमारी भी करते हैं।'

मेरे स्वामी ने कहा है, 'जो चाहे कहो। तुम बच्ची हो। अमृत बालभाषितम्।'

कामिनी बोली, 'ठीक ही है। तुम जब विद्याधरी शासितम्, तब तुम्हारी बुद्धि नाशितम्। मै अब चलितम्, माँ पुकारितम्।'

हाँ, सचमुच माँ पुकार रही थी।

कामिनी जल्दी ही माँ के पास से वापस आ कर बोली, 'जानते हो, माँ क्यो पुकारितम् ? तुम्हे दो दिन और रुकितम्। अगर दो दिन नही रुकितम्, तब जबरदस्ती राखितम्।'

हम दोनो ने एक दूसरे की ओर देखा।

कामिनी फिर बोली, 'क्यो इस तरह ताकितम् ?'

स्वामी ने कहा, 'सोचतम्।'

कामिनी बोली, 'घर जाने पर सोचतम्। अभी दो दिन यहीं रुकतम्। फिर दावतम्, हासितम्, खुशितम्, खेलितम्, घूमितम्, झूलितम्, नाचितम्, गायितम्।'

स्वामी ने पूछा, 'क्यो कामिनी, तू नाचेगी ?'

'धत्, मै क्यो नाचूँ। तुम्हारे लिए जरूर एक घुँघरू खरीद कर रखा है। तुम ही नाचना।'

'मै तो यहाँ आने के पहले काफी नाच चुका हूँ। अब और कितना नाचूँगा ? अब तो तुम्ही नाचो गी।'

'अच्छा नाचूँ, तब तो रहो गे न ?'

'हाँ, तब रहूँगा।'

मेरे माता-पिता के अनुरोध पर मेरे स्वामी रुकने को राजी हो गये। वह दिन भी बड़े मजे मे बीता। शाम के बाद झुंड के झुंड गाँव की लड़कियाँ आईं और मेरे स्वामी के साथ गप्प करने बैठी। उस घर के एक कोने मे मजलिस जुटी।

कितनी ही लडकियाँ आईं। कितने कर्णफूल, झुमके, इयरिंग बिजली की भाँति

चमकी। पान से लाल ओठो के पीछे कितनी ही दंतपंक्तियाँ चमकी। रुन-झुन करती कितनी ही करधनियो की आवाज से भौरे गूँजे। —मेरे स्वामी यह सुन्दरी सेना देख कर भयभीत हो उठे। इस भयंकर रणभूमि मे उन्होने रक्षा के लिए मुझे इशारे से बुलाया। लेकिन मैने सिख-सेनापति की तरह विश्वासघात किया। इस युद्ध मे उनकी सहायता नही की।

ऐसी मजलिसों मे बहुत सी निर्लज्ज बातें भी स्वाभाविक रूप से हो जाती है। इसीलिये मै और कामिनी वहाँ नही गईं। बाहर ही रही। बीच-बीच में छिप कर उधर झाँक लेती थी।

एक बार देखा कि पैंतालिस साल की गाँव की यमुना ठकुरानी मजलिस की सभापत्नी बनी जम कर बैठी है। उनका रंग, खूब काला, आँखें भी छोटी-छोटी, होठ मोटे और रसदार। कपड़ो-गहनो की बहार, आलता की बहार, सिर पर खुले बालो की बहार। उनके शरीर की लम्बाई-चौड़ाई देख कर मेरे पति ने व्यग्य में उन्हे नदी-रूपी महिषी कह कर रसिकता प्रकट की। मथुरा मे यमुना नदी को कृष्ण की नदी-महिषी कहते है। लेकिन हमारी यमुना दीदी न कभी मथुरा गई थी, न वे महिषी के माने ही जानती थी। फिर भी मजाक किया गया है, यह समझकर क्रोधित हुईं। बदला लेने के लिये स्वामी के सामने मुझे गाय कहा।

मैंने पुकार कर पूछा, 'बहन गाय क्यों ?'

तभी कामिनी ने कुछ तीखी बात कह दी। बस, यमुना दीदी गरम हो उठी, 'कामिनी, तू अभी छोटी सी छोकरी है। तू क्यो हाँडी में जबरदस्ती सिर घुसेड रही है ?'

'इसलिए कि और कोई तुम्हारी दवा नही जानता।'

तभी देखा कि पियारी ठान दीदी, जाति की वैद्य, उम्र पैंसठ साल, जिसमे पच्चीस वर्ष वैधव्य मे गुजरे, अपने सभी अंगो पर गहने लाद कर राधिका बन कर आई है। मेरे स्वामी को लक्ष्य कर के, 'कृष्ण कहाँ है ? कृष्ण कहाँ है ? कह कर चारो ओर घूम रही हैं।

मैने पूछा, 'किसे खोजती हो, ठान दीदी ?'

'मै तो कृष्ण को खोजती हूँ।'

कामिनी फिर बोली, 'तो किसी ग्वाले के घर जाओ न ! यह तो कायस्थ का घर है।'

'कायस्थ के घर ही मेरे कृष्ण मिलें गे।'

कामिनी ने मुंह चिढाया। ठान दीदी गालियाँ देने लगी। उन्हे रोकने को यमुना दीदी को दिखा कर मै बोली, 'नाराज मत हो तुम्हारे कृष्ण तो यमुना मे कूद पडे है। आओ तुम और हम रोएं।'

यमुना दीदी यह व्यंग्य भी नहीं समझ सकी। कुढ कर मुझसे बोली, 'लगता है डाकुओ के संग बहुत कुछ सीखा है ?'

मेरी हमजोली सखी रंगमयी बोल उठी, 'इसी तरह इतना ताना क्यों यमुना दीदी ?'

तभी अचानक एक शोर सुनाई पडा। सुना कि मेरे स्वामी किसी को डाँट रहे हैं। हम लोगो ने उधर जा कर देखा कि एक दाढ़ीवाला मुगल उस मजलिस में घुस आया है। मेरे स्वामी उसे वहाँ से चले जाने को डरा धमका रहे है। वह मुगल जा नही रहा है। तभी कामिनी ने पुकार कर कहा, 'जीजा, शरीर में दम नही है क्या ?'

मेरे स्वामी ने जवाब दिया, 'है क्यो नहीं ?'

'तो मुगल का गला पकड कर ढकेल क्यो नही देते ?'

तभी मुगल भागा। उसके भागते समय आगे बढ कर मैने उसे पकड़ना चाहा। हाथ उसकी दाढी पर पड़ा। दाढी मेरे हाथ मे आ गई। मैने दाढी यमुना दीदी पर फेंक दी।

सभी ठठा कर हँस पडे।

इसी तरह दो पहर रात बीत गई।

|२२|

उपसंहार

दूसरे दिन पति के साथ पालकी पर बैठ कर मै अपने ससुराल गई। पति के साथ जा रही हूँ, यह तो अपने आप मे सुख था ही, लेकिन सेवा के लिए जा रही हूँ, यह एक दूसरे ही प्रकार का महान सुख था। जिसे कभी पाया नहो, उसे ही पाने की उम्मीद मे जा रही हूँ। इस समय जो कुछ पाया था, वही आँचल मे बाँध कर ले जा रही हूँ। एक तो कवि का काव्य, दूसरा धनी का धन। धनी का धन क्या कवि के काव्य के समान है ? जो धन कमा-कमा कर बूढे हो गये, वे भी ऐसी बातें नही कहते। वे कहते है कि फूल जब तक पेड पर खिलता है, तभी तक सुन्दर रहता है, तोड़ लेने पर उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। स्वप्न देखना जितना सुखमय होता है, क्या स्वप्न की सफलता भी उतनी ही सुखमय होती है ? जैसे आकाश सचमुच नीला नही है, सिर्फ हम लोग उसे नीला देखते है, धन वैसा ही है। धन कभी भी सुखदायी नही होता। सिर्फ हम लोग उसे सुखदायी समझते हैं। काव्य ही असली सुख है। क्योकि काव्य आशा है, धन केवल भोग है। वह भी सबके भाग्य मे नही होता। बहुत से धनी लोग तो मात्र धन के रखवार हैं।

सो मै बडी खुशी से ससुराल चली। इस बार वहाँ मैं निर्विघ्न पहुँच गई।

मेरे स्वामी ने अपने माता-पिता के सामने सभी बातें खूब विस्तार से कही। फिर रमन बाबू का पुलिंदा खोला गया। उसमे लिखी और मेरी कही बातें पूरी तरह मिल गईं। फिर मेरे सास-ससुर संतुष्ट हो गये। गाँव-समाज के लोगो ने भी पूरा हाल सुनने के बाद कोई बात नही उठाई।

मैने सारी बातें बताते हुए विस्तार से सुभाषिणी को पत्र लिखा। सुभाषिणी के लिए सदा ही मेरे प्राण रोते रहते। मेरे अनुरोध पर मेरे स्वामी ने हारानी के पास मेरी ओर से पाँच सौ रुपये भेज दिए।

सुभाषिणी का उत्तर भी जल्दी ही आ गया। उत्तर आनन्द से भरा हुआ था। सुभाषिणी ने पत्र रमन बाबू के हस्ताक्षर से लिखा था। लेकिन बातें सभी सुभाषिणी की ही थी। यह पत्र पढ कर समझ मे आ गया था। उसने सब के बारे मे सभी प्रकार के समाचार दिए थे। उसने लिखा था—पहले तो यह सुनो कि हारानी किसी तरह भी रुपये लेने को राजी नही हो रही है। वह कहती है कि रुपये लेने से मेरी लालच बढ जाये गी। यह तो संयोग से एक अच्छा काम हो गया, लेकिन ऐसा काम बुरा तो है ही। मै यदि लालच मे पड कर बुरे काम के लिए ही राजी हो जाऊँ तब ?—मैने उस मुँहजली को समझाया कि अगर तू उस दिन मेरी झाड़ू की मार न खाती तो क्या तू यह काम कभी करती ? हर बार क्या तू मेरे हाथ की झाड़ू खा सकती है ? क्या बुरे काम के समय भी मै तुझे उसी प्रकार झाड़ू मारूँगी ? क्या तब भर पेट गालियाँ नही खाए गी ? तू ने अच्छा काम किया था इसीलिए यह बख्शीश मिल रही है। ले ले। इस तरह बहुत समझाने बुझाने पर वह रुपये लेने को राजी हुई है। अब उसने तरह-तरह का व्रत नियम करने का निश्चय कर लिया है। जब तक तुम्हारा यह समाचार नही मिला था, उसकी तो हँसी ही गायब हो गई थी। लेकिन अब वह फिर पहले की तरह हँसने लगी है और अब उसकी हँसी की लपटो से घर के सभी लोग अस्थिर हो उठे है।

रसोईदारिन ब्राह्मणी, सोना की माँ के बारे मे सुभाषिणी ने लिखा था—जब से तुम अपने स्वामी के साथ छिप कर चली गई हो, तब से वह बुढ़िया तुम्हे बहुत भला-बुरा कहती है—मैं तो पहले से ही खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि वह अच्छी औरत नही है। उसकी चाल ढाल ठीक नहीं थी। कितनी बार कहा कि तुम लोग ऐसी चरित्रहीना को घर मे मत रखो। लेकिन कगाल की बात भला कौन सुनता है ? सभी मूर्ख की तरह 'कुमुदिनी-कुमुदिनी' कह कर उसी के पीछे दीवाने थे।—ऐसी ही ऐसी बहुत सी बातें वह करती थी। उसके बाद जब उसे पता लगा कि और किसी के साथ नही बल्कि अपने पति के साथ ही गई हो, तुम बहुत बड़े आदमी की लड़की हो, बहुत बड़े घर की बहू हो, अब अपना घर पा गई हो, तब से वह कहने लगी है—मै तो पहले ही कहती थी कि वह बडे घर की बेटी है। क्या किसी छोटे घर में ऐसा स्वभाव और चरित्र देखने को भी मिलता है ? जैसा रूप है, वैसी ही मानो लक्ष्मी भी है। वह जहाँ रहे, अच्छी तरह रहे, भली और सुखी रहे। अहा, हा, देखो बहूरानी, उससे मुझे भी कुछ भेज देने के लिए कहो।

घर की मालकिन के संबंध में सुभाषिणी ने लिखा था—तुम्हारा सब समाचार जान कर उन्होने अपार प्रसन्नता प्रकट की। साथ ही मुझे और रमन बाबू को फटकारा भी। कहा—वह जब इतने बड़े घर की लडकी है, तब यह बात तुम लोगो ने मुझसे पहले क्यो नही कही ? मैं कम से कम उसे आराम से तो रखती !—फिर तुम्हारे पति

की थोडी सी निन्दा भी की—हो गा उसका पति, पर इस तरह मेरी रसोईदारिन को ले जाना किसी तरह भी उचित नही था।

मालिक रामराय दत्त के सम्बन्ध में सुभाषिणी ने काफी लीपा-पोती की है। मालिक के संबंध मे उसने जो लिखा वह बहुत कष्ट से पढ पा सकी। मालिक ने मालकिन को बनावटी क्रोध से फटकार कर कहा था, तुमने धोखे से एक अच्छी रसोईदारिन को भी हटा दिया है। मालकिन ने कहा, 'ठीक ही किया है, क्या तुम सुन्दरी को ले कर धो कर पीते ? मालिक ने कहा, इस संबध मे भला क्या कह सकता हूँ। उस काले रूप का दिन रात ध्यान नही किया जा सकता। मालकिन ने बस इतने ही पर-चारपाई पकड ली और फिर उस दिन उठ भी न सकी। मालिक ने उनसे हँसी की है, यह बात वह अंत तक नही समझ सकी।

लिखना व्यर्थ है कि ब्राह्मणी और दूसरे नौकरो को भी थोड़ा-थोडा भिजवा दिया है।

इसके बाद सुभाषिणी से और एक बार, केवल एक बार ही भेंट हुई। उसकी लड़की के विवाह के अवसर पर विशेष अनुरोध पर मेरे स्वामी मुझे ले कर गये थे। सुभाषिणी की लडकी को गहने दे कर सजाया। मालकिन को भी उचित उपहार दिए। जो जिसके योग्य था उसे उसी प्रकार की भेंट दी। लेकिन देखा कि मालकिन मुझ पर और मेरे स्वामी पर नाराज थी। अब उनके लडके का ठीक से भोजन नही होता था। यह बात उन्होने मुझे कई बार सुनाई। मैने भी थोडा सा बना कर रमन बाबू को खिला या।

लेकिन उसके बाद फिर कभी नही गई।

मालकिन और रामराय दत्त बहुत दिन हुए परलोक सिधार गये है। फिर भी मेरा जाना नही हो सका।

मै सुभाषिणी को बिल्कुल नही भूली हूँ। और इस जन्म मे भूल भी नही सकती। सुभाषिणी जैसी इस संसार मे कोई भी नही दिखी।

युगलांगुरीय

□

[रचनाकाल : सन् १८७४]

□

'वगदर्शन' मे 'इन्दिरा' के प्रकाशन के एक महीने बाद ही, 'वगदर्शन' में ही 'युगलांगुरीय' का भी प्रकाशन, एक ही अक मे हुआ था।

बकिमचन्द्र के जीवनकाल मे इस लघु-उपन्यास के पुस्तकाकार पाँच संस्करण हो चुके थे।

'युगलागुरीय' की कथा के सम्बन्ध मे बंकिमचन्द्र के जीवनीकार श्री शचीशचन्द्र ने लिखा है :

'तमलूक के राजा का एक बडा बाग था। उसी बाग के बगल से रूपनारायण प्रवाहित होती थी। जब बकिमचन्द्र तमलूक मे मजिस्ट्रेट थे तब एक बार ज्येष्ठ भ्राता श्यामाचरण चट्टोपाध्याय आये। और उस बाग की सजावट देख कर मुग्ध हुए।. फिर वही ताम्रलिस की घटना पर 'युगलागुरीय' की रचना हुई।'

अग्रेजी मे 'युगलागुरीय' के एकाधिक अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। बकिमचन्द्र के जामाता श्री राखालचन्द्र बन्द्योपाध्याय ने The Two Rings नाम देकर एक अनुवाद अंग्रेजी में प्रकाशित किया।

काया में छोटी होने के कारण यह कहानी बंकिमचन्द्र के अन्य वृहत् उपन्यासों के सम्मुख सदा दबी रही और अन्य रचनाओ के मुकाबले कम ही प्रचलित हुई है। लेकिन कथा तथा विषय की रोचकता उनकी किसी भी कथा-कृति से दबती हुई नही है।

प्रेम की समवेदना का ऐसा दूसरा आख्यान न होगा।

●

|१|

बाग के लता-मण्डप के निकट दो जन खड़े थे। तब प्राचीन नगर ताम्रलिप्त के चरण धो कर अनन्त नील-समुद्र मृदु-मृदु निनाद किया करता था।

ताम्रलिप्त नगर के प्रान्तभाग मे समुद्र तट पर एक विचित्र अट्टालिका थी। उसके निकट ही एक सुनिर्मित वृक्षवाटिका थी। वृक्षवाटिका के अधिकारी धनदास नाम के एक श्रेष्ठी थे। श्रेष्ठी की कन्या हिरण्मयी लता-मण्डप के निकट खडी एक युवक से बातचीत कर रही थी।

हिरण्मयी विवाह की आयु पार कर चुकी थी। उसने स्वामी की कामना में, ग्यारह् वर्ष की उम्र से शुरू कर के पाँच साल तक लगातार, इसी समुद्र तीर वासिनी सागरेश्वरी नाम की देवी की पूजा की थी, लेकिन मनोरथ सफल न हुआ था। यौवन प्राप्त कुमारी इस युवक से अकेले मे क्या बात कर रही थी, यह सब लोग जानते थे। हिरण्मयी जब चार साल की बच्ची थी, तब यह युवक आठ साल का था। इसके पिता शचीसुत श्रेष्ठी धनदास के पड़ोसी थे, इसीलिए दोनो मिल कर खेला करते थे। कभी शचीसुत के घर, कभी धनदास के घर, सदा ही दोनो साथ-साथ रहते थे। इस समय युवती की आयु सोलह और युवक की बीस वर्ष की थी, फिर भी दोनो मे वही बचपन की ही मैत्री थी। मात्र थोड़ा सा विघ्न हुआ था। यथासमय दोनो के पिताओ ने, इन दोनो युवक-युवती का परस्पर विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया था। विवाह की तिथि तक निश्चित हो गई थी। अकस्मात हिरण्मयी के पिता ने कहा, 'मै विवाह नही करूँगा।' तब से हिरण्मयी और पुरन्दर का साक्षातकार नही होता था। आज पुरन्दर ने बहुत विनती कर के, एक विशेष बात कहने का बहाना कर के उसे बुला भेजा था। लता-मण्डप के नीचे आ कर हिरण्मयी ने पूछा, 'मुझे क्यो बुलवाया है ? अब मैं छोटी सी बच्ची नही हूँ।

अब तुमसे एकान्त मे और मिलना अच्छा नही मालूम होता। अब बुलाने पर भी मै नही आऊँ गी।'

सोलह साल की लडकी कह रही है, 'अब मै छोटी सी बच्ची नही हूँ।' यह बहुत मधुर वाक्य है। लेकिन उस रस का अनुभव करने वाला आदमी वहाँ नही था। पुरन्दर की उम्र और मन का भाव वैसा न था।

मण्डप के रूप मे फैली लता से एक फूल तोड कर उसे नोचते-नोचते पुरन्दर ने कहा, 'मै अब और नही बुलाऊँ गा। मै दूर देश चला जा रहा हूँ। यही तुम्हे बताने के लिए आया था।'

'दूर देश? कहाँ?'

'सिंहल।'

'सिंहल? सो क्यो? सिंहल क्यो जाओ गे?'

'क्यो जाऊँ गा? हम लोग श्रेष्ठी है—व्यापार के लिए जाएँ गे।' कहते-कहते पुरन्दर की आँखें छलछला आईं।

हिरण्मयी अनमनी हो गई। कुछ बोल न पाई। अनिमेष नयनो से सामने फैली सागर की तरगो पर सूर्य की किरणो की क्रीड़ा देखती रही। प्रात काल, मधुर हवा बह रही थी—मधुर हवा से उठी उत्तुङ्ग तरंगो पर बाल-सूर्य की रश्मियाँ चढ़ी हुई काँप रही थी—समुद्र के जल पर उनकी अनन्त उज्ज्वल रेखा फैली हुई थी—श्यामा के अंगो पर रजत अलकार जैसे फेन शोभा दे रहे थे किनारे पर जलचर पक्षी श्वेत रेखा बनाए घूम रहे थे। हिरण्मयी ने सब देखा, नीला जल देखा, तरगो पर फेन-माला देखी, सूर्य-रश्मियो की क्रीडा देखी,—दूर के समुद्री पोत देखे,—नीले आकाश मे काले-बिन्दु-सा एक पक्षी उड़ रहा था, उसे भी देखा। अंत मे जमीन पर पड़े एक सूखे फूल की ओर निगाह डालते हुए बोली, 'तुम क्यो जाओ गे? और बार तो तुम्हारे पिता जाया करते थे।'

पुरन्दर ने कहा, 'मेरे पिता अब वृद्ध हो गए हैं। अब मेरे अर्थोपार्जन का समय आया है। मुझे पिता जी की अनुमति मिल गई है।'

हिरण्मयी ने लता मण्डप की डाल पर माथा टिका दिया। पुरन्दर ने देखा, उसका माथा सिकुड़ गया था, ओठ फडक रहे थे, नासारन्ध्र स्फीत हो रहे थे। देखा, हिरण्मयी रो रही थी।

पुरन्दर ने मुँह-फेर लिया। उसने भी एक बार आकाश, पृथ्वी, नगर, समुद्र सभी ओर देखा, लेकिन कुछ न दिखा। आँखो से आँसू बरबस निकल ही पड़े। पुरन्दर ने आँखे पोछ कर कहा, 'यही बात बताने के लिए मै आया हूँ। जिस दिन तुम्हारे पिता ने कहा था, किसी तरह भी मुझसे तुम्हारा ब्याह नही करें गे, उसी दिन सिंहल जाने का विचार मैने पक्का कर लिया था। इच्छा है कि सिंहल से कभी न लौटूँ। यदि कभी तुम्हे

भूल सका, तभी लौटूँ गा। मै अधिक बातें करना नही जानता, तुम भी अधिक बातें समझ नही सकती। इतने से ही समझ सको गी कि मेरे लिए समस्त संसार एक ओर और तुम एक ओर रहो तो ससार तुम्हारे तुल्य नही होगा।' इतना कह कर पुरन्दर ने हठात् घूम कर कदम बढाते हुए एक पेड के एक पत्ते को नोच लिया। अश्रुवेग के थोडा थमने पर, लौट आ कर फिर कहा, 'तुम मुझे प्यार करती हो, यह जानता हूँ। लेकिन जब भी हो, तुम दूसरे की ही पत्नी बनो गी। इसलिए तुम मुझे अब भुला देना। तुम्हारे साथ अब इस जन्म मे भेंट न होगी।'

इतना कह कर पुरन्दर तेजी से चला गया। हिरण्मयी बैठ कर रोने लगी। फिर रुलाई थमने पर एक बार सोचा, 'मै यदि आज ही मर जाऊँ, तब क्या पुरन्दर सिंहल जा सके गा? मै क्यो न गले मे लता की फाँसी लगा कर मर जाऊँ, या समुद्र मे क्यो न कूद जाऊँ?' फिर सोचा, 'मै यदि मर ही जाऊँ, तब पुरन्दर सिंहल जाय या न जाय, फिर इसमे मेरा क्या?' यही सोच कर हिरण्मयी फिर बैठ कर रोने लगी।

|२|

क्यो धनदास ने कहा था, 'मै पुरन्दर के साथ हिरण का विवाह नही करूँगा' यह कोई नही जानता। उन्होने किसी से इसका कारण नही बताया। पूछने पर कहते, 'विशेष कारण है।' हिरण्मयी के लिए अन्य दूसरे अनेक सम्बन्ध आए, लेकिन धनदास किसी भी सम्बन्ध के लिए सहमत नही हुए। विवाह की चर्चा पर कान ही न देते। 'कन्या बडी हुई', कह कर गृहिणी तिरस्कार करती, लेकिन धनदास एक न सुनते। केवल कहते, 'गुरूदेव आवे, उनके आने पर ही यह बात होगी।'

पुरन्दर सिंहल चला गया। उसकी सिंहल-यात्रा के बाद भी दो साल ऐसे ही बीत गए। पुरन्दर नही लौटा। हिरण्मयी का कही सम्बन्ध न हुआ। हिरण अट्ठारह वर्ष की हो कर बगीचे के नव-पल्लवित आम के पेड़ की तरह धनदास के घर की शोभा बढाने लगी।

हिरण्मयी इससे दु खित नही हुई। विवाह की चर्चा चलती, पुरन्दर की याद आती, उसका खिले फूलो की माला से शोभित, काले घुँघराले बालो से घिरा हँसता हुआ चेहरा याद आता, उसका हाथी-दाँत सा सफेद कन्धा और उस पर पडा सुनहले फूलो वाला नीला उत्तरीय याद आता, पद्म जैसे हाथ की उँगलियो मे पडी हीरे की अँगूठियाँ याद आती, हिरण्मयी रोती। पिता की आज्ञा होने पर जिससे-तिससे विवाह करना पड़ता। लेकिन वह जीते जी मरने जैसा होता। तब अपने विवाह के लिए पिता को

प्रयत्न न करते देख कर, प्रसन्न हो या न हो, विस्मित अवश्य होती। और कोई इतनी आयु की कन्या को अविवाहिता नही रखता—रहने पर भी सम्बन्ध का प्रयत्न करता है। उसके पिता उस बात पर कान तक क्यो नही देते ? एक दिन अकस्मात् इस सम्बन्ध में उसे कुछ पता लगा।

धनदास ने व्यापार करते हुए चीन देश की बनी एक विचित्र प्रकार की सन्दूकची पाई थी। सन्दूकची बहुत बड़ी थी—धनदास की पत्नी उसमे गहने रखती थी। धनदास ने कुछ नए गहने बनवाकर पत्नी को उपहार-रूप मे दिए। श्रेष्ठि-पत्नी ने पुराने गहने सन्दूकची समेत कन्या को दिए। गहनो को उसमे रखते-उठाते हिरण्मयी ने उसमे एक छिन्न-लिपि का आधा भाग देखा।

हिरण्मयी को पढ़ना आता था। उसमे पहले ही अपना नाम देख कर उसे कौतूहल हुआ। पढकर देखा कि जो आधा भाग है, उससे कोई मतलब हल नही होता। किसने किसे लिखा है, यह भी कुछ समझ मे नही आया। लेकिन फिर उसे पढ़ कर हिरण्मयी को बड़ा डर लगा। वह खण्ड-पत्र इस प्रकार था।

ज्योतिषी से गणना करा कर देखा।
हिरण्मयी सोने की पुतली जैसी।
विवाह होने पर भयानक विपत्ति है।
परस्पर एक दूसरे का मुख।
यही होगा।

हिरण्मयी किसी अज्ञात विपत्ति की आशंका कर के बहुत ज्यादा डर गई। किसी से कुछ न कहा पर उस पत्र-खण्ड को उठा कर रख लिया।

| ३ |

दो साल के बाद और एक साल बीत गया। फिर भी पुरन्दर के सिंहल से आने का कोई समाचार न मिला। लेकिन हिरण्मयी के हृदय मे उसकी मूर्ति पूर्ववत् उज्ज्वल बनी रही। उसने मन ही मन समझ लिया कि पुरन्दर भी उसे नही भूल सका है—नही तो इतने दिनो मे लौट आता।

इस प्रकार दो और एक तीन साल बीतने पर, अकस्मात एक दिन धनदास ने कहा, 'चलो, सपरिवार काशी चले गे। गुरूदेव के पास से उनके शिष्य आए हैं। गुरुदेव ने वहाँ आने की अनुमति दी है। वही हिरण्मयी का विवाह होगा। वही उन्होने एक पात्र ठीक कर रखा है।'

धनदास, पत्नी व कन्या को ले कर काशी के लिए रवाना हुए। उपयुक्त समय पर काशी पहुँचने पर, धनदास के गुरु आनन्दस्वामी ने आ कर भेंट की। एवं विवाह का दिन स्थिर कर के यथाशास्त्र उद्योग करने को कह गए।

विवाह का यथाशास्त्र उद्योग हुआ। लेकिन समारोह कुछ भी नही हुआ। धनदास के परिवार के व्यक्तियो को छोड कर कोई जान भी न पाया कि विवाह हो रहा है। केवल शास्त्रीय आचारो की मात्र रक्षा की गई।

विवाह के दिन संध्या होने पर—एक पहर रात बीतने पर लग्न थी, फिर भी घर मे प्राय जो लोग रहते थे, उनके अलावा और कोई नही था। कोई पड़ोसी भी नही आया। अब तक धनदास के सिवा कोई भी घर का अन्य व्यक्ति नही जानता था कि वर कौन है—वर कहाँ का है। तब भी सब लोग समझते थे कि जब आनन्दस्वामी ने विवाह का संबंध ठीक किया है, तब उन्होने अपात्र को कभी न चुना हो गा। उन्होने वर का परिचय क्यो नही स्पष्ट किया, यह वही जाने—उनके मन की बात भला कौन समझ सकता है? एक कमरे मे पुरोहित कन्यादान का प्रबंध करने अकेले बैठे थे। बाहर अकेले बैठे धनदास वर की प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्त पुर मे वधू की सज्जा कर के हिरण्मयी बैठी थी, और कही कोई न था। हिरण्मयी मन ही मन सोच रही थी, 'यह क्या रहस्य है! यदि पुरन्दर के साथ विवाह न हुआ, तब चाहे जिसके साथ विवाह हो, वह मेरा पति नही हो सकेगा।'

इसी समय धनदास कन्या को बुलाने आए। लेकिन उसे विवाह-स्थल पर ले जाने के पहले, कपडे से उसकी दोनो आँखें कस कर बाँध दी। हिरण्मयी ने कहा, 'यह क्या पिता जी?' धनदास ने कहा, 'गुरूदेव की आज्ञा। तुम मेरे आदेशानुसार काम करो। मन ही मन मंत्र कहती जाना।' सुन कर हिरण्मयी ने फिर कोई बात न कही। धनदास दृष्टिहीना कन्या का हाथ पकड कर विवाह-स्थल मे ले गए।

हिरण्मयी वहाँ पहुँच कर यदि कुछ देख पाती तो देखती कि वर के भी उसी की तरह आँखो पर पट्टी बँधी है। इसी तरह विवाह हुआ। उस स्थान पर गुरु, पुरोहित और कन्या के पिता के अलावा और कोई न था। वर-कन्या मे किसी ने किसी को नही देखा। शुभ-दृष्टि नही हुई।

विवाह सम्पन्न होने के बाद आनन्दस्वामी ने वर-कन्या से कहा, 'तुम लोगो का विवाह हो गया। लेकिन तुम लोगो ने एक दूसरे को नही देखा। कन्या का कुवाँरापन दूर करना ही इस विवाह का उद्देश्य है। इस जन्म मे तुम लोगो का परस्पर कभी साक्षात्कार हो गा कि नही, यह नही कह सकता। अगर हो भी तो कोई किसी को पहचान न सके गा। पहचानने का हम एक उपाय किए देते है। मेरे हाथ मे दो अँगूठियाँ हैं। दोनो बिल्कुल एक जैसी है। यह अँगूठियाँ जिस पत्थर की बनी है, वह नही मिलता और अँगूठियो के भीतरी भाग मे एक मोर अंकित है। यह मैने एक वर को और एक

कन्या को दी । ऐसी अंगूठी और किसी के पास नहीं । विशेष कर इस मोर के चित्र की नकल भी नही की जा सकती । इसे मैंने अपने हाथ से खोद कर बनाया है । यदि कन्या कभी किसी पुरुष की उँगली मे ऐसी अँगूठी देखे तो जान ले कि वही पुरुष उसका पति है । यदि वर किसी स्त्री की उँगली मे ऐसी अँगूठी देखे तो जान ले कि वह स्त्री उसकी पत्नी है । तुम कोई यह अंगूठी न खोना, न ही किसी को देना, पेट के लाले पडे तब भी न बेचना । लेकिन यह भी आज्ञा दे रहे है कि आज से पाँच साल तक यह अँगूठी कदापि न पहनना । आज आसाढ मास की शुक्ला पंचमी, रात के ग्यारह दण्ड बीते है, इसके बाद पाँचवें आसाढ की शुक्ला पंचमी, रात को ग्यारह दण्ड तक अँगूठी पहनने की मनाही है । मेरे निषेध की अवहेलना करने पर बड़ा भारी अमगल होगा ।'

यह कह कर आनन्दस्वामी विदा हो गए । धनदास ने कन्या की आँखो की पट्टी खोल दी । हिरण्मयी ने आँखे खोल कर देखा, घर मे केवल पिता और पुरोहित हैं—उसके पति नही । विवाह की वह रात उसने अकेली ही काटी ।

| ४ |

विवाह के बाद स्त्री व पुत्री को ले कर धनदास अपने देश वापस लौट आये । और भी चार वर्ष गुजर गए । पुरन्दर वापस नही लौटा । हिरण्मयी के लिए अब उसके लौटने से क्या और न लौटने से क्या ?

इस तरह सात साल बीतने पर भी पुरन्दर नही लौटा । यह सोच कर हिरण्मयी दुखी हुई । मन मे सोचा, 'वह आज भी मुझे नही भूल सका, इसीलिए नहीं आया, यह बात कदाचित सच नही । वह जीता भी है या नही यह संशयात्मक है । उसे देखने, की मै कामना नही करती, अब मैं दूसरे की पत्नी हूँ, लेकिन मेरे बाल्यकाल का साथी जीवित रहे, यह कामना मैं क्यो न करूँ ?'

धनदास मे किसी कारण से चिन्ता के भाव प्रकट होने लगे, धीरे-धीरे चिन्ता बढ़ती गई और अन्त मे कठिन रोग मे बदल गई । उसी मे उनकी मृत्यु हो गई । धनदास की पत्नी सती हो गई । हिरण्मयी का और कोई न था, इसलिए हिरण्मयी माँ के पाँव पकड कर बहुत रोई और कहा—तुम मत मरो । लेकिन श्रेष्ठी-पत्नी ने एक न सुनी । और तब हिरण्मयी धरती पर अकेली रह गई ।

मृत्यु के समय हिरण्मयी की माता ने पुत्री को समझाया, 'बेटा, तुम्हे किस बात की चिन्ता है ? तुम्हारे एक पति अवश्य है । नियमित समय बीतने के बाद उनसे

तुम्हारी भेंट होगी। न हो तो, तुम छोटी सी बच्ची नहीं हो। विशेषकर पृथ्वी पर जो प्रधान वस्तु—धन है—वह तुम्हारे पास अतुल परिमाण मे है।'

लेकिन यह आशा भी विफल हुई—धनदास की मृत्यु के बाद देखा गया कि वे कुछ भी नही छोड़ गए है। गहने, अट्टालिका और गृहस्थी की चीजें छोड कर और कुछ नही है। पूछ ताछ करने पर हिरण्मयी ने जाना कि धनदास कई वर्षों से व्यापार मे घाटा उठाते रहे है। इस सबंध मे वे किसी से कुछ न कह कर इस संकट से उबरने का ही प्रयत्न करते रहे। यही उनकी चिन्ता का कारण था। अन्त मे यही संकट असाध्य हो गया। धनदास मन ही मन क्लेश से पीड़ित हो कर परलोक वासी हो गए।

यह सब बातें जान-सुन कर दूसरे-दूसरे श्रेष्ठी-गण आ-आ कर हिरण्मयी से बोले, 'तुम्हारे पिता मेरे ऋणी होकर मरे हैं। तुम यह ऋण चुकाओ।' हिरण्मयी ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि उन लोगो का कहना सत्य है। तब हिरण्मयी ने अपनी सब सम्पति बेच कर उनके ऋण को चुकता किया। रहने का घर भी बेच दिया।

अब हिरण्मयी अन्न-वस्त्र के लिए भी परेशान हो कर नगर के एक छोर पर एक कुटिया में बिल्कुल अकेली रहने लगी। उसके एकमात्र परम हितैषी थे आनन्दस्वामी। किन्तु वे इस समय दूर देश मे थे। हिरण्मयी के पास इस समय एक भी ऐसा आदमी न था जिसे वह आनन्दस्वामी के पास भेजती।

।५।

हिरण्मयी है युवती और सुन्दरी—बिल्कुल अकेली। एक सूने घर में रात को सोना उचित न था। डर भी है—कलंक भी है। अमला नाम की एक ग्वालिन हिरण्मयी की पडोसिन थी। वह विधवा—उसके एक किशोर पुत्र और कई पुत्रियाँ थी। उसकी जवानी की उम्र बीत गई थी। उसकी सच्चरित्रा के रूप में ख्याति थी। हिरण्मयी रात को आ कर उसी के घर मे सोती थी।

एक दिन हिरण्मयी अमला के घर जब सोने गई तब अमला ने उससे कहा, 'कुछ खबर सुनी है, पुरन्दर श्रेष्ठी आठ वर्षों बाद नगर में वापस आया है।' सुनकर हिरण्मयी ने चेहरा घुमा लिया—उसकी आँखो के आँसू अमला न देख सकी। पृथ्वी पर से हिरण्मयी का अंतिम सबध भी धूमिल हो गया। पुरन्दर उसे अवश्य ही भूल गया। नही तो वापस न आता। पुरन्दर इस समय उसे याद रखे या भूल जाय, इससे

उसे लाभ या हानि क्या है ? फिर भी जिसके स्नेह की बात सोच कर इतनी उम्र कटी है, वही भूल गया है, यह सोच कर हिरण्मयी के मन को कष्ट हुआ। हिरण्मयी ने एक बार सोचा—'भूला नही, मेरे ही कारण कितने समय तक विदेश मे पडा रहता ? विशेषकर जब उसके पिता की मृत्यु हो चुकी है, अपने देश आए बिना चले गा भी कैसे ?' फिर सोचा, 'इसमे सन्देह नही कि मै कुलटा हूँ। नही तो पुरन्दर की बात ही क्यो सोचती ?'

अमला ने कहा, 'पुरन्दर की क्या तुम्हे याद नही आती ? पुरन्दर, शचीसुत श्रेष्ठी का बेटा।'

'जानती हूँ।'

'वही वापस आया है। कितनी नावें भर कर धन लाया है, गिन कर कोई नही बता सकता। इतना धन कि कहते हैं कि ताम्रलिप्त मे कभी किसी ने नही देखा।

हिरण्मयी के हृदय का रक्त तेजी से बहने लगा। अपनी दरिद्रावस्था उसे याद आई, पहले का सम्बन्ध भी याद आया। दरिद्रता की जलन बडी तेज होती है। इस दरिद्रता के बदले यही अतुल धनराशि हिरण्मयी की हो सकती थी, यह सोच कर रक्त का बहाव तेज न हो, ऐसी स्त्री शायद ही कोई हो। हिरण्मयी थोड़ी देर तक अनमनी सी रही फिर दूसरा प्रसंग उसने उठाया। अन्त मे सोते समय उसने पूछा, 'अमले, उस श्रेष्ठि-पुत्र का विवाह हो गया है ?'

अमला बोली, 'नही, विवाह नही हुआ है।'

हिरण्मयी की समस्त इन्द्रियाँ अवश हो गईं। उस रात फिर और कोई बात नही हुई।

| ६ |

फिर एक दिन अमला ने हिरण्मयी के पास आकर हँस कर मधुर-भर्त्सना करते हुए कहा, 'हाँ तो बेटी, तुम्हारा क्या यही धर्म है ?'

हिरण्मयी बोली, 'क्या किया है मैने ?'

'मुझसे भी इतने दिनो नही बताया ?'

'क्या नही बताया ?'

'पुरन्दर श्रेष्ठी से तुम्हारी इतनी आत्मीयता !'

हिरण्मयी लजा गई, बोली, 'वह तो बाल्यकाल मे हमारा पड़ोसी था—इसमे भला बताती क्या ?'

'सिर्फ पड़ोसी ? देख न, क्या लाई हूँ ।'

इतना कह कर अमला ने एक शृंगारदान निकाला । उसे खोल कर उसके भीतर से अपूर्व दर्शनीय, अत्यन्त चमकदार, खूब कीमती हीरे का हार निकाल कर हिरण्मयी को दिखाया । श्रेष्ठिकन्या थी वह, हीरा पहचानती थी—विस्मित हो कर बोली, 'यह तो बहुत कीमती है—कहाँ पाया इसे ?'

'यह तुम्हारे लिए पुरन्दर ने भेजा है । तुम मेरे घर मे हो, सुन कर मुझे बुला भेजा और यह तुम्हे देने को कहा ।'

हिरण्मयी ने सोच कर देखा, यह हार स्वीकार कर ले तो चिरकाल के लिए दरिद्रता समाप्त हो जाय । धनदास की लाड़ली कन्या को अन्न-वस्त्र का कष्ट कभी सहना न पडेगा । अतएव क्षण भर को हिरण्मयी अनमनी हो गई । फिर दीर्घ नि श्वास छोड कर बोली, 'अमला, तुम वणिक से कहना कि मै इसे ग्रहण नही करूँगी ।'

अमला विस्मित हो रही । बोली, 'यह क्या ? तुम पागल हो, या तुम्हे मेरी बात पर विश्वास नही हो रहा है ?'

'मै तुम्हारी बात का विश्वास कर रही हूँ—और पागल भी नही हूँ । मैं इसे ग्रहण नही करूँगी ।'

अमला अनेक प्रकार से तिरस्कार करने लगी । हिरण्मयी ने किसी तरह भी ग्रहण नही किया । तब अमला वह हार ले कर राजा मदनदेव के पास गई । राजा को प्रणाम कर के वह हार उसने उपाहार मे दिया । कहा, 'यह आप को ग्रहण करना ही होगा । यह हार आप के ही योग्य है ।' राजा ने हार ले कर अमला को खूब धन दिया । हिरण्मयी इस बारे मे कुछ भी न जान सकी ।

इसके कुछ दिनों बाद पुरन्दर की एक नौकरानी हिरण्मयी के पास आई । उसने आ कर कहा, मेरे मालिक ने कहला भेजा है, कि आप यहाँ उस कुटिया में रहती हैं, यह उनसे सहा नही जाता । आप उनकी बाल्यकाल की सखी है, आप का घर और उनका घर एक ही है । वे ऐसा नही कहते कि आप उनके घर मे जा कर रहे । उन्होने आप का पितृगृह धनदास जी के महाजन से खरीद लिया है । वही आप को वे दान में दे रहे है । आप चल कर वही रहें, यही उनकी भीख है ।'

हिरण्मयी दरिद्रता के कारण जितना दु ख भोग रही थी, उसमे पिता का मकान छूटना ही सब से बढ कर था । जहाँ उसने बाल्यक्रीडाएँ की थी, जहाँ पिता व माता के साथ रही है, जहाँ उनकी मृत्यु भी देखी, जहाँ वह रह नही पायी, यही कष्ट बहुत बडा मालूम होता था । इसी घर की बात से उसकी आँखो मे आँसू आ गये । उसने नौकरानी को आशीर्वाद दे कर कहा, 'यह दान ग्रहण करना मेरे लिए उचित नही है, लेकिन मै यह लोभ भी सवरण नही कर पा रही हूँ । तुम्हारे मालिक का सब तरह से मंगल हो ।'

अमला तैयार हो गई । दोनो जा कर धनदास के मकान मे रहने लगी ।

फिर भी अमला को बराबर पुरन्दर के घर आते-जाते देख कर एक दि
हिरण्मयी ने मना किया। अमला फिर और नहीं गई।

पिता के घर में जाने के बाद हिरण्मयी एक विषय में बड़ी विस्मित हुई।
दिन अमला ने कहा, 'तुम निर्वाह के लिए खर्च की चिन्ता मत करो और न
परिश्रम ही करो। राज दरबार में मुझे काम मिल गया है—अब मुझे पैसों की
नहीं है। अब मैं घर का खर्च चला लूँगी—तुम घर की मालकिन बन कर रहो
हिरण्मयी ने देखा, अमला के पास सचमुच बहुत धन है। उसके मन में नाना प्रकार
संदेह उठने लगे।

|७|

विवाह के बाद पाँचवें आषाढ़ की शुक्ल पंचमी आ उपस्थित हुई। हिरण्मयी
वह सब बातें याद करके संध्या को अनमनी सी बैठी थी। सोच रही थी, 'गुरुदेव की
आज्ञानुसार मैं कल अँगूठी पहन सकूँगी। लेकिन क्या पहनूँ? पहनने से भला
मेरा क्या लाभ? हो सकता है, पति को पा लूँ लेकिन पति को पाने की मेरी कामना
नहीं है। अथवा चिरकाल के लिए दूसरे की मूर्ति मन में अंकित कर रखूँ? इस हृदय
पर काबू रखना ही उचित है। नहीं तो धर्म में पतित होऊँगी।'

इसी समय अमला विस्मय-विह्वल हो कर आ कर बोली, 'सर्वनाश! मैं तो कुछ
भी नहीं समझ पा रही हूँ। न जाने क्या होने वाला है!'

'क्या हुआ?'

'राजपुरी से तुम्हारे लिए पालकी और दास-दासियाँ आई हैं।
लिवा ले जाएँगे।'

'तुम पागल हो गई हो, मुझे राजवाड़ी लिवा जाने को कोई भला
आएगा?'

इसी समय राजदूती ने आ कर प्रणाम किया और बोली, 'राजाधिराज
भट्टारक मदनदेव की आज्ञा है, हिरण्मयी इसी क्षण पालकी पर चढ़ कर
अन्तःपुर जाएँगी।'

हिरण्मयी भी विस्मित हुई। लेकिन इन्कार न कर सकी। राजाज्ञा अलंघ्य
विशेषकर राजा मदनदेव के अन्तःपुर में जाने में कोई हिचक नहीं। राजा परम
और जितेन्द्रिय हैं, ऐसी ही उनकी ख्याति है। उनके प्रताप से कोई राजपुरुष
स्त्री पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकता था।

हिरण्मयी ने अमला से कहा, 'अमले, मैं राजा के दर्शन करने जाने को तैयार । तुम भी साथ चलो ।'

अमला भी तैयार हुई ।

पालकी पर बैठ कर हिरण्मयी राज-अन्तःपुर में गई । प्रतिहारी ने राजा के मुख निवेदन किया, 'श्रेष्ठिकन्या आ गईं ।' राजाज्ञा पा कर प्रतिहारी हिरण्मयी को केली राजा के सामने ले गया । अमला बाहर ही रही ।

। ८ ।

राजा को देख कर हिरण्मयी चकित रह गई । राजा दीर्घाकृति पुरुष, कवाटवक्ष, दीर्घहस्त, अति सुगठित आकृति, प्रशस्त ललाट, विस्फारित आयत आँखें, शान्त मूर्ति—ऐसा रूपवान सुन्दर पुरुष कदाचित ही किसी स्त्री ने कभी देखा हो । राजा भी श्रेष्ठि-कन्या को देख कर समझ गए कि राज-अन्तःपुर में ऐसी सुन्दरी दुर्लभ है ।

राजा ने कहा, 'तुम हिरण्मयी हो ?'

हिरण्मयी बोली, 'मैं ही आप की दासी हूँ ।'

राजा ने कहा, 'तुम्हें क्यों बुलाया है, सो सुनो । तुम्हें अपने विवाह की बात याद है ?'

'याद है ।'

'उस रात आनन्दस्वामी ने तुम्हें जो अँगूठी दी थी, वह तुम्हारे पास है ?'

'महाराज ! वह अँगूठी है । लेकिन वह तो बहुत गोपनीय बात है, आपको के बारे में कैसे पता लगा ?'

राजा ने इसका कोई उत्तर न दे कर कहा, 'वह अँगूठी कहाँ है ? हमें दिखाओ ।'

हिरण्मयी ने कहा, 'उसे मैंने घर में रखा है । पाँच वर्ष पूरा होने में अभी कई बाकी हैं—अतएव उसे पहनने में आनन्दस्वामी का जो निषेध था, वह अभी

'ठीक है—लेकिन उस अँगूठी की ही तरह की एक दूसरी अँगूठी जो नन्दस्वामी ने तुम्हारे पति को दी थी, उसे देख कर पहचान सकोगी ?'

'दोनों अँगूठियाँ एक ही जैसी हैं, इसलिए देख कर पहचान लूँगी ।'

तभी प्रतिहारी राजाज्ञा पा कर एक सोने की डिबिया ले आया । राजा ने भीतर से एक अँगूठी निकाल कर कहा, 'देखो, यह अँगूठी किसकी है ?'

हिरण्मयी ने अँगूठी को रोशनी में ठीक से देख कर कहा, 'देव ! यही मेरे पति